आचार्य श्री तुलसी
अभिनन्दन ग्रन्थ

प्रकाशक :
आचार्य श्री तुलसी धवल समारोह समिति
वृद्धिचन्द जैन स्मृति भवन,
४०९३ नयाबाजार, दिल्ली ।

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय	२६२
द्वितीय अध्याय	१३२
तृतीय अध्याय	१२४
चतुर्थ अध्याय	२१२
अन्य	२८
कुल योग	७८८

•

मूल्य : चालीस रुपये

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स
२७ शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली
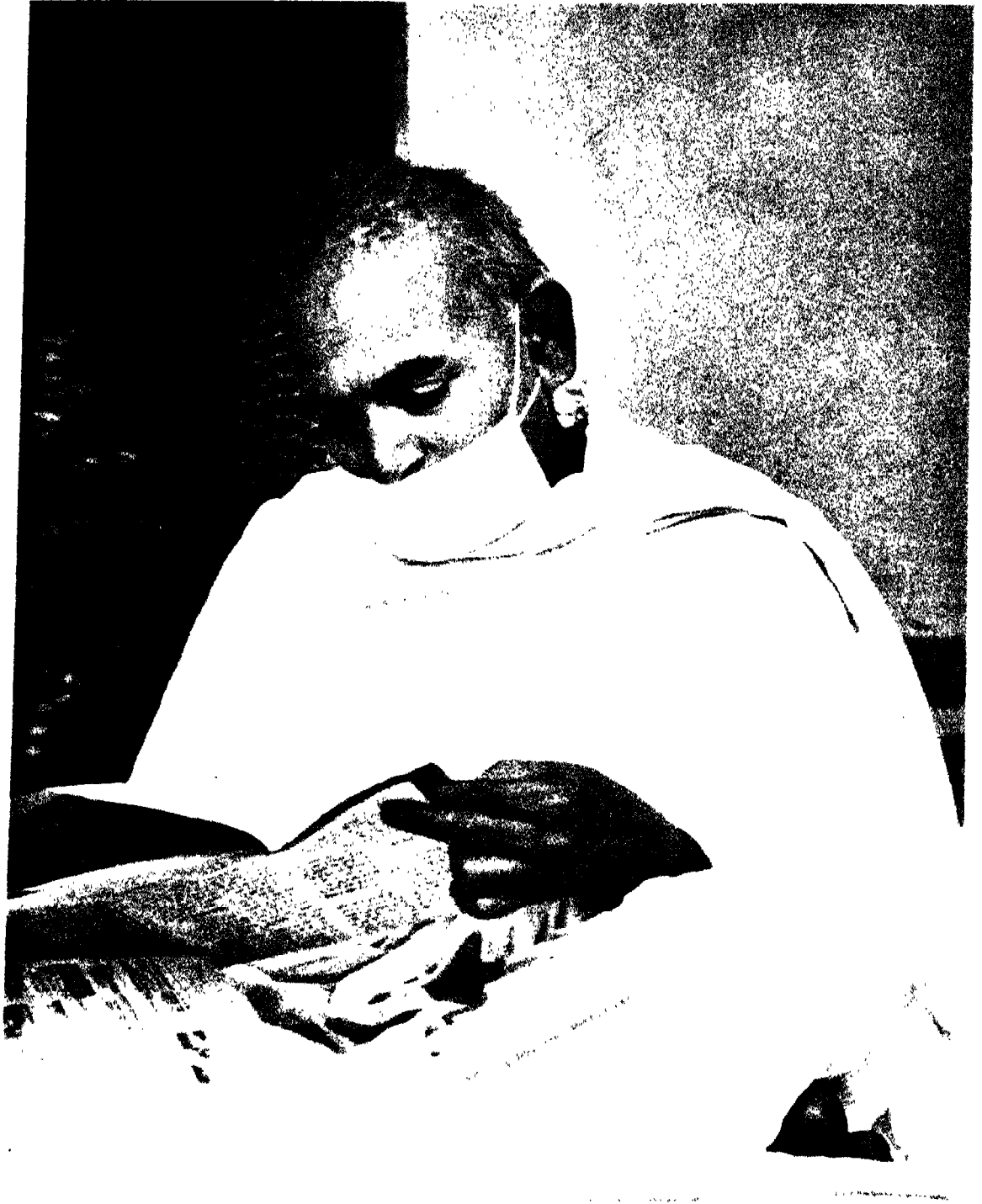
तेरापंथ के नवमाधिशास्ता, अणुव्रत-आन्दोलन-प्रवर्तक—

आचार्य श्री तुलसी

उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्लि राधाकृष्णन्

द्वारा

वि० सं० २०१८ फाल्गुन कृष्णा दशमी, गुरुवार

ता० १ मार्च, १९६२

के दिन गंगाशहर (बीकानेर) में

अणुव्रत-आन्दोलन-प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी

को

सादर समर्पित

सम्पादकीय

आचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ में चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय श्रद्धाञ्जलि और संस्मरण प्रधान है। देश और विदेश के विभिन्न क्षेत्रीय लोगों ने आचार्यश्री तुलसी को अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। वे आचार्यश्री के व्यापक व्यक्तित्व और लोक-सेवा की परिचायक हैं। दूसरे अध्याय में आचार्यश्री तुलसी की जीवन-गाथा है। जिनका समग्र जीवन ही अहिंसा और अपरिग्रह की पराकाष्ठा पर है, उनकी जीवन-गाथा सर्वसाधारण के लिए उद्बोधक होनी ही है। तीसरे अध्याय की आत्मा अणुव्रत है। समाज में अनैतिकता क्यों पैदा होती है और उसका निराकरण क्या है आदि विषयों पर विभिन्न पहलुओं से लिखे गए नाना चिन्तनपूर्ण लेख इस अध्याय में हैं। समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र के आधार पर विभिन्न विचारकों द्वारा प्रस्तुत विषय पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में इस अध्याय को हम एक सर्वांगीण नैतिक दर्शन कह सकते हैं। चौथा अध्याय दर्शन और परम्परा का है। विद्वानों द्वारा अपने-अपने विषय से सम्बन्धित लिखे गए शोधपूर्ण लेख इस अध्याय की ही नहीं, समग्र ग्रन्थ की अनूठी सामग्री बन गए हैं। हालांकि अधिकांश लेख जैन दर्शन और जैन-परम्परा से ही सम्बन्धित हैं; फिर भी वे नितान्त शोध-प्रधान दृष्टि से लिखे गए हैं और साम्प्रदायिकता से सर्वथा अछूते रहे हैं। स्याद्वाद जैन दर्शन का तो हृदय है ही, साथ-साथ वह जीवन-व्यवहार का अभिन्न पहलू भी है। यह सिद्धान्त जितना दार्शनिक है, उतना वैज्ञानिक भी। डा० आइन्स्टीन ने भी अपने वैज्ञानिक सिद्धान्त को सापेक्षवाद की संज्ञा दी है। इस प्रकार चार अध्यायों का यह अभिनन्दन ग्रन्थ दर्शन और जीवन-व्यवहार का एक सर्वांगीण शास्त्र बन जाता है। अभिनन्दन-परम्परा की उपयोगिता भी यही है कि उस प्रसंग विशेष पर ऐसे ग्रन्थों का निर्माण हो जाता है। अभिनन्दन में व्यक्ति तो केवल प्रतीक होता है। वस्तुतः तो वह अभिनन्दन उसकी सत्प्रवृत्तियों का ही होता है।

भारतवर्ष में सदा ही त्याग और संयम का अभिनन्दन होता रहा है। आचार्यश्री तुलसी स्वयं अहिंसा व अपरिग्रह की भूमि पर है और समाज को भी वे इन आदर्शों की ओर मोड़ना चाहते हैं। सामान्यतया लोग सत्ता की पूजा किया करते हैं। इस प्रकार सेवा के क्षेत्र में चलने वाले लोगों का अभिनन्दन समाज करती रही, तो सत्ता और अर्थ जीवन पर हावी नहीं होंगे।

ग्रन्थ-सम्पादन की शालीनता का सारा श्रेय मुनिश्री नगराजजी को है। साहित्य और दर्शन उनका विषय है। मैं सम्पादक मण्डल में अपना नाम इसीलिए दे पाया कि वह कार्य उनकी देख-रेख में होना है। व्यक्तिशः मैंने इस पुनीत कार्य में अधिक हाथ नहीं बटाया, पर नाम से भी सबके साथ रहकर आचार्यश्री तुलसी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर सका, इस बात का मुझे हर्ष है।

पटना
ता० २६-१२-६१

— श्रीप्रकाश नारायण (हस्ताक्षर)

धवल समारोह : परिकल्पना और परिसमापन

विक्रम संवत् २०१६ का वर्ष मेरे लिए ऐतिहासिक संस्मरण छोड़ गया। वर्ष की आदि में आचार्य भिक्षु स्मृति-ग्रन्थ की रूपरेखा और कार्य दिशा के निर्धारण में अपने-आपको लगाकर महामहिम आचार्यश्री भिक्षु को एक विनम्र श्रद्धाञ्जलि दे पाया और वर्ष के अन्त में आचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ के आयोजन में अपने-आपको लगाकर कृत-कृत्य हुआ।

इस वर्ष आचार्यप्रवर का चातुर्मास कलकत्ता में था। श्री शुभकरणजी दसाणी ने अकस्मात् इस ओर ध्यान आकृष्ट किया कि दो वर्ष बाद आचार्यवर को आचार्य-पद के पच्चीस वर्ष पूर्ण हो जाते हैं। इस उपलक्ष में हमें 'सिल्वर-जुबली' मनानी चाहिए। सिल्वर जुबली का नाम सुनकर मैं सहसा चौंका। मैंने कहा—यह तो बीसवीं सदी में अठारहवीं सदी के सुझाव जैसा लगता है। उन्होंने कहा—सिल्वर जुबली को भी हमें बीसवीं सदी के चिन्तन का पुट देकर ही तो मनाना है। बस यही प्राथमिक वार्तालाप समग्र धवल समारोह की भूमिका बन गया। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' इस वार्तालाप में साथ थे ही और हम तीनों ने आदि से अन्त तक की सारी योजना उन्हीं दिनों गढ़ ली।

योजना के मुख्यतः तीन पहलू थे—

१. आचार्यप्रवर की कृतियों का सम्यक् सम्पादन हो। उनकी ऐतिहासिक यात्राओं का लेखबद्ध संकलन हो। इसी प्रकार उनके भाषणों का प्रामाणिक संकलन व सम्पादन हो।

२. आचार्यवर की लोकोपकारक प्रवृत्तियाँ सार्वदेशिक रूप में अभिनन्दित हों।

३. धवल समारोह प्रशस्ति परम्परा तक ही सीमित न रहे, वह दर्शन, संस्कृति व नैतिकता का प्रेरक भी हो।

इसी समग्र परिकल्पना को लेखबद्ध कर आचार्यप्रवर के सम्मुख रखा। उन्होंने तो स्थितप्रज्ञ की तरह इसे सुना और चुप रहे। इससे अधिक हम उनसे अपेक्षा भी कैसे रखते। सं० २०१७ का वर्ष तेरापंथ द्विशताब्दी का वर्ष था। आचार्यवर का चातुर्मास राजनगर में हुआ। द्विशताब्दी और धवल समारोह की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए हमारा चातुर्मास आचार्यवर ने दिल्ली ही करवाया। साहित्य-सम्पादन व साहित्य-लेखन का कार्य क्रमशः आगे बढ़ने लगा। धवल समारोह की अन्यान्य अपेक्षाएं भी क्रमशः उभरती गईं। अणुव्रत समिति के तत्कालीन अध्यक्ष श्री सुगनचन्दजी आंचलिया प्रभृति कुछ लोग सक्रिय रूप से समारोह की प्रवृत्तियों के साथ जुटे रहे। उस वर्ष का मर्यादा महोत्सव आमेट में हुआ। उस अवसर पर समाज के प्रतिनिधियों की एक गोष्ठी हुई और धवल समारोह की रूपरेखा पर मुक्त रूप से चिन्तन चला। मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री बुद्धमल्लजी व मैंने भी इस गोष्ठी में भाग लिया। तेरापंथी महासभा के नव निर्वाचित अध्यक्ष श्री जबरमलजी भण्डारी, पूर्ववर्ती अध्यक्ष श्री नेमचन्दजी गधैया व जैन भारती के भूतपूर्व सम्पादक श्री जयचन्दलालजी कोठारी आदि के उत्साह और आत्म-विश्वास ने समारोह के कार्यक्रम को तेरापंथी महासभा का स्थायी आधार दे दिया।

दिल्ली धवल समारोह के कार्यक्रम का केन्द्र बन गई। श्री मोहनलालजी कठौतिया प्रभृति स्थानीय लोगों का विशेष सहयोग मिलना ही था। कार्यकर्ताओं का भी अनुकूल योग बैठता ही गया। दिल्ली अणुव्रत समिति व धवल समारोह समिति एकीभूत-सी हो गई। देखते-देखते भाद्रव शुक्ला नवमी आ गई। बीदासर में धवल समारोह का प्रथम चरण सम्पन्न हो गया। आत्माराम एण्ड संस के संचालक श्री रामलाल पुरी ने 'श्रीकालू उपदेश वाटिका,' 'अग्नि-परीक्षा' आदि पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित कर आचार्यवर को भेंट कीं। देश के अनेकानेक गणमान्य व्यक्तियों ने अपनी भावभीनी

श्रद्धांजलियां प्रस्तुत कीं। अब धवल समारोह का व्यापक कार्यक्रम फाल्गुन कृष्णा १० से गंगाशहर (बीकानेर) में होने जा रहा है। उपराष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन् अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करेंगे, ऐसा निश्चय हुआ है। आचार्यवर का अभिनन्दन सत्य और अहिंसा का अभिनन्दन है। प्रस्तुत आचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ भारतवासियों की ही नहीं, विदेशी मनीषियों की भी आध्यात्मिक निष्ठा का परिचायक है। सभी ने आचार्यश्री का अभिनन्दन कर सचमुच अध्यात्मवाद को ही अभिनन्दित किया है।

चूंकि धवल समारोह की परिकल्पना से लेकर परिसमापन तक मैं इसकी अनवद्य प्रवृत्तियों में संलग्न रहा हूँ। मुझे यथासमय इसकी सर्वांगीण सम्पन्नता देख कर परम हर्ष है। दिल्ली में अनेकों चातुर्मास व्यतीत किये और सघन कार्य व्यस्तता रही, पर ये दो चातुर्मास कार्य-व्यस्तता की दृष्टि से सर्वाधिक रहे। मेरे सहयोगी मुनिजनों का श्रमसाध्य सहयोग रहा है, वह निश्चित ही अतुल और अमाप्य है।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' और 'द्वितीय' ही ग्रन्थ के वास्तविक सम्पादक हैं। इन्होंने इस दिशा में जो कार्य-क्षमता व बौद्धिक दक्षता का परिचय दिया, वह मेरे लिए भी अप्रत्याशित था। समारोह के सम्बन्ध से मुनि मानमलजी की सफलताएं भी उल्लेखनीय रहीं। अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों से जो सहयोग अर्जित हुआ, वह तो समारोह के प्रत्येक अवयव में मूर्त है ही।

'रजत' शब्द भौतिक वैभव का द्योतक है, अतः 'धवल' शब्द इसका ही भावबोधक मानकर अपनाया गया है। रजत जयन्ती शब्द की अपेक्षा धवल जयन्ती या धवल समारोह शब्द अधिक सात्त्विक तथा साहित्यिक लगता है। मैं मानता हूं, इस दिशा में यह एक अभिनव परम्परा का श्रीगणेश हुआ है।

१ जनवरी '६२
कठौतिया भवन,
सब्जीमण्डी, दिल्ली।

मुनि नगराज

प्रबन्ध सम्पादक की ओर से

सामान्यतः आज का युग व्यक्ति-पूजा का नहीं रहा है, पर आदर्शों की पूजा के लिए भी हमें व्यक्ति को ही खोजना पड़ता है। अहिंसा, सत्य व संयम की अर्चा के लिए अणुव्रत-आन्दोलन-प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी यथार्थ प्रतीक हैं। वे अणुव्रतों की शिक्षा देते हैं और महाव्रतों पर स्वयं चलते हैं।

भारतीय जन-मानस का यह सहज स्वभाव रहा है कि वह तर्क से भी अधिक श्रद्धा को स्थान देता है। वह श्रद्धा होती है—त्याग और संयम के प्रति। लोक-मानस साधुजनों की बात को, चाहे वे किसी भी धर्म के हों, जितनी श्रद्धा से ग्रहण करता है, उतनी अन्य की नहीं। अणुव्रत-आन्दोलन की यह विशेषता है कि वह साधुजनो द्वारा प्रेरित है। यही कारण है कि वह आसानी से जन-जन के मानस को छू रहा है। आचार्यश्री तुलसी समग्र आन्दोलन के प्रेरणा-स्रोत हैं।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व सर्वांगीण है। वे स्वयं परिपूर्ण हैं और उनका दक्ष शिष्य-समुदाय उनकी परिपूर्णता में और चार चाँद लगा देता है। योग्य शिष्य गुरु की अपनी महान् उपलब्धि होते है। प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ व्यक्ति-अर्चा से भी बढ़ कर समुदाय-अर्चा का द्योतक है। अणुव्रत-आन्दोलन के माध्यम से जो सेवा आचार्यजी व मुनिजनों द्वारा देश को मिल रही है, वह आज ही नहीं; युग-युग तक अभिनन्दनीय रहेगी।

'आचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ' केवल प्रशस्ति ग्रन्थ ही नहीं, वास्तव में वह ज्ञान-वृद्धि और जीवन-शुद्धि का एक महान् शास्त्र जैसा है। इसमे कथावस्तु के रूप मे आचार्यश्री तुलसी का जीवनवृत्त है। महाव्रतों की साधना और मुनि जीवन की आराधना का वह एक सजीव चित्र है। **राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है** की उक्ति को चरितार्थ करने वाला वह अपने आप मे है ही। साहित्य मर्मज्ञ मुनिश्री बुद्धमल्लजी की लेखनी से लिखा जाकर वह इतिहास और काव्य की युगपत् अनुभूति देने वाला बन गया है। नैतिक प्रेरणा पाने के लिए व नैतिकता के स्वरूप को सर्वांगीण रूप से समझने के लिए 'अणुव्रत अध्याय' एक स्वतन्त्र पुस्तक जैसा है। दर्शन व परम्परा अध्याय में भारतीय दर्शन के अंचल में जैन-दर्शन के तात्त्विक और सात्त्विक स्वरूप को भली-भाँति देखा जा सकता है। 'श्रद्धा, संस्मरण व कृतित्व' अध्याय में आचार्यश्री तुलसी के सार्वजनीन व्यक्तित्व का व उनके कृतित्व का समग्र दर्शन होता है। साधारणतया हरेक व्यक्ति का अपना एक क्षेत्र होता है और उसे उस क्षेत्र से श्रद्धा के सुमन मिलते हैं। नैतिकता के उन्नायक होने के कारण आचार्यजी का व्यक्तित्व सर्वक्षेत्रीय बन गया है और वह इस अध्याय मे निर्विवाद अभिव्यक्त होता है।

केवल छः मास की अवधि में यह ग्रन्थ संकलित, सम्पादित और प्रकाशित हो जाएगा, यह आशा नहीं थी। किन्तु इस कार्य की पवित्रता और मंगलमयता ने असम्भव को सम्भव बना डाला है। ऐसे ग्रन्थ अनेकानेक लोगों के सक्रिय योग से ही सम्पन्न हुआ करते हैं। मैं उन समस्त लेखकों के प्रति आभार प्रदर्शन करता हूँ, जिन्होंने हमारे अनुरोध पर यथासमय लेख लिख कर दिये। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू, उपराष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन्, सर्वोदयी संत विनोबा व राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन आदि ने अपनी व्यस्तता में भी यथासमय अपने सन्देश भेज कर हमें बहुत ही अनुगृहीत किया है। तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ के व्यवस्थापक श्री मोहनलालजी कठौतिया का व्यवस्था-कौशल भी अभिनन्दन ग्रन्थ की सम्पन्नता का अभिन्न अंग है। दिल्ली अणुव्रत समिति के उपमन्त्री श्री सोहनलालजी बाफणा और श्री लादूलालजी आच्छा, एम० कॉम० मेरे परम सहयोगी रहे हैं। इनकी कार्यनिष्ठा ग्रन्थ-सम्पन्नता की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। श्री सुन्दरलाल झवेरी, बी० एस-सी० ने आचार्यश्री तुलसी के सम्पर्क में आये हुए

द्वितीय अध्याय : जीवन वृत्त

तृतीय अध्याय : अणुव्रत

चतुर्थ अध्याय : दर्शन और परम्परा

परिशिष्ट

श्रद्धा
संस्मरण
कृतित्व

राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली।
जनवरी १, १९६२
पौष ११, १८८३ शक:

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी के धवल समारोह के अवसर पर मैं उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने के निर्णय का स्वागत करता हूं और आचार्य जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। अणुव्रत आन्दोलन का उद्देश्य नैतिक जागरण और जनसाधारण को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करना है। यह प्रयास अपने आप में ही इतना महत्वपूर्ण है कि इसका सभी को स्वागत करना चाहिये। आज के युग में जबकि मानव अपनी भौतिक उन्नति से चकाचौंध होता दिखाई दे रहा है, और जीवन के नैतिक तथा आध्यात्मिक तत्वों की अवहेलना की आशंका है, ऐसे आन्दोलनों के द्वारा ही मानव अपने सन्तुलन को बनाये रख सकता है और भौतिकवाद के विनाशकारी परिणामों से बचने की आशा कर सकता है।

मैं श्री आचार्य तुलसी धवल समारोह समिति को बधाई देता हूं और इस आयोजन की सफलता की कामना करता हूं।

राजेन्द्र प्रसाद

VICE-PRESIDENT
INDIA

NEW DELHI

November 20,1961.

I am glad to know that you are bringing out an Abhinandan Granth to commemorate the services of Acharya Shri Tulsi. I send my best wishes for the success of your function and hope that the Acharya will have many more years of useful life in the service of the country.

(S. Radhakrishnan)

शुभकामना

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आचार्यश्री तुलसी की सेवाओं की स्मृति में आप अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने जा रहे हैं। समारोह की सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनाएं भेजता हूँ और आशा करता हूँ अपने कार्य-शील जीवन के द्वारा अनेकों वर्ष तक आचार्यश्री देश की सेवा करते रहेंगे।

एस० राधाकृष्णन्

प्रधान मंत्री भवन
PRIME MINISTERS HOUSE
NEW DELHI

December 27, 1961

MESSAGE

I send my good wishes to Acharya Shri Tulsi, the sponsor of the Anuvrat Movement, on his completing twentyfive years of Acharyaship. I have followed with much interest and appreciation his work in the Anuvrat Movement intended to raise the moral standards of our people, especially of the younger generation.

Jawaharlal Nehru

सन्देश

मैं अणुव्रत-आन्दोलन-प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी को, उनके आचार्य-काल के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में, अपनी शुभकामनाएं भेजता हूँ। मैंने उनके अणुव्रत-आन्दोलन के अन्तर्गत होने वाले कार्य का विशेष रुचि व प्रशंसात्मक भाव से अनुशीलन किया है, जिसका उद्देश्य हमारे देशवासियों का और विशेषत: नई पीढ़ी का नैतिक स्तर ऊँचा उठाना है।

जवाहरलाल नेहरू
प्रधानमन्त्री, भारत सरकार

संयम और सेवा का संगम

आचार्यश्री तुलसीजी के महान् कार्यों के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का विचार योग्य ही है। संयम को सेवा-कार्य में जोड़ने का काम अपनी विशिष्ट पद्धति से उन्होंने चलाया, जिसका असर जीवन के अनेक क्षेत्रों में पड़ा है और पड़ेगा। संयम और सेवा के संगम से ही नव-समाज बनेगा।

[illegible]

[illegible]

अणुव्रत की कल्पना

यह मेरा सौभाग्य है कि आचार्यश्री तुलसी को पास से देखने और उनसे बात करने तथा उनके भाषण सुनने का अवसर मुझे मिला है। दिल्ली में उनके कई अनुयायी मुनियों से मेरी भेंट हुआ करती थी। उनके चलाये अणुव्रत-आन्दोलन के पक्ष में कुछ सभाओं में भी मैंने अपना मत प्रकट किया था। अणुव्रत की कल्पना बहुत सुन्दर है और उसने बहुतों को व्रती बनाकर उनके जीवन की गति में अच्छी भावना का प्रवेश कराया है।

देश में नैतिकता की गहरी कमी दिखाई पड़ती है। उसमें परिवर्तन करने के लिए अणुव्रत-आन्दोलन सहायक हो सकता है। आचार्य तुलसी अपनी कल्पना की पूर्ति में अधिकाधिक सफलता पायें यह मेरी अभिलाषा स्वाभाविक है। आचार्यश्री तुलसी अणुव्रत-आन्दोलन की सफलता के लिए हम सबकी श्रद्धा और सहयोग के अधिकारी हैं।

पुरुषोत्तमदास टण्डन

ता. १०.९.६१

श्रीराम

आचार्य श्री की सेवा में

नैतिक से तुलसी-दल का योग,
हो गया मेरा भोजन भोग!

तुम्हारी वाणी का अणु-दान,
लोक के लिए सुरत्न-समान।
(स्वल्प भी सद्धर्मानुष्ठान
महाभय से करता है त्राण।।)

भारत भारती के पूत-सपूत,
दिखो चिरदिन दिव के-से दूत!

मैथिलीशरण

नैतिकता के पुजारी

श्री लालबहादुर शास्त्री
स्वदेश मन्त्री, भारत सरकार

आचार्यश्री तुलसी नैतिकता के पुजारी हैं, अहिंसा जिसका मूलाधार है। सभा, सम्मेलन और साहित्य-निर्माण आदि के द्वारा उन्होंने एक नये आन्दोलन को सम्बल प्रदान किया है। अणुव्रत-आन्दोलन ने प्रत्येक वर्ग को अपनी ओर खींचने का प्रयास किया है और जैन समुदाय पर स्वभावतः इसका विशेष प्रभाव पड़ा है। नैतिकता उपदेशों से कम, उदाहरण से ही पनपती है। आचार्यश्री तुलसी स्वयं उस मार्ग पर आचरण कर दूसरों को उस ओर प्रेरित करना चाहते हैं। उनका अभिनन्दन इसी में है कि लोग उनके इस आन्दोलन के स्वरूप को समझें और अपने जीवन को एक नये रूप में ढालने का प्रयास करें।

मानव-जाति के अग्रदूत

न्यायमूर्ति श्री भुवनेश्वरप्रसाद सिन्हा
मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय भारतवर्ष

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आचार्यश्री तुलसी को तेरापंथ संघ के आचार्य-काल के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। अणुव्रत-आन्दोलन का, जो कि वर्तमान में न केवल भारतवर्ष के लिए अपितु समग्र विश्व के लिए एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है, प्रारम्भ आपके आचार्य-काल की विशिष्ट देन है। इस आन्दोलन का उद्देश्य है—सत्य और अहिंसा जैसे शाश्वत मूल्यों के प्रति मनुष्यों की श्रद्धा को उद्‌बुद्ध करना तथा इन मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करना। इस महान् आचार्य ने न केवल उपदेश से अपितु अपने आचरण के द्वारा प्रामाणिकता, सच्चाई और व्यापक अर्थ में चारित्रिक दृढ़ता जैसे उच्च सद्‌गुणों को मूर्त रूप दिया है। इसलिए जहाँ तक भारतीय संस्कृति के विलक्षण तत्त्व सत्य-अहिंसा जैसे मौलिक सिद्धान्तों के प्रसार का प्रश्न है, ये महान् आचार्य केवल जैन धर्म के सीमित दायरे में ही नहीं, अपितु समग्र मानव-जाति के अग्रदूत हैं। मानव-जाति के कल्याणार्थ आचार्य तुलसी दीर्घायु हों।

सौभाग्य की बात

जननेता श्री जयप्रकाशनारायण

हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि आज आचार्य तुलसी जैसी विभूति हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही है। वे मानवता की प्रतिष्ठापना द्वारा समता, सहिष्णुता स्थापित करना चाहते हैं तथा शोषण का अन्त चाहते हैं। भूदान और अणुव्रत-आन्दोलन की प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो हृदय के परिवर्तन द्वारा अहिंसक समाज नव-रचना में अग्रसर हो रही हैं, जिसे कायम करने के लिए रूस आदि देश प्रायः असफल ही दीख पड़ते हैं। अपने देश की निर्धनता देखने से पता चलता है कि कितना असीम दुःख समाज में व्याप्त है। निर्धनों के साथ कितना अन्याय हो रहा है। इन्हीं अन्याय एवं शोषणों के कारण ही शासित वर्ग के कुछ नवोदित नेता रक्तरंजित क्रान्ति की दुन्दुभि बजाने तथा शोषकों को धनविहीन एवं उनकी प्रवृत्तियों को समूल नष्ट कर देने के लिए लोगों का आह्वान कर रहे हैं।

अणुव्रत-आन्दोलन भी सर्वोदय आन्दोलन का एक सहयोगी ही है। इससे भी देश-विदेश के प्रायः सभी विचारक और नेता परिचित हो ही गए हैं। हमारे आदर्श की ओर बढ़ने के लिए आचार्य तुलसी ने बहुत सुन्दर आदर्श रखा है। विनोबाजी और तुलसीजी सभी जाति और वर्ग के लिए हैं, दोनों ही सबका भला चाहते हैं। आचार्य तुलसीजी से बम्बई में वार्तालाप करने पर उनके उच्च उद्देश्यों की झलक मिली। उनका कहना है कि जब सारी हिंसक शक्तियाँ एकत्रित हो सकती है, तब अहिंसक शक्तियाँ भी एक हो सकती हैं और सबके सामूहिक प्रयास और प्रयत्न से अवश्य ही अहिंसक समाज की कल्पना पूरी हो सकेगी। सबको मिल कर काम करने में शीघ्र सफलता मिलेगी।

सर्वप्रथम व्यक्ति-सुधार

हमारे सामने यह प्रश्न अवश्य हो सकता है कि किस पद्धति के द्वारा सबका हित हो सकता है, शोषण मिट सकता है? क्या सरकार शोषण को मिटा सकती है? नहीं, बिल्कुल असम्भव है। यह जनता कर सकती है। मनुष्य की आन्तरिक शक्ति के द्वारा यह कार्य पूरा हो सकता है। संविधान द्वारा सर्वोदय असम्भव है। जैसा कि आचार्य तुलसी कहा करते हैं कि व्यक्ति-व्यक्ति से समाज-परिवर्तन होगा और जब तक व्यक्ति नहीं सुधरेगा, तब तक कुछ नहीं होगा। ध्यान से देखा जाये तो उनकी इस वाणी में कितना तत्त्व भरा पड़ा है। समाज का मूल व्यक्ति ही है, व्यक्ति से समुदाय, समुदाय से समाज का रूप सामने आता है। समाज तो प्रतिबिम्ब है, जैसा मनुष्य रहेगा वैसा समाज बनेगा और फिर जैसा समाज बनता रहेगा वैसा-वैसा परिवर्तन मनुष्यों में भी आता रहेगा। अस्तु, सर्वप्रथम व्यक्ति-सुधार पर जोर देना चाहिए। आचार्य तुलसी यह भी कहते है कि सब अपनी-अपनी आत्म-शुद्धि करें। यह और अच्छा है। अगर सब स्वतः आत्म-शुद्धि कर लें तो क्रान्ति की क्या आवश्यकता है? महात्मा गांधी भी समाज-सुधार के पहले व्यक्ति-सुधार पर जोर देते रहे हैं। साम्यवादी आदि क्रान्तियाँ बाह्य सुधार की द्योतक हैं। किन्तु जब तक आन्तरिक सुधार नहीं हुआ, तब तक कुछ नहीं हुआ; बाह्य सुधार तो क्षणिक और सामयिक कहलायेगा, उसमें आन्तरिक सुधार के समान शाश्वतता कहाँ? अगर हम आन्तरिक सुधार और व्यक्ति-सुधार को प्राथमिकता नहीं देंगे तो हमारा कार्य अधूरा ही रह जायेगा। रूस, अमेरिका, फ्रांस आदि देशों में आज भी असमानता, परतन्त्रता, असहिष्णुता, भ्रातृत्वहीनता, पूँजीवादिता आदि किसी-न-किसी रूप में अवश्य विद्यमान हैं। विचार-स्वातन्त्र्य की आज भी सुविधा नहीं, एक तरह से अधिनायकवाद का बोल-बाला ही है। वैतनिक असमानता अस्सी गुणा है। अस्तु, कहने का तात्पर्य यह है कि शक्ति और हिंसा पर आधारित

क्रान्ति से उद्देश्य-पूर्ति नहीं, यह तो एकमात्र हृदय-परिवर्तन पर आधारित है। इसलिए हम लोगों को चाहिए कि उक्त देशों के समान दुर्दिन आने से बचाने तथा समाज में उथल-पुथल न आने देने के लिए उचित मात्रा में त्याग और निःस्वार्थ भावना को जीवन में उतारें। महात्माजी ने भी व्यक्ति को केन्द्र मान कर उसके सुधार पर जोर दिया है और राजतन्त्र के स्थान पर लोकतंत्र को स्थापित करने की अपनी नेक सूझ हमें दी है।

हृदय और विचारों में परिवर्तन आवश्यक

राजनीति और कानून की चर्चा विशेष हुआ करती है। आचार्यश्री तुलसी तो राजनीति और कानून की खुले शब्दों में आलोचना करते हैं। वे कहते हैं कि क्या कानून किसी स्वार्थी को निःस्वार्थी या पर-स्वार्थी बना सकता है? कानून तो एक दिशा मात्र है। इसलिए राजनीति और कानून के परे आचार्य विनोबा और आचार्य तुलसी के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। जिस क्रान्ति से हृदय और विचारों में परिवर्तन नहीं आया, वह क्रान्ति नहीं। हिंसा पर आधारित क्रान्ति से हृदय-परिवर्तन भी सम्भव नहीं। उसके लिए तो प्रेम और सद्भावना का सहारा लेना होगा।

क्रान्ति कोई नहीं। जब-जब समाज में शिथिलाचार हुआ, तब-तब अवतारों व महापुरुषों द्वारा विचारों में क्रान्ति लाई गई। धर्म और नीति में से अधर्म और अनीति को निकाल फेंका गया। समाज का सुधार किया गया। धर्म और नीति समाज के अनुकूल बनाये गये। समाज में एक नया विपर्यय हुआ। धार्मिक, सामाजिक और सांसारिक जीवन के बीच की दीवारें तोड़ी गईं। महात्मा गांधी, विनोबा भावे और आचार्य तुलसी भी ऐसी ही अध्यात्मनिष्ठ क्रान्ति की उद्घोषणा लिए हैं। अनावश्यक एवं समाज-हित के लिए घातक रूढ़ियों का अन्त करना इन्होंने भी आवश्यक समझा। भगवान् बुद्ध का 'धर्मचक्र' प्रवर्तन या धार्मिक क्रान्ति भी सर्वोदय या समाज-सुधार का दिशा-संकेत था। अणुव्रत-आन्दोलन भी नैतिक क्रान्ति का एक चिर-प्रतीक्षित चरण है।

एक ही भावना

सम्पत्तिदान और अणुव्रत-आन्दोलन की भावना भी एक ही है। एक समाज के हक को उसे दे देने के लिए बाध्य करता है, प्रेरित करता है या उसे सीख देता है। दूसरा संग्रह को ही त्याज्य बताता है और जो कुछ है उसे दानस्वरूप देने को नहीं बल्कि त्यागस्वरूप समाज के लिए छोड़ देने की भावना प्रदर्शित करता है। अणुव्रत-आन्दोलन परिग्रह मात्र को पाप का मूल मानता है। इसके अनुसार संग्रह ही हिंसा की जड़ है। जहां संग्रह है वहां शोषण और हिंसा आप-से-आप मौजूद हैं।

अणुव्रत-आन्दोलन असाम्प्रदायिक और सार्वभौम है। यह चाहे जिस नाम से चले, हमें काम से मतलब है और इसका नामकरण चाहे जो भी कर दिया जाये, लाभ वही होगा। इसलिए अपेक्षा यह है कि आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित नैतिक अभ्युत्थान के इस पथ को समझ, परख और सीखकर जीवन में अनुकरण करें। साथ ही उसके आधार पर अपने व्यवसाय, उद्योग व धन्धे में ऐसे ठोस कदम उठाएं, जिनसे जन-जीवन को भी प्रेरणा मिल सके। धर्म केवल नाम लेने, जय-जयकार करने और मस्तक झुकाने से नहीं होता, अपितु आचरणों में परिलक्षित होता है।

आचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व में जो मंगलकारी कार्य हो रहा है, उसके साथ मैं तन्मय हूँ और मेरी जो कुछ भी शक्ति है, उसे इस पुण्य कार्य में लगाने को तत्पर हूँ।

अणुव्रत और एकता

श्री उ० न० ढेबर

एकता के लिए यह आवश्यक है कि दो या अधिक पृथक् इकाइयों का अस्तित्व हो और एक ऐसा संयोजक माध्यम हो जो दोनों को मिलाकर एक सम्पूर्ण इकाई बना दे। हमारे देश में पृथक् समुदायों की कोई कमी नहीं है। जन्म हमें विभक्त करता है, परम्पराएं हमें विभक्त करती हैं, रीति-रिवाज हमें विभक्त करते है, धर्म हमें विभक्त करते हैं, सम्पत्ति ने तो लोगों को हमेशा ही विभक्त किया है। भारत में तो······दर्शन भी हमें विभक्त करता है, चाहे हम उसको समझते हों अथवा नहीं। अज्ञजनों की यही प्रवृत्ति होती है कि अन्तिम विश्लेषण में वे अंश के खातिर पूर्ण को खो जाने देते है, अंश को ही पूर्ण मान लेते हैं और ऐसे निर्णय पर पहुँचते हैं जिसका कोई आधार नहीं होता। इस देश में अज्ञान का बोल-बाला है। यह अज्ञान सामाजिक अहंकार, धार्मिक अहंकार, राजनैतिक और आर्थिक अहंकार और अन्त में दार्शनिक अहंकार का पोषण करता है। भारत में सिद्धान्तों के संघर्ष की अपेक्षा अहम् का संघर्ष अधिक दिखाई देता है। एक व्यक्ति के अहम् से सारी जाति का नाश हो सकता है और किसी समुदाय का अहम् भी कम हानिकर अथवा कम विनाशक नहीं होता।

राष्ट्र के सामने मुख्य कार्य यह है कि या तो इस अहम् को समाप्त किया जाये, जो अत्यन्त ही कठिन है या उसे सुसंस्कृत बनाया जाये, जो कुछ कम कठिन है। इसका अर्थ यही हुआ कि हमें इस अहम् को उसकी संकुचित गलियों से बाहर निकालना होगा। इसका यह अर्थ भी होता है कि हम यह याद रखें कि जिस स्तर पर हम व्यवहार करते हैं, उन स्तरों पर हमारा आचरण पशुओं जैसा होता है, जबकि हम वास्तव में मानव हैं। इसलिए हमको मानव की उत्तम और श्रेष्ठ वृत्तियों को अपनाना और विकसित करना चाहिए।

क्या अणुव्रत इस सुसंस्करण की प्रक्रिया में सहायक हो सकता है? अणुव्रत यदि आचार का विज्ञान नहीं है तो फिर और कुछ भी नहीं है। छोटी बातों से प्रारम्भ करके वह ऐसी शक्ति संचय करना चाहता है जिसके द्वारा बड़े लक्ष्य सिद्ध किए जा सके। मनुष्य को दूसरे मनुष्य के साथ व्यवहार में उसका प्रारम्भ करना चाहिए। उसे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि जिससे वह दूसरों के अधिक-से-अधिक निकट पहुँचता चला जाये और अन्त में सारी दूरी समाप्त हो जाये। यह तभी हो सकता है, जब वह उपेक्षा के स्थान में सहमति उत्पन्न करेगा, घृणा के स्थान पर मित्रता और शत्रुता के स्थान पर लिहाज और आदर की स्थापना करेगा। आचरण के द्वारा ही यह सब सिद्ध किया जा सकता है।

विश्व में बुराई भी है और अच्छाई भी। जहाँ भी दुनिया है, वहाँ अच्छाई और बुराई दोनों है। मनुष्य को निरन्तर यह प्रयास करना चाहिए कि वह दूसरे व्यक्ति का भला, बलवान् और उज्ज्वल पक्ष देखे और अपने मन को निरन्तर ऐसी शिक्षा दे कि विरोधी की बुराई को अथवा उसके जीवन के निर्बल या कृष्ण पक्ष को देखने की वृत्ति न हो। दक्षिण भारतीय और उत्तर भारतीय, हिन्दू और मुसलमान, ब्राह्मण और अ-ब्राह्मण, सवर्ण और हरिजन, आदिवासी और अन्य, भाषा के आग्रही और निराग्रही, पंडित और निरक्षर, सरकारी अधिकारी और सार्वजनिक कार्यकर्ता, बंगाली और बिहारी, बिहारी और उड़िया, गुजराती और महाराष्ट्री, ईसाई और अ-ईसाई, सिक्ख और आर्यसमाजी, कांग्रेसी और अ-कांग्रेसी—सभी को उपेक्षा और पक्षपात के सदियों पुराने घेरे से बाहर आने का प्रयत्न करना होगा और सामने वाले व्यक्ति के बारे में ऐसा सोचना होगा कि वह हमारे आदर, सहानुभूति और समर्थन का हकदार है। इसके बिना हम सब उस भयंकर संकट से नहीं बच सकते जिसका विघटनकारी शक्तियाँ आज आह्वान कर रही हैं।

सर्वधर्म समभाव अर्थात् सब विश्वासों और धर्मों के प्रति आदर भाव का जो महान् गुण है, उसका हर व्यक्ति को प्रतिदिन और प्रतिक्षण आचरण करना चाहिए। इसके बिना भारत बलशाली और सुखी नहीं हो सकता और न मनुष्यों के एक अत्यन्त प्राचीन जीवित समाज के नाते इतिहास ने उसके लिए जो कर्तव्य निर्धारित किया है, उसकी पूर्ति कर सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे उसका जीवन में कोई भी स्थान या पद क्यों न हो, प्रतिदिन एक-दूसरे के प्रति आदर प्रकट करने और एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। किसी भी भारतीय के लिए यह महान् देश भक्तिपूर्ण सेवा होगी। कर्तव्य की दृष्टि से यह सेवा बहुत आसान है और परिणाम की दृष्टि से वह उतना ही शक्तिशाली है। इस छोटी बात की तुलना हम अणु-शक्ति केन्द्र के एक छोटे अणु से कर सकते हैं।

अणुव्रत-आन्दोलन और इस महान् आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी का यही सन्देश है।

एक अच्छा तरीका

राष्ट्रसंत श्रीतुकड़ोजी

भारत में ही नहीं, अपितु सारे संसार में अधिक-से-अधिक शान्ति, सत्य व अहिंसा का प्रचार हो, यह मेरी हार्दिक कामना रही है। मुझ में अभी तक किसी सम्प्रदाय विशेष का कड़वापन प्रविष्ट नहीं हुआ है। यद्यपि यह मैं अनुभव करता हूँ कि प्रत्येक सम्प्रदाय, पंथ अथवा धर्म में अच्छे तत्त्व होते हैं। यदि ऐसा न होता तो धर्म की जड़ ही संसार से समाप्त हो जाती। धर्म या पंथ, जाति या संगठन, स्वार्थ और सत्ता के सीकचों में जकड़ जाते हैं, तब वे अपने तात्त्विक शिखर से नीचे गिरने लगते हैं और अहिंसा, सत्य तथा शान्ति जो कि धर्म के अभिन्न अंग होते हैं, छूटते चले जाते हैं और धर्म निष्प्राण बन जाता है। ऐसी परिस्थिति में धर्म को मिटाने की आवाज उठने लगती है। स्वयं उस धर्म के अनुयायी भी ऐसा करते हुए नहीं हिचकिचाते। वहाँ से क्रान्ति के नाम पर एक नया समाज जन्म लेता है। वह धर्म में फिर से प्राण-प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करता है। यह क्रम बार-बार इस सृष्टि में चलता ही रहता है।

मैं आचार्यश्री तुलसी के व्यक्तित्व, उनकी कार्य-विधि व सुविश्रुत अणुव्रत-आन्दोलन से चिर-परिचित रहा हूँ। केवल परिचित ही नहीं, उसे निकट से भी देख चुका हूँ। कई बार उनसे मिलने का भी मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है। उनके प्रिय शिष्य और आन्दोलन के कर्मठ प्रचारक मुनिश्री नगराजजी से भी मिलने का प्रसंग पड़ा है। आचार्यजी ने अणुव्रत-आन्दोलन के द्वारा अपने अनुयायी और जनता को व्यसन-मुक्त कर सच्चरित्र व त्यागी बनाने का प्रशंसनीय प्रयत्न प्रारम्भ किया है। यह एक अच्छा तरीका है। उनका कार्य सुसम्बद्ध और एक सूत्र से चलता है, यह मुझे बहुत ही अच्छा लगा। आचार्यश्री तुलसी के उपदेशों से व अणुव्रतों की साधना से जनता को काफी लाभ होता है। उनका यह प्रचार प्रतिदिन बढ़े, यह मैं दिल से चाहता हूँ।

जनहितरता जीवतु चिरम्

मुनिश्री नथमलजी

सव्वे वि पईवा अभविंसु जत्थ अकयत्था
तत्थ मए दिट्ठा पढमं तवालोयरेहा
सव्वे वि सत्था अभविंसु जत्थ अकयकज्जा
तत्थ मए दिठो पढमं तव विक्कम-क्कमो
महापईव ! पप्प तव सन्निहिं
सयमंधयारो वि गच्छई पयासत्तणं
अहिंसव्वय ! अभिगम्म तव समीवयं
सुमहंपि भवइ सत्थमसत्थं
असत्थ ! सत्थेसु अत्थि विउला तव मई
तहावि नत्थि रुद्धा तव गई
मइमं ! तव मई ण कुणइ विरोहं गईए
गइमं ! तव गई अविक्खए मइं
तेणं करेमि तवाहिनंदणं ।

स्वयं जातः पन्थाश्चरणयुगलं येन विहृतं,
स्वयं जातं शास्त्रं वचनमुदितं यच्च सहजम् ।
स्वयं जाता लब्धिर्मनसि यदिदं कल्पितमपि,
न वा दृष्टो रागः क्वचन तव हे कृत्रिमविधौ ।

निमज्जन्नात्माब्धौ नयसि पदवीमुन्नततमां,
नयानोप्युच्चैस्त्वं पुनरपि पुनर्मज्जसि निजे ।
इदं निम्नोच्चत्वं नयति नियतं त्वां प्रभुपदं,
न यल्लभ्यं सभ्यैर्जलधि-वियतोर्न्यस्तनयनैः ।

विचित्रं कर्तृत्वं प्रतिपलमितं चक्षुरमलं,
विचित्रा ते श्रद्धाऽप्रतिहतगतिर्याति सततम् ।
विचित्रं चारित्रं निजहितरतं सत् परहितं,
त्वदायत्ता लब्धिर्जनहितरता जीवतु चिरम् ।

युगपुरुष ! तुम्हारा अभिनन्दन

मुनिश्री बुद्धमल्लजी

युगपुरुष ! तुम्हारा अभिनन्दन ।

अपना अतिशय चैतन्य लिए इस धरती पर
युग के श्वासों को सुरभित करने आये हो,
कलि के कर्दम में खड़े हुए तुम पंकज से
अपनी सुषमा में सतयुग को भर लाये हो,
फिर भी निर्लिप्त; निछावर करते आये हो
जन-हेतु स्वयं के जीवन का तुम हर स्पन्दन ।
युगपुरुष ! तुम्हारा अभिनन्दन ।

युग की पीड़ा का हालाहल खुद पीकर तुम
पीयूष सभी को बाँट रहे हो निर्भय बन,
वत्सलता की यह गोद हो गई हरी-भरी
परहित जब से कि समर्पित तुमने किया स्वतन,
युग के पथदर्शक ! आज तुम्हारी सेवा में
युग-श्रद्धा आई है करने को पद-वन्दन ।
युगपुरुष ! तुम्हारा अभिनन्दन ।

मानवता की पांचाली का अपमान भूल
सत्साहस का अर्जुन जब भ्रान्त हुआ पथ से,
अणुव्रत की गीता तब तुमसे उपदिष्ट हुई
कर्तव्य-बोध के अंकुर फिर फूटे अथ से,
नव-युग के पार्थ-सारथी ! तुम निज कौशल से
संचालित करते युग-चेतनता का स्पन्दन ।
युगपुरुष ! तुम्हारा अभिनन्दन ।

गति ससीम और मति असीम

मुनिश्री नगराजजी

शीतकाल का समय था। आचार्यवर चतुर्विध संघ के साथ बंगाल से राजस्थान की सुदीर्घ पद-यात्रा पर थे। भगवान् श्री महावीर की विहार-भूमि का हम अतिक्रमण कर रहे थे। एक दिन प्रातःकाल गाँव के उपान्त भाग में आचार्यवर यात्रा से मुड़ने वाले लोगों को मंगल-पाठ सुना रहे थे। हम सब साधुजन अपने-अपने परिकर में बँधे जी० टी० रोड पर लम्बे डग भरने लगे। यह सदा का क्रम था। कुछ ही समय पश्चात् पीछे मुड़कर देखा तो आचार्यवर द्रुतगति से चरण-विन्यास करते और क्रमश एक-एक समुदाय को लाँघते पधार रहे थे। देखते-देखते सब ही समुदाय उस क्रम में आ गए। केवल हमारा ही एक समुदाय आचार्यवर से आगे रह रहा था। हम सब भी जोर-जोर से कदम उठाने लगे। कुछ दूर आगे चल कर देखा तो पता चला मैं और मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ही आचार्यवर से आगे चलने वालों में रहे हैं। उस समय हमारे चलने की गति लगभग बारह मिनट प्रति मील हो रही थी। कुछ एक क्षणों के बाद पीछे की ओर झाँका तो मैंने पाया अब आचार्यवर से आगे चलने वालों में मैं स्वयं अकेला ही रह गया हूँ, मेरी और आचार्यवर की दूरी दस-बीस कदम भी नहीं रह पाई है। अकेले को आगे चलते हुए देख आचार्यवर के सहचारी और अनुचारियों में विनोद और कौतुक का भाव भी उभर रहा था।

एक क्षण के लिए मन में आया, औरों की तरह मैं भी रुक कर पीछे रह जाऊँ, परन्तु दूसरे ही क्षण सोचा आचार्यवर आज सबकी गति का परीक्षण ले ही रहे हैं, तो अपनी परीक्षा कस कर ही क्यों न दे दूँ। गति का क्रम बारह मिनट प्रति मील से भी सम्भवतः नीचे आ गया था। अब पीछे झाँकने को अवसर नहीं था। चलता रहा, आचार्यवर के साथ चलने वाले स्वयं-सेवकों के जूतों की आवाज से ही मैं अपनी और आचार्यवर की दूरी माप रहा था। चौदह प्रस्तर फर्लांगों के और दो प्रस्तर मीलों को लाँघ कर ही मैंने पीछे की ओर झाँका। लगभग चार फर्लांग की दूरी मेरे और आचार्य-वर के बीच आ गई थी।

अब मुझे सोचने का अवसर मिला, यह अच्छा हुआ या बुरा! सड़क के एक ओर हट कर बैठ गया। देखते-देखते आचार्यवर पधार गये। मुझे शक था, आचार्यवर इतना तो अवश्य कह ही देंगे, इस प्रकार आगे चलते रहे, तेतीस आसातनाएं पढ़ी हैं या नहीं? इसी चिन्तन में मैं वन्दना करता रहा, आचार्यवर अबोले ही आगे पधार गए।

ग्यारह मील का विहार सम्पन्न कर हम सब भलवा की कोठी में पहुँच गए। दिन भर रह-रहकर मन में आता था, मेरे अविचार को आचार्यवर ने कैसे लिया होगा। संतों में परस्पर नाना विनोद पूर्ण चर्चाएं रही, पर आचार्यश्री ने अपने भावों का जरा भी प्रकाशन नहीं किया।

सायंकाल प्रतिक्रमण के पश्चात् मैं वन्दन के लिए आचार्यवर के निकट गया। मुनिश्री नथमलजी प्रभृति अनेकों संत पहले से बैठे थे। मैं भी वन्दन कर उनके साथ बैठ गया। आचार्यवर ने आकस्मिक रूप से कहा—तुम्हारी गति तो मेरी धारणा से बहुत अधिक निकली! आचार्यवर की वाणी में प्रसन्नता थी। उपस्थित साधुजन प्रातः काल के संस्मरण को याद कर हँस पड़े। उसी प्रसंग पर पृथक्-पृथक् टिप्पणियाँ चलने लगीं। आचार्यवर ने सबका ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—ऐसी घटना यह सर्वप्रथम ही नहीं है। बहुत पहले भी ऐसी एक घटना अपने यहाँ घट चुकी है। कालूगणीराज कहा करते थे, तेरापंथ के षष्ठम आचार्यश्री माणकगणी जो कि बहुत ही तेज चलने वालों में थे, एक दिन के विहार में एक-एक करके सब संतों को पीछे छोड़ते हुए पधार रहे थे। मैं उनकी भावना को भांप गया। अपने पूरे वेग से ऐसा चला कि अगले गाँव में सर्वप्रथम पहुँचा। इस प्रकार आचार्यवर ने उस दिन के प्रसंग को जिस तरह सँवारा, उनकी अलौकिक महत्ता और असाधारण संवेदनशीलता का परिचायक था। सचमुच ही उस दिन उन्होंने मेरी गति को मापा और मैंने उनकी मति को। मेरी गति ससीम रही और उनकी मति असीम रही। उनके प्यार में मेरी हार स्पष्ट दीखने लगी।

संकल्प की सम्पन्नता पर

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

आचार्यश्री के चौबीसवें पदारोहण दिवस के उपलक्ष पर कलकत्ता में मैंने एक संकल्प किया था। वह मैंने उसी दिन लिखकर आचार्यश्री को निवेदित भी कर दिया था। उसकी भाषा थी—"धवल समारोह की सम्पन्नता तक ग्यारह हजार पृष्ठों के साहित्य का निर्माण, सम्पादन आदि करने का प्रयत्न करूँगा।" उसके अनन्तर ही मैं अपने कार्य में जुट पड़ा। आचार्यश्री की कृतियाँ, प्रवचन व यात्राएं सम्पादित करने व लिखने की दिशा में तथा तत्सम्बन्धी अन्य साहित्यिक कार्य आगे बढ़ा। नाना दुविधाएं अस्वाभाविक रूप से सामने आईं। फिर भी कुल मिलाकर मैं देखता हूँ तो मुझे प्रसन्नता है कि मैं अपने विहित संकल्प की सम्पन्नता पर पहुँच गया हूँ। आज जब कि आचार्यश्री तुलसी का देश तथा बाहर के विद्वान् अभिनन्दन कर रहे हैं; मैं भी उस साहित्यिक भेंट के द्वारा अपनी हार्दिक श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

जीवन्त और प्राणवन्त व्यक्तित्व

श्री जैनेन्द्रकुमार

आचार्यश्री तुलसी उन पुरुषों में है, जिनके व्यक्तित्व से पद कभी ऊपर नहीं हो पाता। वे जैनमत के तेरापंथी सम्प्रदाय के पट्टधर आचार्य हैं और इस पद की गरिमा और महिमा कम नहीं है। वे एक ही साथ आध्यात्मिक और लौकिक हैं। किन्तु तुलसी इतने जीवन्त और प्राणवन्त व्यक्ति हैं कि उस आसन का गुरुत्व स्वयं फीका पड़ सकता है। वेश-भूषा से वे जैनाचार्य हैं, किन्तु आन्तरिक निर्मलता और संवेदन-क्षमता से वे सभी मत और सभी वर्गों के आत्मीय बन सके हैं। मेरा जितना सम्पर्क आया है, मैंने उन्हें सदा जागृत व तत्पर पाया है। शैथिल्य कहीं देखने में नहीं आया। प्रमाद और अवसाद उनमें या उनके निकट टिक नहीं पाता। आसपास का वातावरण उनकी कर्मशीलता से चैतन्य और उन्नत बना दिखता है। परिस्थित से हारने वाले वे नही हैं, आस्था के बल से उसे चुनौती ही देते रहते हैं। परम्परा से उच्छिन्न नहीं हैं, लेकिन नव्यता के प्रति भी उद्यत हैं। उनकी नेतृत्व की क्षमता अभिनन्दनीय है। नेतृत्व उस वर्ग का जिसका प्रत्येक सदस्य निस्पृह, निस्वार्थ और सर्वथा मुक्त हो, आसान काम नहीं है। किसी प्रकार का लोभ और भय वहाँ व्यवस्था में सहारा नहीं दे सकता। अन्तर्भूत आत्मतेज ही इस नैतिक नेतृत्व को सम्भव बनाये रख सकता है। तुलसी में उसी का प्रकाश दीखता है और मुझे उनके सान्निध्य से सदा लाभ हुआ है। इस अवसर पर मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि उनके अभिनन्दन में अर्पित करता हूँ।

आचार्यश्री तुलसी

डा० सम्पूर्णानन्द
भूतपूर्व मुख्य मन्त्री, उत्तरप्रदेश

मेरी अनुभूति

अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी राजनीतिक क्षेत्र से बहुत दूर हैं। किसी दल या पार्टी से सम्बन्ध नहीं रखते। किसी वाद के प्रचारक नहीं हैं, परन्तु प्रसिद्धि प्राप्त करने के इन सब मार्गों से दूर रहते हुए भी वे इस काल के उन व्यक्तियों में हैं, जिनका न्यूनाधिक प्रभाव लाखों मनुष्यों के जीवन पर पड़ा है। वे जैन धर्म के सम्प्रदाय-विशेष के अधिष्ठाता हैं, इसीलिए आचार्य कहलाते हैं। अपने अनुयायियों को जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का अध्यापन कराते ही होंगे, श्रमणों को अपने सम्प्रदाय-विशेष के नियमादि की शिक्षा-दीक्षा देते ही होंगे; परन्तु किसी ने उनके या उनके अनुयायियों के मुँह से कोई ऐसी बात नहीं सुनी जो दूसरों के चित्त को दुखाने वाली हो।

भारतवर्ष की यह विशेषता रही है कि यहाँ के धार्मिक पर्यावरण की धर्म पर आस्था रखी जा सकती है और उसका उपदेश किया जा सकता है। आचार्यश्री तुलसी एक दिन मेरे निवास-स्थान पर रह चुके हैं। मैं उनके प्रवचन सुन चुका हूँ। अपने सम्प्रदाय के आचारों का पालन तो करते ही हैं, चाहे अपरिचित होने के कारण वे आचार दूसरों को विचित्र से लगते हों और वर्तमान काल के लिए कुछ अनुपयुक्त भी प्रतीत होते हों; परन्तु उनके आचारण और बातचीत में ऐसी कोई बात नहीं मिलेगी जो अन्य मतावलम्बियों को अरुचिकर लगे। भारत सदा से तपस्वियों का आदर करता आया है। उपासना शैली और दार्शनिक मन्तव्यों का आदर करना अस्वारस्य होते हुए भी हम चरित्र और त्याग के सामने सिर झुकाते हैं। हमारा तो यह विश्वास है कि :

यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यथा तथा

जिस किसी देश, जिस किसी समय, महापुरुष का जन्म हो, वह जिस किसी नाम से पुकारा जाता हो, वीतराग तपस्वी पुरुष सदैव आदर का पात्र होता है। इसलिए हम सभी आचार्य तुलसी का अभिनन्दन करते हैं। उनके प्रवचनों से उस तत्त्व को ग्रहण करने की अभिलाषा रखते हैं जो धर्म का सार और सर्वस्व है तथा जो मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी है।

भारतीय संस्कृति ने धर्म को सदैव ऊँचा स्थान दिया है। उसकी परिभाषाएं ही उसकी व्यापकता की द्योतक हैं। कणाद ने कहा है **यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः** जिससे इस लोक और परलोक में उन्नति हो और परम पुरुषार्थ की प्राप्ति हो, वह धर्म है। मनु ने कहा—**धारणाद् धर्मः** समाज को जो धारण करता है, वह धर्म है। व्यास कहते हैं—**धर्मादर्थश्च कामश्च, स धर्मः किन्न सेव्यते।** धर्म से अर्थ और काम दोनों बनते हैं, फिर धर्म का सेवन क्यों नहीं किया जाता ? इस पाठ को भुला कर भारत अपने को, अपनी भारतीयता को खो बैठेगा; न वह अपना हित कर सकेगा और न संसार का कल्याण ही कर सकेगा।

भौतिकता की घुड़-दौड़

इस समय जगत् में भौतिक वस्तुओं के लिए जो घुड़-दौड़ मची हुई है, भारत भी उसमें सम्मिलित हो गया है। **भौतिक दृष्टि से सम्पन्न होना** पाप **नहीं है, अपनी रक्षा के साधनों से सज्जित होना बुरा नहीं है;** परन्तु भारत इस दौड़

में अपनी आत्मा को खोकर सफल नहीं हो सकता। अनियन्त्रित स्पर्धा से धन प्राप्त हो जाये तो वह धन अविनय और अकरणीय कर्म की ओर ले जाता है। परमाणु बम जैसी नर-संहारवादी वस्तुओं का मार्ग दिखलाता है। मनुष्य आज आकाशारोहण करने जा रहा है। बात तो बुरी नहीं है; पर इसका परिणाम क्या होगा! यदि वह राग-द्वेष का पुतला बना रहा, यदि लोभ ही उसको स्फूर्ति देने वाला रहा और धन-सम्पत्ति का संग्रह ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य रहा तो वह दूसरे पिण्डों को भी पृथ्वी की भाँति रणस्थल और कसाईखाना बना देगा। यदि उन पिण्डों पर प्राणी हुए तो उनका जीवन भी दूभर हो जायेगा और वे मनुष्य जाति के क्षय को ही अपने लिए वरदान मानेंगे। मनुष्य का ज्ञान-समुच्चय उसके लिए अभिशाप हो जायेगा और एक दिन उसे अपने ही हाथों सहस्रों वर्षों मे अर्जित संस्कृति और सभ्यता की पोथी पर हरताल फेरनी होगी।

लोभ की आग सर्वग्राही होती है। व्यास ने कहा है—

नाच्छित्वा परमर्माणि, नाकृत्वा कर्म दुष्करम्।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्॥

बिना दूसरों के मर्म का छेदन किये, बिना दुष्कर कर्म किये, बिना मत्स्यघाती की भाँति हनन किये (जिस प्रकार धीवर अपने स्वार्थ के लिए निर्दयता से सैकड़ों मछलियों को मारता है) महती श्री प्राप्त नहीं हो सकती। लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य और मनुष्यों का समूह अन्धा हो जाता है; उसके लिए कोई काम, कोई पाप, अकरणीय नहीं रह जाता। लोभ और लोभजन्य मानस उस समय पतन की पराकाष्ठा को पहुँच जाता है, जब मनुष्य अपनी परपीड़न-प्रवृत्ति को परहितकारक प्रवृत्ति के रूप में देखने लगता है, किसी का शोषण-उत्पीड़न करते हुए यह समझनेलगता है कि मैं उसका उपकार कर रहा हूँ। बहुत दिनों की बात नहीं है, यूरोप वालों के साम्राज्य प्रायः सारे एशिया और अफ्रीका पर फैले हुए थे। उन देशों के निवासियों का शोषण हो रहा था, उनकी मानवता कुचली जा रही थी, उनके आत्म-सम्मान का हनन हो रहा था, परन्तु यूरोपियन कहता था कि हम तो कर्तव्य का पालन कर रहे हैं, हमारे कन्धों पर **व्हाइट मेंस बर्डन** (गोरे मनुष्य का बोझ) है, हमने अपने ऊपर इन लोगों को ऊपर उठाने का दायित्व ले रखा है, धीरे-धीरे इनको सभ्य बना रहे हैं। सभ्यता की कसौटी भी पृथक्-पृथक् होती है। कई साल हुए, मैंने एक कहानी पढ़ी थी। थी तो कहानी ही, पर रोचक भी थी और पश्चिमी सभ्यता पर कुछ प्रकाश डालती हुई भी। एक फ्रेंच पादरी अफ्रीका की किसी नर-मांस-भक्षी जंगली जातियों के बीच काम कर रहे थे। कुछ दिन बाद लौट कर फ्रांस गये और एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने अपनी सफलता की चर्चा की। किसी ने पूछा, "क्या अब उन लोगों ने नर-मांस खाना छोड़ दिया है?" उन्होंने कहा, "नहीं; अभी ऐसा तो नहीं हुआ, पर अब यों ही हाथ से खाने के स्थान पर छुरी-काँटे से खाने लगे हैं।" मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय पतन पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, जब मनुष्य की आत्मवञ्चना इस सीमा तक पहुँच जाती है कि पाप पुण्य बन जाता है। **विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।** एक लोभ पर्याप्त है, सभी दूसरे दोष आनुषंगिक बन कर उसके साथ चले आते हैं। जहाँ भौतिक विभूति को मनुष्य के जीवन में सर्वोच्च स्थान मिलता है, वहाँ लोभ से बचना असम्भव है।

असत्य के कन्धे पर स्वतन्त्रता का बोझ

हम भारत में वेलफेयर स्टेट—कल्याणकारी राज्य—की स्थापना कर रहे हैं और 'कल्याण' शब्द की भौतिक व्याख्या कर रहे हैं। परिणाम हमारे सामने है। स्वतन्त्र होने के बाद चरित्र का उन्नयन होना चाहिए था, त्याग की वृत्ति बढ़नी चाहिए थी, परार्थ-सेवन की भावना में अभिवृद्धि होनी चाहिए थी। सब लोगों में उत्साहपूर्वक लोकहित के लिए काम करने की प्रवृत्ति दीख पड़नी चाहिए थी। एड़ी-चोटी का पसीना एक करके राष्ट्र की हितवेदी पर सब-कुछ न्यौछावर करना था। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। स्वार्थ का बोलबाला है। राष्ट्रीय चरित्र का घोर पतन हुआ है। कर्तव्यनिष्ठा ढूँढ़े नहीं मिलती। व्यापारी, सरकारी कर्मचारी, अध्यापक, डाक्टर किसी में लोकसंग्रह की भावना नहीं है। सब रुपया बनाने की धुन में हैं, भले ही राष्ट्र का अहित हो जाए। कार्य से जी चुराना, अधिक-से-अधिक पैसा लेकर कम-से-कम काम करना— यह साधारण-सी बात हो गई है। हम करोड़ों रुपया व्यय कर रहे हैं, परन्तु उसके आधे का भी लाभ नहीं उठा

रहे हैं। लोभ सर्वव्यापी हो रहा है और उसके साथ असत्य का साम्राज्य फैला हुआ है। असत्य-भाषण, असत्य आचरण और सर्वोपरि असत्य-चिन्तन। एक बार १९१७ में महात्माजी ने कहा था कि हमारे चरित्र में यह दोष है कि हमारी 'हाँ' का अर्थ 'हाँ' और हमारे 'नहीं' का अर्थ 'नहीं' नहीं होता। वह दोष आज भी हम में वैसा ही है। परन्तु असत्य के कन्धे पर स्वतन्त्रता का बोझ नहीं उठ सकता। दुर्बल चरित्र देश को ले डूबेगा और मानव-समाज का भी अहित करेगा। इसीलिए महात्माजी ने वैयक्तिक और सामूहिक जीवन में धर्म को सर्वोच्च स्थान दिया था। उनका यह डिंडिम-घोष था कि 'साधन का महत्त्व साध्य से कम नहीं होता।' वह राजनीति में भी सत्य और अहिंसा को अनिवार्य मानते थे और भावी भारत में धर्म को। अपनी कल्पना को रामराज्य के नाम से बराबर लोगों के सामने रखते गये। आज वह नहीं हैं। करोड़ों ने उनके उपदेशों को सुना था, अब भी पढ़ते हैं, परन्तु उनका अनुगमन कौन कर रहा है? धर्म मूलक राज्य, रामराज्य की कल्पना पुस्तकों के पन्नों में ही रह गई।

चरित्र की गिरावट की गति अबाध है। इससे घबरा कर कुछ लोगों का ध्यान स्व० श्री बुकमैन और उनके 'मॉरल रिआर्मामेंट' (नैतिक पुनरुत्थान) कार्यक्रम की ओर गया। कार्यक्रम भले ही अच्छा हो, पर हमारी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ भिन्न हैं और हम कम्युनिज्म के विरोध के आधार पर राष्ट्रीय चरित्र का उन्नयन नहीं कर सकते। उससे हमारा काम नहीं चल सकता। हमारी अपनी मान्यताएं हैं, परम्पराएं हैं, विश्वास हैं; हमारे अनुकूल वही उपदेश हो सकते हैं जो हमारी अनुभूतियों पर अवलम्बित हों, जिनकी जड़ें हमारे सहस्रों वर्षों के आध्यात्मिक धरातल से जीवन-रस ग्रहण करती हों।

समाज संगठन का भारतीय व पश्चिमी आधार

पश्चिम के समाज-संगठन का आधार है—प्रतिस्पर्धा; हमारा आधार है—सहयोग। हम सभय समुत्थान के प्रतिपादक हैं; पश्चिम में व्यक्तियों और समुदायों के अधिकारों पर जोर दिया जाता है; हम कर्तव्यों, धर्मों पर जोर देते हैं, इस भूमिका में जो उपदेश दिया जायेगा, वही हमारे हृदयों में प्रवेश कर सकता है।

आचार्यश्री तुलसी ने इस रहस्य को पहचाना है। वह स्वयं जैन हैं, पर जनता को नैतिक उपदेश देते समय वह धर्म के उस मंच पर खड़े होते हैं जिस पर वैदिक, बौद्ध, जैन आदि भारत-सम्भूत सभी सम्प्रदायों का समान रूप से अधिकार है। वह बालब्रह्मचारी हैं, साधु हैं, तपस्वी हैं, उनकी वाणी में ओज है। इसलिए उनकी बातों को सभी श्रद्धापूर्वक सुनते हैं। कितने लोग उनके उपदेश को व्यवहार में लाते हैं, वह न्यारी कथा है; परन्तु सुनने मात्र से भी कुछ लाभ तो होता ही है और फिर: **रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निसान।**

आचार्यश्री लोगों से जिन बातों का संकल्प कराते हैं, वे सब घूम-फिर कर अहिंसा या अस्तेय के अन्तर्गत ही आती हैं। पतञ्जलि ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को महाव्रत कहा है और यह ठीक भी है। इनमें से किसी एक को भी निबाहना कठिन होता है और एक के निबाहने के प्रयत्न में सबको ही निबाहना अनिवार्य हो जाता है। एक को पकड़ कर दूसरों से बचा नहीं जा सकता। मान लीजिये कि कोई यह संकल्प करता है कि मैं आज से रिश्वत नहीं लूंगा और किसी माल में मिलावट नहीं करूँगा। संकल्प पूरा करने के लिए ही तो किया जायेगा, तोड़ने के लिए नहीं। पदे-पदे प्रलोभन आते हैं, पुराने संस्कार नीचे की ओर खींचते हैं। लोभ का संवरण करना कठिन होता है। चित्त डाँवाडोल हो जाता है। वह जिन किन्हीं दैवी शक्तियों पर विश्वास करता हो उनसे शक्ति की याचना करता है कि मेरा यह संकल्प कहीं टूट न जाये। मैं मिथ्याचरण को छोड़कर सत्याचरण की ओर आता हूँ, कहीं परीक्षा में डिग न जाऊँ। वैदिक शब्दों में वह यह कहता है—**अग्ने, व्रतपते, व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयम् तन्मे राध्यताम् इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि**—हे दोषों को दूर करके पवित्र करने वाले भगवन्! हे व्रतों के स्वामी, मैं व्रत का आचरण करने जा रहा हूँ। मुझको शक्ति दीजिये कि मैं उसे पूरा कर सकूँ। उसको सम्पन्न कीजिये, मैं अनृत को छोड़ कर सत्य को अपनाता हूँ। व्रत का निभ जाना, प्रलोभनों पर विजय पाना, सरल काम नहीं है। बड़े भाग्य से इसमें सफलता मिलती है; और यह भी निश्चित है कि व्रती की गति एक व्रत पर ही अवरुद्ध न होगी। एक व्रत उसको दूसरे व्रत की ओर ले जायेगा। एक को पूरा करने के

लिए युगपत् सबको अपनाना होगा; और जो आरम्भ में परम अणु प्रतीत होता रहा हो, वह अपने वास्तविक रूप में बहुत बड़ा बन जायेगा। इसी से तो कहा कि **स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।** इसीलिए मैं कहता हूँ कि वस्तुतः कोई भी व्रत अणु नहीं है। किसी एक छोटे से व्रत को भी यदि ईमानदारी से निबाहा जाये तो वह मनुष्य के सारे चरित्र को बदल देगा।

आचार्य तुलसी के प्रवचनों में तो बहुत लोग दीख पड़ते हैं, स्त्रियाँ भी बहुत-सी दीख पड़ती हैं। सेठ-साहूकारों का भी जमघट रहता है। इसी से मैं घबराता हूँ। हमारे देश में साधुओं के दरबार में जाने और उनके उपदेशों को पल्ले-झाड़ विधि से सुनने का बड़ा चलन है। ऐसे लोग न आवें तो अच्छा है। सबसे पहले उन लोगों को प्रभावित करना है जो समाज का नेतृत्व कर रहे हैं। शिक्षित वर्ग को आकृष्ट करना है। इसी वर्ग में से शिक्षक, अध्यापक, डाक्टर, इंजीनियर, राजनीतिक नेता, सरकारी कर्मचारी निकलते हैं। यदि इन लोगों का चरित्र सुधरे तो समाज पर शीघ्र और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़े। मैं आशा करता हूँ कि आचार्यश्री का ध्यान मेरे इस निवेदन की ओर जायेगा। भगवान् उनको चिरायु और उनके अभियान को सफल करे।

अचार्यश्री तुलसी का जीवन-दर्शन

श्री० वुडलैण्ड कहेलर

अध्यक्ष, अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी संघ, लन्दन

अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध इस समय समस्त संसार की एक प्रमुख समस्या है। दो विश्व-युद्धों के बाद पुराने ढंग के संकीर्ण राष्ट्रीयतावादी भी यह अनुभव करने लगे हैं कि विश्व-व्यापी रूप में, यानी समग्र विश्व की दृष्टि से नई सीमाएं निर्धारित करनी आवश्यक हैं। इस कार्य में सहायता के लिए भारतवर्ष के जैनाचार्य श्री तुलसी अपने अनुयायियों को दुनिया में हर चीज पर परस्परावलम्बी अहिंसक दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा करते हैं। विश्वव्यापी मैत्री के फल व्यक्तिगत आत्म-संयम के बीज से ही उत्पन्न होते हैं, इस बात को मुख्य मानते हुए आचार्यश्री तुलसी और उनके सर्वशः शाकाहारी अनुयायियों ने अणुव्रत-आन्दोलन संगठित किया है। यह एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समाज के निर्माण का प्रयत्न है, जिसमें जैन और अजैन सभी ऐसे लोग शामिल हो सकते हैं, जो आदर्शों को अमली रूप देने के लिए निश्चित की गई कुछ अनुशासनात्मक प्रतिज्ञाओं को अपनी क्षमता के अनुसार स्वेच्छापूर्वक ग्रहण करने के लिए तैयार हों।

आचार्यश्री तुलसी २० अक्तूबर, १६१४ को लाडनूं मे पैदा हुए थे, जो भारतीय संघ के राजस्थान राज्यान्तर्गत जोधपुर डिवीजन का एक कस्बा है। आचार्यश्री तुलसी तीन वर्ष के ही थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया। पिता के देहावसान के बाद आचार्यश्री तुलसी के सबसे बड़े भाई मोहनलालजी पर गृहस्थी का भार आया। मोहनलालजी अवश्य कड़े अनुशासन वाले व्यक्ति रहे होंगे, क्योंकि अपनी डायरी में आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है—"मैं उनसे इतना डरता था कि उनके विरुद्ध कुछ कहना तो दूर, उनकी उपस्थिति में कुछ करने में भी मुझे संकोच होता था।"

आचार्यश्री तुलसी पर अपनी माता का भी बहुत असर पड़ा, जो आध्यात्मिक विचारों की थीं और बाद में साध्वी बन गईं। तेरापंथी साधु-साध्वियों के वातावरण में शाकाहारी तो वह जन्म से ही थे। बाल्यावस्था में ही अपने मानसिक धरातल को दृढ़ करने के लिए उन्होंने जीवन में कभी नशा और धूम्रपान न करने की प्रतिज्ञा ली। इस तरह व्यक्तिगत आत्म-संयम का सहारा लेकर उन्होंने छोटी अवस्था से ही उस मार्ग को अपनाया जो कठिन होते हुए भी दुनिया मे सुखी रहने का सबसे प्रशस्त मार्ग माना जाता है।

बाल्यावस्था के अपने संस्मरणों में आचार्यश्री तुलसी लिखते हैं—"पाठ कण्ठाग्र करने की मुझे आदत थी। यहाँ तक कि खेलते समय भी मैं अपना पाठ याद करता रहता था।" प्रारम्भ से ही वे बाहरी प्रभाव के बनिस्पत अन्तरात्मा का अनुसरण करते थे और प्रारम्भिक काल के उनके सभी अध्यापकों ने उनमें नेतृत्व की क्षमता को अनुभव किया था। चार या पाँच साल की अवस्था में, जबकि बच्चे आमतौर पर ऐसी आदतों का परिचय देते हैं जो उनके भावी जीवन की रूपरेखा बनाती हैं, आचार्यश्री तुलसी में जरा-जरा सी बात पर गुस्सा हो जाने की आदत पड़ गई। क्रोध के दुष्प्रभाव में मनुष्य का पेट खाए हुए पदार्थ को अच्छी तरह नहीं पचा सकता, लेकिन आचार्यश्री तुलसी बाल्यावस्था में ही इतने समझदार थे कि जब उन्हें गुस्सा आता तो खाना खाने से इन्कार कर देते थे। कभी-कभी तो ऐसा होता कि घर के सभी लोगों के बहुत कहने-सुनने पर भी सारे दिन या दो दिन तक वह खाना नहीं खाते। इसी समय किसी ने उन्हें नारियल चुरा कर भगवान् पर चढ़ाने की सलाह दी। इस सलाह पर, जिसका औचित्य निःसन्देह संदिग्ध है, चल कर कथित धार्मिक क्रिया के लिए उन्होंने अपने ही घर से कुछ नारियल चुराए। लेकिन सदाचार के जिस मार्ग को उन्होंने अपनाया, उसमें बचपने के ऐसे अवधान बिरले ही हुए। आज्ञा-पालन और मृदुता उनके विशेष गुण बन गए, जिनके कारण अपनी इच्छा न होते

हुए भी उन्होंने अपनी माता और बड़े भाई मोहनलालजी ने जो कहा, वह किया। ऐसे एक दुःखद प्रसंग का उन्होंने अपनी डायरी में उल्लेख किया है, जबकि उनकी माँ ने उनसे पड़ौस के एक घर से छाछ माँग लाने के लिए कहा था। "माँगने में मुझे अपमान का अनुभव होता था।" आचार्यश्री तुलसी लिखते हैं, "लेकिन मुझे अपनी माँ के आदेश का पालन करना पड़ा।"

जैन दर्शन के अनुसार पूर्व जन्मों के संस्कार मनुष्य की आत्मा में रहते है, जिनके अनुसार ही मनुष्य अपने उपयुक्त कार्य का चुनाव करता है। आचार्यश्री तुलसी के लिए निश्चित ही यह बात लागू होती है, क्योंकि आध्यात्मिकता की कोई छिपी हुई शक्ति उनका मार्ग-दर्शन करती मालूम पड़ती है। यही बात उनके कुटुम्ब के कुछ अन्य व्यक्तियों के बारे में भी कही जा सकती है। उनका बहन लाडांजी साध्वी बनीं, जो कालान्तर में तेरापंथी सम्प्रदाय की सभी साध्वियों की प्रमुख हुईं और उनके भाई चम्पालालजी ही नहीं, बल्कि एक भतीजे हंसराजजी भी तेरापंथी साधु बने।

आचार्यश्री तुलसी ने जबसे होश सम्हाला, उनका सारा परिवार तेरापंथ के आठवें आचार्यश्री कालूगणी का अनुयायी था। अपने बाल्यकाल में आचार्यश्री तुलसी ने अक्सर यह आकांक्षा की तो उसमें आश्चर्य की बात नहीं कि मैं भी साधु हो जाऊँ तो कितना अच्छा। अपनी माँ से वह अक्सर आचार्यश्री कालूगणी के बारे में पूछते रहते थे। आचार्यश्री कालूगणी जब कभी लाडनूं आते, जो तेरापंथ के प्रभाव का केन्द्र था, आचार्यश्री तुलसी और उनके परिवार के दूसरे सभी व्यक्ति उनके दर्शनों को जाते थे। आचार्यश्री कालूगणी के बारे में आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है—"उनके मुख पर जो आध्यात्मिक तेज था, वह मेरे हृदय को आकर्षित करता था और मैं घण्टों उन्हें, उनके लम्बे कद, उनके गौर वदन, उनकी चमकती हुई आँखों की ओर निहारता रहता था। मन-ही-मन कहता—क्या किसी दिन मुझे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा कि मैं साधु बन कर उनकी साधना में उनके साथ बैठूं।"

जैन तेरापंथ में आचार्य ही अपने उत्तराधिकारी का चुनाव करते हैं। कालान्तर में आचार्यश्री कालूगणी ने इस प्रश्न पर विचार करना प्रारम्भ किया कि उनके बाद आचार्य का पद किसे दिया जाये। आचार्यश्री कालूगणी ने लाडनूं की अपनी यात्राओं में एक बार बालक तुलसी को देखा था और पहली ही नजर में बालक ने उनका हृदय छू लिया था। बालक की उनके प्रति जैसी भावना थी, उसी तरह वे भी उसकी ओर आकर्षित हुए और बालक तुलसी की चमकती हुई आँखों में देखते हुए आचार्यश्री कालूगणी ने जान लिया कि जिस उत्तराधिकारी की वह खोज में थे उसे उन्होंने पा लिया।

आचार्यश्री तुलसी जब ग्यारह वर्ष के हुए तो आचार्यश्री कालूगणीजी एक बार फिर लाडनूं आये। साधु बनने के स्वप्न की पूर्ति में विलम्ब न हो, यह सोच कर आचार्यश्री तुलसी ने उनसे अपने को तेरापंथ के साधु-समुदाय में दीक्षित करने की प्रार्थना की। बड़े भाई मोहनलालजी इतनी छोटी अवस्था में संसार के सारे भौतिक सुखों और सम्पत्ति का परित्याग करने की अपने छोटे भाई की तैयारी देख कर धक्क रह गए। छोटे भाई के कानूनी संरक्षक के नाते, इसके लिए आवश्यक अनुमति देने से उन्होंने इन्कार कर दिया। आचार्यश्री तुलसीजी ने बार-बार आग्रह किया, लेकिन मोहनलालजी भी अपनी बात पर दृढ़ रहे।

इसके कुछ दिन बाद की बात है कि आचार्यश्री कालूगणी लाडनूं में एक विशाल समुदाय के बीच प्रवचन कर रहे थे। सबको और विशेषतः मोहनलालजी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस विशाल समुदाय के बीच खड़े होकर ग्यारह वर्षीय आचार्यश्री तुलसी ने आचार्यश्री कालूगणी को सम्बोधित करके कहा—"आदरणीय आचार्यश्री, मैं यह प्रतिज्ञा लेना चाहता हूँ कि आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा और धनोपार्जन के चक्कर में नहीं पड़ूँगा।" जिसने अभी युवावस्था में भी प्रवेश नहीं किया था, ऐसे बालक का यह साहस देख कर जन-समुदाय भौंचक्का रह गया। भाई मोहनलालजी भी ऐसे चकित हुए कि कुछ बोल न सके। स्वयं आचार्यश्री कालूगणी भी, जो भारत के विविध भागों के व्यापक प्रवास में अनोखे-अनोखे दृश्य देख-सुन कर अब वयोवृद्ध हो चुके थे, आचार्यश्री तुलसी के इस आकस्मिक परिवर्तन को देख कर चकित रह गए। बड़े भाई की अवस्थिति में प्रतिदिन दबे-दबे रहने वाले तुलसी को आज क्या हो गया? मोहनलालजी का भय कहाँ चला गया? यह किसी की समझ में नहीं आया। वस्तुतः यह छोटे बालक के बजाय एक वयस्क की ही वाणी थी।

लम्बी खामोशी के बाद आचार्यश्री कालूगणी ने कहा—"तुम अभी बालक ही हो, ऐसी प्रतिज्ञा का पालन करना

आसान काम नहीं है।"

मोहनलालजी की आँखें आचार्यश्री तुलसी पर एकाग्र थीं। जन-समुदाय ज्यों-का-त्यों निःशब्द था। तुलसीजी को यह कसौटी थी। उन्हें लगा कि यहाँ उपस्थित हर एक उनसे प्रश्न कर रहा है, ऐसी हालत में उन्हें क्या करना चाहिए ? उन्होंने अभीष्ट निर्णय किया कि मुझे गलती नहीं करनी चाहिए, अपनी आत्मा की दृढ़ता दिखाने का यही अवसर है और स्पष्ट वाणी में आचार्यश्री से कहा—"आदरणीय आचार्यश्री, आप प्रतिज्ञा दिलाने को राजी हों या नहीं, मैं तो आपकी उपस्थिति में यह प्रतिज्ञा ले ही रहा हूँ।" इसके बाद उस छोटे बालक ने आजीवन विवाह और धनोपार्जन न करने की प्रतिज्ञा को गम्भीरता के साथ दोहराया।

जन-समुदाय में इससे एक बार फिर आश्चर्य की लहर दौड़ गई। यहाँ तक कि कठोर अनुशासक मोहनलालजी भी अपने छोटे भाई के वीरतापूर्ण शब्दों से बहुत प्रभावित हुए। एक क्षण बाद मोहनलालजी अपनी जगह से उठे और आचार्यश्री को सम्बोधन करके बोले—'आचार्यश्री, मैं अपने भाई की इच्छा के आगे सिर झुकाता हूँ और आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप उसे तेरापंथ के साधुओं में दीक्षित कर लें।'

इस बार आचार्यश्री सोच में नहीं पड़े, बल्कि तुरन्त सहमति दे दी। दीक्षा के लिए ऐसी शीघ्र अनुमति बहुत असाधारण बात थी, जैसा कि पहले कभी विरल ही हुआ था। जन-समुदाय एक बार फिर भौंचक्का रह गया।

आचार्यश्री तुलसी के बाल्यकाल का यह विवरण मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' द्वारा लिखित आचार्यश्री तुलसी की जीवन-झाँकी 'भारत की ज्योति' के आधार पर लिखा गया है। 'भारत की ज्योति' के प्रति पूरा न्याय करना हो तो इस संक्षिप्त निबन्ध की परिधि से बाहर जाना होगा। आत्म-संयम के लिए जो आध्यात्मिक जिज्ञासा का मार्ग ग्रहण करना चाहें, उनके लिए मैं अणुव्रत-आन्दोलन का सदस्य बनने की हार्दिक प्रार्थना करूँगा। अणुव्रत-आन्दोलन के दो उत्साही सदस्यों रमणीकचन्द और सुन्दरलाल झवेरी की कृपा से कुछ वर्ष पूर्व हमारे पहली बार भारत आने पर मुझे और मेरी पत्नी को आचार्यश्री तुलसी के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

आचार्यश्री तुलसी से भेंट करने पर मेरी पत्नी ने कहा था—'आचार्यश्री आपकी आँखों में जो दिव्य ज्योति मैं देख रही हूँ, वैसी इससे पहले अपने जीवन में मैंने कभी नहीं देखी।' उनके चेहरे का निचला आधा हिस्सा यद्यपि तेरापंथ की परम्परा के अनुसार धवल वस्त्र से ढका हुआ था, फिर भी जैन आचार्यश्री तुलसी की सुन्दर चमकदार आँखें हमसे नहीं छिपी रह सकीं और उनके द्वारा हम उनके हृदय की ऊष्मा, उनके व्यक्तिगत आकर्षण और उससे भी अधिक उनके मन व आत्मा की महान् शुद्धता को अनुभव कर सकते थे।

इस स्मरणीय पहली भेंट में इस बात से हम बहुत प्रभावित हुए कि उनके आस-पास पलथी मार कर जमीन पर बैठे हुए सभी लोग हमें प्रसन्न दिखाई पड़े। पश्चिमी दुनिया के सुविधावादी दृष्टिकोण से प्रभावित अनेक धार्मिक व्यक्तियों के विपरीत साधु-साध्वियों तथा आचार्यश्री तुलसी के दूसरे अनुयायियों ने स्पष्टतया प्राकृतिक जीवन के अपने आनन्द को नहीं खोया है। उनके हास्य और स्वेच्छापूर्ण उल्लास से हमें लगा कि नैतिकता के मार्ग पर चलते हुए उनका समय बहुत अच्छा बीत रहा है। हमारी भेंट के बीच आचार्यश्री तुलसी ने कई अच्छी बातें कहीं, जिनमें से यह मुझे विशेषतया याद है—'अपनी इच्छाओं पर आप विजय नहीं पायेंगे तो वे आप पर हावी हो जायेंगी।'

आचार्यश्री तुलसी और उनके अनुयायियों से विदा होने के पहले मैंने उनसे पूछा कि बीसवीं सदी के छठे काल में जब प्रगति के नाम पर संहार और संहार की तैयारी जारी है, तब दुनिया में सच्चे सुख की प्राप्ति कैसे सम्भव है ? आचार्यश्री ने जो कुछ कहा उसका भावार्थ यह है कि शरीर एक अच्छा नौकर, पर बुरा मालिक है, अतः सचमुच सुखी होने के लिए मनुष्य को अहिंसा की आवाज पर चलना चाहिए यानी किसी को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए।

तेरापंथ के नवें आचार्य से अपनी और अपनी पत्नी की पहली मुलाकात के बाद से ही सुख के सम्बन्ध में मैं एक नई दृष्टि से विचार करने लगा हूँ और वासनाओं की भूख पर बहुत कुछ विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि सुख की कुंजी, जैसा कि आचार्यश्री तुलसी कहते हैं, आत्म-संयम में ही है। भौतिक शरीर तरह-तरह की झूठी आकांक्षाओं में आनन्दानुभव करता है और अगर हम उनके चंगुल में पड़ जायें तो अन्त में हमेशा निराशा ही हाथ

लगेगी। दूसरी ओर, अगर हम प्राकृतिक नियमों के अनुसार रहने योग्य काफी अनुशासित यानी संयमपूर्ण हो जायें तो हमें सुख की खोज करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। तब वह स्वयमेव हमारे पास आयेगा। वास्तव में तो मनुष्य की सच्ची प्रकृति ही सुख है, वह उसमें अवस्थित है, जिसे केवल पहचानने की आवश्यकता है।

सांसारिक सुख का एक सबसे बड़ा खतरा, मुझे लगता है, किसी चीज से ऊब जाना। हमारे व्यग्र, भौतिक युग में अपनी आवश्यकता की पूर्ति होते ही मनुष्य उस चीज से ऊब जाता है और उससे अपेक्षाकृत बड़ी, अच्छी, तेज तथा अधिक उत्तेजक चीज की आकांक्षा करने लगता है। अतः भौतिक इच्छाओं के विरुद्ध या उन पर विजय पाने के लिए, मनुष्य को आध्यात्मिक प्रेरणा देने वाले जीवन-दर्शन को अपनाना आवश्यक है—सुख-प्राप्ति की ऐसी जीवन-दृष्टि जिससे अन्त में निराशा पल्ले न पड़े। मुझे लगता है कि सुख के बारे में आचार्यश्री तुलसी की ऐसी ही जीवन दृष्टि है। आचार्यश्री की आँखों में देखते हुए मुझे और मेरी पत्नी को ऐसी ही झलक नजर आई।
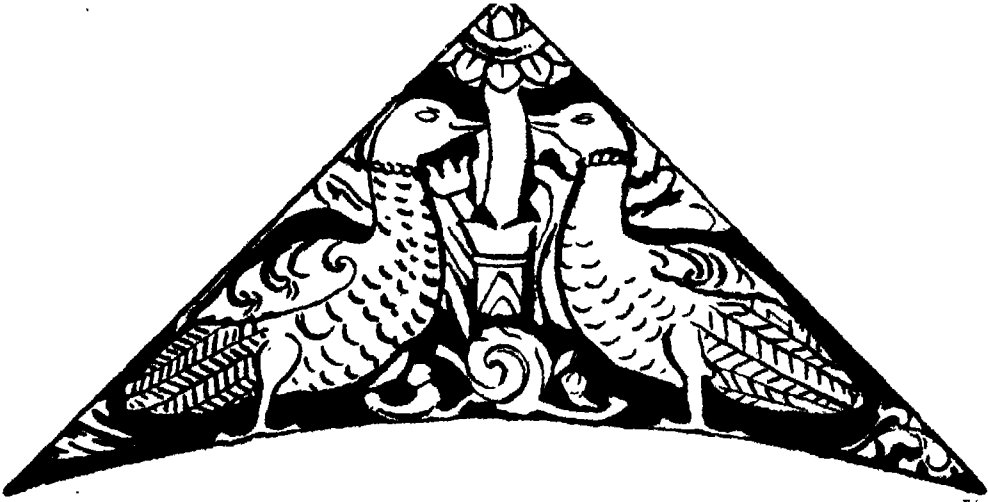
आचार्यश्री तुलसी और अणुव्रत-आन्दोलन

सेठ गोविन्ददास, एम० पी०

मानव, पूर्ण पुरुष परमात्मा की, एक अपूर्ण कृति है; और मानव ही क्यों, यह सारी सृष्टि ही, जिसका वह नायक बना है, अपूर्ण ही है। जब मानव अपूर्ण है, उसकी सृष्टि अपूर्ण है, तो निश्चय ही उसके कार्य-व्यापार भी अपूर्ण ही रहेंगे। मेरी दृष्टि में मनुष्य का अस्तित्व इस जगती पर उस सूर्य की भाँति है जो अन्तरिक्ष से अपनी प्रकाश-किरणें भू-मण्डल पर फेंक एक निश्चित समय बाद उन्हें फिर अपने में समेट लेता है। इस बीच सूर्य-किरणों का यह प्रकाश जगती को न केवल आलोकित करता है, वरन उसमें नित-नूतन जीवन भरता है और समभाव में सदा सबको प्राण-शक्ति से प्लावित रखता है। यहाँ सूर्य को हम एक पूर्ण तत्त्व मान कर उसकी अनन्त किरणों को उसके छोटे-छोटे अनन्त अपूर्ण अणु-रूपों की संज्ञा दे सकते हैं। यही स्थिति पुरुष और परमेश्वर की है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा भी है, **ईश्वर अंश जीव अविनाशी**—अर्थात् मानव-रचना ईश्वर के अणुरूपों का ही प्रतिरूप है, जो समय के साथ अपने मूल रूप से पृथक् और उसमें प्रविष्ट होता रहता है। सूर्य-किरणों की भाँति उसका अस्तित्व भी क्षणिक होता है; पर समय की यह स्वल्पता, आयु की यह अल्पज्ञता होते हुए भी मानव की शक्ति, उसकी सामर्थ्य समय की सहचरी न होकर एक अतुल, अटूट और अखण्ड शक्ति का ऐसा स्रोत होती है, जिसकी तुलना में आज सहस्रांशु की वे किरणें भी पीछे पड़ जाती हैं जो जगती की जीवनदायिनी है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी की यह उक्ति 'Where the sun cannot rises the doctor does inter there.' कितनी यथार्थ है! फिर आज के वैज्ञानिक युग में मानव की अन्तरिक्ष-यात्राएं और ऐसे ही अनेकानेक चामत्कारिक अन्वेषण, जो किसी समय सर्वथा अकल्पनीय और अलौकिक थे, आज हमारे मन में आश्चर्य का भाव भी जागृत नहीं करते। इस प्रकार की शक्ति और सामर्थ्य से भरा यह अपूर्ण मानव, आज अपने पुरुषार्थ के बल पर, प्रकृति के साथ प्रतिस्पर्धी बना खड़ा है।

जगती में सनातन काल से प्रधान रूप से सदा ही दो बातों का द्वन्द्व चलता रहा है। सूर्य जब अपनी किरणें समेटता है तो अवनि पर सघन अन्धकार छा जाता है। अर्थात् प्रकाश का स्थान अन्धकार और फिर अन्धकार का स्थान प्रकाश ले लेता है। यह क्रम अनन्त काल से अनवरत चलता रहता है। इसी प्रकार मानव के अन्दर भी यह द्वैत का द्वन्द्व गतिशील होता है। इसे हम अच्छे और बुरे, गुण और दोष, ज्ञान और अज्ञान तथा प्रकाश और अन्धकार आदि अगणित नामों से पुकारते हैं। इन्हीं गुण-दोषों के अनन्त-अगणित भेद और उपभेद होते हैं जिनके माध्यम से मानव, जीवन में उन्नति और अवनति के मार्ग में अनभ्यास से अनायास ही अग्रसर होता है। यहाँ हम मानव-जीवन के इसी अच्छे और बुरे, उचित और अनुचित पक्ष पर विचार करेंगे।

जीवन की सिद्धि और पुनर्जन्म की शुद्धि

भारत धर्म प्रधान देश है, पर व्यावहारिक सचाई में बहुत पीछे होता जा रहा है। भारतीय लोग धर्म और दर्शन की तो बड़ी चर्चा करते हैं, यहाँ तक उनके दैनिक जीवन के कृत्य, वाणिज्य-व्यवसाय, यात्राएं, वैवाहिक सम्बन्ध आदि जैसे कार्य भी दान-पुण्य, पूजा-पाठ आदि धार्मिक वृत्तियों से ही आरम्भ होते हैं; किन्तु कार्यों के आरम्भ और अन्त को छोड़ जीवन की जो एक लम्बी मंजिल है, उसमें व्यक्ति, धर्म के इस व्यावहारिक पक्ष से सदा ही उदासीन रहता है। इस धर्म-प्रधान देश के मानव में व्यावहारिक सचाई में प्रामाणिकता के स्थान पर आडम्बर और आधिभौतिक शक्तियों का

आधिपत्य होता जा रहा है। जीवन में जब व्यावहारिक सचाई नहीं, प्रामाणिकता नहीं, तो धर्माचरण कैसे सम्भव है ! इसके विपरीत भौतिकतावादी माने जाने वाले देशों की जब भारतीय यात्रा करते हैं तो वहाँ के निवासियों की व्यवहारगत सचाई और प्रामाणिकता की प्रशंसा करते हैं। दूसरी ओर जो विदेशी भारत की यात्रा करते हैं, उन्हें यहाँ की ऊँची दार्शनिकता के प्रकाश में प्रामाणिकता का अभाव खलता है। इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा यह धर्माचरण जीवन-शुद्धि के लिए नहीं; पुनर्जन्म की शुद्धि के लिए है। किन्तु यहाँ भी हम भूल रहे हैं। जब यह जीवन ही शुद्ध नहीं हुआ तो अगला जन्म कैसे शुद्ध होगा ? यह सुनिश्चित है कि उपासना की अपेक्षा जीवन की सचाई को प्राथमिकता दिये बिना इस जन्म की सिद्धि और पुनर्जन्म की शुद्धि सर्वथा असम्भव है।

अब प्रश्न उठता है कि जीवन की यह सिद्धि और पुनर्जन्म की शुद्धि कैसे हो सकती है ? स्पष्ट है कि चारित्रिक विकास के बिना जीवन की यह प्राथमिक और महान् उपलब्धि सम्भव नहीं। चरित्र का सम्बन्ध किसी कार्य-व्यापार तक ही सीमित नहीं, अपितु उसका सम्बन्ध जीवन की उन मूल प्रवृत्तियों से है जो मनुष्य को हिंसक बनाती हैं। शोषण, अन्याय, असमानता, असहिष्णुता, आक्रमण, दूसरे के प्रभुत्व का अपहरण या उसमें हस्तक्षेप और असामाजिक प्रवृत्तियाँ ये सब चरित्र-दोष हैं। प्रायः सभी लोग इनसे आक्रान्त हैं। भेद प्रकार का है। कोई एक प्रकार के दोष से आक्रान्त है, तो दूसरा दूसरे प्रकार के दोष से। कोई कम मात्रा में है, तो कोई अधिक मात्रा में। इस विभेद-विषमता के विष की व्याप्ति का प्रधान कारण शिक्षा और अर्थ-व्यवस्था का दोषपूर्ण होना माना जा सकता है। आज की जो शिक्षा-व्यवस्था है, उसमें चारित्रिक विकास की कोई निश्चित योजना नहीं है। भारत की प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भारत के भौतिक विकास के प्रयत्न ही सन्निहित थे। कदाचित् **भूखे भजन न होई गोपाला** और **बारत काह न करै कुकर्म्** की उक्ति के अनुसार भूखों की भूख मिटाने के प्राथमिक मानवीय कर्तव्य के नाते यह उचित भी था; किन्तु चरित्र-बल के बिना भरपेट भोजन पाने वाला कोई व्यक्ति या राष्ट्र आज के प्रगतिशील विश्व में प्रतिष्ठित होना तो दूर, कितनी देर खड़ा रह सकेगा, यह एक बड़ा प्रश्न है। अतः उदरपूर्ति के यत्न में अपने परम्परागत चरित्र-बल को नहीं गँवा बैठना चाहिए। यह हर्ष का विषय है कि तृतीय पंचवर्षीय योजना में इस दिशा में कुछ प्रयत्न अन्तर्निहित है। हमारी शिक्षा कैसी हो, यह भी एक गम्भीर प्रश्न है। बड़े-बड़े विशेषज्ञ इस सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। अनेक तथ्य और तर्क शिक्षा के उज्ज्वल पक्ष के सम्बन्ध में दिये जाते रहे हैं और दिये जा सकते हैं। निश्चित ही भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़े हैं; किन्तु आज का यह बौद्धिक विकास एक असंयत विकास है। कोरा-ज्ञान भयावह है, कोरा भौतिक विकास प्रलय है और नियंत्रणहीन गति का अन्त खतरनाक। दृष्टि ही विशुद्ध जीवन की धुरी है। दृष्टि शुद्ध है तो ज्ञान शुद्ध होगा; दृष्टि विकृत होगी तो ज्ञान विकृत हो जायेगा, चरित्र दूषित हो जायेगा। इस दृष्टि-दोष से हम सभी बहुत बुरी तरह ग्रसित है। भाषा, प्रान्त, राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता के दृष्टि-दोष के जो दृश्य देश में आज जहाँ-तहाँ देखने को मिल रहे हैं, ये यहां के चारित्रिक ह्रास के ही परिचायक हैं। घृणा, संकीर्ण मनोवृत्ति और पारस्परिक अविश्वास के भयावह अन्तराल में भारतीय आज ऐसे डूब रहे है कि ऊपर उठ कर बाहर की हवा लेने की बात सोच ही नहीं पाते। इस भयावह स्थिति को समय रहते समझना है अपने-आपको सम्भालना है। यह कार्य चरित्र-बल से ही सम्भव है और चरित्र को सँजोने के लिए शिक्षा में सुधार अपरिहार्य है। प्रश्न है—यह शिक्षा कैसी हो ?

संक्षेप में जीवन के निर्दिष्ट लक्ष्य तक यदि हमें पहुँचना है, तो ऐसे जीवन के लिए निश्चित वही शिक्षा उपयोगी होगी, जिसे हम संयम की शिक्षा की संज्ञा दे सकते हैं। संयमी जीवन में सादगी और सरलता का अनायास ही सम्मिश्रण होता है और जहाँ जीवन सादगी से पूर्ण होगा, उसमें सरलता होगी, वहाँ कर्तव्यनिष्ठा बढ़ेगी ही। कर्तव्य निष्ठा के जागृत होते ही व्यक्ति-निर्माण का वह कार्य, जो आज के युग की, हमारी शिक्षा की, उसके स्तर के सुधार की माँग है, सहज ही पूरा हो जायेगा।

उन्नति की धुरी

अर्थ-व्यवस्था भी दोषपूर्ण है। अर्थ-व्यवस्था सुधरे बिना चरित्रवान बनने में कठिनाई होती है और चरित्रवान्

बने बिना समाजवादी समाज बने, यह भी सम्भव नहीं है। इसीलिए यह आवश्यक है कि देश के कर्णधार योजनाओं के क्रियान्वयन में चरित्र विकास के सर्वोपरि महत्त्व को दृष्टि से ओझल न करें। ईमानदारी चरित्र का एक प्रधान चरण है। यदि चरित्र नहीं तो ईमानदारी कहाँ से आयेगी, और जब ईमानदारी नहीं, तो इन दीर्घसूत्रीय योजनाओं से, जो आज क्रियान्वित हो रही हैं, आगे चलकर अर्थ-लाभ भले ही हो, पर अभिशाप में अविचार, असंयम और असमानता का ऐसा घेरा समाज में पड़ेगा, जिससे निकलना फिर आसान बात न होगी।

इस प्रकार देशोन्नति की धुरी चरित्र ही है। बिना चरित्र विकास के देश का विकास असम्भव है। चरित्र-निर्माण का सम्बन्ध हमारी शिक्षा और अर्थ-व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। इनके दोषपूर्ण होने पर निष्कलंक चरित्र की कल्पना नहीं की जा सकती।

आचार्य तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन चरित्र-निर्माण की दिशा में एक अभूतपूर्व आयोजन है। अणुव्रत का अर्थ है—छोटे व्रत।

स्वभाव से ही मानव अन्धकार की परिधि से बाहर निकल प्रकाश की ओर बढ़ने का इच्छुक होता है। व्रत-ग्रहण में भी यही तथ्य निहित है। मानव-समाज में व्याप्त विषमता, बेईमानी और अनैतिकता जब व्यक्ति को दृष्टिगोचर होती है तो उसके अन्दर इस वैषम्य, वैमनस्य, शोषण और अनाचार को दूर करने की प्रवृत्ति जागृत होती है और सद्-भावमूलक इस प्रवृत्ति के उदय होते ही त्याग की भावना से अभिभूत उसका अन्तःकरण व्रतों की ओर आकर्षित होता है। जीवन-सुधार की दिशा में व्रतों का महत्त्व सर्वोपरि है। व्रतों में प्रधानरूप से आत्मानुशासन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार सिद्धान्त कायम करना जितना आसान है, उस पर अमल करना उतना ही कठिन, उसी प्रकार व्रत लेना तो आसान है, पर उसका निभाना बड़ा कठिन होता है। व्रत-पालन में स्व-नियमन व हृदय-परिवर्तन से बड़ी सहायता मिलती है।

अणुव्रत के पाँच प्रकार है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य या स्वदार-संतोष और अपरिग्रह या इच्छा-परिमाण।

अहिंसा—रागद्वेषात्मक प्रवृत्तियों का निरोध या आत्मा की राग-द्वेष-रहित प्रवृत्ति।

सत्य—अहिंसा का रचनात्मक या भाव-प्रकाशनात्मक पहलू है।

अचौर्य—अहिंसात्मक अधिकारों की व्याख्या है।

ब्रह्मचर्य—अहिंसा का स्वात्मरमणात्मक पक्ष है।

अपरिग्रह—अहिंसा का परम-पदार्थ-निरपेक्ष रूप है।

व्रत हृदय-परिवर्तन का परिणाम होता है। बहुधा जन-साधारण का हृदय उपदेशात्मक पद्धति से परिवर्तित नहीं होता; अतः समाज की दुर्व्यवस्था को बदलने के लिए भी प्रयत्न किया जाता है। उदाहरण के लिए आर्थिक दुर्व्यवस्था व्रतों से सीधा सम्बन्ध नहीं रखती, किन्तु आत्मिक दुर्व्यवस्था मिटाने के लिए और संयत, सदाचारपूर्ण जीवन-यापन की दिशा में व्रत बहुत उपयोगी होते हैं। हृदय-परिवर्तन और व्रताचरण से जब आत्मिक दुर्व्यवस्था मिट जाती है तो उससे आर्थिक दुर्व्यवस्था भी स्वतः सुधरती है और उसके फलस्वरूप सामाजिक दुर्व्यवस्था भी मिट जाती है।

व्यक्ति के चरित्र और नैतिकता का उसकी अर्थ-व्यवस्था से गहरा सम्बन्ध है—**बुभुक्षितः किं न करोति पापम्?** की उक्ति के अनुसार भूखा आदमी क्या पाप नहीं कर सकता! इसके विपरीत किसी विचारक के इस कथन को भी कि संसार में हरएक मनुष्य की आवश्यकता भरने को पर्याप्त से अधिक पदार्थ हैं, पर एकभी व्यक्ति की आशा भरने को वह अपर्याप्त है,[1] हम दृष्टि से ओझल नहीं कर सकते। एक निर्धन निराशा से पीड़ित है तो दूसरा धनिक आशा से। यही हमारी अर्थ-व्यवस्था की सबसे बड़ी विडम्बना है। भगवान् महावीर[2] ने आशा की अनन्तता बताते हुए कहा है—यदि सोने और चाँदी के कैलाश-तुल्य असंख्य पर्वत भी मनुष्य को उपलब्ध हो जायें तो भी उसकी तृष्णा नहीं

१ There is enough for everyone's need but not everyone's greed

२ सुवण्ण रुप्पस्स उ पव्वया भवे सियाहु कैलास समा असंखया।

रती, क्योंकि धन असंख्य है और तृष्णा आकाश की तरह अनन्त ।

गरीब कौन ?

विचारणीय यह है कि वास्तव में गरीब कौन है ? क्या गरीब वे हैं, जिनके पास थोड़ा-सा धन है ? नहीं। गरीब तो यथार्थ में वे हैं जो भौतिक दृष्टि से समृद्ध होते हुए भी तृष्णा से पीड़ित हैं। एक व्यक्ति के पास दस हजार रुपये है। वह चाहता है बीस हजार हो जायें, तो आराम से जिन्दगी कट जाये। दूसरे के पास एक लाख रुपया है, वह भी चाहता है कि एक करोड़ हो जाये तो शान्ति से जीवन बीते। तीसरे के पास एक करोड़ रुपया है, वह भी चाहता है, दस करोड़ हो जायें तो देश का बड़ा उद्योगपति बन जाऊं। अब देखना यह है कि गरीब कौन है ? पहले व्यक्ति की दस हजार की गरीबी है, दूसरे की निन्यानवे लाख की और तीसरे की नौ करोड़ की। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि देखा जाये तो वास्तव में तीसरा व्यक्ति ही अधिक गरीब है, क्योंकि पहले की वृत्तियाँ जहाँ दस हजार के लिए, दूसरे की निन्यानवे लाख के लिए तड़पती हैं, वहाँ तीसरे की नौ करोड़ के लिए। तात्पर्य यह है कि गरीबी का अन्त सन्तोष है और असन्तोष ही अर्थ-संख्या का सबसे बड़ा अभाव है। संग्रह के जिस बिन्दु पर मनुष्य सन्तोष को प्राप्त होता है, वहीं उसकी गरीबी का अन्त हो जाता है। यह बिन्दु यदि पाँच अथवा पाँच हजार पर भी लग गया, तो व्यक्ति सुखी हो जाता है। हमारे देश की प्राचीन परम्परा में तो वे ही व्यक्ति सुखी और समृद्ध माने गए हैं, जिन्होंने कुछ भी संग्रह न रखने में सन्तोष किया है। ऋषि, महर्षि साधु-संन्यासी गरीब नहीं कहलाते थे और न कभी उन्हें अर्थाभाव का दुःख ही व्यापता था।

भगवान् महावीर ने **मुच्छा परिग्गहो**—मूर्च्छा को परिग्रह बताया है। परिग्रह सर्वथा त्याज्य है। उन्होंने आगे कहा है—**वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते,** धन से मनुष्य त्राण नहीं पा सकता। महाभारत के प्रणेता महर्षि व्यास ने कहा है—

उदरं भ्रियते यावत् तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

अर्थात्—उदर-पालन के लिए जो आवश्यक है, वह व्यक्ति का अपना है; इससे अधिक संग्रह कर जो व्यक्ति रखता है, वह चोर है और दण्ड का पात्र है।

आधुनिक युग में अर्थ-लिप्सा से बचने के लिए महात्मा गांधी ने इसीलिए धनपतियों को सलाह दी थी कि वे अपने को उसका ट्रस्टी मानें। इस प्रकार हम देखते है हमारे सभी महज्जनों, पूर्व पुरुषों, सन्तों और भक्तों ने अधिक अर्थ-संग्रह को अनर्थकारी मान उसका निषेध किया है। उनके इस निषेध का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि उन्होंने सामाजिक जीवन के लिए अर्थ की आवश्यकता को दृष्टि से ओझल कर दिया हो। संग्रह की जिस भावना से समाज अनीति और अनाचार का शिकार होता है, उसे दृष्टि में रख व्यक्ति की भावनात्मक शुद्धि के लिए उसके दृष्टिकोण की परिशुद्धि ही हमारे महज्जनों का अभीष्ट था। वर्तमान युग अर्थ-प्रधान है। आज ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जो आर्थिक समस्या को ही देश की प्रधान समस्या मानते हैं। आज के भौतिकवादी युग में आर्थिक समस्या का यह प्राधान्य स्वाभाविक ही है। किन्तु चारित्रिक शुद्धि और आध्यात्मिकता को जीवन में उतारे बिना व्यक्ति, समाज और देश की उन्नति की परिकल्पना एक मृगमरीचिका ही है। अणु-आयुधों के इस युग में अणुव्रत एक अल्प-अर्थी प्रयत्न है। एक ओर हिंसा के बीभत्स रूप को अपने गर्भ में छिपाये अणुबमों से सुसज्जित आधुनिक जैट राकेट अन्तरिक्ष की यात्रा को प्रस्तुत हैं; दूसरी ओर आचार्यश्री तुलसी का यह अणुव्रत-आन्दोलन व्यक्ति व्यक्ति के माध्यम से हिंसा, विषमता, शोषण, संग्रह और अनाचार के विरुद्ध अहिंसा, सदाचार, सहिष्णुता, अपरिग्रह और सदाचार की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नरत है। मानव और पशु तथा अन्य जीव-जीवाणुओं में जो एक अन्तर है, वह है उसकी ज्ञान-शक्ति का। निसर्ग ने अन्यों की अपेक्षा मानव को ज्ञान-शक्ति का जो विपुल-भण्डार सौंपा है, अपने इसी सामर्थ्य के कारण मानव सनातन काल से ही सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बना हुआ है। आज के विश्व में जबकि एक ओर हिंसा और बर्बरता का दावानल दहक रहा, तो दूसरी ओर अहिंसा और शान्ति की एक शीतल-सरिता जन-मानस को उद्वेलित कर रही है। अब आज के मानव को यह तय करना है कि उसे हिंसा और बर्बरता

के दावानल में झुलसना है अथवा अहिंसा और शान्ति की शीतल सरिता में स्नान करना है। तराजू के इन दो पलड़ों पर असन्तुलित स्थिति में आज विश्व रखा हुआ है और उसकी बागडोर, इस तराजू की चोटी, उसी ज्ञान-शक्ति सम्पन्न मानव के हाथ में है जो अपनी ज्ञान सत्ता के कारण सृष्टि का सिरमौर है।

सर्वमान्य आचार-संहिता

"आचार्यश्री तुलसी से मेरा थोड़ा ही सम्पर्क हुआ है; परन्तु वे जो कुछ करते रहे है और अणुव्रत का जो साहित्य प्रकाशित होता रहा है, उसे में ध्यान से देखता रहा हूँ। जैन साधुओं की त्याग-वृत्ति पर मेरी सदा से ही बड़ी श्रद्धा रही है। इस प्राचीन संस्कृति वाले देश में त्याग ही सर्वाधिक पूज्य रहा है और जैन साधुओं का त्याग के क्षेत्र में बड़ा ऊँचा स्थान है। फिर आचार्यश्री तुलसी और उनके साथी किसी धर्म के संकुचित दायरे में कैद भी नहीं हैं। मैं आचार्यश्री तुलसी के विचार, प्रतिभा और कार्य-प्रवीणता की सराहना किये बिना नहीं रह सकता। उनका यह अणुव्रत-आन्दोलन किसी पक्ष-विशेष का आन्दोलन न होकर समूची मानव-जाति के क्रमिक विकास और उसके सदाचारी जीवन का इन व्रतों के रूप में एक ऐसा अनुष्ठान है जिसे स्वीकार करने मात्र से भय, विषाद, हिंसा, ईर्ष्या, विषमता जाती रहती है और सुख-शान्ति की स्थापना हो जाती है। मेरा विश्वास है हिंसा भले ही बर्बरता की चरम सीमा पर पहुँच जाये, पर उसका भी अन्त अहिंसा ही है और इस दृष्टि से हर काल, हर स्थिति में अणुव्रत की उपयोगिता, उसकी अनिवार्यता निर्विवाद है।

आचार्यश्री तुलसी एक समृद्ध साधु-संघ के नायक हैं, बृहत् तेरापंथ के आचार्य हैं और लाखों लोगों के पूज्य है। उनके इस बड़प्पन में जो सबसे बड़ी बात है, वह है उनका स्वयं का तथा अपने प्रभावशाली साधु-संघ का एक विशेष कार्य-क्रम के साथ जन-कल्याण के निमित्त समर्पण। उनके इस जन-कल्याण का जो स्वरूप है, उसकी जो योजना है, वह इस अणुव्रत-आन्दोलन में समाहित है। दूसरे शब्दों में, उनके इस आन्दोलन को देश-निर्माण का आन्दोलन कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति और दर्शन के अहिंसा, सत्य आदि सार्वभौम आधारों पर नैतिक व्रतों की एक सर्वमान्य आचार-संहिता की संज्ञा भी इसे दे सकते हैं।

व्यक्ति न होकर स्वयं एक संस्था

आचार्यश्री तुलसी प्रथम धर्माचार्य है जो अपने बृहत् साधु-संघ के साथ सार्वजनिक हित की भावना लेकर व्यापक क्षेत्र में उतरे हैं। आचार्यश्री साहित्य, दर्शन और शिक्षा के अधिकारी आचार्य हैं। वे स्वयं एक श्रेष्ठ साहित्यकार और दार्शनिक हैं। अपने साधु-संघ में उन्होंने निरपेक्ष शिक्षा-प्रणाली को जन्म दिया है तथा संस्कृत, राजस्थानी भाषा की भी वृद्धि में उनका अभिनन्दनीय योग है। उनके संघ में हिन्दी की प्रधानता आचार्यश्री की सूझ-बूझ की परिचायक है। आपकी प्रेरणा से ही साधु-समुदाय सामयिक गति-विधि से दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में उतरा है। इसी के अनन्तर आप देश की गिरती हुई नैतिक स्थिति को उर्ध्व संचरण देने में प्रेरित हुए और उसी का शुभ परिणाम यह सर्वविदित अणु-व्रत-आन्दोलन बना।

"आचार्यश्री तुलसी एक व्यक्ति न होकर स्वयं एक संस्था-रूप हैं। आपके इस उपयोगी आचार्य-काल को पच्चीस वर्ष पूरे हो रहे हैं। छब्बीसवें वर्ष में तुलसी-धवल समारोह मनाने का जो निश्चय किया गया है, वह आचार्य तुलसी के धवल व्यक्तित्व के सम्मान की दृष्टि से भी तथा उनके द्वारा हो रहे कार्य की उपयोगिता और उसके मूल्यांकन की दृष्टि से सर्वथा अभिनन्दनीय है।"

मैं इस शुभ अवसर पर आचार्यश्री तुलसी को, उनके इस वास्तविक साधु-रूप को तथा उनके द्वारा हो रहे जन-कल्याण के कार्य को, अपनी हार्दिक श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

एक अमिट स्मृति

श्री शिवाजी नरहरि भावे

महामहिम आचार्यश्री तुलसी बहुत वर्ष पहले पहली बार ही धूलिया पधारे थे। इसके पहले यहाँ उनका परिचय नहीं था। लेकिन धूलिया पधारने पर उनका सहज ही परिचय प्राप्त हुआ। वे सायंकाल से थोड़े ही पहले अपने कुछ साथी साधुओं के साथ यहाँ के गांधी तत्वज्ञान मन्दिर में पधारे। हमारे आमंत्रण पर उन्होंने निःसंकोच स्वीकृति दी थी। यहाँ का शान्त और पवित्र निवास-स्थान देख कर उनको काफी संतोष हुआ। सायंकालीन प्रार्थना के बाद कुछ वार्तालाप करेंगे ऐसा उन्होंने आश्वासन दिया था। उस मुताबिक प्रार्थना हो चुकी थी। सारी सृष्टि चन्द्रमा की राह देख रही थी। सब ओर शान्ति और समुत्सुकता छाई हुई थी। तत्वज्ञान मन्दिर के बरामदे में वार्तालाप आरम्भ हुआ। **सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति** भवभूति की इस उक्ति का अनुभव हो रहा था।

वार्तालाप का प्रमुख विषय तत्त्वज्ञान और अहिंसा ही था। बीच में एक व्यक्ति ने कहा—अहिंसा में निष्ठा रखने वाले भी कभी-कभी अनजाने विरोध के झमेले में पड़ जाते हैं। आचार्यश्री तुलसी ने कहा—"विरोध को तो हम विनोद समझ कर उसमें आनन्द मानते हैं।" इस सिलसिले में उन्होंने एक पद्य भी गाकर बताया। श्रोताओं पर इसका बहुत असर हुआ।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनां।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति।

सचमुच भर्तृहरि के इस कटु अनुभव को आचार्यश्री तुलसी ने कितना मधुर रूप दिया। सब लोग अवाक् होकर वार्तालाप सुनते रहे।

आचार्यश्री विशिष्ट पंथ के संचालक हैं, एक बड़े आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जैन शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित हैं, किन्तु इन सब बड़ी-बड़ी उपाधियों का उनके भाषण में आभास भी किसी को प्रतीत नहीं होता था। इतनी सरलता! इतना स्नेह! इतनी शान्ति! ज्ञान व तपस्या के बिना कैसे प्राप्त हो सकती है?

आचार्यश्री तुलसी की हमारे लिये यही अमिट स्मृति है। इस धवल समारोह के शुभ अवसर पर आशा रखते हैं कि हम सब इन गुणों का अनुसरण करेंगे।

भौतिक और नैतिक संयोजन

श्रीमन्नारायण
सदस्य—योजना आयोग

निःसन्देह करोड़ों मानव आज प्राथमिक और मामूली जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाते हैं। अतः उनका जीवन-स्तर ऊपर उठाना परम आवश्यक लगता है। प्रत्येक स्वतन्त्र और लोकतन्त्री देश के नागरिक को कम-से-कम जीवनोवस्तु तो अवश्य ही मिल जानी चाहिए, परन्तु हमें अच्छी तरह समझ लेना होगा कि केवल इन भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर देने से ही शान्तिपूर्ण और प्रगतिशील समाज की स्थापना नहीं हो सकेगी। जब तक लोगों के दिलों दिमागों में सच्चा परिवर्तन नहीं होगा, तब तक मनुष्य-जाति को भौतिक समृद्धि भी नसीब नहीं होगी।

सादगी और दरिद्रता

आखिर मनुष्य केवल रोटी खाकर ही नहीं जीता और न भौतिक सुख-सामग्री से मनुष्य को सच्चा मानसिक और आत्मिक सुख ही मिल सकता है। हमारे देश की संस्कृति में तो अनादि काल से नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। इस देश में तो मनुष्य के धन-वैभव को देख कर नहीं, उसके सेवा-भाव और त्याग को देख कर उसका आदर होता है। यह सच कि है दरिद्रता अच्छी चीज नहीं है और आधुनिक समाज को, एक निश्चित मात्रा में कम से-कम भौतिक सुख-सुविधा तो सबको मिले, ऐसा प्रबन्ध करना होता है। परन्तु सादगी का अर्थ दरिद्रता नहीं है और न जरूरतें बढ़ा देना प्रगति की निशानी। हमें भौतिक और नैतिक कल्याण और विकास के बीच एक संतुलन उपस्थित करना होगा। यह ध्यान प्रतिदिन रखना होगा कि आर्थिक संयोजन में लक्ष्यों को पूरा करने के साथ-साथ नैतिक पुनरुत्थान के लिए भी अनुकूल परिस्थितियां निर्मित करने का काम भी करते रहना है, नहीं तो हम ऐसे मार्ग पर चल पड़ेंगे, जो हमारी संस्कृति और राष्ट्र की आत्मा के प्रतिकूल होगा। जब तक देश के निवासी—स्त्रियां और पुरुष—नेक और ईमानदार नहीं होंगे, हम राष्ट्र की नींव को मजबूत नहीं कर सकेंगे। राष्ट्र की असली सम्पत्ति बड़ी-बड़ी योजनाएं, कारखाने या विशाल इमारतें नहीं है। राष्ट्र की सच्ची सम्पत्ति और सुख का कारण तो वास्तव में समझदार और नैति नागरिक हैं, जिन्हें अपने कर्तव्यों और अधिकारों का पूरा-पूरा भान होता है। भारतीय लोक-राज्य का चिह्न भी धर्मचक्र है, जिसका अर्थ है—सच्ची प्रगति धर्म के अर्थात् कर्तव्य और सन्मार्ग के अनुसरण में ही है। यदि इस चिह्न को हमने भुला देंगे तो हमारा कभी कल्याण नहीं हो सकता।

अणुव्रत-आन्दोलन को मैं नैतिक संयोजन का ही एक विशिष्ट उपक्रम मानता हूँ। यह आन्दोलन व्यक्ति की सुप्त नैतिक भावना को उद्‌बुद्ध करता है तथा विवेकपूर्वक जीवन का समत्व प्रत्येक व्यक्ति को समझाता है।

मुझे यह प्रसन्नता है कि आचार्यश्री तुलसी का धवल समारोह मनाने का आयोजन किया गया है। २५ वर्ष पहले आचार्यश्री आचार्य पद पर आरूढ़ हुए थे। यह स्वाभाविक ही है कि इस अवसर पर उनका गौरव और अभिनन्दन किया जाये।

प्रभावशाली व्यक्तित्व

भारत के मुझ जैसे बहुत से व्यक्ति आज आचार्यश्री तुलसी को केवल एक पंथ के आचार्य नहीं मानते हैं। हम

तो उन्हें देश के महान् व्यक्तियों में से एक प्रभावशाली व्यक्तित्व मानते हैं, जिन्होंने भारत मे नीति और सद्व्यवहार का झंडा ऊँचा उठाया है। अणुव्रत-आन्दोलन द्वारा देश के हजारों और लाखों व्यक्तियों को अपना नैतिक स्तर ऊँचा करने का अवसर मिला है और भविष्य में भी मिलता रहेगा। यह आन्दोलन बच्चे, बूढ़े, नौजवान, स्त्री, पुरुष, सरकारी कर्मचारी व्यापारी वर्ग आदि सबके लिए खुला है। इसके पीछे एक ही शक्ति है और वह है नैतिक शक्ति। यह स्पष्ट ही है कि इस प्रकार का आन्दोलन सरकारी शक्ति से संचालित नहीं किया जा सकता। भारतवर्ष में यह परम्परा ही रही है कि जनता की नैतिकता ऋषि, मुनि व आचार्यों द्वारा ही संचालित हुई है।

मैं आशा करता हूँ कि आचार्यश्री तुलसी बहुत वर्षों तक इस देश की जनता को नैतिकता की ओर ले जाने में सफल रहेंगे और उनके जीवन से हजारों व लाखों व्यक्तियों को स्थायी लाभ मिलेगा।
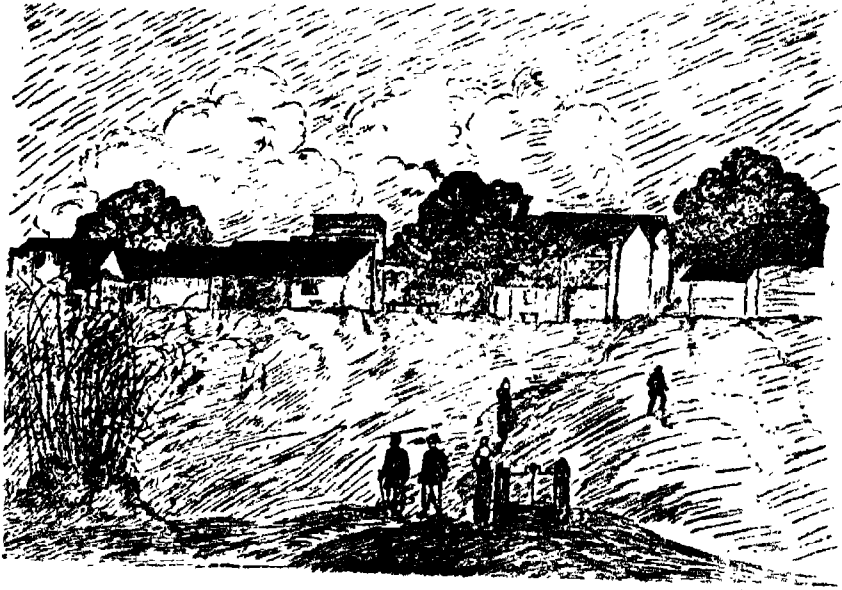
भारतीय संस्कृति के संरक्षक

डा० मोतीलाल दास, एम० ए०, बी० एल०, पी-एच० डी०
संस्थापकमंत्री, भारत संस्कृति परिषद्, कलकत्ता

भारतीय संस्कृति एक शाश्वत जीवन शक्ति है। अत्यन्त प्राचीन काल से आधुनिक युग तक महान् आत्माओं के जीवन और उनकी शिक्षाओं से प्रेरणा की लहरें प्रवाहित हुई हैं। इन संतों ने अपनी गतिशील आध्यात्मिकता, गम्भीर अनुभवों और अपने सेवा और त्यागमय जीवन के द्वारा हमारी सभ्यता और संस्कृति के सारभूत तत्त्व को जीवित रखा है। आचार्यश्री तुलसी एक ऐसे ही संत हैं। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मैं ऐसे विशिष्ट महापुरुष के निकट सम्पर्क में आ सका। मैं अणुव्रत समिति कलकत्ता के पदाधिकारियों का आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस महान् नेता से मिलने का अवसर दिया।

आचार्यश्री तुलसी अवस्था में मुझसे छोटे हैं। उनका जन्म अक्तूबर, १९१४ में हुआ और मैंने उन्नीसवीं शताब्दी की अस्तंगत किरणों को देखा है। उन्होंने ग्यारह वर्ष की सुकुमार वय में जैनधर्म के तेरापंथ सम्प्रदाय के कठिन साधुत्व की दीक्षा ली। अपने दुर्लभ गुणों और असाधारण प्रतिभा के बल पर बाईस वर्ष की अवस्था में ही वे तेरापंथ सम्प्रदाय के नवें आचार्य बन गए। तब से आचार्य पद पर उनको पच्चीस वर्ष हो गए हैं और वे अपने सम्प्रदाय को नैतिक श्रेष्ठता और आध्यात्मिक उत्थान के नये-नये मार्गों पर अग्रसर कर रहे हैं।

मंगलमयी आकृति

दुनिया आज घृणोन्माद की शिकार हो रही है। लोभ और लिप्सा, भ्रम और क्रोध का दुर्निवार बोल-बाला है। भ्रष्टाचार और पतन के युग में महान् आचार्य का शान्त चेहरा देख कर कितनी प्रसन्नता होती है। उनके शान्त चेहरे की ओर एक दृष्टि निक्षेप से ही दर्शक को शान्ति और आह्लाद प्राप्त होता है। संयम-पालन के कारण वह कठोर अथवा शुष्क नहीं हुए हैं। उनकी आकृति मंगलमयी है जो प्रथम दर्शन पर ही अपना प्रभाव डालती है। उनका चौड़ा ललाट और ज्योतिर्मय नेत्र आप को आशा और शान्ति का आश्वासन देते है और उनका सन्तुलित व्यवहार आपको अपने आलोक से मुग्ध कर देता है।

उनमें और भगवान् बुद्ध में समानता प्रतीत होती है। गौतम बुद्ध महानतम हिन्दू थे, जिन्होंने असीम मानवता-प्रेम से प्रेरित होकर अपने अनुयायियों को **बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय** धर्म का उपदेश देने के लिए भेजा। उन महान् धर्म-संस्थापक की तरह ही आचार्यश्री तुलसी ने पद-यात्राओं का आयोजन किया है। इस नवीन प्रयोग में कुछ असाधारण सुन्दरता है। तेरापंथ के साधु अपनी पद-यात्राओं में जहाँ कहीं भी जाते हैं, नई भावना और नया वातावरण उत्पन्न कर देते है।

धर्म का ठोस आधार

अपनी पद-यात्रा के मध्य आचार्यश्री तुलसी बंगाल आए और कुछ दिन कलकत्ता में ठहरे। उस समय मैंने उनसे साक्षात्कार किया और बातचीत की। उन्होंने मुझसे अणुव्रतों की प्रतिज्ञा लेने को कहा। मुझे लज्जापूर्वक कहना पड़ता है कि मैंने अपने भीतर प्रतिज्ञाएं लेने जितनी शक्ति अनुभव नहीं की और झिझक पूर्वक वैसा करने से इन्कार कर दिया। किन्तु वे इससे तनिक भी नाराज नहीं हुए। तटस्थ भाव से, जो उनकी विशेषता है और क्षमाशील स्वभाव से,

जो अपूर्व है, उन्होंने मुझसे तौलने, विचार करने और फिर निर्णय करने को कहा। आचार्यश्री तुलसी की शिक्षाएं बुद्ध की शिक्षाओं की भाँति नैतिक आदर्शवाद पर आधारित हैं। उनके अनुसार नैतिक श्रेष्ठता ही धर्म का निश्चित और ठोस आधार है। जब कि भौतिकवाद का चारों ओर बोल-बाला है, उन्होंने मानवता के, नैतिक उत्थान के लिए अणुव्रत-आन्दोलन चलाया है।

दूसरे अनेक व्यक्तियों के साथ जो ज्ञान और अनुभव में विद्वत्ता और आध्यात्मिक भावना में मुझसे आगे हैं, मैं पतनोन्मुख भारत के नैतिक उत्थान के लिए आचार्यश्री तुलसी ने जो काम हाथ में लिया है और जो आशातीत सफलताएं प्राप्त की हैं, उनके प्रति इस धवल समारोह के अवसर पर अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि भेंट करता हूँ।

अणुव्रत-आन्दोलन एक महान् प्रयास है और उसकी कल्पना भी उतनी ही महान् है। एक श्रेष्ठ सत्य-धर्मी संन्यासी के द्वारा उसका संचालन हो रहा है। अपने सम्प्रदाय को संगठित करने के बाद उन्होंने १ मार्च, १६४६ को देश व्यापी नैतिक पतन के विरुद्ध अपना आन्दोलन आरम्भ किया।

युग पुरुष व वीर नेता

हम सदियों की दासता के बाद सन् १६४७ में स्वतन्त्र हुए, किन्तु हमने अपनी स्वतन्त्रता अनुशासन के कठिन मार्ग से प्राप्त नहीं की। इसलिए अधिकार और धन-लिप्सा ने समाज-संगठन को विकृत कर दिया। जीवन के हर क्षेत्र में अकुशलता का बोल-बाला है। नीतिहीनता ने हमारी शक्ति को क्षीण कर दिया है और इसलिए जब तक हम नैतिक स्वास्थ्य पुनः प्राप्त नहीं कर लेते, हम राष्ट्रों के समाज में अपना उचित स्थान प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते। मानव पतन के सर्वव्यापी अन्धकार के मध्य नैतिक उत्थान की उनकी मुखर पुकार आश्चर्यकारक ताजगी लिए हुए आई है और नंगे पाँव व श्वेत वस्त्रधारी यह साधु अचानक ही युगपुरुष व वीर नेता बन गया है। ऐसे ही पुरुष की आज राष्ट्र को तात्कालिक आवश्यकता है।

शुक्ल यजुर्वेद में एक स्फूर्तिदायक मन्त्र है, जिसमें ऋषि अपनी सच्ची आस्था प्रकट करते है। "ऐ उज्ज्वल ज्ञान के आलोक, शक्ति की अग्नि-शिखा, मुझे अनीति की राह पर जाने से रोक। मुझे सत्पथ पर अग्रसर कर। मै नये पवित्र जीवन को अंगीकार करूँगा, अमर आत्माओं के पद-चिह्नों पर चलता हुआ सत्य और साहस का जीवन व्यतीत करूँगा।"

मनुष्य की आत्माभिव्यक्ति कर्म के माध्यम से होती है, ऐसा कर्म जो कष्टसाध्य और स्थायी हो और जो आत्मा की मुक्ति और विजय की घोषणा करने वाला हो। मनुष्य को निःस्वार्थ भाव से फल की आकांक्षा का त्याग करके कर्म करना चाहिए। यही सच्ची तपस्या है, यही सच्ची चारित्रिक पूर्णता है। चरित्र और नैतिक श्रेष्ठता के बिना मनुष्य पशु बन जाता है और सत्यं, शिवं और सुन्दरं का अनुसरण करके वह प्रेम के मार्ग पर ऊँचा और अधिक ऊँचा उठता जाता है और अन्त में अमर आत्माओं के राज-सिंहासन के पद पर आसीन होता है।

नैतिक मूल्यों की स्थापना

अतः आचार्यश्री तुलसी ने भारत माता की सच्ची मुक्ति के लिए अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात करके बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया है। केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता से काम चलने वाला नहीं है। यहाँ तक कि शिक्षा-सुधारों, आर्थिक सफलताओं और सामाजिक उत्थान से भी अधिक सहयोग नहीं मिलेगा। सर्वोपरि आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्तियों और सारे समाज के जीवन में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना हो। नैतिक पुनरुत्थान का सर्वोत्तम मार्ग यह नहीं है कि लोगों के सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन होने की प्रतीक्षा की जाये, बल्कि व्यक्ति के सुधार पर ध्यान केन्द्रित किया जाये। व्यक्तियों से ही समाज बनता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति सज्जन बन जाये तो सामाजिक उत्थान के पृथक् प्रयास के बिना ही समाज धर्म-परायण बन जायेगा।

जब कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा लेता है तो वह अपने को नैतिक रूप में ऊँचा उठाने का प्रयास करता है। वह अपने द्वारा अंगीकृत कर्तव्य के प्रति धार्मिक भावना से प्रेरित होता है और इसलिए वह उस साधारण व्यक्ति की अपेक्षा जिसे

कानून अथवा सामाजिक अप्रतिष्ठा के भय के अलावा और किसी बात से प्रेरणा नहीं मिलती, आज की दुनिया में अधिक सफल होता है।

प्रत्येक व्यक्ति में श्रेष्ठता और महानता का स्वाभाविक गुण होता है चाहे वह समाज के किसी भी वर्ग से सम्बन्धित क्यों न हो। यदि हम प्रत्येक व्यक्ति में आत्म-सम्मान की भावना उत्पन्न कर सकें और उसे अपने इन स्वाभाविक गुणों का ज्ञान करा सकें, तो चमत्कारी परिणाम आ सकते हैं। यदि आत्म-ज्ञान व आत्म-निष्ठा हो तो व्यक्ति के लिए सत्पथ पर चलना अधिक सरल होता है। ऐसी स्थिति में तब वह सदाचार का मार्ग निषेधक न रह कर विधायक वास्तविकता का रूप ले लेता है।

प्रतिज्ञा-ग्रहण का परिणाम

अणुव्रत आन्दोलन अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के सुविदित सिद्धान्तों पर आधारित है, किन्तु वह उनमें नई सुगन्ध भरता है। कुछ लोग प्रतिज्ञाओं और उपदेशों को केवल दिखावा और बेकार की चीजें समझते हैं, किन्तु असल में उनमें प्रेरक शक्ति भरी हुई है। उनसे निःस्वार्थ सेवा की ज्योति प्रकट होती है जो मानव-मन में रहे पशु-बल को जला देती है और उसकी राख से नया मानव जन्म लेता है, अमर और दैवी प्राणी।

कुछ लोग यह तर्क कर सकते हैं कि ये तो युगों पुराने मौलिक सिद्धान्त हैं और यदि आचार्यश्री तुलसी उनके कल्याणकारी परिणामों का प्रचार करते हैं तो इसमें कोई नवीनता नहीं है। यह तर्क ठीक नहीं है। यह साहसपूर्वक कहना होगा कि आचार्यश्री तुलसी ने अपने शक्तिशाली दृढ़ व्यक्तित्व द्वारा उनमें नया तेज उत्पन्न किया है।

आचार्यश्री तुलसी अणुव्रत-आन्दोलन को अपने करीब ७०० निःस्वार्थ साधु-साध्वियों के दल की सहायता से चला रहे हैं। उन्होंने आचार्यश्री के कड़े अनुशासन में रह कर और कठोर संयम का जीवन बिता कर आत्म-जय प्राप्त की है। उन्होंने आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का भी अच्छा अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त ये साधु-साध्वी दृढ़संकल्पवान् हैं और उन्होंने अपने भीतर सहिष्णुता और सहनशीलता की अत्यधिक भावना का विकास किया है, जिसका हमें भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध शिष्यों में दर्शन होता है।

आध्यात्मिक अभियान

यह आध्यात्मिक कार्यकर्ताओं का दल जब गाँवों और नगरों में निकलता है तो आश्चर्यजनक उत्साह उत्पन्न हो जाता है और नैतिक गुणों की सच्चाई पर श्रद्धा हो आती है। जब हम नंगे पाँव साधुओं के दल को अपना स्वल्प सामान अपने कंधों पर लिए देश के भीतर गुजरते हुए देखते हैं तो यह केवल रोमांचक अनुभव ही नहीं होता, बल्कि वस्तुतः एक परिणामदायी आध्यात्मिक अभियान प्रतीत होता है।

साधु-साध्वियाँ श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। वे किसी वाहन का उपयोग नहीं करते। उनका वाहन तो उनके अपने दो पाँव होते हैं। वे साधारणतः किसी की सहायता नहीं लेते, उनका कोई निश्चित निवास-गृह नहीं होता और न उनके पास एक पैसा ही होता है। जैसा कि प्राचीन भारत के साधु सन्तों की परम्परा है, वे भिक्षा भी माँग कर लेते है। भ्रमर की तरह वे इतना ही ग्रहण करते हैं, जिससे दाता पर भार न पड़े।

आचार्यश्री तुलसी का ध्येय केवल लोगों को अपने जीवन का सच्चा लक्ष्य प्राप्त करने में सहयोग देने का एक निःस्वार्थ प्रयास है। पूर्णता प्राप्त करने का लक्ष्य इसी धरती पर सिद्ध किया जा सकता है। किन्तु उसके लिए हमको छोटी-छोटी बातों से प्रारम्भ करना चाहिए। एक-एक बूंद करके ही तो अगाध असीम समुद्र बनता है। पहले एक प्रतिज्ञा, फिर दूसरी प्रतिज्ञा, इसी प्रकार नैतिक पुनरुत्थान की क्रिया आरम्भ होती है।

वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक जीवन-विधि

आचार्यश्री की जीवन-विधि वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दोनों ही प्रकार की है। नैतिक उत्थान का सन्देश सभी

को भाता है। वह जाति और धर्म, लिंग और राष्ट्रीयता, शिक्षा और वातावरण के भेद से परे है। उसका सम्बन्ध शाश्वत गुणों से है जिनकी सभी युगों के धार्मिक पुरुषों ने महिमा बखानी है। आचार्यश्री ने चरित्र निर्माण कार्य को नई दृष्टि प्रदान की है और नैतिक श्रेष्ठता में अटूट श्रद्धा ने चरित्र निर्माण की कला को एक रचनात्मक कार्य बना दिया है।

आध्यात्मिक दुष्काल और आत्म-शिथिलता के इस युग में अणुव्रत-आन्दोलन ने जीवन की पवित्र कला को पुनर्जीवित किया है। पशु की भाँति जीवन बिताना, आहार, निद्रा और मैथुन में ही सन्तोष मानना कोई जीवन नहीं है। वही मनुष्य जीवित है जो धर्म के मार्ग का अनुसरण करता है। यह धर्म ही है जो मनुष्य की पाशविक वृत्तियों को दैवी गुणों में बदल सकता है। अतः हम सबको इस आन्दोलन का हार्दिक समर्थन करना चाहिए। उससे धार्मिक सौमनस्य उत्पन्न होगा, फूट दूर होगी और सद्भावना और प्रेम का प्रसार होगा।

समन्वयमूलक आदर्शवाद

आचार्यश्री तुलसी अणुव्रत-आन्दोलन से भी महान् है। निस्सन्देह यह उनकी महान् देन है, किन्तु यही सब कुछ नहीं है। उनकी प्रवृत्तियाँ विविध हैं और उनकी दृष्टि सर्वव्यापी है। उनका समन्वयमूलक आदर्शवाद उनकी सभी प्रवृत्तियों में नये प्राण फूँक देता है, ऐसी प्रफुल्लता ला देता है जो बुद्धिगम्य प्रतीत नहीं होती। अगर दुर्गुणों का लोप हो जाता है तो संस्कृति का आगमन अवश्यम्भावी है। जब दुर्गुण, बुराई और पतन नाम शेष हो जाये तो संस्कृति का अपने आप विकास होता है।

वे प्राचीन भारत के अधिकांश धर्माचार्यों से सहमत हैं कि इच्छा ही सारे दुःखों की जड़ है। वे उनकी इस राय से भी सहमत हैं कि जब इच्छा का प्रभाव नष्ट हो जाता है, तभी हम सर्वोच्च शान्ति और आनन्द की प्राप्ति कर सकते है।

कलकत्ता के संस्कृत कालेज में एक साध्वी ने संस्कृत में भाषण दिया था और हमें पता चला कि आचार्यश्री साधु-साध्वियों को शिक्षा देने में अपना काफी समय खर्च करते है। वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्, ओजस्वी वक्ता और गम्भीर चिन्तक है। वे अपने विचारों में अग्रगामी हैं। वे अथक उत्साह और असीम श्रद्धा के साथ देश के एक कोने से दूसरे कोने तक अपना नैतिक पुनरुत्थान का सन्देश दे रहे है।

बहुत काम हुआ है और अभी बहुत कुछ होना शेष है। इस कठिन कार्य में हम प्रत्येक भारत प्रेमी से हृदय से सहभागी बनने की प्रार्थना करते है। उत्थान के ऐसे निरन्तर प्रयास से ही कवियों और दार्शनिकों की महान् भारत की वह कल्पना साकार हो सकेगी। भारतीय संस्कृति के इस संरक्षक का सभी अभिनन्दन करते है। राजस्थान का यह सपूत दीर्घजीवी हो और अपने पावन ध्येय को सिद्ध करे।
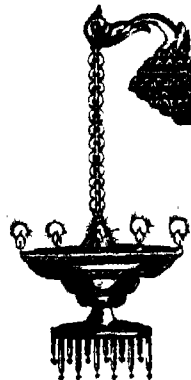
तेजोमय पारदर्शी व्यक्तित्व

श्री केदारनाथ चटर्जी
सम्पादक—माडर्न रिव्यू, कलकत्ता

प्रथम सम्पर्क का सुयोग

बीस वर्ष पूर्व सन् १९४१ के पतझड़ की बात है। एक मित्र ने मुझे सुझाया कि मैं अपनी पूजा की छुट्टियाँ बीकानेर राज्य में उनके घर पर बिताऊं। इससे कुछ पहले मैं अस्वस्थ था और मुझे कहा गया कि बीकानेर की उत्तम जल-वायु से मेरा स्वास्थ्य सुधर जायेगा। कुछ मित्रों ने यह भी सुझाया कि ब्रिटिश भारत की सेनाओं के लिए देश के उस भाग में रंगरूटों की भरती का जो आन्दोलन चल रहा है, उसके बारे में मैं कुछ तथ्य संग्रह कर सकूँगा। किन्तु यह तो दूसरी कहानी है। मैंने अपने मित्र का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और कुछ समय पटना में ठहरने और राजगृह, नालन्दा तथा पावापुरी की यात्रा करने के बाद मैं बीकानेर राज्य के भादरा नामक कस्बे में पहुँच गया।

बीकानेर की यात्रा एक से अधिक अर्थ में लाभदायक सिद्ध हुई। निस्सन्देह सबसे सुखद अनुभव यह हुआ कि जैन श्वेताम्बर तेरापंथ-सम्प्रदाय के प्रधान आचार्यश्री तुलसी से संयोगवश भेंट करने का अवसर मिल गया। कुछ मित्र भादरा आए और उन्होंने कहा कि बीकानेर के मध्यवर्ती कस्बे राजलदेसर में कुछ ही दिनों में दीक्षा-समारोह होने वाला है। उसमें सम्मिलित होने के लिए आप आने का कष्ट करें। कुछ नये दीक्षार्थी तेरापंथ साधु-समाज में प्रविष्ट होने वाले थे और आचार्यश्री तुलसी उनको दीक्षा देने वाले थे।

मेरे आतिथेय ने मुझसे यह निमन्त्रण स्वीकार करने का अनुरोध किया, कारण ऐसा अवसर क्वचित् ही मिलता है और मुझे जैन धर्म के संयम-प्रधान पहलू का गहराई से अध्ययन करने का मौका मिल जाएगा। इसी सम्भावना को ध्यान में रख कर मैं अपने आतिथेय के भतीजे और एक अन्य मित्र के साथ राजलदेसर के लिए रवाना हुआ।

यह किसी दर्शनीय स्थान का यात्रा-वर्णन नहीं है और न ही यह साधारण पाठक के मन-बहलाव के लिए लिखा जा रहा है; इसलिए दीक्षा-समारोह के अवसर पर मैंने जो कुछ देखा-सुना, उसका अलंकारिक वर्णन नहीं करूंगा और न ही उस समारोह का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करूँगा। मैंने दीक्षा की प्रतिज्ञा लेने के एक दिन पहले दीक्षार्थियों को भड़कीली वेश-भूषा में देखा। उनके चेहरों पर प्रसन्नता खेल रही थी। उनमें से अधिकांश युवा थे और उनमें स्त्री और पुरुष दोनों ही थे। मुझे यह विशेष रूप से जानने को मिला कि उन्होंने अपनी वास्तविक इच्छा से साधु और साध्वी बनने का निश्चय किया है। वे ऐसे साधु-समाज में प्रविष्ट होंगे, जिसमें सांसारिक पदार्थों का पूर्णतया त्याग और आत्म-संयम करना पड़ता है। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि न केवल दीक्षार्थी के संकल्प की दीर्घ समय तक परीक्षा ली जाती है, बल्कि उसके माता-पिता व संरक्षकों की लिखित अनुमति भी आवश्यक समझी जाती है। इसके बाद मैंने व्यक्तिगत रूप से इस बात की जांच की है और इसकी पुष्टि हुई है। जहाँ तक इस साधु-समाज का सम्बन्ध है, मुझे उनकी सत्यता पर पूरा विश्वास हो गया है।

मेरे सामने सीधा और ज्वलन्त प्रश्न यह था कि वह कौन-सी शक्ति है, जो इस कठोर और गम्भीर दीक्षा-समारोह में पूज्य आचार्यश्री के कल्याणकारी नेत्रों के सम्मुख उपस्थित होने वाले दीक्षार्थियों को इस संसार और उसके विविध आकर्षणों, सुखों और इच्छाओं का त्याग करने के लिए प्रेरित करती है ?

अपनी पृष्ठभूमि

इस विषय में अधिक लिखने से पूर्व मैं इस संसार और मनुष्य-जीवन के बारे में अपना दृष्टि-बिन्दु भी उपस्थित करना चाहूँगा। मेरे पूर्वजों की पृष्ठभूमि उन विद्वान् ब्राह्मणों की है जो अपनी आँखें खुली रख कर जीवन बिताते थे और उनके मन में निरन्तर यह जिज्ञासा रहती थी—**तत् किम्** ? मेरी तात्कालिक पृष्ठभूमि ब्रह्म समाज की थी। यह हिन्दुओं का एक सम्प्रदाय है जो उपनिषदों की ज्ञानमार्गी व्याख्या पर आधारित है। मुझे विज्ञान की शिक्षा मिली है और मैंने लन्दन में डिग्री और डिप्लोमा प्राप्त किया है। बाद में मेरे पूज्य पिताजी ने मुझे पत्रकारिता की शिक्षा दी, जो अपने समय में इस देश के एक महान् और उदार सम्पादक थे। मैंने विस्तृत भ्रमण किया और तीन महाद्वीपों का जीवन भी देखा है। मेरे पिताजी को सार्वजनिक जीवन में जो स्थान प्राप्त था, उसके कारण मैं देश के प्रायः सभी महापुरुषों और कुछ विशिष्ट विदेशी व्यक्तियों से भी मिल चुका हूँ।

इस प्रकार मुझे यह गौरव है कि मेरी पृष्ठभूमि एक सधे हुए निरीक्षक की थी, जो जीवन को एक यथार्थवादी दृष्टि से देख सकता है। पूज्य आचार्यश्री तुलसी से भेंट के समय मेरी अवस्था ५० वर्ष की थी और जीवन के सम्बन्ध में मुझे कोई विशेष भ्रम नहीं थे। मैंने सन् १९१४-१८ की अवधि में प्रथम महायुद्ध को निकट से देखा था और इसलिए मानव-स्वभाव और मानव-दुर्बलताओं एवं विकारों के सम्बन्ध में काफी शंकाशील बन गया था। मैं यह सब इसलिए लिख रहा हूँ कि दीक्षार्थियों के सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा का हल धार्मिक उत्साह से उत्पन्न नहीं हुआ था, बल्कि बात इसके बिल्कुल विपरीत थी।

वह ऐसी कौन-सी शक्ति थी, जिसने इन दीक्षार्थियों को कठोर संयम और सम्पूर्ण त्याग का जीवन अपनाने को प्रेरित किया ? मैंने एक दिन पूर्व उनमें से कुछ को भड़कीली वेश-भूषा में जीवन का उपभोग करते हुए देखा था। दीक्षा-समारोह में मैं इतना निकट बैठा हुआ था कि दीक्षार्थियों को साफ-साफ देख सकता था। उनमे दो या तीन लडके और एक लड़की थी और वे यौवन की देहली में पाँव रखने जा रहे थे। एक दिन पहले मैंने जो कुछ देखा, उसके बाद यह तो प्रश्न ही नहीं उठता कि उन्होंने अभाव से प्रेरित होकर यह निर्णय किया होगा। अवश्य ही धार्मिक वातावरण के प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु प्रत्येक उदाहरण मे क्या यही एकमात्र प्रेरक कारण हो सकता है ? यदि इस धर्म को मानने वाले मेरी जान-पहिचान के कुछ लोगों की व्यावसायिक नैतिकता और सामान्य जीवन-पद्धति पर विचार किया जाये तो यही कहना होगा कि यही एक मात्र कारण नहीं है। मुझे यह खेदपूर्वक लिखना पड़ रहा है, किन्तु उस समय मेरा यही तर्क था और स्वयं पूज्य आचार्यश्री ने अपने अनुयायियों के बारे में, अणुव्रत-आन्दोलन के सिलसिले में, अपनी पद-यात्रा के दौरान में कलकत्ता में जो कुछ कहा था, उसके आधार पर यह लिखने का साहस कर रहा हूं।

अपने प्रश्न का जो उत्तर मिला, उसे मैं सीधे और स्पष्ट रूप में यहाँ लिख दूं। इस पार्थिव संसार में, साधारण मनुष्यों के लिए मानव प्राणियों पर दैवी प्रभाव किस प्रकार काम करता है, यह मालूम करना आसान नहीं होता। जहाँ तक सामान्य जन का सम्बन्ध है, तीव्रता और प्रकाश का प्रसार आत्मा के आन्तरिक विकास पर निर्भर करता है जो मशाल-वाहक का काम करता है। मशाल की ज्योति मशालवाहक की आन्तरिक शक्ति के परिमाण पर मन्द या तीव्र होती है। जरूरतमन्दों और पीड़ितों में श्री रामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार करने के लिए असीसी के संत फांसिस जैसी समर्पित आत्मा की आवश्यकता थी। इसी प्रकार आचार्यश्री भिक्षु ने तेरापंथ की स्थापना की। इसलिए मुझे अपने प्रश्न का उत्तर आचार्यश्री तुलसी के व्यक्तित्व में खोजना पड़ा।

दीक्षा-समारोह के पहले मैं उनसे मिल चुका था। उन्होंने सुना था कि बंगाल के एक पत्रकार आये हैं। उन्होंने दीक्षार्थियों के चुनाव की विधि और दीक्षा के पहले की सारी क्रियाएं मुझे समझाने की इच्छा प्रकट की। इसका यह कारण था कि उनके साधु समाज के उद्देश्यों और प्रवृत्तियों के बारे में कुछ अपवाद फैलाया गया था। उन्हें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मैं हिन्दी अच्छी तरह बोल और समझ सकता हूँ और उन्होने सारी विधि मुझे विस्तार से समझा दी। भक्त लोग दर्शन करने और पूज्य आचार्यश्री के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आते रहे और

इससे बीच-बीच में बाधा पड़ती रही। वे भक्तों को आशीर्वाद देते जाते और शान्तिपूर्वक दीक्षा की विधि विस्तार से समझाते रहे।

अन्त में उन्होंने हँसते हुए मुझे कोई प्रश्न पूछने के लिए संकेत किया। मेरे मस्तिष्क में अनेक प्रश्न थे, किन्तु उनमें से दो मुख्य और नाजुक थे; कारण उनका सम्बन्ध उनके धर्म से था। काफी संकोच के बाद मैंने कहा कि यदि मेरे प्रश्न आपत्तिजनक प्रतीत हों तो वे मुझे क्षमा कर दें। मैंने कहा कि मैं दो प्रश्न पूछना चाहता हूँ और मुझे भय है कि उन पर आपको बुरा लग सकता है। इस पर उन्होंने कहा कि यदि प्रश्न ईमानदारी से पूछोगे तो बुरा लगने की कोई बात नहीं है। तब मैंने प्रश्न पूछे।

दो प्रश्न

पहला प्रश्न जीवन के प्रकार और मेरी विनीत मान्यता के अनुसार पाप और मोक्ष के बारे में था। जिस धर्म मे मेरा पालन-पोषण हुआ था, उसमें गृहस्थ आश्रम को मूलत: पापमय नहीं समझा जाता; जबकि जैन धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार संसार के सम्पूर्ण त्याग द्वारा ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। अतः यदि मैं अपने धर्म पर श्रद्धा रख कर चलूं तो क्या मेरे जैसे प्राणी को मोक्ष मिल ही नहीं सकता ?

दूसरा प्रश्न था कि दुनिया किस तरह चल रही है ? उस समय द्वितीय महायुद्ध अपने पूरे वेग, रक्तपात और विनाश के साथ चल रहा था। मैंने पूछा कि जब दुनिया में सत्ता और अधिकार की लिप्सा का बोलबाला है, शक्तिशाली वही है जो सूक्ष्म नैतिक विचारों की कोई परवाह नहीं करता और उनको कमजोरों और अज्ञानियों का भ्रम-मात्र समझते हैं, क्या अहिंसा की विजय हो सकती है ? उनके निकट नैतिकता और धर्म-सापेक्ष शब्द हैं। विज्ञान में दक्ष और युद्ध करने में समर्थ लोगों के लिए जो उचित है, वह कमजोरों और अकुशल लोगों के लिए उचित नहीं है। अपने कथन के प्रमाण स्वरूप वे इतिहास की साक्षी प्रस्तुत करते है।

मेरे साथ एक परिचित सज्जन थे, जो तेरापंथ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उन्होंने कहा कि मेरा दूसरा प्रश्न आचार्यश्री की समझ में नहीं आया। इससे मेरे मनमें शंका पैदा हुई और मैंने अपने मित्र की ओर एवं फिर आचार्यश्री की ओर देखा। आचार्यश्री, जब मैं प्रश्न पूछ रहा था, तो चुप थे और मेरे प्रश्नों का विचार करते प्रतीत हुए। किन्तु मैंने देखा कि उनके शान्त नेत्रों में प्रकाश की किरण चमक उठी और उन्होंने कहा कि इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए शान्त वातावरण की आवश्यकता होगी, इसलिए अच्छा होगा कि आप सायंकाल सूर्यास्त के बाद जब आयेंगे, मैं प्रतिक्रमण व प्रवचन समाप्त कर चुकूंगा और तब एकान्त में वार्तालाप अच्छी तरह हो सकेगा।

मुझे पता था कि मुझे विशेष अवसर दिया जा रहा है; क्योंकि सूर्यास्त के बाद आचार्यश्री से उनके निकट शिष्यों के अतिरिक्त बहुत कम लोग मिल पाते है। मैंने यह सुझाव सहर्ष स्वीकार कर लिया।

धर्म-गुरुओं से विशेष चर्चा

मेरे प्रश्न घिसेघिसाए और सामान्य थे, कारण द्वितीय महायुद्ध के बाद के वर्षों में दुनिया बहुत अधिक बदल गई है। किन्तु जिस समय मैंने ये प्रश्न पूछे थे, उस समय उनका विभिन्न जातियों, धार्मिक सम्प्रदायों और जीवन-दर्शनों के बीच विद्यमान मतभेदों की दृष्टि से कुछ और ही महत्त्व था। उस समय मनुष्य और मनुष्य के मध्य सहिष्णुता के अभाव के कारण से मतभेद इतने तीव्र और अनुल्लंघनीय थे कि विचारों का स्वतन्त्र आदान-प्रदान न केवल असम्भव; बल्कि व्यर्थ हो गया था। इस प्रकार के आदान-प्रदान के फलस्वरूप प्रतिदिन सुस्थिर रहने वाले तनाव में वृद्धि ही हो सकती थी।

मैं पहला प्रश्न थोड़े हेर-फेर के साथ भिन्न-भिन्न धर्मों के अनेक विद्वान् धर्म-गुरुओं से पूछ चुका हूँ। उनमें एक रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के मुक्ति-पंथी पादरी, एक मुस्लिम मौलाना और एक हिन्दू संन्यासी शामिल थे। मुझे जो उनसे उत्तर मिले, वे या तो अत्यन्त दयनीय या निश्चित रूप से उद्दण्डतापूर्ण थे। उनको समाधानकारक तो कभी नहीं कहा जा सकता।

दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में, द्वितीय महायुद्ध जो मौत और विनाश के पथ पर तेजी से आगे बढ़ रहा था, अहिंसा की विजय की समस्त आशाओं को निर्मूल करता हुआ प्रतीत होता था। जैसा कि विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ने अपनी एक निराशाजनक कविता में इसी आशय की पुष्टि करते हुए कहा भी था—'करुणाघन, धरणी तले करो कलंक शून्य।' अवश्य ही शान्ति के दूसरे उपासक महात्मा गांधी स्वयं अपने अनुयायियों के विरोध और शंकाशील उद्‌गारों के बावजूद भी अपनी अहिंसा की मान्यता पर अविचल भाव से डटे हुए थे। यह स्थिति तो केवल भारत में थी। शेष दुनिया में जंगल के कानून का बोलबाला था और केवल अहिंसा का नाम लेने मात्र पर हल्की और तिरस्कारपूर्ण हँसी सुनने को मिलती थी।

इस पृष्ठभूमि में मैंने अपने दो प्रश्न पूछे थे और मैं जिज्ञासा और प्रत्याशामिश्रित भाव से उनके उत्तरों की प्रतीक्षा कर रहा था; क्योंकि उत्तर ऐसे व्यक्ति के द्वारा मिलने वाले थे जो भारतीय ज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान् समझे जाते हैं; भले ही उन्हें पश्चिम की रीति-नीति की प्रकट जानकारी न हो। मैं अपने परिचित साथी के कथन से, जो उनके अनुयायी थे, कुछ ऐसा ही समझा था।

मैं निराश नहीं हुआ। उन एकान्त शान्त नेत्रों की चमक से जो आशाएं मेरे हृदय में उत्पन्न हुई थीं, उनको निराशा में परिणत नहीं होना पड़ा। मेरे परिचित मित्र ने अपने अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के दर्प में इस प्राचीन और युगमान्य उक्ति को या तो सुना नहीं या उस पर ध्यान नहीं दिया कि **प्रज्ञा भिनत्तु मे तमः** अर्थात् सच्चा ज्ञान अज्ञान के समस्त अन्धकार का नाश कर देता है।

जब मैं आचार्यश्री से संध्या के शान्त समय में पुनः मिला तो मुझसे कहा गया कि मैं अपने प्रश्नों को विशेषकर दूसरे प्रश्न को विस्तार से पुनः पूछूं। मैंने अपने दूसरे प्रश्न का विस्तार करते हुए कहा कि पश्चिम में लोग पौरुष और शौर्य को हमारे प्राचीन क्षत्रियों की भाँति मानवी गुण मानते हैं और जीवन में साहस को सर्वोपरि स्थान देते हैं। उत्तर स्पष्ट और निश्चित थे और अच्छा होता कि मैंने उनको पूरा लिख लिया होता। किन्तु अब अपनी स्मृति के आधार पर संक्षेप में ही उनका विश्लेषण कर पाऊंगा।

प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा कि किसी धर्म, मान्यता या सम्प्रदाय और उसके संतों या धर्माचार्यों के बारे में निन्दात्मक या हीन भाषा का प्रयोग करना स्वयं उनके धर्म के विरुद्ध है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर काफी विस्तृत और लम्बा था। उनका कहना था कि हिंसा और संदेह-लिप्सा दो मूलभूत बुराइयां हैं, जिनसे मानव-जाति पीड़ित है और ये युद्ध के अत्यन्त उग्र और व्यापक प्रतीक है। इन दोनों नग्न बुराइयों पर विजय प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग अहिंसा ही है और दुनिया को यह सत्य एक दिन स्वीकार करना ही होगा। मनुष्य सबसे बड़ी बुराइयों पर विजय प्राप्त किये बिना कैसे महत्तर सिद्धि प्राप्त कर सकता है?

अन्त में आचार्यश्री मेरी ओर मुस्कराये और पूछा कि क्या मेरा समाधान हो गया। मैंने उत्तर दिया कि मुझे उत्तर अत्यन्त सहायक प्रतीत हुए हैं और मैंने प्रणाम कर उनसे बिदा ली।

उसके बाद

इस घटना के वर्षों बाद, मैंने कलकत्ता में एक विशाल जनसमूह से भरे हुए पण्डाल में आचार्यश्री को अणुव्रत-आन्दोलन पर प्रवचन करते हुए सुना। उसके बाद उन्होंने थोड़े समय के लिए मुझसे व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए कहा। उन्होंने देश के भीतर नैतिक मूल्यों के ह्रास पर अपनी चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि उन्हें भ्रष्टाचार और नैतिक पतन की शक्तियों के विरुद्ध आन्दोलन करने की अन्तरतम से प्रेरणा हो रही है, विशेषकर जबकि स्वयं उनके अपने सम्प्रदाय के लोग भी तेजी से पतन की ओर जा रहे हैं।

मैंने पूछा कि अपनी सफलता के बारे में उनका क्या ख्याल है, उनके मुख पर वही मुस्कराहट खेल गई, हालांकि उनके नेत्रों में उदासी की रेखा खिंची हुई दिखाई दी। उन्होंने कहा, जब वह नई दिल्ली में पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिले थे तो उन्होंने पंडितजी से पूछा था कि अणुव्रत-आन्दोलन की सफलता के बारे में उनका क्या ख्याल है। पंडितजी ने कहा था कि वह दिन-प्रतिदिन दुनिया के सामने अहिंसा का प्रचार करते रहते हैं, किन्तु उनकी बात कौन सुनता है? पंडितजी

ने कहा कि हमको अपने ध्येय पर अटल रहना है और उसका प्रचार करते जाना है। आचार्यश्री ने कहा कि शान्ति और पवित्रता के ध्येय पर उनकी भी ऐसी ही श्रद्धा और निष्ठा है।

तेजोमय महापुरुषों की अगली पंक्ति में

मुझे सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य वश अपने जीवन के ७० वर्षों में ऐसे बहुसंख्यक लोगों से मिलने का काम पड़ा जो प्रसिद्ध और महान् व्यक्ति की ख्याति अर्जित कर चुके थे। खेद है कि उनमें से बहुत कम लोगों के मुख पर मैंने सत्य और पवित्रता की वह उज्ज्वल ज्योति अपने पूरे तेज के साथ चमकते हुए देखी, जैसी कि एक शुद्ध आबदार हीरे में चमकती दिखाई देती है। मैं पारदर्शी और तेजोमय महापुरुषों की अगली पंक्ति में आचार्यश्री तुलसी का स्थान देखता हूँ।

सम्भवामि युगे युगे

श्री को० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर
भूतपूर्व उपकुलपति—लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रगति की गति

आज संसार एक भयंकर स्थिति में है। एक ओर तो पाश्चात्य विद्वान् और वैज्ञानिक अपने बुद्धि-बल और परिश्रम से विज्ञान की अद्भुत वृद्धि करा रहे हैं और दूसरी ओर वहीं के राजनैतिक नेता वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत तत्त्वों के आधार पर नये-नये विध्वंसक अस्त्र-शस्त्र बनवा रहे हैं और सारे संसार को विनाशोन्मुख बना रहे हैं। जहाँ मनुष्य-निर्मित ग्रह सूर्य का परिभ्रमण कर रहा है, वहाँ यह समाचार भी सुनने में आता है कि एक क्षण में एक विस्तृत भूमि-भाग को निर्जीव बनाने की शक्ति रखने वाले 'कोबाल्ट बम' का निर्माण अत्यन्त निकट है। प्रेम को ऐहिक और पारलौकिक सुख का मुख्य उपाय घोषित करने वाले ईसाई धर्म में उसी के अनुयायियों की श्रद्धा प्रतिदिन शिथिल होती जा रही है। विमानों के नये-नये प्रकार आविष्कृत हो रहे हैं, जिससे पृथ्वी में दूरता का लोप-सा हो रहा है। विप्रकृष्ट मनुष्य-जातियाँ सन्निकृष्ट हो रही हैं। इसके फलस्वरूप अब सभी मनुष्य-जातियाँ अन्य मनुष्य जातियों को साक्षात् देख सकती हैं और उनसे सम्पर्क और व्यवहार कर सकती हैं। परन्तु इस परस्पर-परिचय से पारस्परिक आदर ही बढ़ रहा हो, यह बात नहीं है; कभी-कभी पारस्परिक द्वेष भी बढ़ता है। जब तक विजातीय और विधर्मी लोग दृष्टिगोचर नहीं होते हैं, विप्रकृष्ट ही रहते हैं, तब तक उनके प्रति उपेक्षा की ही बुद्धि अधिकांश बनी रहती है। अब तो सब लोग सब जगह जल्दी पहुँच जाते हैं। अब भारतीय अधिक संख्या में विदेशों में संचार करते हैं और निवास भी करते हैं। इसी प्रकार विदेशी अब अधिक संख्या में भारत आने लगे हैं। इसलिए परस्पर भेद अधिक स्पष्ट होने लगा है।

सभ्यता, संस्कृति और युग

इस नये संसार में भारत, अपने स्वभाव और अपनी संस्कृति के अनुसार, एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करने के लिए यत्न कर रहा है। अब भारत ने राजनैतिक स्वातन्त्र्य प्राप्त कर लिया है। परन्तु स्वातन्त्र्य एक उपाय-मात्र है। उसके द्वारा एक बड़े लक्ष्य को सिद्ध करना है तथा इस प्राचीन देश को नवीन बनाना है। यह एक बहुत बड़ा काम है और उसमें हर व्यक्ति का सहयोग अपेक्षित है। इस देश की पुरानी सभ्यता और संस्कृति को इस नये युग के अनुरूप बनाना है। जीवन के हरएक विभाग में आमूल परिवर्तन लाना है। यह काम प्रारम्भ हो गया है। केन्द्रीय सरकार की जो पंच-वर्षीय योजनाएं चल रही हैं, उनका मुख्य उद्देश्य यही है। उनमें यद्यपि आर्थिक सुधार पर अधिक जोर दिया जा रहा है, फिर भी अधिकारियों को इस बात का पूरा ज्ञान है कि केवल आर्थिक उन्नति से, केवल दारिद्र्य-निवारण से, देश की उन्नति नहीं हो सकती है। साथ-साथ अनेक सामाजिक सुधार भी आवश्यक है। शिक्षा-क्षेत्र में यह देश बहुत पिछड़ा हुआ है। इस युग में यह लज्जा और परिभव की बात है। यद्यपि इस देश में अच्छे-अच्छे विद्वान् भी मिलते हैं। परन्तु इस युग में उन्नति की कसौटी ही दूसरी है। केवल बीस प्रतिशत आदमी ही पेट-भर खा सकें और सब भूखे रह जायें तो यह देश की समृद्धि नहीं कही जा सकती है। अच्छे-अच्छे विद्वान् भले ही मिलते हों, परन्तु अधिकांश जनता यदि निरक्षर है तो दशा उन्नति की नहीं समझी जा सकती है। इतनी विद्वत्ता तो व्यर्थ गई, क्योंकि उसका साधारण जनता पर कोई असर ही नहीं हुआ। इस युग में साधारण जनता की उन्नति ही उन्नति समझी जाती है। इस दृष्टि से अभी भारत में बहुत काम बाकी है।

काम इतना बड़ा और सर्वतोमुख है कि सारी जनता यदि बड़ी तत्परता और एकता के साथ निरन्तर प्रयत्न करे, तब कार्य-सिद्धि की सम्भावना है, नहीं तो बिल्कुल नहीं है। कुछ इने-गिने व्यक्तियों के इस काम में भाग लेने से लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। सारी जनता का सहयोग अपेक्षित है; बड़ा ऐकमत्य हो और उत्साह हो। चीन के सम्बन्ध में भारत में तरह-तरह की भावनाएं हैं। वहाँ की राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था के बारे में यहाँ काफी मतभेद भी हैं। कुछ भारतीय चीन हो आये हैं और उन्होंने अपने-अपने अनुभवों का वर्णन भी किया है। इन वर्णनों को पढ़ने के बाद और लौटे हुए कुछ व्यक्तियों से वार्तालाप करने के अनन्तर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चीन में उत्साह है और एकता है। चीन की जनता अपने देश की उन्नति के लिए बड़े उत्साह के साथ भगीरथ प्रयत्न कर रही है। इस बात की भारत में अत्यन्त आवश्यकता है। क्या यहाँ अपेक्षित उत्साह और एकता है? कुछ अंश में तो दोनों हैं। कुछ अंश में एकता है, इस बात का प्रमाण यह है कि सारे भारत में एक ही राजनैतिक दल राज्य कर रहा है। भारत ने संसार का सबसे बड़ा प्रजातन्त्र स्थापित किया है और वह चल भी रहा है। देश की उन्नति के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएं बनाई जा रही हैं और कार्यान्वित की जा रही हैं। इस काम में लाखों की संख्या में सरकारी कर्मचारी लगे हैं, असंख्य साधारण व्यक्ति भी व्यापृत हैं। जहाँ स्वातन्त्र्य के पहले न केवल अंग्रेजी राज था, अनेक छोटी-छोटी देशी रियासतें भी थीं, राजा-महाराजे और नवाब अपने-अपने राज्य में स्वेच्छानुसार राज करते थे; वहाँ तब इन रियासतों में प्रजा का कोई भी अधिकार नहीं था। इस समय तो भारत का कोई भी अंश नहीं, जहां प्रजातन्त्र चल नहीं रहा हो और जहाँ प्रजा का अधिकार न हो। इस दृष्टि से समस्त भारत एक ही सूत्र में बाँधा गया है। यह एक प्रकार की एकता है। यह अवश्य उन्नति का लक्षण है। इसके आधार पर बड़े-बड़े काम किये जा सकते हैं।

चरित्र-भ्रंश

कुछ सन्तोषजनक बातों के होते हुए भी स्वातन्त्र्य के बाद देश में असन्तोष फैल रहा है। पंचवर्षीय योजनाओं के सफल होने पर भी देश में शिकायतें सुनने में आ रही हैं। ये दुःख की आवाजें साधारण जनता की दरिद्रता और पिछड़ी हुई स्थिति के सम्बन्ध में नहीं हैं। चारों ओर से एक ही शब्द-प्रयोग सुनने में आता है और वह है 'चरित्र-भ्रंश'। लोग अपने साधारण वार्तालाप में, नेतृ-वर्ग अपने भाषणों में, यही घोषित करते हैं कि देश के सामने सबसे बड़ी समस्या जनता के चरित्र-भ्रंश की है। धर्म और मानवता का पूरा तिरस्कार करके लोग अपना स्वार्थ साधने में तत्पर हैं। जीवन के हर-एक क्षेत्र में इस बात का अनुभव किया जा रहा है। जनता का ऐसा कोई भी वर्ग नहीं है जो इस चरित्र-भ्रंश से बचा हो। किसी वर्ग, दल, धर्म, सम्प्रदाय या वर्ण को दूसरों पर इस विषय में अभियोग करने का अधिकार नहीं है। जब तक गांधीजी हमारे बीच थे, तब तक हम लोगों के एक बड़े पथ-प्रदर्शक थे। वे हर एक व्यक्ति को, हर एक दल को, हर एक वर्ग को, शासन के अधिकारियों को, समस्त देश को चरित्र की दृष्टि से देखा करते थे। उनकी वही एक कसौटी थी। राजनीति के क्षेत्र में धर्म और चरित्र की रक्षा करते हुए काम करना असम्भव समझा जाता था। उनका सारा जीवन इस बात का प्रमाण है कि यह विचार अत्यन्त भ्रममूलक है। प्रतिदिन अपनी प्रार्थना-सभाओं में जो छोटे-छोटे दस-दस मिनट के भाषण दिया करते थे, उनका मुख्य उद्देश्य जनता का चरित्र-निर्माण ही था। उनके ये भाषण बड़े मार्मिक थे, विचारशील लोग उनकी प्रतीक्षा करते थे, समाचार-पत्रों में सबसे पहले उन्हीं को पढ़ा करते थे और दिन में अपने मित्रों के साथ उन्हीं की चर्चा करते थे। इन भाषणों का प्रभाव सरकारी कर्मचारियों पर, अध्यापक और विद्यार्थियों पर, व्यापारियों पर, गृहस्थों पर, धर्मोपदेशकों पर, सारी जनता पर पड़ता था। गांधीजी के स्वर्गवास होने के बाद उनका वह स्थान अब भी रिक्त है। कोई भी उसको ग्रहण करने में अपने को समर्थ नहीं पा रहा है।

धर्म निरपेक्षता बनाम धर्म-विमुखता

देश के पुनर्निर्माण में सबसे बड़ा काम केन्द्रीय और प्रादेशिक शासनों के द्वारा ही किया जा रहा है। यह स्वाभाविक भी है। उनके पास शक्ति भी है, धन भी है। परन्तु इस काम में शासनों की एक विशेष दृष्टि होती है। उनकी

दृष्टि अधिकांश आर्थिक होती है। हमारे शासन को धर्म-निरपेक्ष शासन होने का बड़ा गर्व है। वास्तव में तो हमारा शासन धर्म-निरपेक्ष शासन नहीं है। धर्म विशेष निरपेक्ष भले ही हो, परन्तु सर्वथा धर्म से विमुख नहीं है। कोई भी शासन सामान्य धर्म की उपेक्षा नही कर सकता। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि शासन की बड़ी-बड़ी योजनाएं धर्म की दृष्टि से नही बनाई जा रही हैं। हमारा शासन तो अवश्य चाहता है कि जनता का चरित्र ऊँचा हो। हमारे शासन को बहुत दुःख है कि देश में स्वातन्त्र्य के बाद चरित्र गिर रहा है। परन्तु शासन का विचार यह है कि देश में आर्थिक उन्नति के साथ-साथ चरित्र की उन्नति स्वयं ही हो जायेगी। चरित्र-उन्नति के साक्षात् प्रयत्न करना शासन का काम नहीं है, वह तो जनता का काम है।

प्राचीन भारत में परिस्थितियाँ भिन्न थीं। जनता में धर्म बुद्धि अधिक थी, परलोक से डर था, धर्माचार्यों के नेतृत्व में श्रद्धा थी। प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय के अनेक धर्माचार्य होते थे और जनता पर बड़ा प्रभाव था। शासन और धर्माचार्यों का परस्पर सहयोग था। दोनों मिलकर जनता को चरित्र-भ्रंश से बचाते थे। वह परिस्थिति अब नहीं है। प्रश्न यह है—अब क्या हो?

धर्माचार्यों के लिए स्वर्णिम अवसर

परिस्थिति तो अवश्य बहुत बदल गई है; परन्तु स्मरण रहे कि हम लोग अपने-अपने धर्म को सनातन मानते है। हम लोग मानते हैं कि परिस्थिति के भिन्न होते हुए भी मानव-जीवन में कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो सनातन है, जिनको स्वीकार किये बिना मनुष्य-जीवन सफल नहीं हो सकता है, मनुष्य सुख प्राप्त नहीं कर सकता है। भारत में अनेक धर्मों और सम्प्रदायों का जन्म हुआ। हर एक धर्म और सम्प्रदाय अपने तत्त्वों को सनातन मानता है और उनको हर एक परिस्थिति में उपयुक्त मानता है। इन तत्त्वों का रहस्य हमारे धर्माचार्य ही जानते है, वे ही साधारण जनता में उनका प्रचार कर सकते है। भारत में जो-जो धर्म और सम्प्रदाय उत्पन्न हुए, वे सब भारत में आज भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान हैं। उनकी परम्पराएं भी अधिकांश सुरक्षित हैं। इन धर्मों के रहस्य जानने वाले धर्माचार्य और साधु-संन्यासी हमारे ही बीच हैं और जगह-जगह काम भी कर रहे हैं। हाँ, अब शासन से उनका इतना सम्बन्ध नहीं है जितना प्राचीन काल में था। तथापि इन धर्मों का रहस्य जानने वाले जनता ही के बीच रहते है और जनता के अन्तर्गत हैं। क्या हमको यह आशा करने का अधिकार नहीं है कि इस भयंकर समय में जब चरित्र-भ्रंश के कारण जनता अधिक पीडित है, हमारे धर्माचार्य और साधु-संन्यासी अपने को संगठित करके देश के चरित्र निर्माण का काम अपने हाथ में ले लें। जनता में इस प्रकार की आशा होना स्वाभाविक है और धर्माचार्यों को यह दिखलाने के लिए एक स्वर्णिम अवसर प्राप्त है कि हमारे प्राचीन धर्मों और सम्प्रदायों में आज भी जान है।

आचार्यश्री तुलसी की दिव्य दृष्टि

जिन धर्माचार्यों ने वर्तमान परिस्थितियों को अच्छी तरह से समझ कर इस नये अवसर पर, भारतीय जनता और भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम से प्रेरित होकर उनकी रक्षा और सेवा करने का निश्चय किया, उनमें आचार्यश्री तुलसी का नाम प्रथम गण्य है। आचार्यश्री ने अपना 'अणुव्रत-आन्दोलन' प्रारम्भ करके वह काम किया है जो हमारे सबसे बड़े विश्वविख्यात नेता नहीं कर सकते थे। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया कि चरित्र-भ्रंश के क्या-क्या बुरे असर देश पर हो चुके हैं और अधिक क्या-क्या हो सकते हैं। उन्होंने देखा कि इसके कारण देश का कृच्छ्र-समुपार्जित स्वातन्त्र्य खतरे में है। चरित्र-भ्रंश के कारण व्यक्ति, वर्ग, दल और जातियाँ अपने-अपने स्वार्थ-साधन में तत्पर हैं, देश, धर्म और संस्कृति का चाहे जो भी हो जाए। चरित्र-भ्रंश का एक बहुत कड़वा फल यह होता है कि जनता में पारस्परिक विश्वास सर्वथा समाप्त हो जाता है। जहाँ परस्पर विश्वास नहीं है, वहाँ संगठन नहीं हो सकता है; जहाँ फूट होती है, वहाँ एकता नष्ट होती है। अब देश में फिर अलग-अलग होने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। नये-नये सूबों की माँग चारों ओर से उठ रही है। इनके पीछे व्यक्तियों का और वर्गों का स्वार्थ छिपा हुआ है। भाषा-सम्बन्धी झगड़े जिस प्रकार उत्तर भारत में द्रोह और हिंसा के कारण हो रहे हैं, उसी प्रकार दक्षिण भारत और लंका में भी। व्यक्तिगत जीवन में

इतना शैथिल्य आ गया है कि संयम का कुछ भी मूल्य नहीं रहा। भारतीय संस्कृति का प्राण ही संयम है। संयम-प्राण अणुव्रत-आन्दोलन प्रारम्भ करके आचार्यश्री तुलसी ने अपनी धर्मनिष्ठा और दूरदर्शिता दिखलाई है।

अणुव्रत के अन्तर्गत जो पाँच व्रत हैं, अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये भारतीय संस्कृति से स्वल्प परिचय भी रखने वालों के लिए कोई नई बात नहीं है। भारत में जितने धर्म उत्पन्न हुए, उन सबमे इनका प्रथम स्थान है। क्योंकि ये सब संयममूलक हैं और संयम ही भारतीय धर्मों का प्राण है। अथवा धर्म-मात्र का, चाहे वह भारतीय हो अथवा विदेशी, संयम ही किसी-न-किसी रूप में प्राण है। इन व्रतों को स्वीकार करने में किसी भी धर्म के अनुयायियों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

ये व्रत इसलिए अणुव्रत कहे गये हैं कि महाव्रत इनसे भी बढ़कर हैं और उनके पालन करने में अधिक आध्यात्मिक शक्ति अपेक्षित है। परन्तु साधारण व्यक्तियों के लिए अणुव्रतों के पालन में भी चरित्र चाहिए। जनता में इन पाँचों तत्त्वों के अभाव असंख्य रूप ग्रहण किये हुए हैं। अहिंसा ही को लीजिये। इसके अभाव का बहुत स्पष्ट रूप तो आमिष-भोजन है। परन्तु इसके और भी असंख्य रूप हैं जिनको पहचानने के लिए विकसित बुद्धि अपेक्षित है। इनके पालन में त्याग की आवश्यकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर कोई व्यक्ति सच्ची निष्ठा से इनका पालन करे तो उसके जीवन में एक बड़ा परिवर्तन हो जाता है। समाज से उसका सम्बन्ध आनन्दमय हो जाता है, वह भीतर से सुखी बन जाता है। शर्त यह है कि श्रद्धा हो। व्रतों का पालन भीतरी प्रेरणा से हो, बाहर के दबाव से नहीं।

भारतीय संस्कृति का एक पुष्प

जिस पद्धति से आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत-आन्दोलन प्रारम्भ किया और उसको समस्त भारत में फैलाया, उससे उनके व्यक्तित्व का प्राबल्य और माहात्म्य स्पष्ट होता है। पहले तो उन्होंने इस काम के लिए अपने ही जैन-सम्प्रदाय के कुछ साधुओं और साध्वियों को तैयार किया। अब उनके पास अनेकों विद्वान्, सहनशील, हर एक परिस्थिति का सामना करने की शक्ति रखने वाले सहायक हैं जो पद-यात्रा करते हुए भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में सचार करते है और जनता में नये प्राण फूंक देते हैं। उनकी नियमबद्ध दिनचर्या को देख कर जनता आश्चर्य-चकित हो जाती है। उसके पीछे शताब्दियों की परम्परा काम कर रही है। आचार्यश्री और उनके सहायकों की जीवनशैली प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक विकसित पुष्प है। इस प्रकार की जीवन शैली भारत के बाहर नहीं देखी जा सकती है। इस पुष्प को आचार्यजी ने भारतमाता की सेवा में समर्पित किया है। आजकल के गिरे हुए भारतीय समाज में आचार्यश्री का जन्म हुआ। यही लक्षण है कि इस समाज का पुनरुत्थान अवश्य होगा।
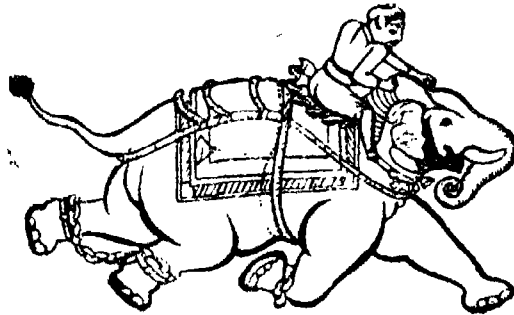
आचार्यश्री तुलसी के अनुभव चित्र

मुनिश्री नथमलजी

आचार्यश्री तुलसी विविधताओं के संगम हैं। उनमें श्रद्धा भी है, तर्क भी है, सहिष्णुता भी है, आवेग भी है, साम्य भी है और शासक का मनोभाव भी है। हृदय का सुकुमारता भी है और कठोरता भी है, अपेक्षा भी है और उपेक्षा भी है। राग भी है और विराग भी है।

विरोधी युगलों का संगम

अनेकान्त की भाषा में प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति में अनन्त विरोधी युगल होते हैं। आचार्यश्री भी एक व्यक्ति हैं। उनमें भी अनन्त विरोधी युगलों का संगम हो, वह कोई आश्चर्य नहीं। अस्तित्व की दृष्टि से आश्चर्य-जैसा कुछ है भी नहीं। प्रत्येक आत्मा में अनन्त ज्ञान है, अनन्त-दर्शन है, अनन्त आनन्द है और अनन्त शक्ति है। आश्चर्य का क्षेत्र है, अभिव्यक्ति। अदृश्य जब दृश्य बनता है, तब मन को चमत्कार-सा लगता है। पानी का योग मिलता है, मिट्टी की गन्ध अव्यक्त से व्यक्त हो जाती है। अग्नि का योग मिलता है, अगर की गंध अव्यक्त से व्यक्त हो जाती है। मिट्टी में और अगर में गन्ध जो है, वह असत् नहीं है; वस्तु के बहुत सारे पर्याय, बहुत-सारी शक्तियाँ अव्यक्त रहती हैं; अनुकूल निमित्त मिलता है, तब वे व्यक्त हो जाती हैं। वह अभिव्यक्ति ही चमत्कार का केन्द्र है। पौद्गलिक विज्ञान और क्या है! यही पुद्गल की अव्यक्त शक्तियों के व्यक्तीकरण की प्रक्रिया।

धर्म और क्या है? यही चैतन्य की अव्यक्त शक्तियों के व्यक्तीकरण की प्रक्रिया। इसीलिए उनके संस्थान चमत्कार से परिपूर्ण है। आचार्यश्री का व्यक्तित्व भी इसीलिए आश्चर्यजनक है कि उसमें बहुत सारी शक्तियों को व्यक्त होने का अवसर मिला है। हमें आचार्यश्री के प्रति इसीलिए आकर्षण है, उनकी उपलब्धियाँ विशिष्ट हैं। और सर्वोपरि आकर्षण का विषय है उनकी शक्तियों की अभिव्यक्ति की प्रक्रिया। हम उनकी विशिष्ट उपलब्धियों को देख केवल प्रमोद का अधिकार पा सकते है; किन्तु अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को जान कर हम स्वयं आचार्यश्री तुलसी बनने का अधिकार पा सकते हैं।

प्रायोगिक जीवन

तपे बिना कोई भी व्यक्ति ज्योति नहीं बनता और खपे बिना कोई भी व्यक्ति मोती नहीं बनता, यह शाश्वत स्थिति है; पर जनतन्त्र के युग मे तो यह बहुत ही स्पष्ट है। आचार्यश्री ने बहुत तप तपा है, वे बहुत खपे हैं। जनता की भाषा में, उन्होंने जन-हित-सम्पादन के लिए ऐसा किया है। उनकी अपनी भाषा में, उन्होंने अपनी साधना के लिए ऐसा किया है। आत्मोपकार के बिना परोपकार हो सकता है, इसमें उनका विश्वास नहीं है। उनके अभिमत में परोपकार का उत्स आत्मोपकार ही है। जो अपने को गँवाकर दूसरों को बनाने का यत्न करता है, वह औरों को बना नहीं पाता और स्वयं को गँवा देता है। दूसरों का निर्माण वही कर सकता है, जो पहले अपना निर्माण कर ले। आचार्यश्री को व्यक्ति-निर्माण में जितना रस है, उससे कहीं अधिक रस अपने निर्माण में है। लगता है, यह स्वार्थ है; पर उनकी मान्यता में, परमार्थ का बीज स्वार्थ ही है। उन्होंने अपने विषय में जो अनुभव प्राप्त किये हैं; वे उन्हीं की भाषा में इस प्रकार हैं—
"मेरा जीवन प्रयोगों का जीवन है। मैं हर बात का प्रयोग करता रहता हूँ; जो प्रयोग खरा उतरता है, उसे स्थायी

रूप देता हूँ।"[१]

आचार्यश्री का जीवन वैयक्तिक की अपेक्षा सामुदायिक अधिक है। उनका चिन्तन समुदाय की परिधि में अधिक होता है। वे तेरापंथ के शास्ता हैं। शासन में उनका विश्वास है, यदि वह आत्मानुशासन से फलित हो तो। संगठन में उनका विश्वास है, यदि वह आत्मिक पवित्रता से शृंखलित हो तो। उनकी मान्यता है, "मेरा आत्मा जितनी अधिक उज्ज्वल रहेगी, शासन भी उतना ही समुज्ज्वल रहेगा।"[२]

स्तवना में खुश न होने की साधना

आचार्यश्री की आस्था आत्मा से फलित है और धर्म में क्रियान्वित है। इसलिए वे आत्म-विजय को सर्वोपरि प्राथमिकता देते हैं। लक्ष्य की सिद्धि का अंकन करते हुए आचार्यश्री ने लिखा है—"लाडनूं का एक व्यक्ति······आया और उसने कहा—'इन वर्षों में मेरे मनोभाव आपके प्रति बहुत बुरे रहे हैं। मैंने अवांच्छनीय प्रचार भी किया है।' उसने जो किया, वह मुझे सुनाया। उसे सुन क्रोध उभरना सहज था, पर मुझे बिल्कुल क्रोध नहीं आया। मैंने सोचा, निन्दा सुन कर उत्तेजित न होना, इस बात में तो मेरी साधना काफी सफल है; पर स्तवना या प्रशंसा सुन कर खुश न होना, इस बात में मैं कहाँ तक सफल होता हूँ, यह देखना है।"[३]

असमर्थता की अनुभूति

आचार्यश्री सत्य की उपासना में संलग्न है। सत्य को अभय की बहुत बड़ी अपेक्षा है। जहाँ अभय नहीं होता, वहाँ सत्य की गति कुण्ठित हो जाती है। सत्य और अभय की समन्विति ने आचार्यश्री को यथार्थ कहने की शक्ति दी है और इसीलिए उनमें अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार करने व दूसरों की दुर्बलताओं को उन्हीं के सम्मुख कहने की क्षमता विकसित हुई है। तेरापंथ के आचार्य जो चाहते हैं, वह उनके गण में सहज ही क्रियान्वित हो जाता है। किन्तु कुछ भावनाएं ऐसी हैं, जिन्हें आचार्यश्री समूचे गण में प्रतिबिम्बित नहीं कर पाए। इस असमर्थता का उल्लेख आचार्यश्री ने इस भाषा में किया है—"मेरा हृदय यह कह रहा है कि धर्म को ज्यादा से ज्यादा व्यापक बनाना चाहिए। पर समूचे संघ में मैं इस भावना को भरने में समर्थ नहीं हुआ। हो सकता है, मेरी भावना में इतनी मजबूती न हो, अथवा अन्य कोई कारण हो।"[४]

आज रविवार के कारण विशेष व्याख्यान था, पर मेरी दृष्टि में अधिक प्रभावोत्पादक नहीं रहा।"[५]

आचार्यश्री किसी भी धर्म-सम्प्रदाय पर आक्षेप करना नहीं चाहते; पर धार्मिक लोगों में जो दुर्बलताएं घर कर गई हैं, उन पर कटु प्रहार किये बिना भी नहीं रहते। बीकानेर में एक ऐसा ही प्रसंग था। उसका चित्र आचार्यश्री के शब्दों में यों है—'आज साल्हे की होली वाले चौक में भाषण हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। लगभग पाँच-छह हजार भाई-बहिन होगें। दस बजे तक व्याख्यान चला। इस स्थान में जैनाचार्य का व्याख्यान एक विशेष घटना है। यहाँ ब्राह्मण ही ब्राह्मण रहते हैं। जैनधर्म के प्रति कोई अभिरुचि नहीं; फिर भी बड़ी शान्ति से प्रवचन हुआ। यद्यपि आज का प्रवचन बहुत स्पष्ट और कटु था, फिर भी कटुकौषध-पान-न्यायेन लोगों ने उसे बहुत अच्छे में ग्रहण किया।"[६]

१ वि० सं० २०१० चैत्र कृष्णा १४
२ वि० सं० २०१४ आश्विन शुक्ला ५, सुजानगढ़
३ वि० सं० २०१४ दीपावली, सुजानगढ़
४ वि० सं० २०१० चैत्र कृष्णा ७, पुनरासर
५ वि० सं० २०१० श्रावण कृष्णा ८, जोधपुर
६ वि० सं० २०१० वैसाख कृष्णा ६, बीकानेर

उदार दृष्टिकोण का परिणाम

आचार्यश्री केवल वाक्-पटु ही नहीं, समयज्ञ भी हैं। वे कटु बात भी ऐसी परिस्थिति में कहते हैं कि श्रोता को वह असह्य नहीं होती। आचार्यश्री बहुत बार कहते हैं कि मुझ में व्यवहार-कौशल उतना नहीं, जितना कि एक शास्ता में चाहिए। पर सचाई यह है कि उनका कठोर संयम उन्हें कृत्रिम व्यवहार की ओर प्रेरित नहीं करता। वे औपचारिकताओं से दूर हटते जा रहे हैं, फिर भी उनकी सहृदयता परिपक्व है। आचार्यश्री के मानस में क्रमिक विकास हुआ है। उनकी प्रगति तत्त्ववेत्ता की भूमिका से स्थितप्रज्ञता की भूमिका की ओर हुई है। वे एक धर्म-सम्प्रदाय के आचार्य हैं, फिर भी उनका दृष्टिकोण सम्प्रदायातीत है। उनकी विशेषताएं इसलिए चमकी हैं कि उन्होंने दूसरों की विशेषताओं को मुक्त भाव से स्वीकार किया है। वे इसीलिए सबके बने हैं कि उन्होंने सबको अपनत्व की दृष्टि से देखा है। वे अतीत और वर्तमान की तुलना करते हुए अनेक बार कहते हैं—"आज हम भी उदार बने हैं, आप लोग भी उदार बने हैं। मैं मानता हूँ कि सब सम्प्रदाय उदार बने हैं। उदार बने बिना कोई व्यक्ति ग्रहणशील भी नहीं बनता।" आचार्यश्री के सामने जो विशेषता आती है, उसे वे सहसा ग्रहण कर लेते हैं। यह उनके उदार दृष्टिकोण का परिणाम है। आचार्यश्री की डायरी के पृष्ठ इसके स्वयंभू प्रमाण हैं। "आज दुपहरी में पौने तीन बजे विमला बहिन आई। वह विनोबा के भूदान-यज्ञ की विशेषज्ञा है, विदुषी है। बड़ा अच्छा वक्तव्य देती है। आकृति पर ओज है। थोड़ा प्रवचन सुना। भूदान-यज्ञ के कार्यकर्ता अच्छे-अच्छे हैं। इससे प्रगति का सूचन मिलता है। अणुव्रत-आन्दोलन के कार्यकर्ता भी ऐसे हों, तो बहुत काम हो सकता।"[1]

"आज वृन्दावन के वन महाराज वैष्णव संन्यासी आए। वे वृन्दावन में एक विश्वविद्यालय बनाना चाहते हैं। प्राथमिक तैयारी हो गई। उसमें सब धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए तेरह पीठ रखे गये हैं। उनमें एक जैन-पीठ भी है। जैन-पीठ के लिए लोगों ने हमारा नाम सुझाया, इसलिए वे आए हैं। बहुत बातें हुई। समन्वयवादी व विद्वान् व्यक्ति मालूम हुए।"[2]

इस उदार दृष्टि से ही आचार्यश्री का अन्य दर्शनानुयायियों के साथ सम्पर्क बढ़ गया है। वे यहाँ आते हैं और आचार्यश्री उनके वहाँ जाते हैं। इस क्रम से समन्वय की एक सुन्दर सृष्टि हुई है। आचार्यश्री ने ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया है—"आज तीन बौद्ध भिक्षु आए। एक लंका के थे, एक बर्मा के और तीसरे महाबोधि सोसायटी बम्बई के मंत्री थे। प्रवचन सुना। आगामी रविवार को सोसायटी की तरफ से यहीं सिक्कानगर में व्याख्यान रखा है और मुझे अपने विहार में ले जाने के लिए निमंत्रण देकर गए हैं।"[3]

"आज हम बौद्ध विहार में गए। वहाँ के भिक्षुओं ने बड़ा स्वागत किया। अच्छी चर्चा चली। फिर फादर विलियम्स के चर्च में गए। ये सब बम्बई सेंट्रल स्टेशन की तरफ हैं।"[4]

द्रुतगामी पाद-विहारी

आचार्यश्री पाद-विहारी हैं; किन्तु उनका कार्यक्रम यान विहारी से द्रुतगामी होता है। एक प्रसंग है—"आज सिक्कानगर में व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के बाद एक 'रशियन' सुन्दरलाल के साथ आया। उसने कहा—"भारतीय लोगों की तरह रशियनों को स्वतंत्रता से फलने-फूलने का अवसर नहीं मिलता। बड़ा कष्ट होता है।" उसकी बहुत जिज्ञासाएं थीं, पर हमें समय नहीं था। डेढ़ बजे जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट्स, जो एशिया का सुप्रसिद्ध कला-शिक्षण केन्द्र है, में प्रवचन करने गए। फिर बोरीबन्दर स्टेशन होते हुए लौंकागच्छ के उपाश्रय में यति हेमचन्द्रजी, जो दो बार अपने यहाँ

---

१ वि० सं० २०१० आश्विन शुक्ला ६, बम्बई—सिक्कानगर
२ वि० सं० २०१६ कार्तिक कृष्णा ७, कलकत्ता
३ वि० सं० २०११ आश्विन शुक्ला २, बम्बई
४ वि० सं० २०११ आश्विन शुक्ला ३, बम्बई

आ चुके थे, से मिलने गए। कुछ प्रवचन किया। उपाश्रय बड़ा है। फिर सिक्कानगर आये।"[1]

"गंगाशहर से विहार किया। दूसरे दिन नाल पहुँचे। रास्ते में नयुसर दरवाजे के बाहर लालीबाई का आश्रम है, वहाँ गए। वह पुरुष-वेष में रहती है। भगवा पहनती है। विधवा बहिनों के चरित्र-सुधार का काम करती है। उसकी बहुत शिष्याएं हैं। वे सिर के बाल मुंडाती हैं और सफेद वस्त्र पहनती हैं। लालीबाई बोली—'आचार्य आशाराम जी से हम आपके विषय में बहुत बातें सुनती हैं, पर आज आपके दर्शन हो गए। वहाँ का वातावरण अच्छा मालूम दिया।"[2]

सिद्धान्त और समझौतावादी दृष्टिकोण

आचार्यश्री सर्व धर्म-समन्वय के समर्थक रहे हैं। साम्प्रदायिक एकता उनकी दृष्टि में असंभव या अस्वाभाविक प्रयत्न है। सिद्धान्त और समझौतावादी दृष्टिकोण उनके अभिमत में भिन्न वस्तुएँ हैं। वे सम्प्रदाय-मैत्री के पोषक हैं। विचार-भेद मैत्री के अभाव में ही पलता है। सहज ही तर्क होता है, क्या विचार-भेद मैत्री में बाधक नहीं है? प्रति-प्रश्न भी होता है, क्या जिनमें मैत्री है, उनमें कोई विचार-भेद नहीं है। अथवा जिनमें विचार-भेद नहीं है उनमें मैत्री है ही? मैत्री का सम्बन्ध जितना सद्व्यवहार और हृदय की स्वच्छता से है, उतना विचारों की एकता से नहीं है। अपने-अपने सिद्धान्तों को मान्य करते हुए भी सब सम्प्रदाय मित्र बन सकते हैं। जो विचारों से हमारे साथ नहीं है, वह हमारा विरोधी ही है—ऐसा मानना अपने हृदय की अपवित्रता का चिह्न है। दो विरोधी विचारों का सहावस्थान या सह-अस्तित्व सर्वथा सम्भव है। इसी धारणा की नीति पर आचार्यश्री ने वि० सं० २०११ बम्बई में सम्प्रदाय-मैत्री के पाँच व्रत प्रस्तुत किए:

१. मण्डनात्मक नीति बरती जाये। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाये। दूसरों पर लिखित या मौखिक आक्षेप न किया जाये।

२. दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाये।

३. दूसरे संप्रदाय और उसके अनुयायियों के प्रति घृणा व तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाये।

४. कोई संप्रदाय-परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार आदि अवांछनीय व्यवहार न किया जाये।

५. धर्म के मौलिक तथ्य—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन-व्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाये।

उन दिनों के आचार्यश्री के मनोमन्थन के चित्र ये हैं: "इस वर्ष स्थानकवासी साधुओं का सम्मेलन भीनासर में होने वाला है। सुना है, वे थली की ओर भी जायेंगे। मैंने अपने श्रावकों से कहा है कि यदि वे वहाँ आयें तो उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न हो, इसका पूरा ध्यान रखा जाये।"[3]

"आज जयप्रकाशनारायण से मिलन हुआ। एक घंटे तक बातचीत हुई। विचारों का आदान-प्रदान हुआ। अहिंसक दृष्टियों का समन्वय हो, यह मैंने सुझाया। वातावरण बड़ा सौहार्दपूर्ण रहा।"[4]

"जयप्रकाशजी आज तीन बजे फिर आये। उनसे जीवनदानी बनने का इतिहास सुना, बड़ा स्फूर्तिदायी था। फिर उन्होंने पूछा—"अहिंसक शक्तियों का मिलन हो, इस बारे में आपके क्या सुझाव हैं? मैंने कहा विचारों का आदान-प्रदान हो, परस्पर एक-दूसरे को बल दे, कठिनाइयों के प्रतिकार के लिए सह-प्रयत्न हो और सामान्य नीति का निर्धारण हो।" उन्होंने कहा—"मैं यह विचार विनोबा के पास रखूंगा और आपसे भी समय-समय पर सम्पर्क बनाये रखूंगा।"[5]

---

१ वि० सं० २०११ भाद्रव कृष्णा ११, बम्बई

२ वि० सं० २०१० द्वितीय वैसाख कृष्णा १, नाल

३ वि० सं० २०११ मृगसर कृष्णा १, बम्बई—चर्चगेट

४ वि० सं० २०११ मृगसर कृष्णा ३, बम्बई—चर्चगेट

५ वि० सं० २०११ मृगसर कृष्णा ५, बम्बई—चर्चगेट

मौन की साधना

समन्वय की साधना के लिए आचार्यश्री ने बहुत सहा है। मौन की बहुत बड़ी साधना की है। उसके परिणाम भी अनुकूल हुए हैं। इस प्रसंग में आचार्यश्री की डायरी का एक पृष्ठ है :

"आज व्याख्यानोपरान्त बम्बई समाचार के प्रतिनिधि मि० त्रिवेदी आए। उन्हें प्रधान सम्पादक सोरावजी भाई ने भेजा था। हमारा विरोध क्या हो रहा है? उसे जानना चाहते थे। और वे यह भी जानना चाहते थे कि एक ओर से इतना विरोध और दूसरी ओर से इतना मौन। आखिर कारण क्या है?"[१]

"आज त्रिवेदी का लेख बम्बई-समाचार में आया। काफी स्पष्टीकरण किया है। वे कहते थे, अब हमने आक्षेप-पूर्ण लेखों का प्रकाशन बंद कर दिया है। यह निभेगा तो अच्छी बात है।"[२]

"समन्वय-साधकों के प्रति प्रशंसा का भाव बन रहा है—विजयवल्लभ सूरीजी का स्वर्गवास हो गया। उनकी भावना समन्वय की थी। वे अपना नाम कर गए।"[३]

"इस दिशा में सर्व धर्म-गोष्ठियाँ भी होती रहीं—आज सर्वधर्म-गोष्ठी हुई। उसमें ईसाई धर्म के प्रतिनिधि डॉ० बेरन आदि तीन अमरीकन; पारसी, रामकृष्ण मठ के संन्यासी सम्बुद्धानन्दजी, आर्य समाजी आदि वक्ता थे।

अन्त में अपना प्रवचन हुआ। फादर विलियम्स ने उसका अंग्रेजी अनुवाद किया। बड़े अच्छे ढंग से किया। कार्य-क्रम सफल रहा।"[४]

उन्हीं दिनों बम्बई-समाचार में एक विरोधी लेख प्रकाशित हुआ। आचार्यश्री ने उस समय की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है—"आज बम्बई समाचार में एक मुनिजी का बहुत बड़ा लेख आया है। आक्षेपों से भरा हुआ है। भिक्षु-स्वामी के पद्यों को विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। जघन्यता की हद हो गई। पढ़ने मात्र से आत्म-प्रदेशों में कुछ गर्मी आ सकती है। औरों को गिराने की भावना से मनुष्य क्या-क्या कर सकता है, यह देखने को मिला। उसका प्रतिकार करना मेरे तो कम जँचता है। आखिर इस काम में (औरों को नीचा दिखाने के काम में) हम कैसे बराबरी कर सकते हैं! यह काम तो जो करते हैं, उन्हीं को मुबारक हो! अलबत्ता स्पष्टीकरण करना जरूरी है, देखें, किस तरह होगा।"[५]

"इधर में विरोधी लेखों की बड़ी हलचल है। दूसरे लोग उनका सीधा उत्तर दे रहे हैं। उन्हें घृणा की दृष्टि से देख रहे हैं। अपना मौन बड़ा काम कर रहा है।"[६]

साधु-साध्वियों का निर्माण

इस मौन का अर्थ वाणी का अप्रयोग नहीं, किन्तु उसका संयम है। आचार्यश्री का जीवन संयम के संस्कारों में पला है, इसलिए वे दूसरों के असंयम को भी संयम के द्वारा जीतने का यत्न करते हैं। वे व्यक्ति-विकास में विश्वास करते हैं; उसका आधार भी संयम ही है। उन्होंने अपने हाथों अनेक व्यक्तियों का निर्माण किया और कर रहे हैं। उनका सर्वाधिक निकट-क्षेत्र है—साधु-समाज। पहला दृष्टिपात वहीं हो, यह अस्वाभाविक नहीं। निर्माण की पहली रेखा यही है। "साधु-साध्वियों में प्रारम्भ से ही उक्त साधना के संस्कार डाल दिये जायें तो बहुत संभव है कि उनकी प्रकृति में अच्छा

१ वि० सं० २०११ श्रावण शुक्ला १०, बम्बई
२ वि० सं० २०११ श्रावण शुक्ला १३, बम्बई
३ वि० सं० २०११ आश्विन कृष्णा ११, बम्बई
४ वि० सं २०११ आश्विन कृष्णा १२, बम्बई—सिक्कानगर
५ वि० सं० २०११ आश्विन शुक्ला २, बम्बई—सिक्कानगर
६ वि० सं० २०११ श्रावण शुक्ला ११, बम्बई—सिक्कानगर

सुधार हो जाये। इसे प्रामाणिक करने के लिए मैंने इधर में नव-दीक्षित साधुओं पर कुछ प्रयोग किये हैं। चलते समय इधर-उधर नहीं देखना, बातें नहीं करना, वस्त्रों के प्रतिलेखन के समय बातें नहीं करना, अपनी भूल को नम्रभाव से स्वीकार करना, उसका प्रायश्चित्त करना, आदि आदि। इससे उनकी प्रकृति में यथेष्ट परिवर्तन आया है। पूरा फल तो भविष्य बतायेगा।"[1]

"आज के बालक साधु-साध्वियों के जीवन को प्रारम्भतः संस्कारी बनाना मेरा स्थिर लक्ष्य है। इसमें मुझे बड़ा आनन्द मिलता है।"[2]

"साधुओं को किस तरह बाह्य विकारों से बचा कर आन्तरिक वैराग्य-वृत्ति में लीन बनाया जाये, इस प्रश्न पर मेरा चिन्तन चलता ही रहता है।"[3]

"इस बार साधु-समाज में आचार मूलक साधना के प्रयोग चल रहे हैं। साधु-साध्वियों से अपने-अपने अनुभव लिखाए। वे प्रामाणिकता के साथ अपनी प्रगति व खामियों को लिख कर लाये। मुझे प्रसन्नता हुई। आगामी चातुर्मास में बहुत कुछ करने की मनोभावना है।"[4]

साधु-साधना में ही है, सिद्धि में नहीं। वे समय पर भूल भी कर बैठते हैं। आचार्यश्री को उससे बहुत मानसिक वेदना होती है। उसी का एक चित्र है; "आज कुछ बातों को लेकर साधुओं में काफी ऊहापोह हुआ। आलोचनाएं चलीं, कुछ व्यंग्य भी कसे गये। न जानें, ये आदतें क्यों चल पड़ीं। कोई युग का प्रभाव है या विवेक की भारी कमी? आखिर हमारे संघ में ये बातें सुन्दर नहीं लगतीं। कुछ साधुओं को मैंने सावधान किया है। अब हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त को काम में लेकर कुछ करना होगा।"[5]

गृहस्थों के जीवन-निर्माण के लिए भी आचार्यश्री ने समय-समय पर अनेक प्रयत्न किये हैं। उन्हें जो भी कमी लगी, उस पर प्रहार किया है और जो विशेषता लगी, उसका समर्थन किया है। "आज मित्र-परिषद् के सदस्यों को मौका दिया। उन्होंने विशिष्ट सेवाएं दी हैं। एक इतिहास बन गया है। मैंने उनसे एक बात यह कहा है, यदि तुम्हें आगे बढ़ना है तो प्रतिशोध की भावना को दिल से निकाल दो।"[6]

अणुव्रत-आन्दोलन इसी परिवर्तनवादी मनोवृत्ति का परिणाम है। वे स्थिति चाहते हैं, पर आज जो स्थिति है, उससे उन्हें सन्तोष नहीं है। वे न्यूनतम संयम का भी अभाव देखते हैं तो उनका मन छटपटा उठता है। वे सोचते रहते है—जो इष्ट परिवर्तन आना चाहिए, वह पर्याप्त मात्रा में क्यों नहीं आ रहा है? इसी चिन्तन में से अनेक प्रवृत्तियां जन्म लेती हैं। 'नया मोड' का उद्‌भव भी इसी धारा में हुआ है। समाज जब तक प्रचलित परम्पराओं में परिवर्तन नहीं लायेगा, तब तक जो संयम इष्ट है, वह संभव नहीं। उसके बिना एक दिन मानवता और धार्मिकता दोनों का पलड़ा हल्का हो जायेगा। उनके हित-चिन्तन में बाधाएं भी कम नहीं है। कई बार उन्हे थोडी निराशा-सी होती है; किन्तु उनका आत्म-विश्वास फिर उसे झकझोर देता है—"इधर मेरी मानसिक स्थिति में काफी उतार-चढ़ाव रहा। कारण, मेरी प्रवृत्ति सामूहिक हित की ओर अधिक आकृष्ट है और मैं जो काम करना चाहता हूँ, उसमें कई तरह की बाधाएं सामने आ रही हैं, इससे मेरा हृदय सन्तुष्ट नहीं है। मेरा आत्म-विश्वास यही कहता है कि आखिर मेरी धारणा के अनुसार काम होकर रहेगा, थोड़ा समय चाहे लग जाए।"[7]

१ वि० सं० २०१० चैत्र कृष्णा १४, उदासर
२ वि० सं० २०१० श्रावण शुक्ला १५, जोधपुर
३ वि० सं० २०११ मृगसर कृष्णा ८, बम्बई—चर्चगेट
४ वि० सं० २०१२ जेठ शुक्ला १०, डांगर—महाराष्ट्र
५ वि० सं० २०१४ आषाढ़ कृष्णा ६, बीदासर
६ वि० सं० २०१६ कार्तिक कृष्णा ६, कलकत्ता
७ वि० सं० २००६ पौष शुक्ला १०, श्रीडूंगरगढ़

आस्था का आलोक

आचार्यश्री में चिन्तन है, विचारों के अभिनव उन्मेष हैं। इसलिए वे रूढ़ मार्ग पर ही नहीं चलते, उपयोगिता-नुसार नये मार्ग का भी आलम्बन लेते हैं, नई रेखाएं भी खींचते हैं। यह सम्भवतः असम्भव ही है कि कोई व्यक्ति नई रेखा खींचे और संघर्ष का वातावरण न बने। संघर्ष को निमन्त्रण देना बुद्धिमानी नहीं है, तो प्रगति के परिणामस्वरूप जो आये उसे नहीं झेलना भी बुद्धिहीनता है। संघर्ष बुरा क्या है ? वह सफलता की पहली तेज किरण है। उसमें जो चौंधिया जाता है, वह भटक जाता है और उसे जो सह लेता है, वह सफलता का वरण कर लेता है। असफलता और सफलता की भाषा में स्वामी विवेकानन्द ने जो कहा है वह चिर सत्य है—"संघर्ष और त्रुटियों की परवाह मत करो। मैंने किसी गाय को झूठ बोलते नहीं सुना; पर वह केवल गाय है, मनुष्य कभी नहीं। इसलिए असफलताओं पर ध्यान मत दो, ये छोटी-छोटी फिसलनें हैं। आदर्श को सामने रख कर हजार बार आगे बढ़ने का प्रयत्न करो। यदि तुम हजार बार ही असफल होते हो तो एक बार फिर प्रयत्न करो।" आचार्यश्री को अपनी गति में अनेकानेक अवरोधों का सामना करना पड़ा, पर वे थके नहीं। विराम लिया, पर रुके नहीं। उस अबाध गति के संकल्प और अगाध आस्था ने उनका पथ प्रशस्त कर दिया। आस्था-हीन व्यक्ति हजार बार सफल होकर भी परिणाम काल में असफल होता है और आस्थावान् पुरुष हजार असफल-ताओं को चीर कर अन्त में सफल हो जाता है। आचार्यश्री ने अपनी आस्था के आलोक में अपने-आपको देखते हुए लिखा है :

"यह तीन चार वर्ष का संक्रान्ति-काल रहा। इसमें जो घटना-चक्र चला, उसका हरेक आदमी के दिमाग पर असर हुए बिना नहीं रहता। इस समय मेरा साथी मेरा आत्म-बल था और साथ ही मैं अपने भाग्य विधाता गुरुदेव को एक घड़ी के लिए भी भूला हूँ, ऐसा नहीं जान पड़ता। उनकी स्मृति मात्र से मेरा बल हर वक्त बढ़ता रहा। मेरी आत्मा हर वक्त यह कहती रही कि तेरा रास्ता सही है और यही सत्य-निष्ठा मुझे आगे बढ़ाए चल रही है।

"विरोध भीषण था, पर मेरे लिए बलवर्धक बना। संघर्ष खतरनाक था, पर मेरे और संघ के आत्मालोचन के लिए बना। इससे सतर्कता बढ़ी। साधु-संघ में प्राचीन ग्रन्थों व सिद्धान्तों के अध्ययन की अभिरुचि बढ़ी। सजगता बढ़ी। पचासों वर्षों के लिए रास्ता सरल हो गया। इत्यादि कारणों से मैं इसे एक प्रकार की गुणकारक वस्तु समझता हूँ। फिर भी संघर्ष कभी न हो, शान्त वातावरण रहे, संगठन अधिक दृढ़ रहे, हर वक्त यही काम्य है। भिक्षु शासन विजयी है, विजयी रहे। साधु-संघ कुशल आचारवान् है, वैसा ही रहे।"[1]

अपराजेय मनोवृत्ति

विजय की भावना व्यक्ति के आत्म-बल से उद्भूत होती है। आत्मा प्रबल होती है, तब परिस्थिति पराजित हो जाती है; आत्मा दुर्बल होता है, परिस्थिति प्रबल हो जाती है। साधना का आशय यही है कि आत्मा प्रबल रहे, परिस्थिति से पराजित न हो। इस अपराजेय मनोवृत्ति का अंकन इस प्रकार हुआ है—"स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहता। मौन व विश्राम से काम चल जाता है। वर्ष भर तक दवा लेने का प्रत्याख्यान है। आत्म-बल प्रबल है, फिर क्या ?"[2]

आत्मा में अनन्त वीर्य है उसका उदय अभिसन्धि से होता है। अभिसन्धिहीन प्रवृत्ति से वीर्य की स्फुरणा नहीं होती। जो कार्य वीर्य-अभिसन्धि के बिना किया जाता है, वह सफल नहीं होता और वही कार्य अभिसन्धि द्वारा किया जाता है, तो सहज सफल हो जाता है। आचार्यश्री का अपना अनुभव है—"परिश्रम की अधिकता के कारण सिर में भार, आँखों में गर्मी आज काफी बढ़ गई। रात्रि के विश्राम से भी आराम नहीं मिला, तब सवेरे डेढ़ घण्टे का मौन किया और नाक से लम्बे श्वास लिये। इससे बहुत आराम मिला। पुनः शक्ति-संचय-सा होने लगा। चित्त प्रसन्न हुआ। मेरा विश्वास

१ वि० सं० २००६ फाल्गुन कृष्णा २, सरदारशहर

२ वि० सं० २०१२ माघ शुक्ला २, उज्जैन

है कि मौन साधना मेरी आत्मा के लिए, मेरे स्वास्थ्य के लिए, बहुत अच्छी खुराक है। बहुत बार मुझे ऐसे अनुभव भी होते रहते हैं। यह मौन साधना मुझे नहीं मिलती तो स्वास्थ्य सम्बन्धी बड़ी कठिनाई होती। पर वैसा क्यों हो ? स्वाभाविक मौन चाहे पाँच घण्टा का हो उससे उतना आराम नहीं मिलता, जितना कि संकल्पपूर्वक किये गए एक घण्टा के मौन से मिलता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि संकल्प में कितना बल है। साधारणतया मनुष्य यह नहीं समझ सकता, पर तत्त्वत: संकल्प में बहुत बड़ी आत्म-शक्ति निहित है। उससे आत्म-शक्ति का भारी विकास होता है। अवश्य ही मनुष्य को इस संकल्प-बल का प्रयोग करना चाहिए।"[1]

आचार्य हरिभद्र ने अभिसन्धिपूर्वक वस्तु के परिहार को ही त्याग कहा है। संकल्प में कितना वीर्य केन्द्रित है, उसे एक कुशल मनोवैज्ञानिक ही समझ सकता है। आचार्यश्री ने जो कुछ पाया है, उसके पीछे उनका कर्तृत्व है, पुरुषार्थ है और लक्ष्य पूर्ति का दृढ़ संकल्प। वे लक्ष्य की ओर बढ़े हैं, बढ़ रहे हैं। जब कभी लक्ष्य की गति में अन्तराय हुआ है, उसका पुन: सन्धान किया गया है—"इन दिनों डायरी भी नहीं लिखी गई। मौन भी छूट गया। अब दोनों पुन: प्रारम्भ किये हैं। धनजी सेठिया बंगलोर वाले आए, और बोले—आपने मौन क्यों छोड़ दिया ? वह चालू रहना चाहिए। उससे विश्राम, स्वास्थ्य और बल मिलेगा। मैंने कहा—"आठ वर्षों से चलने वाला मौन यू० पी० से बन्द हो गया, पर अब चालू करना है। जेठ सुदी १ से पुन: मौन प्रारम्भ है।"[2]

सिद्धान्त-विरोधी प्रवृत्ति में असहिष्णुता

आचार्यश्री में समता के प्रति आस्था है और सिद्धान्त के प्रति अनुराग। इसलिए वे किसी भी सिद्धान्त-विरोधी प्रवृत्ति को सहन नहीं करते। "दुपहरी में संत व्याख्यान दे रहे थे। एक लाल दरी बिछी हुई थी। सब लोग बैठे थे, कुछ भांभी (हरिजन) भी उस पर बैठ गए। सुनने लगे। जैन लोगों ने यह देखा तो बड़े जोश से बोले—तुम लोगों में होश नहीं जो जाजम पर आकर बैठ गए। यह पंचायती जाजम है। वे आक्रोश करते हुए हरिजनों को उठा कर जाजम खींच कर ले गये। बहुतों को बुरा लगा, हरिजनों को बहुत ही धक्का लगा। कई तो रोने लग गये, मैंने भीतर से यह दृश्य देखा। मन मे वेदना हुई। इस मानवता के अपमान को मैं सह नहीं सका। मैं व्याख्यान में गया। स्पष्ट शब्दों में मैंने कहा—"जिन तीर्थंकर भगवान् महावीर ने जातिवाद के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया, उन्हीं के भक्त आज उसी दलदल में फंस रहे है, बड़ा आश्चर्य है। मैंने आँखों से देखा—"मनुष्य किस प्रकार मनुष्य का अपमान कर सकता है। दरी आपको इतनी प्यारी थी तो बिछाई ही क्यों ?" मैंने उनसे कहा —"साधुओं के सान्निध्य मे इस प्रकार किसी जाति का तिरस्कार करना क्या साधुओं का तिरस्कार नहीं है ?" वहाँ के सरपंच को, जो जैन थे, मैंने कहा—"क्या पंचायत में सभी सवर्ण ही है?" नही, भांभी भी हैं ! "तो कैसे बैठते हो ?" वहां तो एक ही दरी पर बैठते हैं। "तो फिर यहाँ क्या हुआ।" हमारे यहाँ ऐसी ही रीति है। आखिर उन्होंने भूल स्वीकार की। उन्हें छुआछूत की भावना मिटाने की प्रेरणा दी और हरिजनों को भी शान्त किया।"[3]
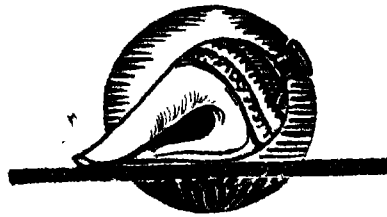
१ वि० सं० २०११ फाल्गुन शुक्ला ७, पूना
२ वि० सं० २०१६ जेठ शुक्ला १, कलकत्ता
३ वि० सं० २०१० वैसाख कृष्णा १०

जागृत भारत का अभिनन्दन !

अणुविस्फोटों के इस युग में अणुव्रत ही संबल मानव का,
व्रत-निष्ठा के बिना विफल है अनयंत्रित भुजबल मानव का !

संघबद्ध स्वार्थों के तम में अणुव्रत ही प्रत्यूष-किरण-कण,
महाज्योति उतरेगी भू पर कभी अणुव्रती के ही कारण !

सदा सुभग लघु लघु सुन्दर की महिमा से ही मंडित है जग,
नापेंगे कल दिग-दिगन्त भी अणुव्रत के कोमल वामनपग !

अणु की लघिमा शक्ति करेगी देशांतर का सहज संचरण,
भूमिकिरण के किरण-बाण से होगा ऊर्ध्व बिन्दु का वेधन !

द्यावा की विराट शोभा ही अणुव्रत की दूर्वा है भू पर,
दूर्वा का अतिशय लघु तृण ही मुक्ति-नीड़ में सबसे ऊपर !

अणुव्रत के आचार्य प्रवर, जो शील विनय संयम के दानी,
व्यक्ति व्यक्ति का शुभ्र आचरण बन जाती है जिनकी वाणी !

अणुव्रत के महिमा-गायन में है उन श्री तुलसी का वंदन,
अणुव्रत के अभिनन्दन में है जागृत भारत का अभिनन्दन !

—नरेन्द्र शर्मा

मैक्सिको की श्रद्धांजलि

डा० फिलिप पार्डिनास
डीन, इतिहास और कला संकाय, आईबेरो-अमरीकाना विश्वविद्यालय, मैक्सिको

मैक्सिको से आचार्यश्री तुलसी को विनत प्रणाम। आचार्यश्री तुलसी के प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करने का अवसर पाकर मैं अपने को धन्य मानता हूं। मेरी यह छोटी-सी अभिलाषा रही है कि इस भारतीय जैन आचार्य के प्रति जिन्होंने विश्वशान्ति के लिए अपना समग्र जीवन समर्पित कर दिया है, विश्व के अनेक विद्वान् जो श्रद्धांजलि भेंट करेंगे, उसमें मैं भी मैक्सिको की ओर से अपना योग दूं।

मैक्सिको अभी तक एक युवा देश है, किन्तु सम्भवतः उतना युवा नहीं, जैसा बहुत लोग समझते हैं। यद्यपि हमारा इतिहास अर्थात् में हमारे लोगों का जीवन-वृत्त ईसा पूर्व की दो सहस्राब्दियों से प्रारम्भ होता है, फिर भी हमारी स्पष्ट जानकारी मैक्सिको की घाटी में अवस्थित टिओटिहुआकन (Teotihuacan) नामक एक धार्मिक केन्द्र के सम्बन्ध में प्रारम्भ होती है। इस केन्द्र के साथ-साथ ईसा पूर्व के लगभग छठी शताब्दी में दो और महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। ला वेंटा (La venta) जो वर्तमान में टाबस्को प्रान्त में है और मोण्टे अलबान (Monte Alban) जो ओक्साका प्रान्त में है। इन तीनों केन्द्रों ने लेखन-कला और तिथि-पत्र का विकास किया। तिथि-पत्र का उद्देश्य केवल मौसम पर ही नहीं, समय पर नियन्त्रण प्राप्त करना था, कारण तत्कालीन कृषि-प्रधान सभ्यता के लिए यह आवश्यक था। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये बड़े-बड़े नगर युद्धों और शस्त्रों से अपरिचित थे। वह शान्ति का काल था और उस समय हमारे लोग श्रम करते, देवताओं की प्रार्थना करते और शान्तिपूर्वक रहते थे।

दूसरे केन्द्रों के विषय में भी जो अब ग्‍आटेमाला गणराज्य में है, यही बात कही जा सकती है। उनके नाम हैं, टिकाल (Tikal) और युआक्साक्टन (Uaxactan)। यद्यपि ये समारोहिक सांस्कृतिक केन्द्र उल्लिखित केन्द्रों से पश्चात्कालीन थे।

दुर्भाग्यवश पश्चिम के सम्पर्क से पहले ही हमारे देश में विनाश और हिंसा का प्रादुर्भाव हो चुका था। उस महान् युग के अन्त को, जो करीब ईसा की सातवीं से नवीं शताब्दी के मध्य था, हम 'विशिष्ट' (Classic) युग कहते हैं। उस समय हमारे लोगों के जीवन में अत्यन्त आकस्मिक और गहरा परिवर्तन हुआ। आन्तरिक क्रान्ति और बाह्य प्रभावों ने इन समुदायों में आमूल परिवर्तन कर दिया। हमें बोनाम्पक (Bonampak) योद्धाओं और बलिदानी पुरुषों के आश्चर्यजनक भित्ति-चित्रों में हिंसा का इतिहास मिलता है। दुर्भाग्यवश ऐसा प्रतीत होता है कि ठेठ पाश्चात्यों के आगमन तक यह नई स्थिति स्थायी रही। ईस्वी सन् १९१५ में जब हरमन कोर्टीज ने मैक्सिको के मुख्य संस्कृति के केन्द्र टैनोक्टिट्लान (Tenoctitlan) नगर पर विजय प्राप्त की, तब से लेकर दीर्घकाल तक हिंसा का बोलबाला रहा। केवल अन्तिम २५-३० वर्षों में शान्ति का नया जीवन हमें देखने को मिला है।

यह रोचक तथ्य है कि प्राचीन भारतीय सभ्यता के अनेक विचार हमारे लोगों के मानस में गहरे बैठे हुए हैं। किन्तु जो लोग केवल फिल्मों और कुछ साहित्य के आधार पर मैक्सिकों के विषय में अपनी धारणा बनाते हैं, उन्हें यह समझने में कठिनाई होगी कि हमारे लोगों के मानस की एक विशेषता यह भी है कि वे शान्तिपूर्ण हैं, हिंसक नहीं। जब आप हमारे राजनीतिक इतिहास का नहीं, हमारे सांस्कृतिक इतिहास का थोड़ी गहराई के साथ अध्ययन करेंगे तो आप सरलता से हमारे अहिंसा-प्रेम का पता लगा सकेंगे।

अपने पिछले भारत-प्रवास के समय मुझे अपने विद्यार्थियों के एक दल के साथ जब अपने मित्र श्रीसुन्दरलाल झवेरी के माध्यम से अणुव्रत-आन्दोलन और उसके मुख्य सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त हुआ, तो बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रवास में मुझे आचार्यश्री तुलसी के आश्चर्यजनक कार्य और उनके महान् जीवन के सम्बन्ध में जानने का अवसर मिला।

हमने मैक्सिको लौटने के पश्चात् टेलीविजन पर व्याख्यानों द्वारा लोगों का अणुव्रत-आन्दोलन का परिचय दिया और लोगों ने इस आन्दोलन के सिद्धान्तों के विषय में सुन कर बड़ी जिज्ञासापूर्ण उत्सुकता प्रकट की।

इसलिए मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि इस महान् भारतीय आचार्य के कार्य का हमारे आधुनिक जगत् पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। हिंसा के विरुद्ध एकमात्र शब्द और सन्देश मैत्री का ही हो सकता है। मनुष्यों के प्रति मैत्री, जीवों के प्रति मैत्री और प्राणीमात्र के प्रति मैत्री। अतः मैं आपको यह कहना चाहूँगा कि यह मेरी उत्कट आन्तरिक इच्छा है कि इस महान् धर्माचार्य की वाणी का असंख्य मानव-आत्माओं द्वारा श्रवण हो, जिससे कि वे इस विश्व को अधिक मानवीय और अधिक शान्तिमय बनाने के प्रयास में सहयोग दे सकें।

एक आध्यात्मिक अनुभव

श्री बारन फ्रेरी फोन ब्लोमबर्ग
बोस्टन, अमेरिका

जब मैं जैन धर्म के प्रमुख आचार्यश्री तुलसी के सम्पर्क में आया, तब मेरे लिए वह एक नया आध्यात्मिक अनुभव था और उससे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। अनेक वर्षों से मैं यह मानने लगा हूँ कि अध्यात्म ही सब कुछ है और आध्यात्मिक मार्ग से सब समस्याएं हल हो सकती हैं।

दुनिया ने कूटनीति, राजनीति, बल-प्रयोग, अणुबमों और भौतिक साधनों का प्रयोग किया, किन्तु सब असफल रहे। मैं स्वयं एक ईसाई हूँ और मुझे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैन दर्शन में सब धर्मों और विश्वासों का समावेश हो जाता है।

आज दुनिया को आध्यात्मिक एकता की जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं थी। जब दुनिया में आग लगी हुई है तो हम बहुधा एक-दूसरे के विरुद्ध क्यों काम कर रहे हैं? आज यदि हम सच्चे आध्यात्मिक प्रेम-भाव से मिल कर काम करें तो सभी लक्ष्य सिद्ध हो सकते हैं।

मैं प्रति क्षण यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरा जीवन पूर्णतया आध्यात्मिक हो; मैं वचन और कर्म में सत्य का अनुसरण करूँ। यह प्रकट सत्य है कि भौतिक पदार्थों का सम्पूर्ण त्याग कर देने पर भी जैन साधु सुख और शान्तिपूर्वक रहते हैं। यथार्थ रूप में तो मुझे कहना चाहिए कि उनकी शान्ति 'त्याग कर देने पर भी' नहीं, अपितु त्याग करने के कारण है। मैं चाहूँगा कि जैन धर्म और उसके सिद्धान्तों का हर देश म प्रसार हो। यह विश्व के लिए वरदान ही सिद्ध होगा।

मैं यह मानता हूँ कि यह मेरे परम भाग्य का उदय था कि आचार्यश्री तुलसी के सम्पर्क में मैं आया। जैनों की पुस्तिका मेरे हाथ में आई और उनके प्रतिनिधि बम्बई में मुझसे मिलने आए। मै इस सबके लिए अत्यन्त आभारी हूँ।

मैं अपने कार्य के सम्बन्ध से दुनिया के नाना देशों में जाता हूँ, बराबर यात्रा करता रहता हूँ और सभी तरह के एवं सभी श्रेणियों के लोगों से मिलता हूँ। आज सर्वत्र भय का साम्राज्य है—युद्ध का भय, भविष्य का भय, सम्पत्ति-अपहरण का भय, स्वास्थ्य-नाश का भय, भय और भय! इस भय के स्थान में हमें विश्वास और श्रद्धा की स्थापना करनी होगी; वह श्रद्धा जिससे कि अन्ततः विश्व-शान्ति अवश्य स्थापित होगी। इतिहास हमें बार-बार यही शिक्षा देता है कि युद्ध से युद्धों का जन्म होता है। जीत किसी की नहीं होती, अपितु सभी की करुणाजनक हार ही होती है।

पूर्णता प्राप्त करने के लिए हमें प्रतिदिन ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिससे मोक्ष और ईश्वरत्व की प्राप्ति हो सके। असत्य, पर-निन्दा, सांसारिक आकांक्षाएं—सभी का त्याग करना चाहिए और उनके स्थान पर जाति, धर्म और वर्ण का भेद भुलाकर सबके प्रति सच्ची मैत्री का विकास करना चाहिए तथा अन्तिम लक्ष्य की ओर कदम-से-कदम मिला कर आगे बढ़ना चाहिए। मेरा विश्वास है कि अणुव्रत-आन्दोलन स्थायी विश्व-शान्ति का सच्चा और शक्तिशाली साधन बन सकता है। धीरे-धीरे ही सही, किन्तु यह आन्दोलन सारे विश्व में फैल सकता है।

जैन दर्शन का मूल सत्य है। सत्य से सब कुछ सिद्ध हो सकता है। हमारा भविष्य हमारे अपने हाथों में है। हम अपने-आप सुख और दुःख की रचना कर सकते हैं।

पश्चिम को जैन सिद्धान्तों की बड़ी आवश्यकता है। पूर्व और पश्चिम के धर्म एक-दूसरे की पूर्ति कर सकते हैं। उन सबमें प्रेम और सत्य का स्थान है। इस विषय में उनमें कोई अन्तर नहीं है।

दुनिया में आज पूर्वाग्रहों को लेकर गहरी खाई पड़ी हुई है। उस पर हमको सहमति का पुल निर्माण करना चाहिए। अध्यात्म के द्वारा ही यह सम्भव हो सकता है।

मानव जाति के पथ-दर्शक

श्री हेलमुथ डीटमर,
भारत में पश्चिमी जर्मनी के प्रधान व्यापार दूत

आचार्यश्री तुलसी के धवल समारोह के अवसर पर मुझे कुछ वर्ष पहले माटुंगा (बम्बई) में आयोजित जैन समाज के धार्मिक समारोह की याद हो आती है, जो साध्वीश्री गोरांजी के तत्वावधान में हुआ था और उसमें मैं प्रथम बार जैनों के सम्पर्क में आया था। मैं उस समारोह से अत्यन्त प्रभावित हुआ। मैं श्रावक और श्राविकाओं के बीच बैठा हुआ था और मैंने साध्वीजी के मुख से धर्म-शास्त्रों की व्याख्याएं सुनीं। उन्होंने काम, क्रोध, मद लोभ, हिंसा, दंभ, असत्य, चोरी, अहंकार और भौतिकवाद के विरुद्ध प्रवचन दिया। जब उन्होंने कहा कि अहिंसा परम धर्म है, सबसे मुख्य विधान और सर्वोत्तम गुण है, तो मुझे उनका यह कथन बहुत सुन्दर लगा। मैं साध्वीजी के भव्य आध्यात्मिक और शान्त रूप को कभी विस्मृत नहीं कर सकूंगा।

इस अवसर पर जैन धर्म, उसके सिद्धान्तों, सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र की विधियों और अणुव्रत-आन्दोलन का मुझ पर गहरा और स्थायी असर पड़ा और मैं उनका प्रशंसक बन गया। मेरी कामना है कि जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के नवें आचार्य और अणुव्रत-आन्दोलन के प्रणेता आचार्यश्री तुलसी दीर्घायु हों और मानव-जाति का पथ-प्रदर्शन करते रहें।

मानवता का कल्याण

डब्ल्यू फोन पोखाम्मेर
बम्बई में जर्मनी के भूतपूर्व प्रधान व्यापार दूत

जब मैंने भारतीय धर्मों का अध्ययन शुरू किया तो मै विशेषत: जैन धर्म से अत्यन्त प्रभावित हुआ। वह मनुष्य का उसके अन्तर में स्थित नैतिक व एकमात्र दैवीतत्त्व के साथ सीधा सम्बन्ध जोड़ता है।

मै जैनों की कुछ धार्मिक सभाओं में सम्मिलित हुआ हूँ और मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि वे नैतिकता को सर्वोपरि महत्त्व देते है। वे हमको शिक्षा देते हैं कि केवल श्रोता बन कर मत रहो, अपितु आचरण भी करो; सक्रिय मनुष्य बनो। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रत्येक सत्संग का परिणाम व्रत के रूप में आना चाहिए।

आचार्यश्री तुलसी मुझे विशिष्ट पुरुष प्रतीत हुए, कारण वह अपने सम्प्रदाय के अनुयायियों को ही नहीं, अपितु सभी को नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार जीवन बिताने की प्रेरणा देते है।

मेरी हार्दिक कामना है कि वह अपने उच्च लक्ष्य को सिद्ध करने में सफल होंगे, जिसके फलस्वरूप न केवल भारत का अपितु समस्त मानवता का कल्याण होगा।

नैतिक जागरण का उन्मुक्त द्वार

डा० लुई रेनु, एम० ए०, पी-एच० डी०
अध्यक्ष, भारतीय विद्याध्ययन-विभाग, संस्कृत-प्राध्यापक, पेरिस विश्वविद्यालय

आचार्यश्री तुलसी तेरापंथ सम्प्रदाय के नवम अधिशास्ता हैं, जिनसे मिलने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे एक आकर्षक व्यक्तित्व वाले हैं। वे युवक हैं जिनकी शारीरिक आकृति सुन्दर है। उनकी आँखों में विशेष रूप से आकर्षण है, जिसका किसी भी दर्शक के हृदय पर अनायास ही गहरा असर पड़ता है। वे संस्कृत-साहित्य के अधिकारी विद्वान् है और विशिष्ट कवि भी। सबसे अधिक सब प्राणियों के प्रति उनकी दयालुता और जो सहिष्णुता है, वह बड़ी उच्चकोटि की है। उनके साढ़े छः सौ के करीब साधु-साध्वियाँ शिष्य हैं। उनके अनुयायी पाँच लाख के करीब हैं, जो हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में रहते हैं।

मुझे ज्ञात है कि भारतीय जनता की प्रवृत्ति बहुत धार्मिक है। मैंने इस तथ्य को कुमारी अन्तरीप से दरभंगा तक के अपने दौरे में बहुधा अनुभव किया है। किन्तु धर्म के प्रति जितनी शुद्ध एवं सच्ची श्रद्धा मुझे तेरापंथ संघ में प्रतीत हुई, उतनी अन्यत्र कहीं भी नहीं।

तेरापंथ संघ के लिए यह बड़े सौभाग्य का विषय है कि उनको आचार्यश्री तुलसी जैसे महान् व्यक्ति आचार्य के रूप में प्राप्त हुए हैं। मैं सोचता हूँ कि उनके कारण ही यह संघ अपना व्यापक विकास करेगा तथा अपनी महत्ता के साथ सारे संसार में प्रसार पायेगा।

आचार्यश्री तुलसी का धवल समारोह उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करने का अवसर देता है। आधुनिक भारत के वे एक अत्यन्त प्रमुख महापुरुष है और इस सम्मान के पूर्णतया अधिकारी है। उन्होंने न केवल तेरापंथ समाज का सही मार्ग-दर्शन करके पूर्व आचार्य के काम को प्रभावशाली रूप से आगे बढ़ाया है, प्राचीन शास्त्रों के अनुसार यह सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र का कार्यक्रम है; बल्कि नैतिक जागरण का द्वार उन्मुक्त कर दिया है। यह कार्यक्रम हमारी आज की अशान्त और त्रस्त दुनिया मे विवेक और शान्ति का सबल स्तम्भ है।

ढाई हजार वर्ष पूर्व के जैन-संघ में

डा० डब्ल्यू नोर्मन ब्राउन
अध्यक्ष, दक्षिण-पूर्व एशियाई प्रदेश-अध्ययन विभाग तथा
अध्यापक, संस्कृत, पेन्स्यालवेनिया विश्वविद्यालय (यू० एस० ए०)

तेरापंथ सम्प्रदाय के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे तभी प्राप्त हुआ जब कि मैं आचार्यश्री और उनके शिष्य साधु-साध्वियों के तथा श्रावक-श्राविकाओं के परिचय में आया। जब कभी मैं जैनों से मिलता हूँ, मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होती है और आचार्यश्री तुलसी के दर्शन पाकर भी मैंने यही अनुभूति की है।

मेरे लिए वह एक मूल्यवान् एवं आनन्ददायक समय था जब कि आचार्यश्री से बातचीत करने का तथा गोष्ठी में भाग लेने का अवसर मुझे मिला था। आचार्यश्री की स्वयं की विद्वत्ता और उनके साधु-साध्वियों की विद्वता से भी, कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मुझे यह भी आश्चर्य हुआ कि उनके श्रावकों में भी यह क्षमता है कि वे गोष्ठी में चर्चित तात्त्विक विषयों को, जो कि गुजराती, संस्कृत और प्राकृत आदि भाषाओं में होती रही, समझ सकते थे। यह तो मुझे अत्यधिक ही अद्भुत लगा, जब कि एक साधु बिना किसी पूर्व तैयारी के प्राकृत भाषा में भाषण करने लगे। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्यश्री के मार्ग-दर्शन में उनका सम्प्रदाय जैन दर्शन और सिद्धान्तों का परिश्रम पूर्वक अध्ययन और विकास कर रहा है।

मैं यह मानता हूँ कि आचार्यश्री के साथ वार्तालाप करने से मुझे तेरापथ के विशिष्ट सन्देश की जानकारी हुई है। उनसे तेरापंथ के आदर्शों, पद्धतियों, संघ-व्यवस्था, विश्व-शान्ति की दिशा में उसके प्रयत्नों आदि के विषय में स्पष्ट और अधिकारपूर्ण जानकारी मुझे प्राप्त हुई है। आचार्यश्री के साथ के मेरे सम्पर्क के समय मुझे यह अनुभूति होती थी, मानो मैं ढाई सहस्र वर्ष पूर्व के किसी जैन-संघ में प्रविष्ट हुआ हूँ।

महान् कार्य और महान् सेवा

श्री वी० वी० गिरि
राज्यपाल, केरल

तीन वर्ष पहले की बात है। मैंने कानपुर में अणुव्रत-आन्दोलन के नवम वार्षिक अधिवेशन में भाषण दिया था तो मुझे इस आन्दोलन का पूरा विवरण जानने का सौभाग्य मिला था। तभी से मैं आचार्यश्री तुलसी के उस महान् कार्य और महान् सेवा से प्रभावित हूँ जो वह मानव जाति की भावी प्रगति के लिए नैतिक आधार स्थापित करने के लिए कर रहे हैं।

एक मशाल

आज दुनिया को नैतिक उत्थान की जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं थी। कोई राष्ट्र तब तक प्रगति नहीं कर सकता अथवा अपने को बलवान् नहीं कह सकता, जब तक उसके लोग उच्च आदर्शों का अनुसरण नहीं करते और सद्गुणी नहीं होते। जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोण ने लोगों को स्वार्थी बना दिया है और भ्रष्टाचार एवं भ्रष्ट व्यवहारों; जैसे कि रिश्वतखोरी और मिलावट ने भारतीय जीवन को तबाह कर दिया है। आज हम मानव भवितव्य के चौराहे पर खड़े हैं। ऐसी स्थिति में जब कि हमारे पास युगों पुरानी परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों की विरासत में मिली हुई निधि विद्यमान है, तब समस्त अन्धकार को दूर करने के लिए केवल एक मशाल की आवश्यकता है। अणुव्रत-आन्दोलन वह मशाल है।

जैसा कि आचार्यश्री तुलसी ने स्वयं कहा है, 'अणुव्रत-आन्दोलन जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक सिंचन की योजना है। उसका उद्देश्य सामाजिक अथवा राजनीतिक हित की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है। वह उद्देश्य आध्यात्मिक कल्याण है और आध्यात्मिक कल्याण केवल सर्वोच्च श्रेय ही नहीं सम्पूर्ण श्रेय है। उसमें स्वयं के श्रेय और दूसरों के श्रेय दोनों का समावेश होता है।'

नैतिक मूल्यों से उपेक्षित अर्थशास्त्र असत्य

आज हमने समाजवादी ढंग के समाज को अपना राष्ट्रीय उद्देश्य स्वीकार किया है। मेरे विचार से यह केवल राजनीतिक अथवा आर्थिक नहीं है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति के लिए समान अवसर मिलना चाहिए और राष्ट्रीय प्रयास में भाग लेना चाहिए अथवा प्रत्येक नागरिक को कुछ-न-कुछ आर्थिक न्याय मिलना चाहिए, प्रत्युत ऐसा आदर्श है जो सर्वव्यापक है और राष्ट्र के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जीवन को स्पर्श करता है एवं जिसका नैतिक आधार है। सन् १९२४ में गांधीजी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा था, 'वह अर्थशास्त्र असत्य है जो नैतिक मूल्यों की उपेक्षा अथवा अवहेलना करता है। आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा के नियम के विस्तार का इसके अतिरिक्त कोई अर्थ नहीं होता कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नियमन नैतिक मूल्यों के आधार पर किया जाए।'

भारतीय पद्धति के समाजवाद में जो गांधीजी का स्वप्न था व हमारा राष्ट्रीय ध्येय है; दूसरे कथित समाजवादी देशों के समाजवाद में यह अन्तर है कि हम अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा पर सम्पूर्ण श्रद्धा रखते हैं जब कि अन्य समाजवादी देश शक्ति को नये समाज की प्रसव पीड़ा मानते हैं अथवा जैसा कि अन्य कुछ लोग कहते हैं, अण्डे को तोड़े बिना आमलेट नहीं बन सकता। विदेशों में जो लोग समाजवाद की कल्पना के पृष्ठ पोषक बने

हुए हैं, उनके निकट साधनों का कोई महत्त्व नहीं यदि साध्य न्यायोचित हो। किन्तु गांधीजी का कहना था कि साधनों को साध्य से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसका यह अर्थ होता है कि न्यायोचित साध्य को अनुचित साधनों से प्राप्त करना नैतिक नहीं है। गांधीजी का कहना था कि हमको लोगों का हृदय परिवर्तन करके सामाजिक परिवर्तन लाना चाहिए।

हमारी सभी नीतियों और कार्यक्रमों में यही नैतिक भावना निहित है। सन् १९३७ में गांधीजी ने आर्थिक पुनर्रचना के अपने सिद्धान्तों का विश्लेषण किया और कहा, "अर्थशास्त्र उच्च नैतिक मानदण्ड का कभी विरोधी नहीं होता, जिस प्रकार कि सभी सच्चे नैतिक नियमों को उत्तम अर्थशास्त्र के भी अनुकूल होना चाहिए। जो अर्थशास्त्र केवल लक्ष्मी की पूजा करने का आग्रह करता है और बलवान् को निर्बल को हानि पहुँचा कर धन-संग्रह करने में समर्थ बनाता है, वह झूठा और दयनीय विज्ञान है। वह मौत का सन्देशवाहक होगा। इसके विपरीत सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय का पोषक होता है, वह सबका, निर्बल से निर्बल का हित साधन करता है और उत्तम जीवन के लिए अनिवार्य होता है।" समाजवाद के नैतिक आधार की इससे अच्छी व्याख्या दूसरी नहीं हो सकती।

अध्यात्म की नकेल

आचार्यश्री तुलसी ने यही विचार प्रतिपादित किया है। उन्होंने भौतिकता पर आध्यात्म की नकेल लगाई है। उनका तत्त्व ज्ञान व्यक्ति पर केन्द्रित है और सर्वोच्च सामाजिक श्रेय प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को नियमों का कुशलता-पूर्वक पालन करना चाहिए। यह विधि संहिता कोई ऐसी कठोर नहीं है कि उसकी अवहेलना करने पर न्यायालयों द्वारा किसी को दण्ड पाना पड़े। न्यायालय वास्तविक और प्रभावशाली समाजवाद की स्थापना करने में सहायक नहीं हो सकते। यह बहुधा कहा गया है कि लोकतन्त्र की सफलता मुख्यतः इस पर निर्भर करती है कि लोग अपने अधिकारों और सुविधाओं की माँग करने के पहले अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को पूरा करें। लोकतन्त्र की भाँति समाजवाद की सफलता की भी यही कसौटी होगी। आदर्श की पूर्ति के लिए नागरिकों को राष्ट्र के सामने उपस्थित सभी कार्यों में बिना किसी बाहरी सत्ता के आदेश के स्वेच्छा और उत्साहपूर्वक योग देना चाहिए।

इन प्रयत्नों में अणुव्रत और ऐसे ही अन्य आन्दोलन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में ठोस और स्थिर नैतिक आधार पर व्यापक परिवर्तन लाने में हमारी सहायता कर सकते हैं।

संत भी, नेता भी

श्री गोपीनाथ 'अमन'
अध्यक्ष, जन-सम्पर्क समिति, दिल्ली प्रशासन

करीब आठ-नौ वर्ष पूर्व की बात है जबकि मैं दिल्ली विधान-सभा का उपाध्यक्ष था; एक दिन मेरे मित्र श्री जैनेन्द्र-कुमारजी ने, जब हम दोनों एक अधिवेशन से वापस आ रहे थे, कहा कि चलिये, आपको एक संत के दर्शन कराएं। मैंने पूछा, कौन ? उन्होंने बताया, आचार्यश्री तुलसी। मैंने आचार्यश्री तुलसी का नाम तो सुन रखा था, न मैंने उन्हें देखा था और न उनके आन्दोलन को। मैं जैनेन्द्रजी के साथ नया बाजार में आया। वहाँ आचार्यश्री तुलसी के दर्शन हुए। सड़क के किनारे उनके श्रद्धालु भक्तों की बहुत बड़ी भीड़ थी। मेरा थोड़ा ही परिचय हुआ और मैं दर्शन करके चला आया। कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। दर्शनों से मैं प्रभावित अवश्य हुआ, परन्तु इतना ही कि यह एक संत हैं और एक धार्मिक सम्प्रदाय के आचार्य हैं। यद्यपि यह भी अपने-आप में बहुत बड़ी बात है, परन्तु तब मैं अणुव्रत-आन्दोलन को नहीं जानता था। इसकी कुछ रूप-रेखा मुझे उनके संतों के द्वारा उस समय ज्ञात हुई, जब मैं एक वर्ष बाद दिल्ली-राज्य का मन्त्री बन गया। मुनिश्री नगराजजी और मुनिश्री बुद्धमलजी, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' और मुनिश्री नथमलजी से मेरा परिचय हुआ और मैंने अणुव्रत-आन्दोलन का थोड़ा-बहुत अध्ययन किया। जहाँ तक मुझे याद है, मैंने जोधपुर में पहला अधिवेशन देखा। फिर तो सरदार शहर और राजस्थान के कई स्थानों में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और आचार्यश्री तुलसी के दर्शन निकट से हो सके।

जब मैं मन्त्री था, तो कुछ मेरे अणुव्रती होने की भी चर्चा चली, परन्तु मन्त्री होते हुए मैं अणुव्रत के नियमों को पूरी तरह निबाह नहीं सकता था। मैं यह नहीं कहता कि यह निर्वाह किसी मन्त्री के लिए सम्भव नहीं है, परन्तु मेरे-जैसे दुर्बल मनुष्य के लिए असम्भव अवश्य था। फिर जब विधान सभा टूटी और मैं जन-सम्पर्क समिति का प्रधान बना तो उसी के कुछ सप्ताह पीछे मैंने एक रात्रि को आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में अणुव्रत भी ग्रहण किये। अब एक अणुव्रती होने के नाते और दिल्ली अणुव्रत समिति के प्रधान तथा अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के उपप्रधान होने के नाते आचार्यश्री से और निकट सम्पर्क हुआ। मैं जो अपने विचार लिख रहा हूँ, वह उनकी पूरी रूप-रेखा नहीं है; परन्तु इतना ही है, जितना कि मैं देख सकता था।

सिद्धान्त की अपेक्षा व्यक्ति से प्रभावित

मैं सिद्धान्त की अपेक्षा मनुष्य से अधिक प्रभावित होता हूँ। जब मैं सन् १९२१ में कांग्रेस में आया तो गांधीजी के चरित्र से आकर्षित होकर; और अणुव्रत-आन्दोलन में आया तो आचार्यश्री तुलसी और उनके संतों से प्रभावित होकर। महाव्रती का जीवन बीसवीं शताब्दी में, बल्कि संवत् के हिसाब से इक्कीसवीं शताब्दी में बड़ा आश्चर्यजनक है। मनुष्य ने अपनी आवश्यकताएं बढ़ा ली हैं और आवश्यकताओं का बढ़ाना सभ्यता का चिह्न समझा जाने लगा है। एक ऐसे दौर में कोई व्यक्ति या उससे भी बढ़ कर कोई मण्डली अपनी आवश्यकताओं को इतना समेट ले कि उसके पास एक-दो कपड़े और पात्रों से अधिक कुछ न हो, यह बड़े आश्चर्य की बात है। और फिर ऐसे महाव्रतियों का अपना संगठन है, यह और भी आश्चर्य की बात है।

आचार्यश्री तुलसी एक संत ही नहीं, एक नेता भी हैं। संत नेता होना बहुत कठिन काम है। संत तो अपना ही

सुधार करते हैं और जो उनके सम्पर्क में आ जायें, तो कभी-कभी प्रभावित होकर उनका भी सुधार हो जाता है; परन्तु एक नेता तो सुधार का मिशन लेकर चलता है। आचार्यश्री तुलसी के पीछे साढ़े छः सौ संत और साध्वियाँ हैं और लाखों मनुष्य भी। इन साढ़े छः सौ महाव्रतियों को नियंत्रित रखना कोई साधारण काम नहीं। नेता की दृष्टि में तो वह सच्चा और पूर्ण नेता है जो सबकी कमजोरियों को भी, जो होती ही हैं, निबाह देता है। आचार्यश्री तुलसी को भी कई ऐसी कठिनाइयाँ पेश आती रहती है, जैसे महात्मा गांधी को आश्रम में पेश आती थीं। इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं, केवल संकेत करना ही काफी है। परन्तु आचार्यश्री तुलसी में नेतृत्व का इतना बड़ा जौहर है कि मैंने उन्हें कभी अशान्त नहीं देखा। यह एक नेता का सबसे बड़ा गुण है और यह एक संत नेता में ही हो सकता है। इस समय आचार्यश्री तुलसी एक तो तेरापंथ-सम्प्रदाय के आचार्य हैं और दूसरे अणुव्रत-आन्दोलन के नेता। तेरापंथी सम्प्रदाय तो एक धार्मिक सम्प्रदाय है; परन्तु अणुव्रत-आन्दोलन एक नैतिक आन्दोलन है, जिसमें जैन ही नहीं, बल्कि न जाने कितने मुझ-जैसे अजैनी भी सम्मिलित हैं। यह कोई छिपी हुई बात नहीं कि जो लोग केवल जैनियों को अणुव्रतों का अधिकारी मानते हैं या अणुव्रत को केवल इसी रूप में मानते हैं कि वह महाव्रती के लिए प्राथमिक साधन है, वे आचार्यश्री तुलसी के अणुव्रत-आन्दोलन का विरोध भी करते हैं; परन्तु आचार्यश्री तुलसी ने न तो अपने स्तर से उतर कर कभी इन विरोधियों को उत्तर दिया है और न कभी उनसे प्रभावित होकर अपने आन्दोलन के काम को रोका है। यह भी एक सच्चे नेता की ही बात है।

विरोध की एक लम्बी कहानी

आचार्यश्री तुलसी के विरोध में क्या-क्या किया गया, क्या-क्या कहा गया, क्या-क्या लिखा गया, यह भी एक लम्बी कहानी है। कलकत्ते में सन् १६५६ के अधिवेशन में भी मुझे निमन्त्रित किया गया था। वहाँ मैंने भी इन विरोधों का कुछ रूप देखा। मैं कभी-कभी आवेश में भी आया, परन्तु आचार्यश्री मुस्कराते ही रहे। ये संत माइक्रोफोन पर नहीं बोलते, इसलिए बड़ी सभाओं में उनकी आवाज पहुँचने में अवश्य ही कठिनाई होती है; परन्तु आचार्यश्री तुलसी की आवाज बहुत तेज है। मैंने देखा कि कलकत्ते में उनके बोलते समय जोर-जोर से पटाखे छोड़े गए, ताकि सभा के काम में खलबली मचे; परन्तु आचार्यश्री न केवल स्वयं शान्त रहे, बल्कि उनमें इतना प्रभाव था कि उन्होंने सारे समूह को शान्त रखा। उस समूह में मुझ-जैसे लोग भी थे, जो जल्दी आवेश में आ जाते हैं; परन्तु यह उनका प्रभाव और आकर्षण था कि कोई आवेश में नहीं आया। उन्होंने अपने व्याख्यान में भी कहा कि जो मेरे भाई मेरे विरोधी हैं, वे मुझे अवसर दें कि वे मुझे समझा दें या मैं उनको समझा दूँ। इतने बड़े महान् नेता के लिए यह बात कहना उसकी महानता का परिचायक है। मैंने आचार्यश्री से जब-जब बातें की हैं तो मैंने यह देखा कि विरोधियों के प्रति उनमें जरा भी रोष नहीं। संसार के अन्य महान् व्यक्तियों की तरह वे विरोधियों को निपटाते तो हैं, परन्तु न उन्हें कोई हानि पहुँचाना चाहते हैं और न उनके स्तर पर उतर कर कोई जवाब देना चाहते हैं, यह बहुत बड़ी बात है।

जीवन में स्याद्वाद

दूसरी महानता जो मैंने आचार्यश्री में देखी, वह यह कि स्याद्वाद को उन्होंने अपने जीवन में पूर्ण रूप से ग्रहण कर लिया है। उनके दर्शकों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी वर्गों के और सभी जातियों के लोग होते हैं। यह भी स्पष्ट है कि जैन-धर्म जितना अहिंसा पर जोर देता है, अन्य सभी धर्म उतना जोर नहीं देते, परन्तु आचार्यश्री यह देख लेते हैं कि मेरे साथ कोई कितना चल सकता है और उससे उतनी ही आशा करते हैं। इससे संगठन में बहुत सहायता मिलती है। इन दिनों आचार्यश्री ने 'नया मोड़' आन्दोलन चलाया है। समाज-सुधार का काम वैसे ही बड़ा कठिन है, परन्तु मारवाड़ी समाज जितना पिछड़ा हुआ है, उसमें यह काम और भी कठिन है। पर्दे के विरोध में, दहेज के विरोध में, ब्याह-शादियों में अधिक धन खर्च करने और दिखावा करने के विरोध में, विधवाओं के तिरस्कार करने के विरोध में आचार्यश्री ने एक पिछड़े हुए समाज में जिस प्रकार आवाज उठाई, उससे कुछ लोग असंतुष्ट भी हैं। आचार्यश्री ने ऐसे हरिजनों के

यहाँ, जिनका खानपान शुद्ध है, अपने संतों को भिक्षा लेने को भी आज्ञा दे दी। इस पर भी उनका विरोध हुआ और जब ऐसी बातों में उनका विरोध होता है तो मुझे गांधीजी की याद आती है। महात्मा गांधी भी जीवन-पर्यन्त समाज को उठाने का प्रयत्न करते रहे और उनके विरोधी उन्हें बुरा-भला कहते रहे। आज जो लोग सच्चा धर्म नहीं चाहते, जो लकीर के फकीर बने रहना चाहते हैं, जो यह चाहते हैं कि साधु-संत उन्हें पिछली कथाएं सुनाते चले जायें और भविष्य के बारे में कुछ न कहें, क्रान्ति की बात न करें, ऐसे लोगों में आचार्यश्री के प्रति अश्रद्धा और अविश्वास होना प्राकृतिक ही है। परन्तु आचार्यश्री जिस मार्ग पर चल रहे हैं या जिस पर चलना चाहते हैं, उससे उन्हें कोई विचलित नहीं कर सकता।

कुशल वक्ता

कुशल वक्तृत्व का भी आचार्यश्री में एक विशिष्ट गुण है। एक तो उनकी आवाज ही बहुत ऊँची है, मधुर भी है और वह यह देख लेते हैं कि जिस जनता में मैं बोल रहा हूँ, वह कितना ग्रहण कर सकती है। बाज़ ऊँचे व्यक्तियों में यह दोष होता है कि वे कभी-कभी बिल्कुल बे-पढ़े-लिखे लोगों में दर्शन शास्त्रों का वर्णन करने लगते हैं। आचार्यश्री को इतना अनुभव हो गया है कि वह जिस जनता में बात करते हैं, ऐसी बात कहते हैं कि उसके हृदय में उतर जाये। यह बात और है कि वह जनता कहाँ तक उस उद्देश्य को क्रिया-रूप में परिणत कर सकती है।

हजारों मील पैदल चल कर लाखों मनुष्यों से सम्पर्क रखते हुए आचार्यश्री तुलसी को कब सोचने का और लिखने का समय मिलता है, यह भी आश्चर्य की बात है। सब-कुछ करते हुए भी वे मनन भी करते रहते हैं और लिखते भी रहते हैं। गद्य में भी लिखते हैं और पद्य में भी वे लिखते हैं। दोनों में मधुरता है, दोनों में सरसता है, दोनों में गम्भीरता है और दोनों में एक ऊँचे दर्जे का उद्देश्य है।

ऊँचे विचार कार्य-बुद्धि में विघ्न नहीं

आचार्यश्री तुलसी उस गुण के भी धनी हैं, जो महात्मा गांधी में था। ऊँची-ऊँची बातों का विचार करते हुए भी छोटी बातें उनकी आँखों से ओझल नहीं होतीं और वे कुशलतापूर्वक छोटे-छोटे मसलों को भी निपटाते रहते हैं। किस संत को कहाँ जाना है, किस गृहस्थी से बात करनी है, कार्यक्रम कैसे बनाना है, सभा में किस-किस का वर्णन करना है, किसको कहाँ बैठना है, कौन किस प्रकार बैठा है, कौन सुन रहा है, कौन बात कर रहा है, यह सब उनकी नजर में रहता है। उनके उच्च विचार, उनकी कार्य-बुद्धि में विघ्न नहीं डालते। मैंने अधिवेशनों में उनका यह गुण विशेष रूप से देखा है। छोटे-से-छोटा मनुष्य हो या देश का सबसे बड़ा व्यक्ति, या बाहर के देश से आया हुआ कोई विद्वान् या उच्च पदाधिकारी, उनसे मिल कर सबको सन्तोष होता है। हरिजन उनके कमरे में आते झिझकते थे, परन्तु उनके हौसला दिलाने से उन्हें चरण-स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अणुव्रत-आन्दोलन की गति से आचार्यश्री तुलसी को नहीं जाँचना चाहिए। उसकी प्रगति यदि मन्द है तो उसके लिए हम जैसे अकर्मण्य लोग जिम्मेदार हैं।

पूरा सतगुरु क्या करे, जो सिखाँ में चूक।
अन्धा लोक न लेते रह्यो, कहै कबीरा कूक॥

आज जबकि आचार्यश्री तुलसी का धवल-समारोह मनाया जा रहा है, मैं नम्रतापूर्वक उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत करता हूँ।

आधुनिक भारत के सुकरात

महर्षि विनोद, एम० ए०, पी-एच० डी०, न्यायरत्न, दर्शनालंकार
प्रतिनिधि विश्व शान्ति आन्दोलन, टोकियो (जापान) सदस्य, रायल सोसाइटी आफ आर्टस्, लन्दन

"तपस्या सर्वश्रेष्ठ गुण है

—पौरुशिस्त (तैत्तरीय उपनिषद्, १-६)

आचार्य तुलसी एक अर्थ में आधुनिक भारत के सुकरात हैं। वह एक पारंगत तर्कविद् हैं, किन्तु उनकी मुख्य शिक्षा यह है कि सत्य केवल वाद-विवाद का विषय नहीं, प्रत्युत आचार का विषय है। एक शताब्दी से अधिक की अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय मानस को तर्कप्रधान बना दिया है। महात्मा गांधी और पं० मदनमोहन मालवीय, डा० राधाकृष्णन् ने इस बुराई का प्रकटतः बहुत कुछ निवारण किया है। आचार्य तुलसी ने भारत में मिथ्या तर्कवाद की बुराई को दूर करने के लिए एक नया ही मार्ग अपनाया है। उनका आग्रह है कि मनुष्य को नैतिक अनुशासनों का पालन करके सत्यमय और ईश्वरपरायण जीवन बिताना चाहिए।

छोटा आकार, विशाल परिणाम

इन दिनों हम घटनाओं और वस्तुओं की विशालता से प्रभावित होते हैं और उनके आन्तरिक महत्त्व की उपेक्षा करते है। फ्रांसीसी गणितज्ञ पोयंकेर ने कहा है कि एक चींटी पहाड़ से भी बड़ी होती है। पहाड़ की एक छोटी-सी चट्टान लाखों चींटियों को मार सकती है, किन्तु पहाड़ को यह पता नहीं चलता कि उसे स्वय को अथवा चींटियों को क्या हुआ। इसके विपरीत हर चींटी को पीड़ा और मृत्यु का अर्थ विदित होता है। आचार्य तुलसी की अणुव्रत-विचारधारा नैतिक अनुशासन का महत्त्व प्रकट करती है। यह अनुशासन आकार में छोटे होते हुए भी परिणाम की दृष्टि से बहुत विशाल है।

अपने प्रारम्भिक जीवन में आचार्य तुलसी ने अत्यन्त कड़े अनुशासन का पालन किया। वे यह मानते थे कि कठोर तपस्या के द्वारा ही मनुष्य इस संसार में नया जीवन प्राप्त कर सकता है। नये जीवन का यह पुरस्कार प्रत्येक व्यक्ति अपने ही प्रयत्नों से प्राप्त कर सकता है। नया जीवन अपने आप नहीं मिलता। उसे प्राप्त करना होता है। आचार्य तुलसी के कथनानुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपना लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए। भारत जैसे देश में ही आचार्य तुलसी जैसे महापुरुष जन्म ले सकते है। तपस्या के द्वारा नया जीवन प्राप्त करने के लिए भारतीय पूर्वजों का उदाहरण और भारतीय सांस्कृतिक सम्पदा अत्यन्त मूल्यवान् थाती है।

मैं आचार्य तुलसी से मिला हूँ। मैंने अनुभव किया कि वे ईश्वरीय पुरुष है और उन्होंने ईश्वर का सन्देश फैलाने और उसका कार्य पूरा करने के लिए ही जन्म धारण किया है। वे न भूत काल में रहते हैं, न भविष्य काल में। वे तो नित्य वर्तमान में रहते हैं। उनका सन्देश सब युगों के लिए और सारी मानव जाति के लिए है।

ईश्वर द्वारा मनुष्य की खोज

अज्ञात काल से मनुष्य का आन्तरिक विकास केवल एक सत्य के आधार पर हुआ है। वह सत्य है—मानव की ईश्वर की खोज। इस बात को हम बिल्कुल दूसरी तरह से भी कह सकते हैं कि ईश्वर भी मनुष्य की खोज कर रहा है ईश्वर को मनुष्य की खोज उतनी ही प्रिय है जितना कि मनुष्य ईश्वर की खोज करने के लिए उत्सुक है। एक बार यदि

हम यह समझ लें कि ईश्वर और मनुष्य दो पृथक् सिद्धान्त नहीं हैं, पूर्ण मनुष्य ही स्वयं ईश्वर होता है तो दुनिया के सभी धर्म आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के भिन्न-भिन्न मार्ग प्रतीत होंगे। जब मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार करता है तो वह केवल अपनी सर्वश्रेष्ठ आत्मा का ही साक्षात्कार करता है।

आचार्य तुलसी के सन्देश का आज के मानव के लिए यही आशय है कि वह स्वयं अपने लिए अपनी अन्तरात्मा के अन्तिम सत्य का पता लगाये। यही देवत्व का सिद्धान्त है। उन्होंने स्वयं पूर्ण दर्शन की स्थापना की है, जिसके द्वारा मनुष्य आत्म-ज्ञान के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। अणुव्रत उनके व्यावहारिक दर्शन का नाम है और वह आज के अणु-युग के सर्वथा उपयुक्त है।

अणु शब्द का अर्थ होता है—छोटा और व्रत शब्द का अर्थ है—स्वयं स्वीकृत अनुशासन। जैमिनी के अनुसार व्रत एक मनो व्यापार है, बाह्य कर्म नहीं। अणु भौतिक पदार्थ का सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग होता है। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि एक भौतिक अणु में अनन्त शक्ति छिपी हुई है।

त्रिसूत्री उपाय

आचार्य तुलसी ने इस वैज्ञानिक सत्य का मनुष्य के नैतिक और आध्यात्मिक प्रयास के क्षेत्र में प्रयोग किया है। उन्होंने यह पता लगाया है कि छोटे-से-छोटा स्वयं स्वीकृत अनुशासन मनुष्य की हीन प्रकृति को आमूल बदल सकता है। मनुष्य की आन्तरिक प्रकृति को परिष्कृत करने के लिए दिखाऊ त्याग करने अथवा भक्तिपूर्ण कार्यों का प्रदर्शन करने की आवश्यकता नहीं होती। यह उपाय त्रिसूत्री है : १. गहरी व्याकुलता, २. असंदिग्ध संकल्प और ३. एकान्त निष्ठा।

पहले हममें आत्म-विकास की गहरी व्याकुलता उत्पन्न होनी चाहिए। हम बाहरी वस्तुओं और वातावरण में बहुत अधिक व्यस्त रहते हैं। हमको अपनी अन्तरात्मा की नवीन विशालता को पहचानना चाहिए। फ्रांसीसी यथार्थवादी लेखक मरतरे ने इस व्याकुलता को ही वेदना का नाम दिया है। व्याकुलता की यह भावना इतनी तीव्र होनी चाहिए कि हर क्षण बेचैनी और व्यग्रता अनुभव हो।

दूसरे आध्यात्मिक प्रगति के लिए स्पष्ट सुनिश्चित संकल्प अत्यन्त आवश्यक है। इन दिनों किनारे पर रहने का फैशन चल पड़ा है। लोग कहते हैं, हम न इस तरफ हैं, न उस तरफ। राजनीति में यह उचित हो सकता है, किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में तटस्थता का अर्थ जड़ता होता है। तटस्थता की भावना भय का चिह्न होती है। यदि हममें श्रद्धा है और यदि हम भय से प्रेरित नहीं है तो स्पष्ट संकल्प करना कुछ भी कठिन नहीं हो सकता।

तीसरे एकान्त निष्ठा का अर्थ है—सम्पूर्ण आत्म समर्पण की पावन क्रिया। विभक्त आत्मा उस जीवन में कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अनिश्चय हमारे समय का अभिशाप है। प्रायः सारी दुनिया में शिक्षा प्रणालियाँ इस आन्तरिक विघटन की बुराई का पोषण कर रही है। एमर्सन ने बहुत समय पूर्व इस बुराई के विरुद्ध हमें चेताया था। आत्म-समर्पण की भावना हमको आन्तरिक अनुशासन का जीवन बिताने में समर्थ बनायेगी।

इस शताब्दी के शान्ति-दूत

आधुनिक जीवन दिखावटी हो गया है। उसमें कोई गंभीरता, कोई सार व कोई अर्थ नहीं है। मनुष्य सम्पूर्ण आत्म-घात के किनारे पहुँच गया है। मनुष्य यदि आचार्य तुलसी के आत्मानुशासन के मार्ग का अनुसरण करे तो वह अपने को आत्म-नाश से बचा सकता है। अणुव्रत की विचारधारा मनुष्य को अपने आन्तरिक शत्रुओं से लड़ने के लिए अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्र प्रदान करती है। अल्प अनुशासन आध्यात्मिक शक्ति का विशाल भण्डार सुलभ कर सकता है। आचार्य तुलसी अपने अणुव्रत के अस्त्र के साथ इस शताब्दी के शान्ति के दूत हैं। हम अणुव्रतों का व्याकुलता, दृढ़ संकल्प और निष्ठापूर्वक पालन करके उनके दैवी पथ-प्रदर्शन के अधिकारी बनें।

सब सम्मत समाधान

भारतरत्न, महर्षि डी० के० कर्वे

स्पूतनिक के इस युग में हम विज्ञान द्वारा प्राप्त महान सफलताओं और प्रकृति पर मानव के प्रभुत्व की बात सुनते हैं। किन्तु साथ ही हम नई खोजों की बुराइयों से भयभीत हैं, जो मानव जीवन का ही अस्तित्व समाप्त कर सकती हैं। अराजकता की इस स्थिति में आचार्यश्री तुलसी अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में दुनिया की सब बुराइयों का एक समाधान प्रस्तुत करते हैं, जो सर्वसम्मत है। वह है—आत्म-शुद्धि का वह प्राचीन सन्मार्ग जो मनुष्य के जीवन को सुखद बना सकता है।

चारित्र और चातुर्य

श्री नरहरि विष्णु गाडगिल
राज्यपाल, चण्डीगढ़

गीता के अनुसार जब धर्म का क्षय होता है और अधर्म की अवस्था बढ़ती है, तब-तब भगवान् अवतार लेते हैं और अधर्म को समाप्त करके धर्म संस्थापन का कार्य करते हैं। सर्व समर्थ ईश्वर निराकार होने की वजह से अवतार-कार्य व्यक्ति के द्वारा किया जाता है। आधुनिक भाषा में यदि हम इसी अर्थ को करें, अब कोई बड़े महात्मा या युगपुरुष बार-बार नहीं होते। समाज के मार्ग-दर्शन का कार्य नई-नई विचारधाराओं द्वारा किया जाता है। मैं तो यह समझता हूँ कि नवीन दृष्टि समाज के परिवर्तन में अवश्य हो जाती है और वह दृष्टि रखने वाले जो सज्जन होते हैं, वे प्रधान विभूति माने जाते हैं। विद्यमान दुनिया में असन्तोष और अशान्ति इतनी फैली हुई है कि कल क्या होगा, कोई कह नहीं सकता। न जाने जानकीनाथ प्रभाते किं भविष्यति। अणु से ब्रह्माण्ड का नाश करने का षड्यंत्र रचा जा रहा है। वैर से वैर का नाश करने का प्रयत्न किया जा रहा है। परिणाम यह नजर आ रहा है कि वैर बढ़ता जा रहा है और असन्तोष की एक चिनगारी का स्वरूप महान् ज्वालामुखी में परिवर्तित हो रहा है। शान्ति तो नजर ही नहीं आती और अगर मूर्खता से या अविवेकी साहस से कोई एक कदम उठाया जाये तो जगत का नाश अनिवार्य है। इसीलिए आज शान्ति का और सच्चरित्र का सन्देश आवश्यक है और यही काम आचार्यश्री तुलसी वर्षों से कर रहे हैं। अणु का मुकाबला अणुव्रत से किया जा रहा है। एक-एक व्यक्ति अपने जीवन में साधु आचार करे तो समाज का जीवन स्थिर नैतिक दृष्टि से बढ़ता ही जायेगा। आज आवश्यकता है, चरित्र की, चातुर्य की नहीं। आज आवश्यकता है, सम्यक् आचार की, समलंकृत वाणी की नहीं; कार्य की आवश्यकता है, विवरण की नहीं और यही मार्ग-दर्शन आज आचार्यश्री तुलसी कर रहे हैं। उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पण कर रहा हूँ। वे अपने कार्य में सफल हों और उनके द्वारा देश के चरित्र की संस्थापना हो, यही मेरी प्रार्थना है।
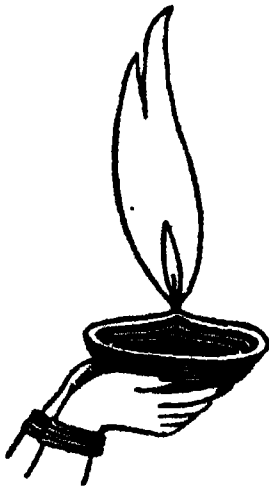
सत्य का पवित्र बन्धन

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य
महामहिम श्री रघुवल्लभ तीर्थस्वामी
श्री पालिमार मठाधीश, उडीपी

आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन अत्यन्त प्रशंसनीय है और सही रास्ते पर चलने में सहायता प्रदान करता है।

सहअस्तित्व के लिए यह आन्दोलन निश्चित ही बहुत सहायक होगा, अतः समस्त मानव जाति सत्य के इस पवित्र बन्धन के प्रकाश से आबद्ध होगी, ऐसी हम कामना करते हैं।

समाज-कल्याण के लिए

श्री विद्यारत्न तीर्थ श्रीपादाः
श्री माध्वाचार्य संस्थानम् श्री कृष्णापुर मठ, उडीपी

भौतिकवाद के इस युग में जब कि जनसाधारण का जीवन नैतिक ह्रास और नैतिक पतन की ओर जा रहा है, यह सर्वथा उपयुक्त है कि उस पतन को रोका जाये और लोगों के सम्मुख नैतिक महानता के समृद्ध आदर्शों को प्रस्तुत किया जाये, जिनके लिए इस देश के महान् आचार्यों ने अपने जीवन काल में कठोर परिश्रम किया और उनके बाद उनके द्वारा स्थापित मठ यही काम कर रहे हैं। तुलसी धवल समारोह समिति निस्संदेह अभिनन्दन की पात्र है, जो तेरापंथ के आचार्यश्री तुलसी की एकचतुर्थ शताब्दी की उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत कर रही है। इस अभिनन्दन ग्रन्थ का व्यापक प्रसार होना चाहिए और उसमें देश के नास्तिकों और भ्रमित नवयुवकों की आंखें खुल जानी चाहिए कि इस देश के विभिन्न सम्प्रदायों के साधुओं, संतों और संन्यासियों ने कितनी महान् सफलताएं प्राप्त की हैं। हम भगवान् कृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि इस लौकिकता के और राजनीतिक नेताओं की लम्बी-चौड़ी बातों के आवरण में जन-साधारण की, पवित्र हिन्दुओं की मौलिक आकांक्षाएं डूबने न पायें। तुलसी धवल समारोह समिति के प्रयास की सफलता की कामना करते हुए हम एक बार पुनः प्रार्थना करते है कि आचार्यश्री तुलसी और उनके जैसे संत समाज के कल्याण के लिए दीर्घजीवी हों।

भारत का प्रमुख अंग

श्री गुलजारीलाल नन्दा

श्रम मन्त्री, भारत सरकार

मुझे यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी के सार्वजनिक सेवाकाल के पच्चीस वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में उन्हें एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया गया है। अध्यात्मवाद ही भारत का प्रमुख अंग है। इसे बिना अपनाये हम अपने चरित्र को ऊँचा नहीं उठा सकते। इस दिशा में आचार्यश्री तुलसी ने जो कार्य किया है, वह स्तुत्य एवं स्पृहणीय है। ऐसे विद्वानों का अभिनन्दन करने से सर्वसाधारण में स्फूर्ति आती है और उनका अनुकरण करने की प्रवृत्ति जागृत होती है। अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं।

पुरातन संस्कृति की रक्षा

श्री श्रीप्रकाश

राज्यपाल, महाराष्ट्र

आचार्यश्री तुलसी से मेरा प्रथम परिचय आज से करीब पन्द्रह-सोलह वर्ष पूर्व बीकानेर के चूरू नामक स्थान में हुआ था। तब से उनसे और उनके समुदाय से मेरा सम्पर्क बना रहा और कई बार मुझे उनसे मिलने और उनका प्रवचन सुनने का सुअवसर मिला। इससे मैंने बहुत आनन्द का अनुभव किया।

मुझे यह देख कर भी बहुत सन्तोष हुआ कि उनके अनुयायी बहुत ही उत्साही स्त्री-पुरुष है जो कि उनके विचारों का सक्रिय प्रचार करते हैं। उनके द्वारा जन-साधारण की सेवा होती है और जनता को धार्मिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। अपने देश में धर्म का सदा से ही प्रबल प्रभाव रहा है। आधुनिक विचार शैलियों के कारण इस ओर से कुछ लोग उदासीन होने लगे हैं। ऐसी अवस्था मे उनको पुनः इस ओर ध्यान दिलाते रहना उचित है; क्योंकि इसी में हमारा कल्याण भी है और अपनी पुरातन संस्कृति की रक्षा भी है।

मेरी शुभ कामना है कि आचार्यश्री तुलसी हमारे बीच में बहुत दिनों तक रह कर हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहे और इनके जीवन और वचन से अधिकाधिक नर-नारी दिन-प्रतिदिन प्रभावित होते रहें। अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति करते रहें और व्यक्तिगत मानमर्यादा बनाये हुए देश और समाज की सेवा भी उनके द्वारा होती रहे।

राष्ट्रोत्थान में सक्रिय सहयोग

श्री जगजीवनराम
रेल मन्त्री, भारत सरकार

आत्मोत्थान और नैतिक चारित्र्य-निर्माण अन्योन्याश्रित हैं। एक को छोड़ दूसरा सम्भव नहीं। धर्माचार्य दोनों का मार्ग-दर्शन करने में अधिक समर्थ होते हैं। ऐसे आचार्यों में ही आचार्यश्री तुलसी का स्थान है।

आचार्यश्री ने अपने गत पच्चीस वर्षों के आचार्यत्व एवं सार्वजनिक सेवा-काल में राष्ट्र के आध्यात्मिक व नैतिक उत्थान में सक्रिय सहयोग दिया है। अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में आपकी सेवाएं सराहनीय हैं। इस उपलक्ष में उनका अभिनन्दन करना अपने दायित्व को निभाना ही है। आचार्यश्री के सन्देशों व उपदेशों का समावेश करके ग्रन्थ को स्थायी महत्त्व की वस्तु बनाने का प्रयत्न किया जायेगा, इस आशा के साथ मैं अपनी शुभकामना प्रेषित करता हूँ।

विश्व-मैत्री का राज-मार्ग

श्री यशवन्त राव चह्वाण
मुख्यमंत्री, महाराष्ट्र

सितम्बर मास के अन्त की बात है, राष्ट्रीय एकता सम्मेलन मे भाग लेने मैं दिल्ली पहुँचा हुआ था। अकस्मात् आचार्यश्री तुलसी के अनुयायी मुनि (मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम') से साक्षात्कार हुआ। उन्होंने आचार्यश्री तुलसी धवल समारोह का ब्योरा मुझे बताया। वर्षों की सुषुप्त स्मृतियां मेरी आँखों के सामने आ गई। आचार्यश्री बम्बई आये थे। लगभग ८ महीने तक अणुव्रतआन्दोलन का प्रभावशाली कार्यक्रम चला था। मैं अनेकों बार उस समय आचार्यश्री के सम्पर्क मे आया। उनका व्यक्तित्व अविस्मरणीय है।

प्रत्येक मनुष्य शान्ति चाहता है, पर वह शान्ति व सुख के मार्ग पर चलता नहीं। यही तो कारण है कि आज भीषणतम आणविक अस्त्रों के परीक्षण चल रहे हैं। मनुष्य सत्ता-लोलुप होकर संस्कृति और सभ्यता के साथ खिलवाड़ कर रहा है। यह आध्यात्मिक शून्य भौतिक प्रगति का परिणाम है। आचार्यश्री जैसे लोग आध्यात्मिकता के उन्नयन में लगे हैं। यह चिर शान्ति का मार्ग है, मानवता के विकास का मार्ग है। मनुष्य हैवान रहते हुए चन्द्रलोक में भी यदि पहुँच गया तो वहाँ भी उसे आत्मिक शान्ति के अभाव में धधकते अंगारे ही मिलेंगे। अणुव्रत-आन्दोलन विश्वबन्धुता और विश्वमैत्री का राजमार्ग है। आचार्यश्री भूले-भटके लोगों को राह लगा रहे हैं। उनके प्रति मेरे हृदय में अगाध श्रद्धा और असीम सम्मान है।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व

श्री हरिविनायक पाटस्कर
राज्यपाल, मध्यप्रदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आचार्यश्री तुलसी के आचार्यकाल व सार्वजनिक सेवाकाल के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में उन्हें एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर श्रद्धांजलि अर्पित की जा रही है। आचार्यजी का व्यक्तित्व तथा दर्शन, साहित्य आदि क्षेत्रों के श्रेष्ठत्व के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। मैं इस महान् प्रयास की सराहना करता हुआ अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए हार्दिक शुभ कामनाएं भेजता हूँ।

मणि-कांचन-योग

डा० कैलाशनाथ काटजू
मुख्य मंत्री, मध्यप्रदेश

मुझे यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी को उनके सार्वजनिक सेवा के गौरवशाली पच्चीस वर्ष पूरे होने पर अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। अभिनन्दन ग्रन्थ वास्तव में हम सबकी उनके प्रति बनी हुई सम्मान-भावना का प्रतीक है। पिछले वर्षों में देश के सभी क्षेत्रों में पैदल भ्रमण कर आपने राष्ट्र के नैतिक एवं चारित्रिक पुनरुत्थान का जो महान् कार्य हाथ में लिया है, वह हमारे पूज्य भारतीय सन्तों की उज्ज्वल परम्परा के अनुरूप ही है। इतिहास जानता है कि इस विशाल देश के सभी क्षेत्रों को एकता के पावन सूत्र में बाँधने के लिए कितने महापुरुषों तथा सन्तों ने सारे देश का अनेक कठिनाइयों और बाधाओं के बावजूद भी भ्रमण किया है। आचार्यश्री तुलसी उसी परम्मपरा की नई कड़ी हैं, जो देश में नैतिक जागरण के लिए अपना सारा जीवन दे रहे हैं। सेवा की पवित्र भावना के साथ आचार्यश्री तुलसी में अध्ययन की जो गहराई है, वह मणि में कांचन-योग के समान है। इस अवसर पर मैं कामना करता हूँ कि आचार्यश्री तुलसी के सेवामय जीवन की आयु बहुत बड़ी हो और उन्हें अपने कार्यों में सफलता प्राप्त हो।

आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का आन्दोलन

श्री सुज्ञानेन्द्र तीर्थ श्रीपादाः

श्री पुत्तगी मठ, उडीपी

आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन ऐसे समय पर किया है जबकि भारत अपनी लुप्त आध्यात्मिक स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने में लगा है। आचार्यश्री ने भारत में सर्वत्र अपने अनुयायियों को भेज कर इस आन्दोलन के रूप में एक सन्देश दिया है।

अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन से हमें सचमुच ही प्रसन्नता होती है।

सभी लोग आचार्यश्री तुलसी के इस आन्दोलन में अपना सहयोग दें और वे अपने पूरे प्रयत्न के साथ इस आन्दोलन को चलाते रहें, ऐसी हमारी शुभ-कामना है।

पंच महाव्रत और अणुव्रत

स्वामी नारदानन्दजी सरस्वती, नैमिषारण्य

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः। सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्। ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः। अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः॥

—योग दर्शन

राजनीति व राष्ट्रीय संस्थाएं इनको पंचशील कहती हैं। महर्षि पतंजलि उपरोक्त पाँचों को पंच महाव्रत कहते हैं। सार्वभौम एकता के लिए शास्त्रीय पद्धति से इनके पालन द्वारा विश्व अपना चारित्रिक निर्माण कर सर्वप्रकारेण सुखी हो सकता है। जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्, महर्षिपतंजलि ने इनको पंच महाव्रत बताया है।

आचार्यश्री तुलसी ने इन्हीं व्रतो की एक सुगम विधि उपस्थित करते हुए सरलता के अर्थों में इनको पंच अणुव्रत के नाम से प्रचारित करके जनता को चरित्र की शिक्षा दी और समाज का विशेष कल्याण किया है। ईश्वर के भजन करने वालों को, शास्त्र पर चलने वालों को इन नियमों से बड़ी सहायता मिलती है। वेद सिद्धान्त के मानने वाले आज भौतिकवाद की ज्वाला से जलते हुए समाज को बचाने के लिए इन नियमों में मिल कर विश्व शान्ति करने में सफल हो सकेंगे।

हम वैदिक धर्म को मानने वाले भी आचार्य जी के दया, सत्य, त्याग, तपस्या से प्रभावित हुए। भौतिकवाद की कठोरता से पीड़ित जनता को इन नियमों से शान्ति मिलेगी।

भारत को महत्तर राष्ट्र बनाने वाला आन्दोलन

डा० बलभद्रप्रसाद, डी० एस-सी, एफ० एन० आई०
उपकुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

देश में बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं जो राष्ट्र के समक्ष उपस्थित समस्याओं को जान लेते हैं; किन्तु ऐसे व्यक्ति बहुत थोड़े ही होते हैं, जो समस्याओं का सामना करते हैं और उनके समाधान के लिए प्रयत्न करते हैं। आचार्यश्री तुलसी एक ऐसे ही महापुरुष हैं। उन्होंने अनुभव किया कि राष्ट्र की नैतिक भित्ति उसके साधारण विकास के लिए भी सुदृढ़ नहीं है, अतः उन्होंने राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण एवं विकास के आवश्यक कार्य में अपना जीवन झोंक दिया है। इस कार्य को करते हुए वे अनेक प्रकार की दुविधाओं का सामना करते हैं। समाज सेवा और नैतिक उत्थान के कार्य में मिली हुई सफलता का अंकन अत्यन्त ही कठिन हुआ करता है। बहुधा ऐसा होता है कि वर्षों पश्चात् इनका परिणाम दिखाई पड़ता है। मुझे इस बात में तो सन्देह ही नहीं है कि पूज्य आचार्यश्री तुलसी ने जो कार्य किया है, उसका फल अवश्य मिलेगा और यह भारत को महत्तर राष्ट्र बनाने में सहायक भी होगा। आचार्यश्री तुलसी अपने इस कार्य के लिए अभिनन्दन के पात्र हैं और ग्रन्थ के सम्पादकों को भी मेरी बधाई है कि वे आचार्यश्री के कार्य का ग्रन्थ रूप में सम्पादित कर रहे हैं। आचार्यश्री तुलसी को मैं अपनी शुभकामना और वन्दन प्रेषित कर रहा हूँ।

महान् व्यक्तित्व

डा० वाल्थर शुब्रिंग एम० ए०, पी-एच० डी०
हेम्बुर्ग विश्वविद्यालय

आचार्यश्री तुलसी के धवल समारोह का समाचार मिला। अनेक धन्यवाद। मुझे आचार्यश्री की गत पच्चीस वर्ष की निःस्वार्थ, नैतिक और सामाजिक सफलताओं और उनके महान् व्यक्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हुए परम प्रसन्नता हो रही है और इस कार्य में मैं उनके प्रशंसकों और अनुयायियों के साथ हूँ। मेरी हार्दिक कामना है कि तेरापंथ सम्प्रदाय के पूज्य आचार्य और अणुव्रत आन्दोलन के प्रणेता अपने उद्देश्य में और अधिक सफल हों। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता होती है कि स्विट्जरलैण्ड में नैतिक उत्थान का एक आन्दोलन चल रहा है, जिसे इण्टर नेशनल कौक्स मुवमेन्ट (International Caux Movement) कहते हैं। मैं इसे पश्चिम में अणुव्रतआन्दोलन की ही प्रतिच्छाया समझता हूँ। मैं अभिनन्दन ग्रन्थ व धवल समारोह की सफलता के लिए शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

अपने आप में एक संस्था

एच० एच० श्री विश्वेश्वरतीर्थ स्वामी
श्री पेजावर मठाधीश, उडीपी

आचार्यश्री तुलसी अपने आप में एक संस्था है और प्राचीन काल के ऋषियों द्वारा प्रदत्त हमारी सभ्यता के सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ तथा अत्यधिक प्रकाशमान पहलुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। आध्यात्मिक श्रेष्ठता की अगम्य गहराइयों में पैठ कर मोती निकालने का जो काम वे कर रहे हैं, वह लौकिक मस्तिष्क की पहुंच के परे की बात है।

निराशा से पीड़ित जो विश्व घृणा, अविश्वास तथा छल के कगार पर है, उसमें आचार्यश्री तुलसी प्रकाशस्तम्भ हैं। वे सद्भावना एवं पारस्परिक विकास पर आधारित दया और क्षमा के सर्वोत्तम गुणों का प्रसार कर इस समय विद्यमान घोर अन्धकार में सुन्दर मार्ग-दर्शन कर रहे हैं।

उनके अणुव्रत-आन्दोलन में उन्हीं ऊँचे आदर्शों का समावेश है, जो उनके अपने जीवन में फलीभूत हुए हैं। अतएव मनुष्य के रोगग्रस्त मस्तिष्क में सन्तुलन तथा उसके कार्यों में विवेक लाने के लिए उनसे बहुत सहयोग मिलना चाहिए।

प्रेरणादायक आचार्यत्व

श्री एन० लक्ष्मीनारायण शास्त्री,
निजी सचिव, जगद्गुरु शंकराचार्य,
जगद्गुरु महासंस्थानं, शारदा पीठ,
शृंगेरी (मैसूर राज्य)

आचार्यश्री तुलसी ने अपना जीवन जन-कल्याण और उनके नैतिक उत्थान के लिए समर्पित कर दिया है। शृंगेरी शारदा पीठ मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य महास्वामीजी ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की है कि आचार्यश्री तुलसी धवल समारोह समिति ने आचार्यश्री तुलसी के प्रेरणा-काल के पच्चीस वर्ष पूरे होने पर समारोह करने तथा तुलसी अभिनन्दन ग्रंथ निकालने का निश्चय किया है।

इस समारोह की सुखद एवं सफलतापूर्ण समाप्ति के लिए जगद्गुरु अपनी शुभकामना भेजते हैं और भगवान् चन्द्रमौलेश्वर तथा श्री शारदम्बा से प्रार्थना करते हैं कि आचार्यश्री तुलसी दीर्घजीवी होकर दीर्घकाल तक मानव जाति के कल्याणार्थ कार्य करते रहेंगे।

श्रीकृष्ण के आश्वासन की पूर्ति

श्री टी० एन० वेंकट रमण
अध्यक्ष, श्री रमण आश्रम

भारतवासी कितने सौभाग्यशाली हैं कि आचार्यश्री तुलसी ने जीवन के नैतिक व आध्यात्मिक अभिसिंचन के लिए देश में अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात किया है।

भारत वैदिक और उपनिषदीय गाथाओं का देश है, किन्तु उसे राजनैतिक पराधीनता से मुक्त होने के पश्चात् अब इस अणुव्रत-आन्दोलन की आवश्यकता है। देश ने यह स्वतन्त्रता अहिंसा के अस्त्र द्वारा प्राप्त की और इस अस्त्र का प्रयोग करने वाले महात्मा गांधी थे। गांधीजी सत्य को ही ईश्वर मानते थे और जीवन में उनका एक-मात्र ध्येय सत्य की नौका खेना था और उनकी एक-मात्र इच्छा थी कि असत्य पर सत्य की जय हो।

आध्यात्मिक परम्पराओं का धनी

देश को स्वतन्त्र हुए चौदह वर्ष हो गये। इस अवधि में देश का राजनैतिक एकीकरण हुआ और राष्ट्र निर्माण की बड़ी-बड़ी प्रवृत्तियाँ शुरू हुईं। इसका प्रकट प्रमाण है—औद्योगिक क्रान्ति और सामाजिक पुनर्गठन। उससे हमारा राष्ट्र क्रमशः बलवान् होगा और अन्य पूर्वी और पाश्चात्य देशों के साथ-साथ विश्व-कल्याण के लिए नेतृत्व कर सकेगा। पश्चिमी देश भारत के इस नेतृत्व को स्वीकार करने के लिए उद्यत है। केवल इसलिए नहीं कि राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की कीर्ति चारों ओर फैल गई है, प्रत्युत इसलिए भी कि भारत अत्यन्त प्राचीन आध्यात्मिक परम्पराओं का धनी है। किन्तु यदि हमारे राष्ट्र को दूसरे देशों को आध्यात्मिक मूल्य सुलभ करने की आकांक्षा की पूर्ति करना हो तो उसे आत्म-निरीक्षण करना होगा। इस आत्म-निरीक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि नैतिक पतन का संकट भी इस समय राष्ट्र पर मँडरा रहा है, चारित्रिक और आध्यात्मिक मूल्यों को भुला देने की बात तो दूर रही, वेदों, उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों और भगवद्गीता के होते हुए, महात्मा गांधी की महान् नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति के उठ जाने के पश्चात् भारतीय सामूहिक रूप में पतन की ओर अग्रसर हो रहे है और अपने समस्त उच्च आदर्शों को भुलाते जा रहे हैं। इसलिए अणुव्रत जैसे आन्दोलन की अत्यन्त आवश्यकता है। राष्ट्र को आचार्यश्री तुलसी और उनके सैकड़ों साधु-साध्वियों के दल के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए जो इस आन्दोलन को चला रहे हैं।

हमें यह देखकर बड़ा सन्तोष होता है कि इस आन्दोलन का आरम्भ हुए यद्यपि दस-बारह वर्ष ही हुए हैं, किन्तु वह इतना शक्तिशाली हो गया है कि हमारे राष्ट्र के जीवन में एक महान् नैतिक शक्ति बन गया है। हम इस आन्दोलन को भगवान् श्रीकृष्ण के आश्वासन की पूर्ति मानते हैं। उन्होंने भगवद्गीता के चौथे अध्याय के आठवें श्लोक में कहा है कि धर्म की रक्षा करना उनका मुख्य कार्य है और वह स्वयं समय-समय पर नाना रूपों में अवतार धारण करते है।

साधन चतुष्टय की प्राप्ति में सहयोगी

हमारे देश के नवयुवक हमारे संतों और महात्माओं के जीवन चरित्रों और धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शाश्वत सुख जैसी कोई वस्तु है और उसे इसी लोक और जीवन में प्राप्त किया जाना चाहिए। हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं—'तुम अनुभव करो अथवा नहीं, तुम आत्मा हो।' उसका साक्षात्कार करने में जितना बड़ा लाभ है,

उतनी ही बड़ी हानि उसे प्राप्त न करने में है। इसलिए वे आत्म-साक्षात्कार करने के लिए प्रवृत्त होते है। यह आत्मा है क्या और उसे कैसे प्राप्त किया जाए? यही उनकी समस्या बन जाती है। वे आत्म-ज्ञान का फल तो चाहते हैं, किन्तु उसका मूल्य नहीं चुकाना चाहते। वे साधन चतुष्टय (साधना के चार प्रकार) की उपेक्षा करते हैं, जिसके द्वारा ही आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है। आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन साधन चतुष्टय की प्राप्ति में बड़ा सहायक होगा और आत्म-साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करेगा।

आत्म-साक्षात्कार जीवन का मूल लक्ष्य है; जैसा कि श्री शंकराचार्य ने कहा है और जैसा कि हम भगवान् श्री रमण महर्षि के जीवन में देखते हैं। भगवान् श्री रमण ने अपने जीवन में और उसके द्वारा यह बताया है कि आत्मा का वास्तविक आनन्द देहात्म-भाव का परित्याग करने से ही मिल सकता है। यह विचार छूटना चाहिए कि मैं यह देह हूँ। 'मैं देह नहीं हूँ' इस का अर्थ होता है कि मैं न स्थूल हूँ, न सूक्ष्म हूँ और न आकस्मिक हूँ। 'मैं आत्मा हूँ' का अर्थ होता है मैं साक्षात् चैतन्य हूँ, तुरीय हूँ जिसे जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति के अनुभव स्पर्श नहीं करते। यह 'साक्षी चैतन्य' अथवा 'जीव साक्षी' सदा 'सर्व साक्षी' के साथ संयुक्त है जो पर, शिव और गुरु है। अतः यदि मनुष्य अपने शुद्ध स्वरूप को पहचान ले तो फिर उसके लिए कोई अन्य नहीं रह जाता, जिसे वह धोखा दे सके अथवा हानि पहुँचा सके। उस दशा में सब एक हो जाते हैं। इसी दशा का भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार वर्णन किया है—'हे गुड़ाकेश, मैं आत्मा हूँ जो हर प्राणी के हृदय में निवास करता हूँ; मैं सब प्राणियों का आदि, मध्य और अन्त हूँ।' आचार-सेवन के महाव्रत द्वारा और श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा अहंकार-शून्य अवस्था अथवा **अहम् ब्रह्मास्मि** की दशा प्राप्त होनी है। महाव्रत के पालन के लिए आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रतिपादित अणुव्रत प्रथम चरण होंगे।

आचार्यश्री तुलसी ने नैतिक जागृति की भूमिका में ठीक ही लिखा है, "मनुष्य बुरा काम करता है। फलस्वरूप उसके मन को अशान्ति होती है। अशान्ति का निवारण करने के लिए वह धर्म की शरण लेता है। देवता के आगे गिड़-गिड़ाता है। फलस्वरूप उसे कुछ सुख मिलता है, कुछ मानसिक शान्ति मिलती है। किन्तु पुनः उसकी प्रवृत्ति गलत मार्ग पकड़ती है और पुनः अशान्ति उत्पन्न होती है और वह पुनः धर्म की शरण जाता है।" असल में धर्म और धार्मिक अभ्यास निर्वाण के लिए है। जब मनुष्य एकदम निरावरण होता है, वह सुख और दुःख से ऊपर उठ सकता है और सुख एवं दुःख को समभाव से अनुभव कर सकता है। यही कारण है कि विष्णु सहस्रनाम में, निर्वाणम्, भेषजम्, सुखम् आदि नाम गिनाये हैं। निर्वाण हमारे सब रोगों की भेषज है और अगर वह प्राप्त हो जाये तो वही सच्चा सुख है—सर्वोच्च आनन्द है।

निषेध विधि से प्रभावक

आपका आदर्श ज्ञान-योग, भक्ति-योग अथवा कर्म-योग कुछ भी हो, अपने अहम् को मारना होगा, मिटाना होगा। एक बार यह अनुभूति हो जाये कि आपका अहम् मिट गया, केवल चिद्भास शेष रह गया है, जो अपना जीवन और प्रकाश पारमार्थिक से प्राप्त करता है। पारमार्थिक और ईश्वर एक ही हैं, तब आपका अस्तित्वहीन अहम् के प्रति प्रेम अपने-आप नष्ट हो जायेगा। भगवान् श्री रमण महर्षि के समान सब महात्मा यही कहते हैं। इसलिए हम सब अणुव्रतों का पालन करें, जिनके बिना न तो भौतिक और न आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि हो सकती है। अणुव्रत की निषेधात्मक प्रतिज्ञाएं विधायक प्रतिज्ञाओं से अधिक प्रभावकारी हैं और वे न केवल धर्म और आध्यात्मिक साधना के प्रेमियों के लिए प्रत्युत सभी मानवता के प्रेमियों के लिए पूरी नैतिक आचार-संहिता बन सकती हैं।

भगवान् को **अणोरणीयान् महतो महीयान्** कहा है। आत्मा हृदय के अन्तरतम में सदा जागृत और प्रकाशमान रहता है, इसलिए वह मनुष्य के हाथ-पाँव की अपेक्षा अधिक निकट है और यदि मानवता इस बात को सदा ध्यान में रखे तो मानव अपने सह मानवों को धोखा नहीं दे सकता और हानि नहीं पहुँचा सकता। यदि वह ऐसा करता है तो स्वयं अपनी आत्मा को ही धोखा देगा अथवा हानि पहुँचाएगा, जो उसे इतना प्रिय होता है।

बीसवीं सदी के महापुरुष

महामहिम मार अथनेशियस जे० एस० विलियम्स,
एम० ए०, डी० डी०, सी० टी०, एम० आर० एस० टी० (इंग्लैण्ड)
बम्बई के आर्च बिशप एवं प्राइमेट, आजाद हिन्द चर्च

संसार में हजारों धार्मिक नेता हो चुके हैं और पैदा होंगे। परन्तु उनमें कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने लोगों के हृदय परिवर्तित किये हैं, संसार में प्रेम और शान्ति के स्रोत बहाये हैं और लोगों के दिलों को इसी दुनिया में स्वर्गीय आनन्द से सरोबार करने के अमूल्य प्रयत्न किये हैं। बीसवीं सदी में हमारी इन आँखों ने भी एक ऐसे ही महापुरुष आचार्यश्री तुलसी को देखा है।

यही वह व्यक्ति है जिसके पवित्र जीवन में जैनी भगवान् श्री महावीर को देखते हैं और बौद्ध भगवान् बुद्ध को देखते हैं। हम जो महाप्रभु यीशू ख्रीष्ट के अनुयायी हैं यीशू ख्रीष्ट की ज्योति भी उनमें देखते हैं। आचार्यश्री तुलसी ने महाप्रभु यीशू ख्रीष्ट के उस कथन को अपने वैरियों से भी प्रेम करो, को इतना सुन्दर रूप दिया है कि विरोध को विनोद समझ कर किसी की ओर से मन में मैल न आने दो।

चर्च से बिदाई

पृथ्वी पर कोई ऐसा स्थान नहीं है जो आचार्यश्री तुलसी को प्यारा न हो। हमें वह दिन भी याद है, जब आचार्यप्रवर बम्बई की बेलासिस रोड पर 'आजाद हिन्द चर्च' में पधारे थे। अपने अनुयायियों के साथ मिल कर उन्होंने भजन सुनाये थे और भाषण दिया था। चर्च में आशीर्वाद देकर अपने साधु और साध्वियों को भारत के कोने-कोने में नैतिकता और धर्म-प्रसार के लिए बिदा किया था। इस दृश्य को देख कर बम्बई में हजारों व्यक्तियों को यह आश्चर्य होता था कि जैन साधु ईसाइयों के चर्च में कैसे आ जा रहे हैं। केवल यह तो आचार्यश्री ही की महिमा थी जो ईसाइयों का गिरजा-घर भी हिन्दू भाइयों के लिए पवित्र-स्थान और धर्म-स्थान बन गया था।

जीवन में एक बड़ी क्रान्ति

अणुव्रत-आन्दोलन का प्रसार कर आचार्यश्री ने जनता के जीवन में एक बहुत बड़ी क्रान्ति कर दी है। यह हमारा सौभाग्य है कि आज भारत के कोने-कोने में सत्य और प्रेम का प्रसार हो रहा है। जनता जनार्दन अपने साधारण जीवन में ईमानदारी का व्यवहार कर रही है। सरकारी कर्मचारी भी अपने कर्तव्य को ईमानदारी से पूरा करने का उपदेश ले रहे हैं। व्यापारी वर्ग से धोखेबाजी और चोरबाजारी दूर होती जा रही है। केवल भारतीय ही नहीं, दूसरे देश भी आचार्यश्री के उच्च विचारों से प्रभावित हो रहे हैं।

यह मेरा सौभाग्य है कि मैं भी अणुव्रत-आन्दोलन का एक साधारण सदस्य हूँ और मुझे देश-देश की यात्रा करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। जब यूरोप और रूस की कड़कती ठंडक में भी मैंने चाय और कॉफी तक को हाथ नहीं लगाया तो वहाँ के लोगों को आश्चर्य होता था कि यह कैसे सम्भव है? किन्तु यह केवल आचार्यश्री के उन शब्दों का चमत्कार है जो आपने सन् १९५४ के नवम्बर महीने के प्रारम्भ में बम्बई में कहे थे—फादर साहब, आप शराब तो नहीं पीते हैं?

आचार्यश्री के साथ सैकड़ों साधु और साध्वी जन-सेवा में अपना जीवन बलिदान कर रहे हैं। इन तेरापंथी जैनी साधुओं जैसा त्याग, तप और सेवा हमारे देश और मानव समाज के लिए बड़े गौरव की बात है। आचार्यश्री के शिष्य और वे लोग भी जो आपके सम्पर्क में आ चुके हैं, अपने आचार-विचार से मनुष्य जाति की अनमोल सेवा कर रहे हैं।

आचार्यश्री ने हर जाति के और धर्म के लोगों को ऐसा प्रभावित किया है कि आपके आदर्श कभी भुलाये नहीं जा सकते और वे सदा ही मनुष्य जाति को जीवन ज्योति दिखाते रहेंगे।
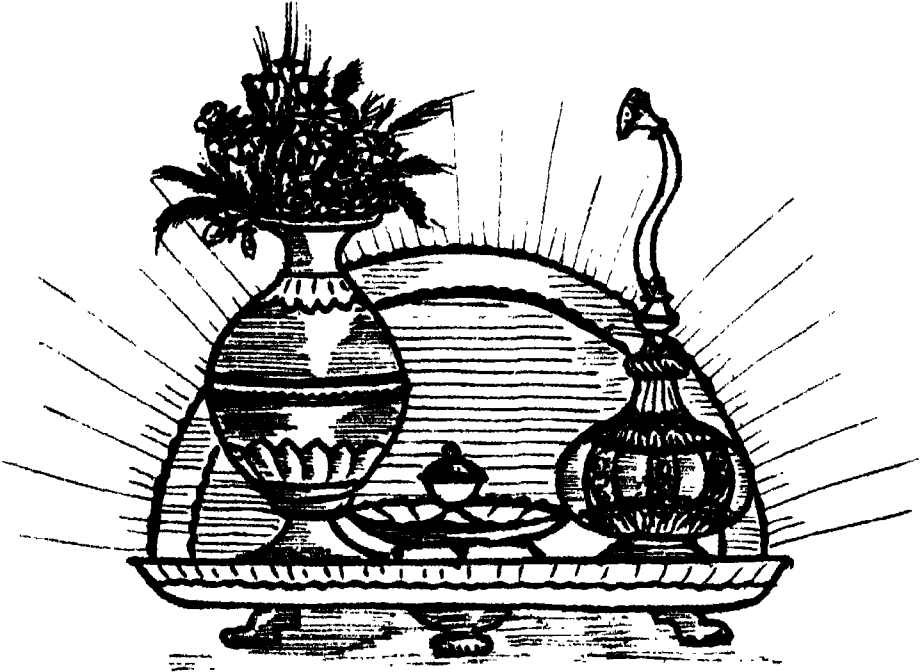
आचार्यश्री तुलसी का एक सूत्र

आचार्य धर्मेन्द्रनाथ

तीन वर्ष पूर्व सन् १६५८ में आचार्यश्री तुलसी आगरा जाते हुए जयपुर पधारे। उस समय उनके प्रवचन सुनने का अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ। आचार्यश्री जिस तेरापंथ-सम्प्रदाय के आचार्य हैं, उसे उद्भव-काल से ही स्वकीय समाज में अनेक विरोधों और भेदों का सामना करना पड़ा। किसी भी सम्प्रदाय में जब नई शाखा का प्रसव होता है तो उसके साथ ही वैर और विरोधों का अवसर भी आता ही है। पूर्व समाज नये समाज को पुरातन लीक से हटाने वाला और अधार्मिक बनाता है और नया समाज पहले समाज की व्यवस्था को सड़ी-गली और नये जमाने के लिए अनुपयुक्त बताता है। बाद में दोनों एक-दूसरे को अनिवार्य मान कर साथ रहना सीख जाते हैं और विरोध का रूप उतना मुखर नहीं रह जाता, लेकिन मौन-द्वेष की गाँठ पड़ी ही रह जाती है। आचार्यश्री के जयपुर-आगमन के अवसर पर कहीं-कहीं उसी पुरानी गाँठ की पूँजी खुल-खुल पड़ती। विरोधी जितना निन्दा-प्रचार करते, उससे अधिक प्रशंसक उनकी जय-जयकार करते।

सम्पन्न लोगों की दुरभिसन्धि

इस सब निन्दा-स्तुति में कितना पूर्वाग्रह और कितना वस्तु विरोध है, इस उत्सुकता से मैं भी एक दिन आचार्यश्री का प्रवचन सुनने के लिए पण्डाल में चला गया। पण्डाल मेरे निवासस्थान के पिछवाड़े ही बनाया गया था। आचार्यश्री का व्याख्यान त्याग की महत्ता और साधुओं के आचार पर हो रहा था : "...किसी धनिक ने साधु-सेवा के लिए एक चातुर्मास-विहार बनवाया जिसे साधुओं को दिखा-दिखा कर वह बता रहा था कि यहाँ महाराज के वस्त्र रहेंगे, यहाँ पुस्तकें, यहाँ भोजन के पात्र और यहाँ यह, यहाँ वह। साधु ने देखभाल कर कहा कि एक पाँच खानों की अलमारी हमारे पंच-महाव्रतों के लिए भी तो बनवाई होती, जहाँ कभी-कभी उन्हें भी उतार कर रखा जा सकता।" आचार्यश्री के कहने का मतलब था कि साधु के लिए परिग्रह का प्रपंच नहीं करना चाहिए, अन्यथा वह उसमें लिप्त होकर उद्देश्य ही भूल जायेगा।

मैं जिस पण्डाल में बैठा था, उसे श्रद्धालु श्रावकों ने रुचि से सजाया था। श्रावक-समाज के वैभव का प्रदर्शन उसमें अभिप्रेत न रहने पर भी होता अवश्य था। निरन्तर परिग्रह की उपासना करने वालों का अपने अपरिग्रही साधुओं का प्रदर्शन करना और दाद देना मुझे खासा पाखण्ड लगने लगा। आचार्यश्री जितना-जितना अपरिग्रह की मर्यादा का व्याख्यान करते गये, उतना-उतना मुझे वह सम्पन्न लोगों की दुरभिसन्धि मालूम होने लगा। हमारा परिग्रह मत देखो, हमारे साधुओं को देखो! अहो! प्रभावस्तापसाम्! अगले दिन के लिए भोजन तक संचय नहीं करते। वस्त्र जो कुछ नितान्त आवश्यक हैं, वह ही अपने शरीर पर धारण करके चलते हैं। ये उपवास, यह ब्रह्मचर्य, ये अदृश्य जीवों को हिंसा से बचाने के लिए बाँधे गए मुंह्पत्ती के, यह तपस्या और यह अणुबम का जवाब अणुव्रत! मुझे लगा कि अपने सम्प्रदाय के सेठों की लिप्सा और परिग्रह पर पर्दा डालने के लिए साधुओं की यह सारी चेष्टा है, जिसका पुरस्कार अनुयायियों के द्वारा जय-जयकार के रूप में दिया जा रहा है। जब और नहीं रह गया तो मैंने वहीं बैठे-बैठे एक पत्र लिख कर आचार्यश्री को भिजवा दिया, जिसमें ऐसा ही कुछ बुखार उतारा गया था।

अश्रद्धा और हठ का भाव

आचार्यश्री से जब मैं अगले दिन प्रत्यक्ष मिला, तब तक अश्रद्धा और हठ का भाव मेरे मन पर से उतरा नहीं था।

आचार्यश्री अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक कहे जाते हैं, इस पर अनेक इतर जैन-सम्प्रदायों को ऐतराज रहा है। "अणुव्रत तो बहुत पहले से चले आते हैं। साधुओं के लिए अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि पंच व्रतों का निर्विशेषतया पालन महाव्रत कहलाता है और इन्हीं व्रतों का अणु (छोटा) किंवा गृहस्थधर्मीय सुविधा-संस्करण अणुव्रत है। फिर आचार्यश्री अणुव्रतों के प्रवर्तक कैसे ?" इस प्रकार की आपत्ति अक्सर उठाई जाती रही है। आचार्यश्री के परिकर वालों को ख्याल हुआ कि 'अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक' शब्द से चिढ़ कर मैंने आचार्यश्री को यह सब लिखा है। लेकिन मुझे तब तक इसका भान भी नहीं था। अणुव्रतों और महाव्रतों का चाहे पूर्व मुनियों ने निरूपण भी किया हो, लेकिन इसको एक जनान्दोलन का रूप आचार्यश्री तुलसी ने ही दिया है, इसलिए उनके आन्दोलन के प्रवर्तकत्व से मुझे विरोध क्यों होता। वस्तुतः मेरे विरोध के मूल में अंशतः परिग्रह की पृष्ठ-भूमि में अपरिग्रह के विरोधाभास से उत्पन्न एक तात्कालिक प्रतिक्रिया थी और अंशतः कुछ पूर्व धारणाएं थीं, जिनकी संगति मैं आज भी जैन-दर्शन से पूर्णतः नहीं मिला पाया हूँ।

उदाहरण के लिए मैं इस निष्कर्ष से सहमत रहा हूँ कि आहार की दृष्टि से मनुष्य न भेड़-बकरी की तरह शाकाहारी है और न शेर-तेंदुओं की तरह मांसाहारी। बल्कि उभयाहारी जन्तुओं जैसे भालू, चूहे या कौए की तरह शाकाहार और मांसाहार दोनों प्रकार का आहार खा-पचा सकता है। इसलिए मानव-प्रकृति के विरुद्ध होने से आदमी के लिए आहार का दावा मूलतः गलत है। दूसरे; आहार चाहे वानस्पतिक हो अथवा प्राणिज, उसमें जीवरूपता होती ही है, अन्यथा आहार देह में सात्म्य किंवा तद्रूप नहीं बन सकता। अतः जैव आहार के ऊपर, स्थिति और हिंसा का त्याग, ये दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकतीं। आहार-मात्र हिंसामूलक है, बल्कि आहार और हिंसा अभिन्न अथच पर्यायवाची हैं, ऐसी मेरी धारणा रही है।

इसके अतिरिक्त ईश्वर की सत्ता और धर्म की आवश्यकता आदि कितने ही विषयों पर मेरी मान्यताएं जैन विश्वासों से भिन्न थीं। जब बात चल निकली तो मैंने अपना कैसा भी मतभेद आचार्यश्री तुलसी से छिपाया नहीं।

मेरा खयाल था कि आचार्यश्री इस विषय को तर्कों से पाट देंगे; लेकिन उन्होंने तर्क का रास्ता नहीं अपनाया और इतना ही कहा कि "मतभेद भले ही रहे, मनोभेद नहीं होना चाहिए।" मैं तो यह सुनते ही चकरा गया। तर्क की तो अब बात ही नहीं रही। चुप बैठ कर इसे हृदयंगम करने की ही चेष्टा करने लगा।

श्रद्धा बढ़ी

बाद में जितना-जितना मैं इस पर मनन करता गया, उतनी ही आचार्यश्री तुलसी पर मेरी श्रद्धा बढ़ती गई। वास्तव में विचारों के मतभेद से ही तो समाजों और वर्गों में इतना पार्थक्य हुआ है। एक ही जाति के दो सदस्य जिस दिन से भिन्न मत अपना लेते हैं, तो मानो उसी दिन से उनका सब-कुछ भिन्न होता चला जाता है। भिन्न आचार, भिन्न विचार, भिन्न व्यवहार, भिन्न संस्कार, सब-कुछ भिन्न। यहाँ तक कि सब तरह से अलग दिखना ही परम काम्य बन जाता है। मतभेद हुआ कि मनोभेद उसके पहले हो गया। मनोभेद से पक्ष उत्पन्न होता है और पक्ष पर बल देने के साथ-साथ उत्तरोत्तर आग्रह की कट्टरता बढ़ती जाती है। अन्त में आग्रह की अधिकता से एक दिन वह स्थिति आ जाती है, जब भिन्न मतावलम्बी की हर चीज से नफरत और उसके प्रति हमलावराना रुख ही अपने मत के अस्तित्व की रक्षा का एकमात्र उपाय मालूम देता है।

मुझे यहाँ तक याद आता है, किसी भी विचारक ने इसके पूर्व यह बात इस तरह और इतने प्रभाव से नहीं कही। मन की स्वतन्त्रता की रक्षा की वांछनीयता का हवा में शोर है। जनतन्त्र के स्वस्थ विकास के लिए भी मतभेद आवश्यक बताया जाता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व के निखार के लिए भी मतभेद रखना जरूरी समझा जाता है। बल्कि मतभेद का प्रयोजन न हो, तो भी मतभेद रखना फैशन की कोटि में आने के कारण जरूरी माना जाता है। परिणाम यह है कि चाहे लोगों के दिल फट कर राई-काई क्यों न हो जायें, लेकिन असूल के नाम पर मतभेद रखने से आप किसी को नहीं रोक सकते।

यदि मुझे किसी एक चीज का नाम लेने को कहा जाये, जिसने मानव-जाति का सबसे ज्यादा खून बहाया है

और मानवता को सबसे ज्यादा कांटों में घसीटने पर मजबूर किया है तो वह यही मतभेद है। इसी के कारण अलग धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, समाज आदि बने हैं, जिन्होंने अपनी कट्टरता के आवेश में मतभेद को आमूल और समूल नष्ट कर डालना चाहा है। मतभेदों का निपटारा जब मौलिक नहीं हो पाया तो तलवार की दलील से उन्हें सुलझाने की कोशिशें की गई हैं। एक ने अपने मत की सच्चाई साबित करने के लिए कुर्बान होकर अपने मत को अमर मान लिया है, तो दूसरे ने अपने मत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अपने हाथ खून से रंग कर अपने मत की जीत मान ली है। दुनिया का अधिकांश इतिहास इन्हीं मतभेदों और इनके सुलझाने के लिए किये गए हृदयहीन संघर्षों का एक लम्बा दुःखान्त कथानक है।

अब प्रश्न उठता है कि जब मतभेद रखना इतना विषाक्त और विपरिणम्य है, तो क्या मतभेद रखना अपराध करार दिया जा सकता है, या शास्त्रीय उपाय का अवलम्बन करके इसे पाप और नरक में ले जाने वाला घोषित कर दिया जाये? न रहेंगे मतभेद, न होगी यह खून-खराबी और अशान्ति।

लेकिन समाधान इससे नहीं होगा। अगर आदमी के सोचने की और मत स्थिर करने की क्षमता पर समाज का क़ानून अंकुश लगायेगा, तो क़ानून की जड़ें हिल जायेंगी और यदि धर्मपीठ से इस पर प्रतिबन्ध लगाने की आवाज उठी तो मनुष्य धर्म से टक्कर लेने में भी हिचकेगा नहीं। धर्म ने जब-जब मानव को सोचने और देखने से मना करने की कोशिश की है, तभी उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा है। अपना स्वतन्त्र मत बनाने और मतभेद को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता तो मानव को देनी ही होगी; जो पात्र हैं उनको भी और जो पात्र नहीं हैं उनको भी।

फिर इसे निर्विष कैसे किया जाये? विशुद्ध तर्क से तो सबको अनुकूल करना सम्भव है नहीं, और शस्त्र-बल से भी एकमत की प्रतिष्ठा के प्रयोग हमेशा असफल ही रहे हैं। क्रिया, फिर प्रतिक्रिया—फिर प्रति-प्रतिक्रिया; हमले और फिर जवाबी हमले। मतों और मतभेदों का अन्त इससे कभी हुआ नहीं। ऐसी अवस्था में आचार्यश्री तुलसी का सूत्र कि 'मतभेद के साथ मनोभेद न रखा जाये', मुझे अपूर्व समाधानकारक मालूम देता है। विष-बीज को निर्विष करने का इससे अधिक अहिंसक, यथार्थवादी और प्रभावकारी उपाय मेरी नजरों से नहीं गुजरा।

भारत के युग-द्रष्टा ऋषि

इसके उपरान्त भी मैं आचार्यश्री तुलसी से अनेक बार मिला, लेकिन फिर अपने मतभेदों की चर्चा मैंने नहीं की। भिन्न मुण्ड में भिन्न मति तो रहेगी ही। मेरे अनेक विश्वास हैं, उनके अनेक आधार हैं, उनके साथ अनेक ममत्व के सूत्र सम्बद्ध हैं। सभी के होते हैं। लेकिन इन सब भेदों से अतीत एक ऐसा भी स्थल होना चाहिए, जहाँ हम परस्पर सहयोग से काम कर सकें। मैं समझता हूँ कि यदि चेष्टा की जाये तो समान आधारों की कमी नहीं रह सकती।

आचार्यश्री तुलसी एक सम्प्रदाय के धर्मगुरु हैं। और विचारक के लिए किसी सम्प्रदाय का गुरु-पद कोई बहुत नफे का सौदा नहीं है। बहुधा तो यह पदवी विचारबन्धन और तंगनजरी का कारण बन जाती है। लेकिन आचार्यश्री की दृष्टि उनके अपने सम्प्रदाय तक ही निगडित नहीं है। वे सारे भारत के युग-द्रष्टा ऋषि हैं। जैन-शासन के प्रति मेरी आदर-बुद्धि का उदय उनसे परिचय के बाद ही हुआ है, अतएव मैं तो व्यक्तिशः उनका आभारी हूँ। उनके धवल समारोह के इस अवसर पर मेरी विनम्र और हार्दिक श्रद्धांजलि!

दो दिन से दो सप्ताह

डा० हर्बर्ट टिसी, एम० ए०, डी० फिल०, ग्रास्ट्रिया

मैं अपने निश्चित कार्यक्रम के अनुसार केवल दो दिन ही ठहरने वाला था, लेकिन दो सप्ताह ठहरा। मैं उस अद्भुत मनुष्य का चित्र खींचना चाहता था और उस मानव का, जो महात्मा पद के उपयुक्त था, अध्ययन करना चाहता था। प्राय: एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के बारे में क्वचित् ही ऐसा कर सकता है। जैसे ही मैंने उनके प्रथम बार दर्शन किये, उनका असाधारण व्यक्तित्व मेरे हृदय को छूने लगा। उनके नेत्र स्नेहिल और तेजस्वी थे। जैसे ही उन्होंने मेरी ओर दृष्टिपात किया, मेरा अहम् नष्ट हो गया और मुझे उनकी महानता का अनुभव हुआ। मैं वहाँ गया तो था उनके कुछ फोटू खींचने के लिए, किन्तु जैसे ही मैंने उनको जाना, उनका परिचय पाया, फोटू खींचना तो भूल ही गया। उनके विचारों को और शब्दों को समझने लगा।

उनके अनुयायियों व साधु-साध्वियों के लिए वे महान् प्रेरक के रूप में होने चाहिये, जो कि उनके प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं और उनके बारे में निःशंक हैं। उनका प्रभाव इतना अधिक है कि यदि वे चाहें तो वे एक बहुत ही भयंकर व्यक्ति बन सकते हैं और मनुष्यों को अशान्ति के कगार तक पहुँचा सकते हैं और अपना कठिनतम लक्ष्य भी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु उनका केवल एक ही विचार व ध्येय है जिसे कि अहिंसा-विकास कह सकते हैं।

पूर्ण अहिंसा पर उनकी श्रद्धा का स्पष्ट रूप से प्रकटीकरण ही मेरे हांसी जाने का कारण बना है। इस धर्म के अनुयायी मुँह पर पट्टी बाँधते हैं : जैसे डाक्टर लोग आपरेशन के समय मुँह पर 'मास्क' लगाते हैं। उसका प्रयोजन है कि उनकी आवाज से निःसृत ध्वनि तरंगों से हवा की, जो कि उनके अभिमतानुसार सजीव है, हत्या न हो। वे अन्धेरे में चलते समय भूमि का प्रमार्जन कर पाँव रखते हैं ताकि किसी भी जीव की हत्या न हो। इसलिए मैं हांसी गया और वहाँ पर इस संघ के आचार्य ने मुझे समझाया।

उनका पूरा नाम है पूज्य श्री १००८ आचार्यश्री तुलसीरामजी स्वामी। आप जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के नवम आचार्य हैं। उनका नाम उतना ही बड़ा है, जितना कि उनका नम्रता गुण। '१००८' की संख्या जो दो श्री के बीच में है, वह १००८ गुणों की द्योतक है। 'तुलसीराम' उनका व्यक्तिगत नाम है और उसके पीछे जो 'जी' जुड़ा है, वह जर्मन भाषा के Chen के समान आदर का सूचक है। 'स्वामी' का अर्थ है—वह व्यक्ति जो गृहस्थ जीवन का त्याग करता है। 'जैन' एक बहुत ही प्राचीन धर्म है जो हिन्दू धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म के अधिक निकट है। श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय जैन धर्म में ही एक सुधारक आन्दोलन के रूप में २०० वर्ष का प्राचीन सम्प्रदाय है। मैं उनके सामने बैठ गया और वे मेरी ओर देखने लगे।

वह एक आन्तरिक अनुभव था जो कि केवल हृदयग्राही ही था, वाणी के द्वारा व्यक्त नहीं हो सकता। किन्तु यदि प्रथम अनुभव को व्यक्त न कर सका तो प्रस्तुत उपक्रम अधूरा ही रह जायेगा।

मैं जब वहाँ गया, वे एक ऊँचे तख्त पर बैठे हुए थे और दैनिक प्रवचन कर रहे थे। उनके सामने लगभग हजार आदमी जमीन पर बैठे हुए थे। मैं अकेला ही वहाँ विदेशी था, अतः मेरे मित्र मुझे आचार्यश्री के समीप ले गये। आचार्यश्री बोलते हुए थोड़े रुके और मेरा परिचय उनको दिया गया। हम आचार्यश्री की ओर देखते हुए शान्ति से बैठ गये। दुर्भाग्यवश, बहुत सारे लोगों का ध्यान मेरी ओर खिंचा रहा, किन्तु कुछ समय बाद मैं यह भूल गया और मैं और आचार्यश्री अकेले रह गये।

प्रायः यह होता है कि यदि मनुष्य किसी भी व्यक्ति की ओर अत्यन्त ध्यानपूर्वक देखता है तो उसके मुख पर द्वेष, प्रेम या उत्तेजना के भाव उत्पन्न हो जाते हैं, किन्तु आचार्यश्री के विशाल विवेकपूर्ण और काले नेत्रों में इनमें से एक भी नहीं पाया गया। मुझे ऐसा लगा उनकी दृष्टि मेरे शरीर को चीर कर हृदय तक पहुँच रही है और उन्होंने मेरा अन्तर हृदय पहचान लिया है। पहले-पहल मुझे इस प्रकार का अकेलापन थोड़ा अखरा, किन्तु बाद में उनके सामने मेरी यह भावना लुप्त हो गई। मेरे हृदय में नाना प्रकार के भाव तरंग उछलने लगे। मैंने एकाएक ही अनुभव किया कि मैं अब अकेला नहीं हूँ। मुझे लगा कि मेरे अनुकूल विचार समझे गये हैं और प्रतिकूल विचारों की निन्दा नहीं की गई है। अर्थात् मेरे अच्छे विचार के कारण मुझे स्वागत मिल रहा है और बुरे विचारों के कारण मेरी निन्दा नहीं की जा रही है। अचानक ही मेरी स्मृति में अपने शैशव काल का विस्तृत स्वर्णिम जगत् स्पष्ट हो गया—निराशा के कारण से नहीं। युवाकाल की स्मृति रहती है, किन्तु उसके साथ जो संशय होता है, वह नष्ट हो गया। मेरा हृदय अच्छे और आनन्ददायक विचारों से भर गया।

मैं जानता हूँ कि इन शब्दों में जो कुछ मैंने लिखा है, वह अतिशयोक्ति-सा लगता होगा, किन्तु वह अपना कार्य समुचित रूप से करता है और आचार्यश्री के साथ वार्तालाप के समय प्रत्येक क्षण में मेरे हृदय पर नियन्त्रण करने वाली भावनाओं का वर्णन मैंने किया है। वास्तव में तो, संत पुरुषों का यह स्वभाव ही होता है कि वे दूसरों के मन में अच्छे विचारों को उत्पन्न कर देते हैं और उन विचारों को अच्छे कार्य के रूप में परिणत करना तो यह हमारा काम है।

प्रतिदिन तीन बार आचार्यश्री प्रवचन देते हैं, जिनमें सहस्रों की संख्या में लोगों की उपस्थिति होती है। उनके अनुयायी लोग बहुत अंशों में राजस्थान और पंजाब के वासी हैं और उनमें से अधिकतर मारवाड़ी हैं, जो कि भारत के व्यापारियों में सबसे अधिक धनिक और परिग्रहासक्त हैं।

आचार्यश्री उनको अपरिग्रह और सदाचार का उपदेश देते हैं। यह एक कैसा विरोधाभास था। एक ओर जहाँ उनके अनुयायी—जो कि बहुत अच्छे व्यापारी लोग हैं, जो कि धोखाबाजी से लाखों रुपये कमाते हैं, जो सारी दुनिया के साथ व्यापार का सम्बन्ध रखते हैं, जो कर की चोरी करने के सब तरीकों को काम में लेते हैं और विश्वासघात करते हैं। दूसरी ओर ये छोटे कद के आचार्यश्री जिनके पास अपना कुछ नहीं है न घर है, न मन्दिर है, न पुस्तकें हैं—केवल हाथ से लिखे हुए सुन्दर शास्त्र हैं, मामूली बिछाने का कपड़ा और अत्यन्त सामान्य प्रकार के वस्त्र और स्वाभाविकतया मुख-वस्त्रिका और रजोहरण—यही उनका सब कुछ है।

वे एक कुशल मनोवैज्ञानिक हैं। वे जानते हैं कि जो व्यक्ति इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कालेबाजार करते हैं, उनके पास से बड़े त्याग की आशा नहीं रखी जा सकती। उनमें से किसी को भी संसार को त्याग करने का उपदेश नहीं दिया जा सकता। किन्तु उनके पास से कम-से-कम यह आशा तो की जा सकती है कि वे सच्चे अर्थ में मानव बनें, इसलिए उन्होंने अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन किया है। यह आन्दोलन छोटे-छोटे व्रतों का आन्दोलन है। उनके अनुयायियों को इस प्रकार के व्रत दिलाये जाते हैं कि मैं अप्रमाणिकता नहीं करूँगा। मैं अनैतिकता और आडम्बर को छोड़ दूँगा। मैं अन्य स्त्रियों पर बुरी दृष्टि नहीं डालूँगा।

कुल मिलाकर ४६ व्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह इन पाँच विभागों में विभक्त हैं। इनमें से प्रायः सभी व्रत स्वाभाविक हैं, और प्रायः सभी धर्मों के मूल-भूत सिद्धान्त हैं। उनमें से थोड़े व्रत ऐसे हैं जो कि केवल भारतीय संस्कृति से जुड़े हुए हैं, जैसे कि मैं मद्यपान नहीं करूँगा, दो सौ व्यक्तियों से अधिक बृहत् भोज नहीं करूँगा। ये नियम बहुत ही कम यूरोपवासियों द्वारा ग्राह्य हो सकते हैं। किन्तु एक औसत भारतीय विवाह के प्रसंग में उक्त संख्या का उल्लंघन सामान्यतया करता है, तथापि आचार्यश्री के इस आह्वान से उनके अनुयायियों में एक नई चेतना आई है।

मैं अपने एक मित्र के घर ठहरा था। वह एक बहुत ही अच्छे स्वभाव का और मोटा आदमी था। उसने डेरी के व्यापार से धनार्जन किया था। एक बार सायंकाल मैं उसकी दूध की दुकान पर उसके साथ गया। उसने उत्साह से बताया कि अब मैं पहले की तरह अधिक धन नहीं कमाता हूँ; क्योंकि मैं अणुव्रती हूँ। इसलिए दूध के व्यापार में कमाई

कम होती है। यह स्वाभाविक है कि अणुव्रत में मिलावट छोड़ देने से मेरे मित्र के कहने के अनुसार उसकी कमाई पहले जैसी नहीं होती। अणुव्रती बनने से पूर्व वह मित्र यह सब जानता था।

यह हो सकता है कि अणुव्रतों के बारे में मेरा अध्ययन केवल ऊपर-ऊपर का ही हो, किन्तु मैं विदेशी के साथ मैत्री करने से अवश्य लाभान्वित हुआ हूँ। एक प्रसंग ऐसा बना, जिससे मैं हाँसी को कभी नहीं भूल सकता। केवल एक रुपये के बारे में बात थी। मैं प्रतिदिन एक दुकानदार के पास से सिगरेट खरीदता था। मैं जो सिगरेट पीता था, उस प्रकार की गाँव में और कोई नहीं पीता था। मुझे सड़क पर सिगरेट पीने में भी लज्जा का अनुभव होता था। उस सिगरेट की कीमत उस दुकान पर लिखी हुई थी। मैं जब उसके लिए पैसा देने लगा, तब उस दुकानदार ने बहुत ही नम्र भाषा में मेरे से पैसा लेने से इन्कार किया। यदि गर्मी के दिनों में मुझे किसी होटल पर ठंडा लेमन पिलाया जाता, तो उसको भी मुझे भेंट रूप में ही स्वीकार करना होता।

अणुव्रत के नियम बहुत ही सरल हैं। क्योंकि वे अणु यानी छोटे-छोटे व्रत है। आचार्यश्री व्रत लेने के लिए किसी पर भी दबाव नहीं डालते। अपने प्रवचनों में वे अनुयायियों को उपदेश देते है कि यदि वे पारलौकिक सुख चाहते हैं तो उन्हें पाप करने से डरना चाहिए। जब वे बुराइयों को छोड़ने की प्रतिज्ञा करते है, तब ही आचार्यश्री प्रसन्न होते हैं। जो ४६ व्रतों को पालन करने की प्रतिज्ञा करता है, वही पूर्ण अणुव्रती हो सकता है।

आचार्यश्री के अधिकांश अनुयायी व्यापारी हैं। आचार्यश्री अणुव्रतों के बारे में उनके साथ घण्टों तक उत्साह-पूर्वक चर्चाएं करते हैं। उस चर्चा में वे लोग इतने जल्दी-जल्दी बोलते थे कि मुझे उनकी बात का कुछ पता नहीं चलता था। किन्तु जब भी वे लोग ब्लैक मारकेट शब्द का प्रयोग करते थे, मुझे पता चल जाता था; क्योंकि प्रायः भारतीय लोग बातचीत में अंग्रेजी शब्द ब्लैक मारकेट का प्रयोग करते है। ये व्यापारी लोग अपने व्यापार-सम्बन्धी कागजात आदि साथ लेकर आचार्यश्री के पास आये और वे आचार्यश्री को यह बताना चाहते थे कि बिना कालाबाजार आदि अनैतिक कार्य किये यदि वे व्यापार करें तो, निश्चित ही उनका दीवाला निकल जाये। आचार्यश्री ने उनकी सब बातों को ध्यान से सुना, उन कागजातों को ध्यान से देखा और उनके मुनाफा और घाटा सम्बन्धी सब बातों को सुना। अन्त में तो वे अपनी मांग पर निश्चल ही रहे कि व्यापारियों को अनैतिक व्यापार को छोड़ना चाहिए। इस प्रकार से चर्चा के बाद में सभी व्यापारी कालाबाजार आदि को पूर्ण रूप से छोड़ने के लिए तो तैयार नहीं हुए, किन्तु बहुत से व्यापारियों ने थोड़ी छूट के साथ में नियम लिए कि

मैं अनैतिक व्यापार को अमुक मर्यादा से अधिक नहीं करूंगा।

मैं रिश्वत नहीं लूंगा।

मैं झूठे खाते नहीं रखूंगा।

मैं समाहित हो गया था कि वे लोग इन नियमों को अच्छी तरह से पालेंगे।

इसके बाद आचार्यश्री ने मुझसे कहा—मैं चाहता हूँ कि लोग संयम को अपनायें। अणुव्रत आसानी से अपनाये जा सकते हैं। इन व्रतों का नाम अणुव्रत इसलिए रखा है कि हमें अणुबम के साथ लड़ना है और उससे सम्बन्धित सभी बुराइयों से लड़ना है। यदि थोड़े लाख व्यक्ति भी अणुव्रती बन जायें तो यह वैज्ञानिक सफलता—अणुबम के भय को नष्ट कर देगी।

इस पर मैंने पूछा—क्या आपका उद्देश्य राजनैतिक है। उन्होंने उत्तर दिया—नहीं, हमारा उद्देश्य केवल धार्मिक है। गांधीजी महात्मा भी थे और राजनैतिक नेता भी। मैं केवल एक महात्मा बनना चाहता हूँ।

मैंने उनसे आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म जैसे दार्शनिक प्रश्न पूछे व कुछ उनके वैयक्तिक जीवन तथा उनके साधु संघ के बारे में भी जिज्ञासाएं कीं। उन्होंने मेरे प्रत्येक प्रश्न व जिज्ञासा का अत्यन्त मधुरता के साथ समाधान किया। मुझे भय था कि कहीं आचार्यश्री को मैंने नाराज तो नहीं कर दिया। मेरे लम्बे-लम्बे प्रश्न जो कि मैंने उनके पवित्र जीवन को जानने की दृष्टि से पूछे थे, मूल विषय से काफी दूर थे और मेरे तुच्छ उत्साह को प्रकट करने वाले थे, उनसे शायद वे नाराज हो गये हों। फिर भी उन्होंने उस प्रकार का कोई भी भाव व्यक्त नहीं किया, प्रत्युत मेरे

जैसे एक विदेशी व्यक्ति के ऊपर आचार्यश्री की पूर्ण कृपा रही और इसलिए सम्भवतः मैं लोगों की ईर्ष्या का पात्र भी बना।

एक बार विनोद में मैंने आचार्यश्री से कहा—मैंने आपके धर्म की एक प्रार्थना (नमस्कार) मन्त्र के कुछ पद कण्ठस्थ किये हैं। क्या आप सुनने की कृपा करेंगे। आचार्यश्री ने धीरे से हाथ हिलाते हुए लोगों को शान्त किया। वह नमस्कार मंत्र मुझे उनके मुनियों ने सिखाया था। उसको मैंने कण्ठस्थ कर लिया था और कई बार पुनरुच्चारण भी कर लिया था ताकि बिना कोई भूल किये मैं उसका उच्चारण कर सकूं। मैंने कहा—

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं

मैं उन महात्माओं को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने मोह, राग और द्वेष रूप शत्रुओं को जीत लिया है। मैं उन महात्माओं को नमस्कार करता हूँ जो कि मुक्त अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं। मैं धर्मनायकों को, आचार्यों को—नमस्कार करता हूँ। मैं धार्मिक शिक्षा गुरुओं को—उपाध्याय को नमस्कार करता हूँ। मैं संसार के सभी साधु साध्वियों को नमस्कार करता हूँ। आचार्यश्री ने स्मित हास्य के साथ कहा—यह तो तुम्हारा इस दिशा में प्रथम चरण है। अब तुम मुँह पर मुख वस्त्रिका और हाथ मे रजोहरण कब लेने वाले हो ? इस प्रकार से अन्त में वह दिन आ गया, जिसके दूसरे दिन सुबह पाँच बजे ही मैं दिल्ली के लिए प्रस्थान करने वाला था। जब मैं बिदा लेने लगा, तब आचार्यश्री ने हाथ ऊँचा कर आशीर्वाद दिया।

देश के महान् आचाय

श्री जयसुखलाल हाथी
विद्युत् उपमंत्री, भारत सरकार

किशोर के लिए एक कसौटी

दुनिया में सभी संतों के जीवन में एक विशेषता होती है, वही विशेषता आचार्यश्री तुलसी के जीवन मे भी दिखाई देती है। उनके बाल्यकाल में ही उनकी महानता के चिह्न दिखाई देने लगे थे। बचपन में ही उन्होंने ऐसे गुणों का परिचय दिया, जिनसे यह पता चलता था कि वे भविष्य में एक महान् धर्म गुरु बनेंगे। ग्यारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। उनके परिवार के सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ग्यारह वर्ष का किशोर इतनी कम अवस्था में दीक्षा लेने की बात कैसे सोच सकता है। उनके बड़े भाई अनुमति देने को तैयार नहीं थे, किन्तु किशोर तुलसी की अन्तरात्मा ने उनको साधु-श्रेणी में प्रविष्ट होने को प्रेरित किया और वे अपने संकल्प से विरत नहीं हुए। क्या उन्हें त्याग का अर्थ विदित था ? उनके पारिवारिक जनों के लिए यह एक समस्या थी। जिस दिन वे संन्यास लेने वाले थे, उसके पूर्व पहली रात को उनके बड़े भाई मोहनलालजी ने उनको सौ रुपए का एक नोट दिया और कहा कि वह इसे अपने पास रख ले, जब कि वह उन सबसे अगले दिन बिदा ले रहे थ। आचार्यश्री तुलसी को यह पता था कि साधु का क्या कर्तव्य होता है और उन्होंने हँसकर पूछा—"मैं इन रुपयों का क्या करूँगा। साधु तो एक पैसा भी अपने पास नहीं रख सकता।" यह किशोर तुलसी के लिए एक कसौटी थी। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि दुनिया के प्रलोभनों और भोग-विलास का उनके लिए कोई अर्थ नही है।

उनमें प्रारम्भ से ही त्याग और संयम के गुण मौजूद थे। आगे चल कर उनका साधु-जीवन विकसित हुआ और वे महान् धर्म-गुरु बन गए। बाईस वर्ष की अवस्था में आचार्यश्री कालूगणी ने मुनिश्री तुलसी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। आचार्य बनने के लिए यह अवस्था छोटी ही थी, किन्तु मुनिश्री तुलसी ने जो गुण विकसित कर लिए थे, उनके कारण उनका यह चुनाव सर्वथा उचित सिद्ध हुआ। संस्कृत में एक उक्ति है : **गुणाः पूजास्थानं गुणिषु, न च लिंगं न च वयः** अर्थात् न तो आयु का और न लिंग का महत्त्व है; असली महत्त्व तो गुणों का ही होता है। आचार्यश्री तुलसी भी अपने गुणों के कारण अपने शिष्यों की श्रद्धा और आदर के अधिकारी बने।

अणुव्रत का प्रवर्तन

सन् १९४९ में उन्होंने अणुव्रत-आन्दोलन चलाया। नैतिक मापदण्डों की गिरावट के विरुद्ध यह आन्दोलन था। नैतिक पतन के पाश से राष्ट्र को मुक्त करना उसका उद्देश्य है। आज जब कि दुनिया आध्यात्मिक केन्द्र से दूर जा रही है, मानव का दृष्टिकोण अधिकाधिक भौतिकवादी बनता जा रहा है, नैतिक मूल्यों को विस्मृत किया जा रहा है, अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य को नैतिक अधः-पतन के दलदल में फँसने से रोकता है और उसे आन्तरिक शान्ति और सुख की उपलब्धि कराता है। जैसा कि 'अणुव्रत' शब्द से ही प्रकट है, वह छोटी-छोटी प्रतिज्ञा से प्रारम्भ होता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए 'पूर्ण' बनना सम्भव नहीं हो सकता, किन्तु अल्प प्रारम्भ करके वह सर्वोच्च आदर्श को प्राप्त कर सकता है। अणुव्रत-आन्दोलन समाज के नैतिक चरित्र का निर्माण करना चाहता है। इस आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य ये हैं—१. जाति, वर्ण, राष्ट्रीयता और धर्म का कोई भेद न करते हुए सब लोगों के लिए संयम का आदर्श प्रस्तुत करना और उस आदर्श के अनु-

सार अधिकाधिक जीवन बिताने के लिए प्रेरित करना; २. समाज में विश्व-शान्ति का प्रचार करने के लिए प्रचारक तैयार करना और उन्हें प्रेरित करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अणुव्रत-आन्दोलन अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की पाँच प्रतिज्ञाएं लेने को कहता है। यदि मनुष्य स्वतन्त्र रूप में इन पाँच व्रतों का पालन करने का प्रयत्न करे तो वह पूर्ण आदर्श को प्राप्त कर सकेगा। जीवन के हर क्षेत्र में वह इन व्रतों का पालन कर सकता है।

हम आज देखते हैं कि धर्म, भाषा, जाति और सम्प्रदाय के नाम पर लोग परस्पर लड़ रहे हैं। धर्म की भावना को लोगों ने ठीक प्रकार से नहीं समझा है। धर्म केवल मन्दिर जाने और दैनिक कर्मकाण्डों का पालन करने में नहीं है। वह इन सबसे कुछ अधिक है। वास्तविक धर्म सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखाने में है। पूजा की विधि कुछ भी हो, उसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाए और रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाए बिना यह लक्ष्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

उदार मनोवृत्ति का परिचय

आचार्यश्री तुलसी ने एक धर्माचार्य के रूप में अपनी उदार मनोवृत्ति का परिचय दिया है; कारण वह कहते है कि दूसरे धर्मों के प्रति किसी को निन्दात्मक भाषा का लेखनी या वाणी द्वारा प्रयोग नहीं करना चाहिए। केवल अपने विचारों का ही प्रचार करना चाहिए। दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखानी चाहिए। दूसरे धर्मों के संतों और आचार्यों के प्रति घृणा या तिरस्कार नहीं फैलाना चाहिए। अगर कोई व्यक्ति अपना धर्म या सम्प्रदाय बदल लेता है तो उसके साथ दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए और न उसका सामाजिक बहिष्कार ही करना चाहिए। धर्म के सर्वमान्य मूल तत्त्वों का यथा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का प्रचार करने का सामूहिक प्रयास करना चाहिए। अगर मनुष्य इन आचार-नियमों का पालन करने लगे तो वर्तमान दुनिया में महान् क्रान्ति हो जायेगी।

राष्ट्र का निर्माण करने के लिए नैतिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की सदैव आवश्यकता होती है और अणुव्रत-आन्दोलन एक प्रकार से देश के नैतिक उत्थान का आन्दोलन है। जो आन्दोलन वर्तमान युग की चुनौती का सामना नहीं कर सकता, वह चल नहीं सकता। अणुव्रत आन्दोलन वर्तमान युग की चुनौती का उत्तर देता है। वह लोगों को केवल भौतिक विचारों का परित्याग करने और नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिए काम करने का आह्वान करता है। संत और धर्माचार्य युग-युग से शान्ति का प्रचार करते आए हैं; किन्तु जब तक अहिंसा और सत्य के गुणों का विकास नहीं होगा, तब तक शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि अणुव्रत-आन्दोलन के पाँचो व्रतों का पालन किया जाये तो युद्धों की सम्भावना टल जायेगी। इस प्रकार यह आन्दोलन वर्तमान युग की चुनौती का समाधान है।

और जब अणुव्रत-आन्दोलन के प्रणेता आचार्यश्री तुलसी अपने आचार्य-पद के पच्चीस वर्ष पूरे कर रहे है, यह उचित ही है कि देश अपने इस महान् आचार्य के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है।

नैतिक पुनरुत्थान के नये सन्देशवाहक

श्री गोपालचन्द्र नियोगी
सम्पादक—दैनिक वसुमति, बंगला, कलकत्ता

नई आशा का नया सन्देश

मनुष्य का जीवन केवल खाने-पीने और मौज उड़ाने अथवा कष्ट और दुविधाएं झेलने के लिए ही नहीं है। वह उपन्यास के पृष्ठों की भाँति भी नहीं है। मनुष्य समाज का प्राणी है और समाज भी मानव प्राणियों से ही बना है। उसका जीवन सामाजिक जीवन है और सामाजिक वातावरण से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। साथ ही वह सामाजिक सम्बन्धों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। मनुष्य को केवल अधिकार ही प्राप्त नहीं है, उसे कुछ कर्तव्यों का पालन और दायित्वों का निर्वाह भी करना होता है। स्वभाव से वह चेतन और सक्रिय प्राणी है और उसे तर्क शक्ति प्राप्त है। उसका पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन होता है और वह भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। अनिवार्यतः वह जीवन की ऐसी योजना बनाने का प्रयत्न करता है, जिससे उसके शरीर और मन की आवश्यकताएं पूरी हो सकें और वह जीवन की आवश्यक समस्याओं को हल कर सके। किन्तु उसे मार्ग में अनेक रुकावटों का सामना करना पड़ता है, जो दुर्लंघ्य प्रतीत होती हैं। सामाजिक परिस्थितियाँ ही ये समस्याएं हैं। उन्होंने एक सुविधा भोगी वर्ग को जन्म दिया है जो प्रगति के फलों का उपभोग करता है। समाज सत्ता-प्रेम, मुनाफाखोरी और भ्रष्टाचार के दृढ़ पाश में जकड़ा हुआ है। फलस्वरूप बहुसंख्यक जन समाज घोर दुःख में जीवन बिता रहा है। कठोर परिश्रम करने पर भी अधिकतर लोग दो जून पेट भर कर रोटी नहीं खा सकते। विफलता और निराशा का अँधेरा उनके मानस पर छाया रहता है। वर्षों के गहरे चिन्तन के बाद आचार्यश्री तुलसी करोड़ों शोषितों और श्रमजीवियों के लिए नई आशा और मानव जाति के लिए नैतिक पुनरुत्थान का नया सन्देश लेकर अवतरित हुए हैं।

आचार्यश्री तुलसी जैन धर्म के श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के आध्यात्मिक आचार्य हैं। साधारणतः कहा जाता है कि जैन धर्म का सबसे पहले भगवान् महावीर ने प्रचार किया, जो भगवान् बुद्ध के समकालीन थे। किन्तु अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि जैन धर्म भारत का अत्यन्त प्राचीन धर्म है, जिसकी जड़ें पूर्व ऐतिहासिक काल में पहुँची हुई हैं। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व आचार्य भिक्षु ने जैन धर्म के तेरापंथ सम्प्रदाय की स्थापना की; जिसका अर्थ होता है—वह समुदाय जो तेरे (भगवान् के) पथ का अनुसरण करता है। आचार्यश्री तुलसी इस सम्प्रदाय के नवम गुरु अथवा आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक हैं। केवल ग्यारह वर्ष की अल्प आयु में उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और फिर ग्यारह वर्ष की आध्यात्मिक साधना के पश्चात् वे उस सम्प्रदाय के पूजनीय गुरुपद पर आसीन हुए। आचार्यश्री तुलसी का हृदय जन-साधारण के कष्टों को देख कर द्रवित हो गया। उनके प्रति असीम प्रेम से प्रेरित होकर उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात किया। उसका उद्देश्य उच्च नैतिक मानदण्ड को प्रोत्साहन देना और व्यक्ति को शुद्ध करना ही नहीं है, प्रत्युत जीवन के प्रत्येक पहलू में प्रवेश कर समाज की पुनर्रचना करना है। अणुव्रत जीवन का एक प्रकार और समाज की एक कल्पना है। अणुव्रती बनने का अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि मनुष्य भला और सच्चा मनुष्य बने।

नैतिक शास्त्र का आविष्कार

प्रत्येक आन्दोलन का अपना आदर्श होता है और अणुव्रत-आन्दोलन का भी एक आदर्श है। वह एक ऐसे समाज की रचना करना चाहता है जिसमें स्त्री और पुरुष अपने चरित्र का सोच-समझ कर परिश्रम पूर्वक निर्माण करते हैं और अपने को मानव जाति की सेवा में लगाते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन पुरुषों और स्त्रियों को कुछ विशेष अभ्यास करने की प्रेरणा देता है,जिनसे लक्ष्य की प्राप्ति होती है। हमारे साधारण जीवन में भी हमको यह विचार करना पड़ता है कि हमको क्या काम करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। फिर भी हम सही मार्ग पर नहीं चल पाते। हम क्यों असफल होते हैं और किस प्रकार सही मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प कर सकते हैं, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। पूज्य आचार्यश्री तुलसी ने उन विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है और अणुव्रत-आन्दोलन के विषय में अपने विभिन्न सार्वजनिक और व्यक्तिगत प्रवचनों में उनकी अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या की है।

लोकतन्त्र एक ऐसी राजनैतिक प्रणाली है, जिसके द्वारा समाज का ऐसा संगठन किया जाता है कि सब मनुष्य उसमें सुखी रह सकें। किन्तु जब हम लोकतन्त्री सामाजिक जीवन की ओर देखते हैं तो हमें हृदयहीन धन-सत्ता और शोषण के दर्शन होते हैं। राज्य शासकों और शासितों में विभक्त दिखाई देता है। लोकतन्त्र की उज्ज्वल कल्पना और भयानक वास्तविकता में अन्तर बहुत स्पष्ट दिखाई देता है। मानव प्रेम और अगाध निष्ठा से प्रेरित होकर बारह वर्ष पूर्व आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत के नैतिक शास्त्र का आविष्कार किया और उसको व्यावहारिक रूप दिया। अणुव्रत शब्द निःसन्देह जैन शास्त्रों से लिया गया है, किन्तु अणुव्रत-आन्दोलन में साम्प्रदायिकता का लवलेश भी नहीं है।

इस आन्दोलन का एक प्रमुख स्वरूप यह है कि वह किसी विशेष धर्म का आन्दोलन नहीं है। कोई भी स्त्री-पुरुष इस आन्दोलन में सम्मिलित हो सकता है और इसके लिए उसे अपने धार्मिक सिद्धान्तों से तनिक भी इधर-उधर होने की आवश्यकता नहीं होती। अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता इस आन्दोलन का मूल मन्त्र है। वह न केवल असाम्प्रदायिक है, प्रत्युत सर्वव्यापी आन्दोलन है।

अणुव्रत जैसा कि उसके नाम से प्रकट है, अत्यन्त सरल वस्तु है। अणु का अर्थ होता है—किसी भी वस्तु का छोटे-से-छोटा अंग। अतः अणुव्रत ऐसी प्रतिज्ञा हुई, जिसका आरम्भ छोटे-से-छोटा होता है। मनुष्य इस लक्ष्य की ओर अपनी यात्रा सबसे नीची सीढ़ी से आरम्भ कर सकता है। कोई भी व्यक्ति एक दिन में, अथवा एक महीने में वांछित परिणाम प्राप्त नहीं कर सकता। उसको धीरे-धीरे किन्तु गहरी निष्ठा के साथ प्रयत्न करना चाहिए और शनैः-शनैः अपने कार्य-क्षेत्र का विस्तार करना चाहिए। मनुष्य यदि व्यवसाय में किसी उद्योग में या और किसी धन्धे में लगा हुआ हो तो अणुव्रत-आन्दोलन उसे उच्च नैतिक मानदण्ड पर चलने की प्रतिज्ञा लेने की प्रेरणा देता है। इस प्रतिज्ञा का आचरण बहुत छोटी बात से आरम्भ होता है और धीरे-धीरे उसमें जीवन की सभी प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है। अणुव्रत मनुष्यों को बुद्धि-संगत जीवन की सिद्धि के लिए आत्म-निर्भर बनने में सहायता देता है। उसके फलस्वरूप अहिंसा, शान्ति, सद्भावना और अन्तर्राष्ट्रीय सहमति की स्थापना हो सकेगी।

नैतिक क्रान्ति का सन्देश

भारत चौदह वर्ष पूर्व विदेशी शासन के जुए से स्वतन्त्र हुआ। विशाल पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा भी हम आर्थिक और सामाजिक शान्ति नहीं कर पाये। जब तक हम ऐसी नई समाज व्यवस्था की स्थापना नहीं करेंगे, जिसमें निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी सुखी जीवन बिता सकेगा, तब तक हमारा स्वराज्य इस विशाल देश के करोड़ों व्यक्तियों का स्वराज्य नहीं हो सकेगा। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारे सिर पर सर्वसंहारकारी अणुयुद्ध का भयानक खतरा मंडरा रहा है। इस आणविक युग में जबकि शस्त्रों की प्रतियोगिता चल रही है, सर्वनाश प्रायः निश्चित दिखाई देता है। हमारे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में समस्याएं अधिकाधिक जटिल होती जा रही हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि लोकमत

सम्बन्धित सरकारों को प्रभावित नहीं कर पा रहा है। इस संकट में आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत आन्दोलन एक नई सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक क्रान्ति का सन्देश देकर हमको मार्ग दिखा रहा है। यह न तो दया का कार्यक्रम है और न ही दान-पुण्य का। यह तो आत्म-शुद्धि का कार्यक्रम है। इसमें केवल व्यक्ति की ही आत्म-रक्षा नहीं है, प्रत्युत संसार के सभी राष्ट्रों की रक्षा निहित है। जबकि विनाश का खतरा हमारे सम्मुख है, अणुव्रत-आन्दोलन हमें ऐसी राह दिखा रहा है, जिस पर चल कर मानव जाति त्राण पा सकती है।

●

स्वीकृत कर वर ! चिर अभिनन्दन

श्री ओमप्रकाश द्रोण

अमल अकुल नव ज्योति विभाकर
सार्वभौम हित द्योति दिपाकर
जन-जन के मन के दूषित वर
बन्धन सकल अबन्धनमय कर।

अणुव्रत, सत्य, अहिंसात्मक बल
पा कर हो जन-जन-मन अविचल
पंकिल जल रत ज्यों नव उत्पल
किंजलकीरत, त्यों जग-हृत्थल।

प्रसरित धवल-कमल-वर-चन्दन
पुलकित चपल भ्रमर दल जन-मन
गुंजित अमल समल जग-कानन
'चरैवेति' रत वर जन-जीवन

अरुण राग लांछित मम वन्दन
स्वीकृत कर वर ! चिर अभिनन्दन

सुधारक तुलसी

डा० विश्वेश्वरप्रसाद, एम०ए०, डी० लिट्
अध्यक्ष—इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

विश्व के इतिहास में समय-समय पर अनेक समाज-सुधारक होते रहे है, जिनके प्रभाव से समाज की गति एक सीधे रास्ते पर बनी रही है। जब-जब वह राजमार्ग या धर्ममार्ग को छोड़ कर इधर-उधर भटकने लगता है, तब-तब कोई महान् नेता, उपदेशक और सुधारक आकर समाज की नकेल पकड़ उसे ठीक मार्ग पर ला देता है। भारतवर्ष के इतिहास में तो वह बात और भी सही है। इसीलिए गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा था कि "जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब अधर्म को हटाने के लिए मैं अवतरित होता हूँ।" महान् सुधारक ईश्वर के अंश ही होते है और उसी की प्रेरणा से वह समाज को धर्म के राजमार्ग पर लाते हैं। समाज की स्थिरता और दृढ़ता के लिए आवश्यक है कि वह धर्म की राह पकड़े। यह धर्म क्या है ? मेरी समझ में धर्म वही है, जिससे समाज का अस्तित्व बने। जिस चलन से समाज विशृंखल हो और उसकी इकाई को ठेस लगे, वह अधर्म है। समाज को शृंखलाबद्ध रखने के लिए और उसके अंगों-प्रत्यंगों में एकता और सहानुभूति बनाये रखने के लिए धर्म के नियम बनाये जाते हैं। यद्यपि समाज की गति के साथ इन नियमों में परिवर्तन भी होता रहता है, फिर भी कुछ नियम मौलिक होते हैं जो सदा ही समान रहते है और उनके अकुलित होने पर समाज में शिथिलता आ जाती है, अनाचार बढ़ता है और समाज का अस्तित्व ही नष्ट होने लगता है। ये नियम सदाचार कहलाते है और हर युग तथा काल में एक समान ही रहते हैं। शास्त्रों में धर्म के दस लक्षणों का वर्णन है। ये लक्षण मौलिक हैं और उनमे उथल-पुथल होने से समाज की स्थिति ही खतरे में पड़ जाती है। सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि ऐसे ही नियम हैं जो समाज के आरम्भ से आज तक और भविष्य में समाज के जीवन के साथ सदैव ही मान्य होंगे और उनमें श्रद्धा घटने पर या उनके विरुद्ध आचरण होने पर समाज मिट जायेगा। इसीलिए पूर्वकाल से निरन्तर समाज-सुधारकों तथा गुरुजनों का संकेत सदैव इन नियमों के पालन की ओर रहा है और जब भी सामुदायिक रूप से व्यक्तियों ने इनके विरुद्ध आचरण किया है; सुधार की आवाज तेज हुई है और कोई बड़ा नेता उत्पन्न हुआ है जिसने समाज की गति को फिर धर्म की ओर मोड़ दिया है।

वैदिक काल में वेदों और उपनिषदों में सदाचार और धर्म के कुछ नियम बनाये गए। उपनिषदों ने आचरण पर बल दिया और मोक्ष या निर्वाण को व्यक्ति के कर्मों पर अवलम्बित माना। परन्तु यह रास्ता कठिन था, अतः लोगों ने एक सहज मार्ग को खोज निकाला और यज्ञादि के फल पर भरोसा करके अपने और परमात्मा के बीच पुरोहित के माध्यम को स्वीकार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि यज्ञों की भरमार होने लगी और सभी प्रकार की बलि दी जाने लगी। हिंसा का बोलबाला हुआ और धर्म केवल ढोंग रह गया। यह भावना मनुष्य के जीवन के दूसरे अंशों में भी व्याप्त हो गई और पारस्परिक कलह, राज्यों के झगड़े, लड़ाई और अत्याचार का जोर हुआ। सामाजिक सम्बन्धों में स्थिरता के स्थान पर अस्थिरता आने लगी और सैन्य या पाशविक बल के आधार पर साम्राज्य बने तथा विभिन्न वर्गों के सम्बन्धों में भी यही आधार होने लगा जिससे निर्बल और पिछड़े हुए वर्ग पद-दलित हुए और उनके अधिकारों को क्षति पहुँची। ऐसे समय पर दो महापुरुषों ने इस देश में जन्म लिया, भगवान् महावीर तथा गौतम बुद्ध। उन्होंने धर्म के सच्चे तत्त्वों का विश्लेषण किया और समाज की दृष्टि बाह्य रूप से हटा कर पुनः मौलिक नियमों की ओर आकृष्ट की। आचरण पर बल दिया गया और निर्वाण को, समाज में मनुष्य के पारस्परिक व्यवहार पर ही प्राप्य बताया। हिंसा से हट कर अहिंसा में आस्था हुई

और अशोक ने इस सदाचरण को ही राज्य का धर्म बनाया। व्यक्ति का अपने परिवार, अपने पड़ौसी और समाज के प्रति क्या कर्तव्य है, यह अशोक ने पूर्ण रूप से अंकित किया और अहिंसा को शासन-दण्ड बनाया। समाज फिर धर्म-मार्ग की ओर उन्मुख बना। परन्तु इस अवस्था में पुनः परिवर्तन हुआ और सदाचरण की बागडोर फिर ढीली पड़ने लगी। बुद्ध और महावीर के अनुयायी ही उस सच्चे मार्ग से विचलित होने लगे और धर्म के सच्चे तत्त्वों को भूल कर पुनः कर्म-काण्ड में लिप्त हुए। मठों और मन्दिरों के निर्माण, व्रतों और बाहरी लिबास को ही सब कुछ माना गया, जिससे आचरण में शिथिलता आयी। समाज ढीला पड़ने लगा और फिर आपसी सम्बन्ध बिगड़ने लगे। राजनीतिक स्तर पर साम्राज्यों का बनना-बिगड़ना सैनिक बल पर ही आधारित था और देश की एकता को हानि पहुँची। हर्ष के काल में यह भावना उत्तरोत्तर और प्रबल होती गई तथा देश पर वाह्य आक्रमण हुए। देश के भीतर युद्धों की परम्परा चल पड़ी और विदेशी धर्म का भी प्रादुर्भाव हुआ। जनसमूह घबड़ा उठा और सच्चे मार्ग को पाने के लिए छटपटा उठा। इस काल में अनेक धर्म-सुधारक और नेता देश में अवतरित हुए जिनका उपदेश फिर यही था कि अपना आचरण ठीक करो, भक्ति-मार्ग का अवलम्बन करो और पारस्परिक सहानुभूति, सामंजस्य और सहिष्णुता को बढ़ाओ जिससे मत-मतान्तरों के झगड़ों से ऊपर उठ कर सत्य-मार्ग का आश्रय लिया जाये। अत्याचार से इसी मार्ग द्वारा मुक्ति मिल सकती थी।

शंकराचार्य, रामानुज, रामानन्द, कबीर, नानक, तुलसी, दादू आदि अनेक सुधारक कई सौ वर्षों में होते रहे और समाज को सीधे मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करते रहे, जिससे उस समय के शासन और राजनीति की कठोरताओं के बावजूद हिन्दू-समाज और व्यक्ति शान्ति और आत्म-विश्वास कायम रख सका।

देश पर पुनः एक संकट अठारहवीं शती में आया और इस बार विदेशी शासन और विदेशी संस्कृति ने एक जोरदार आक्रमण किया, जिससे भारतीय समाज और देश के धर्म का पूर्ण अस्तित्व ही नष्ट प्राय हो गया था। पश्चिम के ईसाई-सम्प्रदाय ने हिन्दुओं को अपने मत में लाने का घोर प्रयत्न किया और इस कार्य में मिशनरी लोगों को शासन से सर्वविध सहायता प्राप्त थी। उन्नीसवीं शती के आरम्भ में देश में अन्धविश्वास, आडम्बरपूर्ण धार्मिक आचरण और शास्त्रयुक्त नियम और आचरण के प्रति अश्रद्धा बढ़े, जिससे यहाँ के वासी पाश्चात्य धर्म और संस्कृति के सहज ही शिकार होने लगे। विशेषतः नई अंग्रेजी शिक्षायुक्त कलकत्ते का नवयुवक-समुदाय तो देश की सभी परम्पराओं, बुरी या भली, सभी का घोर विरोध करने लगा और ईसाई मत या नास्तिकता की ओर अग्रसर हुआ। इस सर्वग्रासी आयोजन से देश और संस्कृति को बचाने का श्रेय राममोहनराय, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द प्रभृति महान् सुधारकों और धर्मोपदेशकों को है, जिन्होंने भारतीय दर्शन और धर्म का शुद्ध रूप बलपूर्वक दर्शाया और उसके प्रति विश्वास और श्रद्धा की पुनःस्थापना की। इन सभी सुधारकों ने सामयिक कुरीतियों और संयमशून्य पद्धतियों का जोरदार खंडन किया और बताया कि उनके लिए शास्त्रों में और पुनीत वैदिक धर्म आदि में कोई भी पुष्टि नहीं है। उन्होंने वैदिक हिन्दू धर्मका पवित्र रूप सामने रखा और उसी का अनुगमन करने का उपदेश दिया। उस धर्म में आचरण पर बल दिया गया; ज्ञान को सर्वोपरि माना गया; और मनुष्य अपने शुभ कर्मों द्वारा अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है, इस तथ्य को बताया गया। इस प्रकार शाश्वत, सनातन धर्म केवल पाखंड और पोपलीला न होकर बुद्धिसिद्ध (rational) और समाज के लिए कल्याणकारी है, इस बात को दर्शाया गया। इन सुधारकों के यत्न से देश की संस्कृति जागृत हुई और जन समुदाय में नई चेतना और आत्मविश्वास का विकास हुआ, जिससे राष्ट्रीयता का जन्म हुआ और देश स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर हुआ।

इस शताब्दी के आरम्भ में जिस समय राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ रहा था और हिंसा की प्रवृत्ति प्रबल हो रही थी, उस समय महात्मा गांधी ने उसकी बागडोर सँभाली और आन्दोलन को अहिंसात्मक मार्ग पर चलाया और सत्य व सदाचार पर जोर दिया; क्योंकि इनके बिना स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता है। त्याग सत्य का प्रेरक है और सदाचार का प्रणेता। इसी त्याग पर गांधीजी ने बल दिया और सत्याग्रह का मार्ग दिखा कर देश के जन-समुदाय को राष्ट्रहित के लिए त्याग की ओर प्रेरति किया। जहाँ त्याग और सेवा प्रमुख कर्तव्य हैं, वहाँ ऊँच-नीच का भेद, छोटे-बड़े और अफसर-मातहत की संज्ञा का ही लोप हो जाता है और समाज में एकता, समता और सद्-व्यवहार का आधिपत्य हो जाता है। बिना इन गुणों के समावेश के समाज सुसंगठित नहीं होता। इस महान् तथ्य को महात्मा गांधी

ने देश के सामने रखा और इसी के आधार पर देश को स्वतन्त्र किया। उनके निर्वाण के बाद जब भारतवर्ष सर्वसत्ता-सम्पन्न गणराज्य बना और देश में विकास की योजनाएं बनायी गई, तब लाभकारी कार्यों की कमी न रह गई और विभिन्न वर्गों की उन्नति के नये रास्ते खुल गये। देश को विकास की ओर ले जाना था, उसकी आर्थिक उन्नति करना था, जिससे सम्पूर्ण जनता का उत्थान हो और उसकी आर्थिक दशा सुधरे। इस योजना के लिए आवश्यक था कि सच्चरित्र, परहित-रत, कर्तव्य-परायण, सदाचारी नेता, हाकिम, व्यापारी, शिक्षक, कारीगर आदि देश के विकास की बागडोर अपने हाथ में लें। यदि इन वर्गों में सदाचार की कमी हुई तो देश का हित न होकर अहित हो जाये और देश उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। दुर्भाग्यवश जिस समय यह सुअवसर आया और आशा हुई कि अब इतने वर्षों के कठोर परिश्रम और त्याग के फलस्वरूप देश की उन्नति होगी और गरीबी मिटेगी, उस समय देखा गया कि कर्मचारियों, नेताओं, व्यापारियों आदि में अनाचार और स्वार्थ की वृद्धि हो रही है; क्योंकि अब इनके लिए नित्य नये अवसर आने लगे। अगर यही क्रम बना रहा तो नई योजनाओं का कोई लाभ न होगा और उनकी सफलता संदिग्ध बन जायेगी। देश में चारों ओर यही आवाज उठने लगी कि शासन को इस प्रकार के मगरमच्छों से बचाया जाये और भ्रष्टाचार (Corruption) को दूर किया जाये।

ऐसे समय में आचार्य तुलसी ने अपने अणुव्रत-आन्दोलन को प्रबल किया और अनेक वर्गों के सदस्यों को पुनः सदाचार की ओर प्रेरित किया। आचार्य तुलसी ने यह काम पहले ही शुरू कर दिया था, पर इसकी प्रधानता और गति-शीलता स्वतंत्रता के बाद, विशेष रूप से बढ़ी। इनका यह आन्दोलन अपने ढंग का निराला है। धर्म के सहारे व्यक्ति को ये व्रती बनाते हैं और उसको इस प्रकार बल देकर कुमार्ग और कुरीतियों से अलग करके सदाचार की ओर अग्रसर करते हैं। यह व्रत छोटे-छोटे होते हैं, पर इनका प्रभाव बहुत ही गम्भीर होता है, जो व्यक्ति तथा समाज के जीवन में क्रान्ति ला देता है। व्यापारियों, सरकारी कर्मचारियों, विद्यार्थियों आदि में यह आन्दोलन चल चुका है और इसके प्रभाव में सहस्रों व्यक्ति आ चुके हैं। आज इसकी महत्ता स्पष्ट न जान पड़े, पर कल के समाज में इसका असर पूरी तरह दिखाई पड़ेगा, जब समाज पुनः सदाचार और धर्म द्वारा अनुप्लावित होगा और भविष्य में आज की बुराइयों का अस्तित्व न होगा। आचार्य तुलसी और उनके शिष्य मुनिगण का कार्य भविष्य के लिए है और नये समाज के संगठन के लिए सहायक है। इसकी सफलता देश के कल्याण के लिए है। आशा है, यह सफल होगा और आचार्य तुलसी सुधारकों की उस परम्परा में, जो इस देश के इतिहास में बराबर उन्नति लाते रहे हैं, अपना मुख्य स्थान बना जायेंगे। उनके उपदेश और नेतृत्व से समाज गौरवशील बनेगा।

मेरा सम्पर्क

का० यशपाल

लाहौर-षड्यन्त्र के शहीद सुखदेव और मैं लाहौर के नेशनल कालेज में सहपाठी थे। एक दिन लाहौर जिला-कचहरी के समीप हमें दो श्वेताम्बर जैन साधु सामने से आते दिखाई दिये। हम दोनों ने मन्त्रणा की कि इन साधुओं के अहिंसा-व्रत की परीक्षा की जाये। हम उन्हें देखकर बहुत जोर से हँस पड़े। सुखदेव ने उनकी ओर संकेत करके कह दिया, "देखो तो इनका पाखंड !" उत्तर में हमें जो क्रोध-भरी गालियाँ सुनने को मिलीं, उससे उस प्रकार के साधुओं के प्रति हमारी अश्रद्धा, गहरी विरक्ति में बदल गई।

मेरी प्रवृत्ति किसी भी सम्प्रदाय के अध्यात्म की ओर नहीं है। कारण यह है कि मैं इहलोक की पार्थिव परि-स्थितियों और समाज की जीवन-व्यवस्था से स्वतन्त्र मनुष्य की, इस जगत् के प्रभावों से स्वतन्त्र चेतना में विश्वास नहीं कर सकता। अध्यात्म का आधार तथ्यों से परखा जा सकने वाला ज्ञान नहीं है, उसका आधार केवल शब्द-प्रमाण ही है। इसलिए मैं समाज का कल्याण आध्यात्मिक विश्वास में नहीं मान सकता। अध्यात्म में रति, मुझे मनुष्य को समाज से उन्मुख करने वाली और तथ्यों से भटकाने वाली स्वार्थ परक आत्मरति ही जान पड़ती है। इसलिए अणुव्रत-आन्दोलन के लक्ष्यों में, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति की अपेक्षा आध्यात्मिक उन्नति को महत्त्व देने की घोषणा से, मुझे कुछ भी उत्साह नहीं हुआ था।

जैन-दर्शन का मुझे सम्यक् परिचय नहीं है। 'काकचंचु'-न्याय से ऐसा समझता हूँ कि जैन-दर्शन ब्रह्माण्ड और संसार का निर्माण और नियमन करने वाली किसी ईश्वर की शक्ति में विश्वास नहीं करता। वह कभी अजर-अमर आत्मा में विश्वास करता है, इसलिए जैन मुनियों और आचार्यों द्वारा आध्यात्मिक उन्नति को महत्त्व देने के आन्दोलन की बात मुझे बिलकुल असंगत और निरर्थक जान पड़ी। ऐसे आन्दोलन को मैं केवल अन्तर्मुख-चिन्तन की आत्मरति ही समझता था।

दो-तीन वर्ष पूर्व आचार्य तुलसी लखनऊ में आये थे। आचार्यश्री के सत्संग का आयोजन करने वाले सज्जनों ने मुझे सूचना दी कि आचार्यश्री ने अन्य कई स्थानीय नागरिकों में मुझे भी स्मरण किया है। लड़कपन की कटु स्मृति के बावजूद उनके दर्शन करने के लिए चला गया था। उस सत्संग में आये हुए अधिकांश लोग प्रायः आचार्य तुलसी के दर्शन करके ही सन्तुष्ट थे। मैंने उनसे संक्षेप में आत्मा के अभाव में भी पुनर्जन्म के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे थे और उन्होंने मुझसे समाजवाद की भावना को व्यावहारिक रूप दे सकने के सम्बन्ध में बात की थी।

आचार्य का दर्शन करके लौटा, तो उनकी सौम्यता और सद्भावना के गहरे प्रभाव से सन्तोष अनुभव हुआ। अनुभव किया, जैन साधुओं के सम्बन्ध में लड़कपन की कटु स्मृति से ही धारणा बना लेना उचित नहीं था।

दो बार और—एक बार अकेले और एक बार पत्नी-सहित आचार्य तुलसी के दर्शन के लिए चला गया था और उनसे आत्मा के अभाव में भी पुनर्जन्म की सम्भावना के सम्बन्ध में बातें की थीं। उनके बहुत संक्षिप्त उत्तर मुझे तर्क-संगत लगे थे। उस सम्बन्ध में काफी सोचा; और फिर सोच लिया कि पुनर्जन्म हो या न हो, इस जन्म के दायित्वों को ही निबाह सकूँ, यही बहुत है।

एक दिन मुनि नगराजजी व मुनि महेन्द्रकुमारजी ने मेरे मकान पर पधारने की कृपा की। उनके आने से पूर्व उनके बैठ सकने के लिए कुर्सियाँ हटा कर एक तख्त डाल कर सीतलपाटी बिछा दी थी। मुनियों ने उस तख्त पर बिछी सीतलपाटी पर आसन ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। तख्त हटा देना पड़ा। फर्श की दरी भी हटा देनी पड़ी। तब

मुनियों ने अपने हाथ में लिये चँवर से फर्श को झाड़ कर अपने आसन बिछाये और बैठ गये। मैं और पत्नी उनके सामने फर्श पर ही बैठ गए।

दोनों मुनियों ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से शोषणहीन समाज की व्यवस्था के सम्बन्ध में मुझसे कुछ प्रश्न किये। मैंने अपने ज्ञान के अनुसार उत्तर दिये। मुनियों ने बताया कि आचार्यश्री के सामने अणुव्रत-आन्दोलन की भूमिका पर एक विचारणीय प्रश्न है। अणुव्रत में आने वाले कुछ एक उद्योगपति अपने उद्योगों को शोषण-मुक्त बनाना चाहते हैं, पर अब तक उन्हें एक समुचित व्यवस्था इस दिशा में नहीं दीख रही है। लाभ-विभाजन का मान-दण्ड क्या हो, यह एक प्रश्न अणुव्रती नहीं सुलझा पा रहे हैं। इस दिशा में सन्तुलन बिठाने के लिए वे अपना लाभांश कम करने के लिए भी तैयार हैं।

मैंने अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से उत्तर दिया कि उद्योग-धन्धों से यदि लाभ नहीं होगा, तो हानि होगी। उद्योग-धन्धों अथवा उत्पादन का तो प्रयोजन ही यह होता है कि उत्पादन में श्रम और व्यय के रूप में जितना मूल्य लगे उससे अधिक मूल्य का फल हो। सेर-भर गेहूँ बोकर सेर-भर गेहूँ पाने के लिए खेती नहीं की जाती। शोषण उद्योग-धन्धों से होने वाले लाभ के कारण नहीं होता, बल्कि वह लाभ एक व्यक्ति द्वारा ही हथिया लिया जाने के कारण या लाभ का वितरण सब श्रम करने वालों में समान रूप से न किया जाने के कारण होता है। अणुव्रती जनहित के विचार से उद्योग-धन्धे आरम्भ करें तो उनकी सफलता न्यूनतम व्यय और अधिक-से-अधिक उत्पादन में होगी। उन उद्योग-धन्धों द्वारा श्रमिकों को उचित जीविका देने के बाद भी यथेष्ट लाभ होना चाहिए, परन्तु वह लाभ किसी व्यक्ति-विशेष की सम्पत्ति नहीं, बल्कि श्रमिकों की ही सम्मिलित सम्पत्ति मानी जानी चाहिए। साधनों को कायम रखने और बढ़ाने के अतिरिक्त वह लाभ-धन उन उद्योग-धन्धों में लगे हुए श्रमिकों को शिक्षा, चिकित्सा तथा सांस्कृतिक सुविधाएं देने के लिए उपयोग किया जा सकता है। परन्तु उद्योग-धन्धों से लाभ अवश्य होना चाहिए; समाजवादी देशों में ऐसा ही किया जाता है।

मेरी बात से मुनियों का समाधान नहीं हुआ। उन्होंने कहा—जिस प्रणाली और व्यवस्था में लाभ का उद्देश्य रहेगा, उस व्यवस्था से निश्चय ही शोषण होगा। वह व्यवस्था और प्रणाली अहिंसा और पारस्परिक सहयोग की नहीं हो सकेगी।

मैं मुनियों का समाधान नहीं कर सका; परन्तु इस बात से मुझे अवश्य सन्तोष हुआ कि अणुव्रत-आन्दोलन के अन्तर्गत शोषण-मुक्ति के प्रयोगों पर सोचा जा रहा है।

मैंने मुनिजी से अनुमति लेकर एक प्रश्न पूछा—आप अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़ कर समाज-सेवा करना चाहते हैं; ऐसी अवस्था में आपका समाज और सामाजिक व्यवहार से पृथक् रहकर जीवन बिताना क्या तर्कसंगत और सहायक हो सकता है? इसमें वैचित्र्य के अतिरिक्त कौन सार्थकता है? इससे आपको असुविधा ही तो होती होगी।

मुनिजी ने बहुत शान्ति से उत्तर दिया—हमें असुविधा हो, तो उसकी चिन्ता हमें होनी चाहिए। हमारे वेश अथवा कुछ व्यवहार आपको विचित्र लगे हैं, तो उन्हें हमारी व्यक्तिगत रुचि या विश्वास की बात समझ कर उसे सहना चाहिए। हमारे जो प्रयत्न आपको समाज के लिए हितकारी जान पड़ते हैं, उनमें तो आप सहयोगी बन ही सकते हैं।

मुनिजी की बात तर्कसंगत लगी। उनके चले जाने के बाद खयाल आया कि यदि किसी की व्यक्तिगत रुचि और सन्तोष, समाज के लिए हानिकारक नहीं है, तो उनसे खिन्न होने की क्या जरूरत? यदि मैं दिन-भर सिगरेट फूंकते रहने की अपनी आदत को असामाजिक नहीं समझता, उस आदत को क्षमा कर सकता हूँ, तो जैन मुनियों के मुख पर कपड़ा रखने और हाथ में चँवर लेकर चलने की इच्छा से ही क्यों खिन्न हूँ? आचार्य तुलसी की प्रेरणा से अणुव्रत-आन्दोलन यदि आध्यात्मिक उन्नति के लिए उद्बोधन करता हुआ भी जनसाधारण के पार्थिव कष्टों को दूर करने और उन्हें मनुष्य की तरह जीवित रह सकने में भी योगभूत बनता है तो मैं उसका स्वागत करता हूँ।

तुम ऐसे एक निरंजन

श्री कन्हैयालाल सेठिया

तुम ऐसे एक विसर्जन
जो सृजन लिये चलते हो !

कब घन अपनी बूंदों से
अपनी ही तृषा बुझाता ?
कब तरु अपने सुमनों से
अपना शृङ्गार सजाता ?

तुम ऐसे एक समर्पण
जो ग्रहण लिये चलते हो !

देते हो दान विभा का
लेते हो जग की ज्वाला,
तुम सुधा बांट कर शिव सम
पीते हो विष का प्याला,

तुम ऐसे एक निरंजन
जो भुवन लिये चलते हो !

तुम महामुक्ति के पंथी
बन्धन की महत्ता कहते,
तुम आत्म रूप अपने में
पर देह रूप से रहते ।

तुम ऐसे एक विचक्षण
जो द्वैत बने दलते हो !

तुम ऐसे एक विसर्जन
जो सृजन लिये चलते हो !

अचार्यश्री तुलसी मेरी दृष्टि में

सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी

आचार्यश्री तुलसी निःसन्देह एक महापुरुष हैं। महापुरुष कोई जन्म से नहीं होता, वंश-परम्परा, समाज या स्थान उसे महान् नहीं बनाता। व्यक्ति अपनी चारित्रिक प्रवृत्ति से ही महान् होता है। उसकी प्रत्येक क्रिया एक अवि-च्छिन्न सत्य से ओत-प्रोत होती है, किन्तु उस क्रिया का प्रयोग होता है—सर्वजन-हिताय। हित का जहाँ तक प्रश्न है, वह मनोनीत नहीं होता। उसे सीमाओं की परिधि में भी नहीं बाँधा जा सकता और जो रेखांकित होता है, सम्भवतः वह विशुद्ध हित भी न हो। हित सदा उन्मुक्त रहा है। उसकी कसौटी आत्म-भावना है। जहाँ निर्विवाद निर्ममत्व, निस्वार्थता हो, वही असंदिग्ध क्रिया हित है। सीधे शब्दों में जो क्रिया जीवन नैर्मल्य का प्रतीक है, औरों को जिससे आत्म-संबल मिले; वही सर्वोत्तम हित है। आचार्यश्री तुलसी सर्वजनहिताय बढ़ रहे हैं। उनका वह बहुमुखी व्यक्तित्व सबके सामने है।

मुझे आज भी वे दिन याद हैं, जिन दिनों आचार्यश्री तुलसी का जन्म हुआ था। उस समय मेरी आयु छः वर्ष को पार कर चुकी थी। अपने नन्हे भाई को देखने के लिए मन में तीव्र उत्सुकता थी। जन्म के तीसरे ही दिन मैंने सबसे पहले तुलसी को देखा। एक पीत वस्त्र में लिपटा हुआ गुलाबी फूलों का गुच्छा-सा, सिंदूर ढालते से नन्हे-नन्हे पैर, खिलता हुआ चेहरा, एक प्रभा-सी सामने आई। हर्ष-विभोर मन नाच उठा। जी चाहता था कि उसे गोद में ले लूँ, पर नहीं मिला। नामकरण के अवसर पर घर में एक नवीन चहल-पहल थी। हम तुलसी, तुलसी पुकारने लगे।

तुलसी मुझे बहुत भाता। मैं नहीं भूल रहा हूँ, जब तुलसी दो वर्ष का हुआ होगा, गडाली चलने और खड़ी करने ही लगा था; न जाने किस कारण से, आपसी खींचातान में या गिर जाने से उसका एक पैर चढ़ गया। तुलसी बहुत रोया, बहुत रोया। डाक्टर को बुलाया, वैद्यों को बुलाया, सयाने को बुलाया, पर पैर नहीं उतरा।

हमारे मामा श्री नेमीचन्दजी कोठारी अच्छे अनुभवी व्यक्ति थे। मैं उन्हें बुला लाया। माँ ने कहा—भाई तुलसी का पैर'''। अब ''मामाजी ने लोहे का एक भारी-सा कड़ा तुलसी के पैरों में पहना दिया। उसको गोदी में लिये लिये रखना होता। सारी-सारी रात माताजी खड़ी-खड़ी निकालती। धीरे-धीरे कुछ दिनों में पैर बोझ के खिचाव से अपने आप पूर्व-वत् हो गया। उन दिनों जो मानसिक कष्ट होता, वह अनुभव की ही बात है। तुलसी को रोता देख मैं रोता तो नहीं, पर बाकी कुछ नहीं रहता। मैंने भी उन दिनों घण्टों घण्टों तक तुलसी को गोद में रखा।

मुझसे छोटा भाई सागर बड़ा ही तूफानी था। जब तब वह तुलसी को तंग करता, पर तुलसी नहीं झलकता। बहुधा तुलसी की ओर से मैं डटता और सागर के तूफानों से बचाता। कभी-कभी तो तुलसी के लिए मुझे झड़प भी करनी होती। प्रायः तुलसी बच्चों में नहीं खेलता। एकान्त-प्रियता और अपने आपमें व्यस्त रहना उसका सहभावी धर्म-सा था। बाल्य-चपलता जो सहज है और होनी भी चाहिए, पर तुलसी की चपलता उससे सर्वथा भिन्न थी। उन दिनों पुस्तकें बहुत कम थीं। प्रायः विद्यार्थी स्लेट (पाटी) बस्ता ही रखते थे। तुलसी बरते का शौकीन था। मैं उसे बहुधा छोटे-छोटे बरतों के टुकड़े दिया करता और तुलसी दिन भर उन टुकड़ों से आँगन में उल्टी-सीधी लाइनें खींचते रहता या एकान्त पा अपने आप गुनगुनाना ही उसकी चपलता थी। निष्कारण न कभी हँसना, न रोना और न बोलना तुलसी का स्वभाव था।

एक दिन तुलसी बरते से कान कुरेद रहा था। किसी अचानक धक्के से बरता अन्दर टूट गया। सुनार के यहाँ

बरते को समाणी से निकालने का प्रयत्न किया, पर नहीं निकला। डाक्टर के यत्न भी असफल रहे। शायद तुलसी समस्त विद्या को मस्तिष्क में लिख लेना चाहता हो, इसीलिए कान के द्वार से उसे अपने अन्दर प्रवेश करवाया हो। उसी कारण से कान का परदा विकृत हो गया। उसमें रसी, मवाद-पीप पड़ गई, कान बहने लगा। डाक्टरों ने सलाह दी कि इसे पिच-कारी से साफ करो। एक दिन कान में पिचकारी मारते-मारते बरता बाहर निकल पड़ा। तब से कान में थोड़ी-सी कमी रह गई।

मैं इस बीच कलकत्ता यात्रा को गया। तुलसी उदास था, खिन्न-सा डबडबाई आँखें लिये मुझे पहुँचाने आया। वह कितना स्नेहिल, मृदु और मुंह लगा था। भाई का अलगाव बहुत दिनों तक अखरा। मैं पुनः लौटा। तुलसी के लिए कुछ खिलौने लाया, किन्तु तुलसी बहुत नहीं खेला। खेलना पसन्द भी कम था। एक पढ़ने की धुन में वह मग्न रहता।

तुलसी बचपन में जितना सरल, गम्भीर और धैर्यशील था, उतना ही जिद्दी भी था। जिद्दी इस माने में था कि जब तक उसे कुछ नहीं जचता, वह नहीं मानता, चाहे कोई कितना ही समझाओ और कहो। जब समझ में आती तो उसका आग्रह वहीं समाप्त हो जाता। कभी-कभी अति आग्रह होता तो वह खंभा पकड़ कर बैठ जाता।

जब वह थोड़ा समझने लगा, चिन्तन जैसी स्थिति में आया, मैंने प्रव्रज्या ले ली। तेरापंथ के अष्टमाचार्य श्रीमद् कालूगणी के चरण कमलों में बैठने का सौभाग्य मिला। उनके दयार्द्र हृदय में थोड़ा-सा स्थान मेरे लिये भी सुरक्षित था। उनकी कृपा और वात्सल्य शब्दों में नहीं, आँखों में तैरता है। आज भी वह दिग्गज मूर्ति ज्यों की त्यों आँखों के आगे सदृश हो उठती है।

प्रव्रजित होने के डेढ़ साल बाद श्रद्धेय गुरुदेव ससंघ लाडनूं समवसरित हुए। वहाँ मुझे तुलसी की मनःस्थिति आँकने को मिली। एकान्त वार्तालाप किया। उसकी भावना को कसौटी पर चढ़ाने की सोचने लगा। वह सशंक मनोवृत्ति, भद्रता और वाल्य-भीरुता वश एक-दो बार तो मेरी बातों को टालता रहा, पर टालने से मतलब हल नहीं होता था। तुलसी ने साहस बटोर कर हृदय खोल दिया। उसकी दृढ़ता हृदय को चिह्नित कर गई। मैं गुरुदेव के समक्ष अपनी और तुलसी की भावना व्यक्त करने लगा। मुस्कराहट ने उत्साह बढ़ाया। तुलसी साध्वोचित आचार-प्रक्रिया सीखने लगा। अनेकों प्रयत्न किये, माताजी राजी हुई, पर बड़े भाई श्री मोहनलालजी के बिना काम बन नहीं सकता था। वे बडे कड़े और निश्चय के पक्के जो थे। बंगाल से उन्हें संवाद द्वारा बुलाया गया। कई दिनों तक वार्तालाप चला, अन्त में उन्होंने स्वयं तुलसी की परीक्षाएं की। बहिन लाडांजी के साथ ही दीक्षा-संस्कार निश्चित हुआ और वि० सं० १९८२ पोष कृष्णा ५ को दीक्षा-संस्कार सम्पन्न हुआ।

एकादश वर्षीय बालक तुलसी अब मुनि तुलसी के रूप में परिवर्तित हुआ। वे प्रारम्भ से ही कृशकाय और तीव्र प्रतिभा के धनी थे। संयम साधना को मुखरित करने का माध्यम अध्ययन बना। वे दत्तचित से अध्ययन में जुट गये। एक गुरुकुल के विद्यार्थी की तरह वे रात को सबके सोने पर सोते और सबसे पहले जगते, उठते। कह देना चाहिए रात-दिन एक कर दिया। जब देखो, पुस्तक हाथ में रहती और अधीत पाठ-आवर्त्तन सतत चालू रहता।

धीरे-धीरे तुलसी मुनि छात्र से अध्यापक की स्थिति में आये, फिर भी उनमें शासक भाव नहीं जागे। सत्ता का व्यामोह उन्हें नहीं सताया। मैंने कभी नहीं देखा अध्यापक तुलसी ने मुनि छात्रों के साथ हास्य-विनोद या व्यर्थ समय का अपव्यय किया हो। पूरी छात्र-मण्डली तुलसी मुनि सहित एक कमरे में बैठ जाती। पहरे पर दरबान बन कर मैं बैठता। जिस श्रम से तुलसी मुनि ने ज्ञानार्जन किया, वह किसी क्षयोपलब्धि से कम नहीं था।

मैं कभी-कभी तुलसी मुनि की त्रुटियाँ ढूँढने के लिए लुक-छिप कर जाया करता। मेरा आशय स्पष्ट था—मैं अपने भाई को नितान्त निर्दोष देखना चाहता था। एक दिन तुलसी मुनि मेरे पास आये और बोले—आपको मेरे प्रति क्या अविश्वास है, आप लुक-छिप कर क्या देखा करते हैं? इतना पूछने का साहस सम्भवतः उन्होंने कई दिनों के चिन्तन के बाद किया होगा। मैंने अधिकार की भाषा में कहा—तुम्हें कोई जरूरत नहीं। मुझे जैसा उचित जचेगा, करूँगा, देखूंगा, पूछूंगा। स्पष्ट आऊँ या लुक-छिप, तुम्हें क्या प्रयोजन? मैं मानता हूँ तुलसी मुनि ने जो मेरा सम्मान रखा, आज का विद्यार्थी क्या अपने बड़े का रखेगा? न विशेष मैं बोलता और न वे। ऊपर में बीस-बीस छात्र उनके छात्रावास में रहे,

पर तुलसी के प्रति सब में समान आदर भाव और श्रद्धा देखी।

एक दिन मैंने तुलसी मुनि से कहा—तुलसी ! तुम अपना समय औरों ही औरों के लिए देते रहोगे या स्वयं का भी कुछ करोगे ? पहले अपना पाठ पूरा करो फिर औरों को कराओ। मेरी इस भावना को तटस्थ छात्रों ने विपरीत लिया और यदा-कदा यह भी सामने आया—ये चम्पालालजी हमें पढ़ाने के लिए आचार्यश्री को टोकते हैं, किन्तु मेरा आशय था कि पहले स्वयं अध्ययन नहीं करोगे तो फिर विशेष जिम्मेवारी आने पर नहीं होगा। तुलसी मुनि ने बड़े विवेक से उसका उत्तर ठीक में दिया।

गुरुदेव श्री कालूगणी का वह वात्सल्य भरा आदेश आज भी कानों में गूँज उठता है—चम्पालाल ! यदि तुलसी में कोई कसर रही तो दण्ड तुझे मिलेगा। मैं उन हृदय भरे शब्दों का विस्तार कैसे करूँ; नहीं आता।

आज भी लिखते-लिखते ऐसे सैकड़ों संस्मरण मस्तिष्क में दौड़ रहे हैं। एक के शब्दों में आबद्ध होने से पूर्व ही दूसरा और सामने आ खड़ा होता है। उसे लेना चाहता हूँ, इतने में तीसरा उससे अधिक प्रिय लगने लग जाता है। लेखनी लिख नहीं पाती।

एक दिन श्रीकालूगणी ने मुझे आदेश फरमाया—तुलसी को बुलाओ। मैं बुला लाया। अच्छा तुम दरवाजे पर बाहर बैठ जाओ। मैं बैठ गया। कई दिनों तक यह क्रम चलता चला। उन दिनों गुरुदेव रुग्णावस्था में थे। उन्होंने अपने उत्तरवर्ती का भार हल्का करना शुरू कर दिया था। तुलसी दिन-प्रतिदिन और विनयावनत होते गये।

एक दिन वह भी आया, जब मैंने अपने हाथों से सूर्योदय होते-होते स्याही निकाली और एक श्वेत पत्र, लेखनी व मसीदान ले गुरुदेव के श्री चरणों में उपस्थित हुआ। गंगापुर मेवाड़ का वह रंगभवन, उसके मध्यवर्ती उस विशाल हाल में ईशानोन्मुख पूज्य गुरुदेव बिराजे और अपना उत्तराधिकार तुलसी मुनि को समर्पित किया।

वि० सं० १९९३ भाद्रव शुक्ला ९ को आप श्री ने आचार्य-भार सँभाला। तब से अब तक की प्रत्येक प्रवृत्ति से मैं ही क्यों समूचा साहित्य-जगत् किसी न किसी रूप में परिचित है ही। आज उनके शासन काल को पूरे पच्चीस वर्ष हो चले हैं। संघ की उदीयमान अवस्था का यह असाधारण काल रहा है।

मानवता के पोषक, प्रचारक व उन्नायक

श्री विष्णु प्रभाकर

किसी व्यक्ति के बारे में लिखना बहुत कठिन है। कहूँगा, संकट से पूर्ण है। फिर किसी पंथ के प्राचार्य के बारे में। तब तो विवेकबुद्धि की उपेक्षा करके श्रद्धा के पुष्प अर्पण करना ही सुगम मार्ग है। इसका यह अर्थ नहीं होता कि श्रद्धा सहज होती ही नहीं; परन्तु जहाँ श्रद्धा सहज हो जाती है, वहाँ प्रायः लेखनी उठाने का अवसर ही नहीं आता। श्रद्धा का स्वभाव है कि वह बहुधा कर्म में जीती है। लेखनी में अक्सर निर्णायक बुद्धि ही जागृत हो आती है और वही संकट का क्षण है। उससे पलायन करके कुछ लेखक तो प्रशंसात्मक विशेषणों का प्रयोग करके मुक्ति का मार्ग ढूंढ़ लेते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो उतने ही विशेषणों का प्रयोग उसकी विपरीत दिशा में करते हैं। सच तो यह है कि विशेषण के मोह से मुक्त होकर चिन्तन करना संकटापन्न है। वह किसी को प्रिय नहीं हो सकता। इसीलिए हम प्रशंसा अथवा निन्दा के अर्थों में सोचने के आदी हो गए।

फिर यदि लेखक मेरे-जैसा हो, तो स्थिति और भी विषम हो जाती है। आचार्यश्री तुलसी गणी जैन श्वेताम्बर तेरापंथ की गुरु-परम्परा के नवम पट्टधर आचार्य हैं और मैं तेरापंथी तो क्या, जैन भी नहीं हूँ। सच पूछा जाये तो कहीं भी नहीं हूँ। किसी मत, पंथ अथवा दल में अपने को समा नहीं पाता। धर्म ही नहीं, राजनीति और साहित्य के क्षेत्र में भी……। लेकिन यह सब कहने पर भी मुक्ति क्या सुलभ है! यह सब भी तो कलम से ही लिखा है। अब तर्क आश्वस्त करे या न करे, पराजित तो कर ही देना है। इसीलिए लिखना भी अनिवार्य हो उठता है।

विष अमृत बन सकता है ?

आज के युग में हम कगार पर खड़े हैं। अन्तरिक्ष-युग है। धरती की गोलाई को लेकर सुदूर व्यतीत में हत्याएं हुई हैं। उसी तथ्य को आज का मानव आँखों से देख आया है। इस प्रगति ने मानस की पटभूमि को आन्दोलित भी किया है। दृष्टि की क्षमता बढ़ी है। विवेक-बुद्धि भी जागृत हुई है, पर मानव का अन्तर-मन अभी भी वहीं है। हिंसा और घृणा की बात विवादास्पद मान कर छोड़ भी दें, लेकिन साम्प्रदायिकता और जातीयता, अर्थलोलुपता और मात्सर्य—ये सब उसे अभी पूरी तरह जकड़े हुए हैं। धर्म, मत अथवा पंथ में न हों, राजनीति और साहित्य में हों, तो क्या उनका विष अमृत बन सकता है? भले ही हम चन्द्रलोक में पहुँच जाएं अथवा शुक्र पर शासन करने लगें। उस सफलता का क्या अर्थ होगा, यदि मनुष्य अपनी मनुष्यता से ही हाथ धो बैठे? मनुष्यता सापेक्ष हो सकती है, परन्तु दूसरे के लिए कुछ करने की कामना में, अर्थात् 'स्व' को गौण करने की प्रवृत्ति में, सापेक्षता है भी, तो कम-से-कम। वहाँ स्व को गौण करना स्व को उठाना है।

आचार्यश्री तुलसी गणी के पास जाने का जब अवसर मिला, तब जैसे इस सत्य को हमने फिर से पहचाना हो। या कहें, उसकी शक्ति से फिर से परिचय पाया हो। जब-जब भी उनसे मिलने का सौभाग्य हुआ, तब-तब यही अनुभव हुआ कि उनके भीतर एक ऐसी सात्त्विक अग्नि है जो मानवता के हितार्थ कुछ करने को पूरी ईमानदारी के साथ आतुर है। जो अपने चारों ओर फैली अनास्था, आचरणहीनता और अमानवीयता को भस्म कर देना चाहती है।

कला में सौन्दर्य के दर्शन

पहली भेंट बहुत संक्षिप्त थी। किन्हीं के आग्रह पर किन्हीं के साथ जाना पड़ा। जाकर देखता हूँ कि शुभ्र-श्वेत

वस्त्रधारी, मँझले कद के, एक जैन आचार्य साधु-साध्वियों से घिरे हमारे प्रणाम को मधुर-मन्द मुस्कान से स्वीकार करते हुए आशीर्वाद दे रहे हैं। गौर वर्ण, ज्योतिर्मय दीप्त नयन, मुख पर विद्वत्ता का जड़ गाम्भीर्य नहीं, बल्कि ग्रहणशीलता का तारल्य देख कर आग्रह की कटुता धुल-पुछ गई। याद नहीं पड़ता कि कुछ बहुत बातें हुई हों; पर उनके शिष्य-शिष्याओं की कला-साधना के कुछ नमूने अवश्य देखे। सुन्दर हस्तलिपि, पात्रों पर चित्रांकन; समय का सदुपयोग तो था ही, साधुओं के निरालस्य का प्रमाण भी था। यह भी जाना कि यह साधु-दल शुष्कता का अनुमोदक नहीं है, कला में सौन्दर्य के दर्शन करने की क्षमता भी रखता है।

सौम्य और आग्रह-विहीन

दूसरी बार जोधपुर में मिलना हुआ। कोई उत्सव था, भाषण देने वालों और सुनने वालों की अच्छी-खासी भीड़ थी। स्वागत-सत्कार में भी कोई कमी नहीं थी। कुछ बहुत अच्छा नहीं लगा। भाषण और भीड़ से मुझे अरुचि है; और अगर स्वागत-सत्कार के पीछे सहज भाव नहीं है, तो वह भी एक बोझ बन कर रह जाता है। परन्तु यहीं पर आचार्यश्री तुलसी को जी भर कर पास से देखा। विचार-विनिमय करने का अवसर भी मिला। बहुत अच्छी तरह याद है कि रात को बाल-दीक्षा आदि कुछ प्रश्नों को लेकर आचार्यश्री से काफी स्पष्ट बातें हुई थीं। तभी पाया कि वे सौम्य और आग्रह-विहीन हैं। अहिंसा और अपरिग्रह के अपने मार्ग में उन्हें इतना सहज विश्वास है कि शंकालु का समाधान करने में मस्तिष्क पर कुछ अधिक जोर देना नहीं पड़ता। आलोचना में उत्तेजित नहीं होते। सहिष्णुता उनके लिए सहज है, इसीलिए उद्विग्नता भी नहीं है। है केवल एकाग्रता और आग्रह-विहीन पक्ष-समर्थन। वे कुशल वक्ता हैं। जो कुछ कहना चाहते हैं, बिना किसी आक्षेप के प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर देते हैं। आश्वस्त तो न तब हुआ था, न आज तक हो सका हूँ; परन्तु विराट मानवता में उनकी अटूट आस्था ने मुझे निश्चय ही प्रभावित किया था। वह अणुव्रत-आन्दोलन के जन्मदाता हैं। उनकी दृष्टि में चरित्र-उत्थान का वह एक सहज मार्ग है। कवि की भाँति मैं अणुव्रत की अणु-बम से काव्यात्मक तुलना नहीं कर सकता। करना चाहूँगा भी नहीं। उस सारे आन्दोलन के पीछे जो उदात्त भावना है, उसको स्वीकार करते हुए भी उसकी संचालन-व्यवस्था में मेरी आस्था नहीं है। परन्तु उन व्रतों का मूलाधार वही मानवता है, जो कालातीत है, अभिन्न है और है अजेय।

विश्व में सत्ता का खेल है। सत्ता, अर्थात् स्व की महिमा; इसीलिए वह अकल्याणकर है। इसी अकल्याण का दंश निकालने के लिए यह अणुव्रत-आन्दोलन है। इन सबका दावा है कि चरित्र-निर्माण द्वारा सत्ता को कल्याण कर बनाया जा सकता है; परन्तु मुझे लगता है कि उद्देश्य शुभ होने पर भी यह दावा ही सबसे बड़ी बाधा है। क्योंकि जहाँ दावा है, वहाँ साधन और साधन जुटाने वाले स्वयं सत्ता के शिकार हो जाते हैं, इसीलिए उनके आस-पास दल उग आते हैं। पैसा देते हैं और देकर मन-ही-मन सहस्र गुना पाने की आकांक्षा रखते हैं। इसीलिए जैसे ही सिद्धि-प्राप्त व्यक्ति का मार्ग-दर्शन सुलभ नहीं रहता, वे सत्ता के दलदल में आकण्ठ फँस जाते हैं। स्वयं आचार्यश्री ने कहा है—"धन और राज्य की सत्ता में विलीन धर्म को विष कहा जाये तो कोई अतिरेक न होगा।" इससे अधिक स्पष्ट और कठोर शब्दों का प्रयोग हम नहीं कर सकते।

क्रियात्मक शक्ति और संवेदनशीलता

पर शायद यह तो विषयान्तर हो गया। यह तो मेरी अपनी शंकामात्र है। इससे अणुव्रत-आन्दोलन के जन्मदाता की मानवता में आशंका क्यों हो! जो व्यक्ति निवृत्तिमूलक जैन धर्म को जन-कल्याण के क्षेत्र में ले आया, मानवता में उसकी आस्था निश्चय ही अद्भुत है। इसीलिए अनुकरणीय भी है। उनकी क्रियात्मक शक्ति और उनकी संवेदनशीलता निश्चय ही किसी दिन मानवता के रेगिस्तान को नाना वर्णों के पुष्पों से आच्छादित हरे-भरे सुरम्य प्रदेश में परिवर्तित कर देगी। कारलाइल ने कहीं लिखा है, "किसी महापुरुष की महानता का पता लगाना हो तो यह देखना चाहिए कि वह अपने से छोटे के साथ कैसा बर्ताव करता है।" आचार्यश्री स्वाभाव से ही सबको समान मानते हैं। बचपन से ही धर्म में उनकी रुचि रही है और ये संस्कार उन्हें अपनी मातुश्री की ओर से विरासत में मिले हैं। उन्होंने शूद्रों को कहीं छोटा

नहीं समझा। स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा है, "धर्म ब्राह्मणों का है, बनियों का है; शूद्रों का नहीं, यह भ्रान्ति है। धर्म का द्वार सबके लिए खुला है।" वे धर्म को सत्य की खोज, अपने स्वरूप की खोज, मानते हैं। जो सत्य का खोजी है, जो अपने को जानना चाहता है, उसके लिए न तो कोई बड़ा है, न छोटा। यही नहीं, वे मानव के एकीकरण मे विश्वास रखते हैं। उनकी दृष्टि समानता और समन्वय के तत्त्वों को ही देखती है; विषमता और विशृंखलता के तत्त्वों को नहीं। उन्होंने बार-बार कहा है, "धर्म-सम्प्रदायों में समन्वय के तत्त्व अधिक है। विरोधी तत्त्व कम।" इसीलिए उनके अणुव्रत-आन्दोलन में अजैन तो हैं ही, हिन्दू धर्म के बाहर के लोग भी हैं।

सब विरोधों, विसंगतियों और मतभेदों के बावजूद ये सब तथ्य क्या यह प्रमाणित नहीं करते कि आचार्यश्री तुलसी गणी का जीवन-लक्ष्य विराट और अखण्ड मानवता का कल्याण है, लघु और खण्डित मानवता का नही और उनका यह विश्वास शाब्दिक भी नहीं है, क्रियाशील है। तभी यह अणुव्रत-आन्दोलन है। तभी उनका बल आचार पर अधिक है; क्योंकि व्यास भगवान् के शब्दों में 'आचार ही धर्म है' और बीसवीं सदी में आचार ही मानवता है। आचार्य-श्री तुलसी इसी मानवता के पोषक, प्रचारक और उन्नायक हैं।
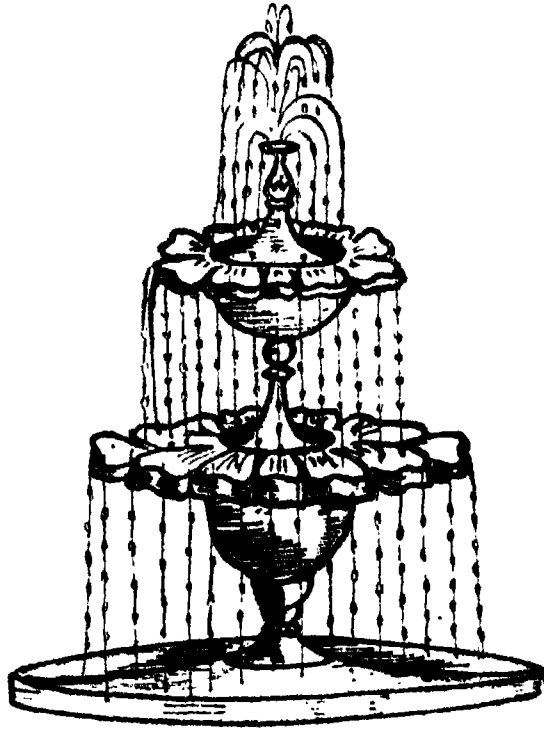
वर्तमान शताब्दी के महापुरुष

प्रो० एन० बी० वैद्य, एम० ए०
फर्ग्यूसन कालेज, पूना

सद्बोधं विदधाति हन्ति कुमतिं मिथ्यादृशं बाधते,
धत्ते धर्ममतिं तनोति परमे संवेगनिर्वेदने।
रागादीन् विनिहन्ति नीतिममलां पुष्णाति हन्त्युत्पथं,
यद्वा किं न करोति सद्गुरुमुखादभ्युद्गता भारती।

महान् और सद्गुरु के मुख से निकले हुए वचन सद्ज्ञान प्रदान करते हैं, दुर्मति का हरण करते हैं, मिथ्या विश्वासों का नाश करते हैं, धार्मिक मनोवृत्ति उत्पन्न करते हैं, मोक्ष की आकांक्षा और पार्थिव जगत के प्रति विरक्ति पैदा करते हैं, राग-द्वेष आदि विकारों का नाश करते है, सच्ची राह पर चलने का साहस प्रदान करते हैं और गलत एवं भ्रामक मार्ग पर नहीं जाने देते। संक्षेप में, सद्गुरु क्या नहीं कर सकता ?

दूसरे शब्दों में, सद्गुरु इस जीवन में और दूसरे जीवन मे जो भी वास्तव मे कल्याणकारी है, उस सबका उद्गम और मूल स्रोत है।[1]

शलाकापुरुष

इन पंक्तियों का असली रहस्य मैंने उस समय जाना, जब मैंने चार वर्ष पूर्व राजगृह में आचार्यश्री तुलसी का प्रवचन सुना। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो प्रथम दर्शन में ही मानस पर अतिक्रमणीय छाप डालते हैं। पूज्य आचार्यश्री सचमुच में ऐसे ही महापुरुष हैं। जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य को उनके चुम्बकीय आकर्षण और प्राणवान् व्यक्तित्व के कारण आसानी से युगप्रधान, वर्तमान शताब्दी का महापुरुष अथवा शलाकापुरुष (उच्चकोटि का पुरुष अथवा अति मानव) कहा जा सकता है। मेरा यह अत्यन्त सद्भाग्य था कि मुझे उनके सम्पर्क में आने का अवसर मिला और मैं उस सम्पर्क की मधुर और उज्ज्वल स्मृतियों को हमेशा याद रखूंगा; कारण **सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति** अर्थात् सत्संग किसी पुण्य से ही प्राप्त होता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में लिखा है कि चार बातों का स्थायी महत्त्व है। वह श्लोक इस प्रकार है :

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि य वीरियं॥३-१॥

अर्थात् किसी भी प्राणी के लिए चार स्थायी महत्त्व की बातें प्राप्त करना कठिन है। मनुष्य जन्म, धर्म का ज्ञान, उसके प्रति श्रद्धा और आत्म-संयम का सामर्थ्य।

उसी प्रकरण में आगे कहा गया है—

माणुस्सं विग्गहं लद्धं सुई धम्मस्स दुल्लहा। ३-८॥

अर्थात् मनुष्य जन्म मिल जाने पर भी धर्म का श्रवण कठिन है।

---

१ उत्तराध्ययन पर देवेन्द्र की टीका

दुमपत्तयं नामक दशम अध्ययन में भी इसी भावना को दोहराया गया है :

अहीण पंचिंदियत्तं पि से लहे
उत्तम धम्म सुई हु दुल्लहा। १०-१८

अर्थात् यद्यपि मनुष्य पाँचों इन्द्रियों से सम्पन्न हो, किन्तु उत्तम धर्म की शिक्षा मिलना दुर्लभ होता है।

इसलिए किसी व्यक्ति के लिए यह परम सौभाग्य का ही विषय हो सकता है कि उसे महान् गुरु अथवा सच्चे पथ प्रदर्शक का सम्पर्क प्राप्त हो—ऐसे गुरु का जो विश्वधर्म के सच्चे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता हो। सबसे महत्त्व-पूर्ण बात यह कि जो अपने उपदेश के अनुसार स्वयं आचरण भी करता हो। आचार्यश्री तुलसी के चुम्बकीय आकर्षण, सच्ची श्रद्धा और उनकी उच्च और भव्य शिक्षाओं का प्रभाव तत्काल ही मन पर पड़ता है। उनका दृष्टिकोण तनिक कट्टरतापूर्ण अथवा संकुचित साम्प्रदायिकता युक्त नहीं है। इसके विपरीत वे अपने चारों ओर उदारता, व्यापकता और विशालता का वातावरण विकीर्ण करते हैं। जब हजारों व्यक्ति ध्यान मग्न होकर उनका प्रवचन सुनते हैं तो कम-से-कम थोड़े समय के लिए तो वे नित्य-प्रति की चिन्ताओं और भौतिक स्वार्थों के लिए होने वाले अपने नैरन्तरिक संघर्षों को भूल जाते हैं और संकुचित और दकियानूसी दृष्टिकोण त्याग कर मानो किसी उच्च, भव्य और अालौकिक जगत में पहुँच जाते हैं।

बुराइयों की राम बाण औषधि

अणुव्रत-आन्दोलन जिसका पूज्य आचार्यश्री संचालन कर रहे हैं और जो प्रायः उनके जीवन का ध्येय ही है, वास्तव में एक महान् वरदान है और वर्तमान युग की समस्त बुराइयों की रामबाण औषधि सिद्ध होगी। दुनिया में जो व्यक्ति लोगों के जीवन और भाग्य-विधाता बने हुए हैं, यदि वे इस महान् आन्दोलन पर गम्भीरता से विचार करें तो हमारे पृथ्वी-मण्डल का मुख ही एकदम बदल जाए और दुनिया में जो परस्पर आत्म-नाश की उन्मत्त और आवेशपूर्ण प्रतिस्पर्धा चल रही है, बन्द हो जाए। तब निश्शस्त्रीकरण, आणविक अस्त्रों के परीक्षण को रोकने और मानव जाति के सम्पूर्ण विनाश के खतरे को टालने के लिए लम्बी-चौड़ी बेकार की बहसें करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी। मनुष्य अपने को सृष्टि का मुकुट समझने में गर्व अनुभव करता है। किन्तु अकस्मात् ये उद्‌गार फूट पड़ते हैं, 'मनुष्य ने मनुष्य को क्या बना दिया है।'

अणुव्रत-आन्दोलन वास्तव में असाम्प्रदायिक आन्दोलन है और उसको हमारी धर्म निरपेक्ष सरकार का भी समर्थन मिलना चाहिए। यदि इस आन्दोलन के मूलभूत सिद्धान्तों की नई पीढ़ी को शिक्षा दी जाए तो वे बहुत अच्छे नाग-रिक बन सकेंगे और वास्तव में विश्व नागरिक कहलाने के अधिकारी हो सकेंगे। राजनैतिक नेताओं की लम्बी-चौड़ी बातों के बजाय जो प्रायः कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं, इस प्रकार का आन्दोलन राष्ट्रीय एकता के ध्येय को अधिक शीघ्रतापूर्वक सिद्ध कर सकेगा।

धवल समारोह समिति के आयोजकों ने पूज्य आचार्यश्री के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाजलि भेंट करने का जो अवसर मुझे प्रदान किया है, उसके लिए मैं अपने को गौरवान्वित और परम सौभाग्यशाली समझता हूँ। अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रबन्ध सम्पादक ने जब मुझसे आचार्यश्री के बारे में अपने संस्मरण लिखने का अनुरोध किया तो मैंने उसे तुरन्त सहर्ष स्वीकार कर लिया, कारण कवि ने कहा है :

प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजा व्यतिक्रमः

● ● ●

धर्म-संस्थापन का दैवी प्रयास

श्री एल० ओ० जोशी
मुख्य सचिव, दिल्ली प्रशासन

मनुष्य और शेष सृष्टि में एक मुख्य अन्तर यह है कि मनुष्य में मनन व विचार की शक्ति अधिक प्रखर एवं प्रबल होती है। 'मन्' (=सोचना, विचार करना) धातु से ही 'मनुष्य' शब्द की भी व्युत्पत्ति मानी जाती है, अतः मनन मनुष्य की न केवल स्वाभाविक प्रवृत्ति ही है, बल्कि उसका वैशिष्ट्य भी है। यही प्रवृत्ति नर को नारायण बनाने की आशा भी उपजाती है और वानर बनाने की आशंका भी। इसीलिए कहा गया है, **मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः** मन ही मनुष्यों के बन्धन का कारण है और मोक्ष का भी।

यह मन, यह बुद्धि, मनुष्य को सामान्यतः निर्विकार शान्त नहीं रहने देता। 'सामान्यतः' इसलिए कि इस पर स्वामित्व प्राप्त कर लेने वाले मनीषियों पर तो इसका वश नहीं चलता; किन्तु शेष सब तो इसी के नचाये नाचते रहते हैं। एक दृष्टि से इस प्रवृत्ति का, और इससे उत्पन्न जिज्ञासा का, बड़ा महत्त्व है। अंग्रेजी कवि एवं दार्शनिक ब्राउनिंग[1] लिखता है कि मनुष्य एक मिट्टी का ढेला तो नहीं है, जिसमे शंका व जिज्ञासा की एक चिनगारी भी न चमकती हो। और जो समझे कि जीवन केवल इसीलिए है कि खाओ-पीओ और मौज करो—अथवा जैसे कि टाल्स्टाय ने अपनी 'मुक्ति की कहानी' (Confessions and What I believe) में सविस्तर व्याख्या की है—प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के मन में एक प्रश्न उठता है, टाल्स्टाय के लिए भी यह प्रश्न था—"इस ससीम जीवन का कोई निःसीम प्रयोजन अथवा अर्थ है या नही ?" और यह प्रश्न उसे इस तरह झकझोर देता है, अभिभूत कर लेता है कि जब तक उसका समाधान न हो न कोई शान्ति मिलती है, न विश्राम।

मै कौन हूं ? किस लिए यह जन्म पाया ?
क्या-क्या विचार मन में किसने पठाया ?
माया किसे ? मन किसे ? किसको शरीर ?
आत्मा किसे कहे सब धर्म धीर ?

ये प्रश्न अनादिकाल से मनुष्य के मस्तिष्क में उठते चले आये हैं और महापुरुषों ने भिन्न-भिन्न देश, काल एवं परिस्थितियों में अत्यन्त उत्कट साधना, अनन्य निष्ठा एवं प्रखर प्रतिभा के द्वारा इनका उत्तर खोजा है। इस खोज मे उन्हे जिस सत्य के दर्शन हुए, उसे उन्होंने प्राणी-मात्र के हित के लिए अभिव्यक्त तथा प्रसारित भी किया है। कालान्तर में इन्हीं उत्तरों का वर्गीकरण हो गया और वे देश, काल अथवा व्यक्ति-विशेष से सम्बद्ध होकर किसी विशिष्ट धर्म के नाम से सम्बोधित किये जाने लग गये।

मानव समाज की अपूर्व निधि

इस सन्दर्भ में एक विलक्षण तथ्य की ओर ध्यान सहसा आकृष्ट होता है। जिस प्रकार अध्यात्म अथवा दर्शन के क्षेत्र में इस प्रकार के अनुभव एवं प्रयोग मानव-इतिहास के प्रारम्भ से चले आ रहे हैं, उसी प्रकार भौतिक विज्ञान के क्षेत्र

१ Finished and finite clods, untroubled by spark.

में भी होते आये हैं। परन्तु इन दोनों में एक महान् अन्तर यह दृष्टिगोचर होता है कि जहाँ भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में एक के बाद एक सिद्धान्त प्रयोग और परीक्षण की कसौटी पर कसे जाकर प्रस्थापित होते हैं और उत्तरोत्तर प्रयोगों तथा परीक्षणों से उनके असत्य प्रमाणित होने पर नये सिद्धान्त नवीनतम सत्य के रूप में प्रतिपादित होते हैं, वहाँ जीवन दर्शन के क्षेत्र में ऋषि-महर्षि, विभूतियाँ, अवतार, मसीहा, पैगम्बर, संत भिन्न-भिन्न देश-काल आदि में सत्य की खोज करने निकले और मूलतः एक ही परिणाम पर पहुँचे। कितनी अद्भुत है यह अनुभूति ! यही धर्म की सनातनता है। इसी के फल-स्वरूप उत्तरोत्तर प्रयत्नों द्वारा अध्यात्म के क्षेत्र में पूर्ववर्ती अनुसन्धान से प्राप्त सत्य की ही पुष्टि एवं व्याख्या हुई। यह शाश्वत अविकल दिक्-कालादि-अनवच्छिन्न तत्त्व, यह सत्य दर्शन, मानव-समाज की अपूर्व निधि है, यही उसकी मानवता का माप-दण्ड है।

दुर्भाग्य से, समय-समय पर बड़ी चर्चा होती है—धर्म और अधर्म के भेदों की, उनसे उत्पन्न कटुताओं की और धर्म-आचरण के दुष्परिणामों की। आजकल हमारे देश में भी धर्म एक बिभीषिका-सा बना हुआ है। धर्म के नाम पर जो विकृत परम्पराएं आदि धर्म का ह्रास होने पर सबल हो जाती हैं, उन परम्पराओं, अन्धविश्वासों, संकुचित दृष्टिकोणों को ही धर्म मान कर हम धर्म के शाश्वत तत्त्वों की उपेक्षा करने लगेंगे तो वह विनाश का मार्ग अपनाने जैसा होगा। धर्म की विकृतियों से हट कर गहराई में घुसने और धर्मों की मूलभूत एकता तथा समता का अनुभव करने के लिए धर्म-निष्ठा, धर्म-चिन्तन, धर्म-आचरण का मार्ग ग्रहण करना होगा; धर्म-द्वेष, धर्म-उपेक्षा या धर्म-अज्ञान का नहीं।

धर्मों में मूलभूत भेद नहीं

वास्तव में एक धर्म और दूसरे धर्म में कोई मूलभूत भेद न तो है, न हो सकता है। इन भेदों की कल्पना और उनके आधार पर धर्मों के विरुद्ध लगाये जाने वाले आरोप-प्रत्यारोप सब भ्रामक एवं भ्रान्तिमूलक हैं। वास्तव में कोई विरोध या संघर्ष है तो वह धर्म और धर्म के बीच नहीं, वरन धर्म और अधर्म के बीच है और यह विरोध अनादि काल से चला आ रहा है और चिरकाल तक चलता रहेगा। इस दृष्टि से सोचें तो कितनी सुन्दर लीला यह है—मनुष्य युग-युग में प्रतिपादित उच्चतम दर्शन (धर्म तत्त्व) के उत्तराधिकारी के रूप में जन्मता है; उसमें स्वयं इतनी क्षमता निहित है कि वह इन तत्त्वों का आचरण तथा चिन्तन करके विकास की चरम सीमा तक पहुँच सके; फिर भी, प्रायः वह मोह में पड़ कर पथ-भ्रष्ट हो जाता है और पशुवत् अथवा पशु से भी निम्न श्रेणी का जीवन व्यतीत करता है; फिर यही मानव-समाज किसी ऐसी विभूति को जन्म देता है जो फिर मनुष्य का ध्यान उसकी मनुष्यता के मूल स्रोतों की ओर खींचता है, जो नये-नये ढंग से उस शाश्वत सत्य को प्रतिपादित करता है और धर्म की फिर से अच्छी तरह स्थापना करने का प्रयास करता है। मनुष्य को ऊर्ध्व गति की ओर तथा अधोगति की ओर ले जाने वाली शक्तियों के इसी अनवरत संघर्ष—सुरासुर-संग्राम के कारण जगन्नियन्ता को स्वयं अवतीर्ण होकर धर्म-संस्थापन करना पड़ता है, जिससे कि इन शक्तियों का सन्तुलन बिगड़ न जाये, अधर्म धर्म पर हावी न हो जाये।

इस संघर्ष का एक सुन्दर कलात्मक एवं प्रेरक चित्र उपस्थित करते हुए जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ने अपनी कविता 'सत्य और स्वर्ण' में कितना सुन्दर कहा है—

स्वर्ण भी चिरकाल से है इस धरा पर,
सत्य भी रहता चला आया निरन्तर।
स्वर्ण की चेष्टा सदा से ही रही यह,
सत्य का मुख ढके माया-जाल से वह।
सत्य का यह यत्न उतना ही पुराना,
स्वर्ण के मोहक प्रलोभन में न आना।
आदि से यह द्वन्द्व चलता आ रहा है,
अन्त कोई भी न इसका पा रहा है।

इस चिरन्तन द्वन्द्व की जो है कहानी,
कथा मानव-साधना की वह पुरानी।
....
सत्य अन्तर्बाह्य सम अविराम अविजित,
स्वर्ण से संघर्ष करता है अकम्पित।
स्वर्ण के जो दास वे हैं हाथ उसके,
सत्य के निःस्वार्थ साथी साथ उसके।
जो न इसके, समर्थक उसके बने हैं,
मार्ग दो ही मानवों के सामने हैं।
तीसरा दल विश्व में कोई नहीं है,
सत्य ने आशा कभी खोई नहीं है।
प्रश्न यह इतिहास का सबसे सतत है—
'कौन किसके साथ इस रण में निरत है ?'

श्रेय और प्रेय से उपलब्धि

सब धर्मों के सार अथवा अपरिवर्तनीय मूल तत्त्व का संक्षेप में उल्लेख करना सरल नहीं है, तथापि प्रस्तुत संदर्भ में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यह है आध्यात्मिकता—अथवा शान्ति या सुख की खोज बाहर न करके अन्दर करना। यही श्रेय मार्ग है, जिसे उपनिषदों ने प्रेय मार्ग से भिन्न बताया और कहा कि श्रेय मार्ग ग्रहण करने से कल्याण होता है, परन्तु प्रेय मार्ग ग्रहण करने से ऐसा 'हीयतेऽर्थः' प्रयोजन ही विफल हो जाता है। इस श्रेय मार्ग का आनन्द त्याग के द्वारा मिलता है, भोग के द्वारा नहीं; अतएव यह आनन्द वास्तविक, पूर्ण तथा शाश्वत होता है। भोग द्वारा प्राप्त सुख मिथ्या, अपूर्ण तथा अनित्य होता है, इसलिए यदि सुख ही अभीष्ट हो तो विषयेन्द्रिय-संयोग-जन्य विषाक्त सुख के स्थान पर अतीन्द्रिय सुख का आनन्द लेना मनुष्य को शोभा देता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं—"मैं ही ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ, मैं ही अव्यय अमृत की, शाश्वत धर्म की, तथा एकान्तिक सुख की प्रतिष्ठा हूँ।" अर्थात् चाहे अमृतत्व के लिए साधना हो, चाहे धर्म के अथवा सुख के लिए, हमारी दृष्टि यह होनी चाहिए कि जिस अमृत की हम चाह करते हैं, वह अव्यय हो; जिस धर्म में हमारी निष्ठा है, वह शाश्वत (अपरिवर्तनशील) धर्म हो, जिस सुख की हम खोज करें, वह एकान्तिक हो; ऐसा न हो कि वह दुःख में परिणत हो जाये।

उपर्युक्त प्रकार से जीवन की दिशा निश्चित हो जाने पर यह कहा जा सकेगा कि **सम्यग् व्यवसितो हि सः** यह दिशा ठीक स्थिर हुई। इसके पश्चात् लक्ष्य की ओर बढ़ने की बात आती है। यह प्रगति हमारे दैनिक आचरण, व्यवहार व अभ्यास पर निर्भर है। इस क्षेत्र में हमें आचार्यों, संतों और महापुरुषों की जीवन-चर्या से बड़ी प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन मिलते हैं। साधना-पथ की ओर उन्मुख व्यक्ति के पैर पथ की विकटता के वर्णनों से डगमगाते हैं—जैसे कि **क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति**; Strait is the gate and narrow the path; अथवा कभी-कभी इस भय से कि कहीं वह उभयतः विभ्रष्ट न हो जाये—माया मिली न राम। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'गीतांजलि' के एक गीत में इस दुविधा का एक सुन्दर चित्र खींचा है :

मेरे बन्धन बड़े जटिल हैं, किन्तु
जब मैं उन्हें तोड़ने का प्रयत्न करता हूं
तो मेरा दिल दुखने लगता है।
मेरा दृढ़ विश्वास है
कि तुममें अमूल्य निधि है और

तू ही मेरा सच्चा सखा है, किन्तु
मुझ में इतना साहस नहीं कि मेरे
अन्तर के कूड़े-करकट को निकाल फेंकूं।

यह आवरण जो मुझे अभिभूत किये हुए है,
मिट्टी और मृत्यु का बना है—
मैं इससे घृणा करता हूं, परन्तु इसे ही
प्रेम से आलिंगन किये हूं।

मुझ पर भारी आभार है, मेरी विफलताएं विराट हैं,
मेरी लज्जा गोपनीय एवं गहरी है, किन्तु
जब मैं अपने कल्याण की याचना करने
लगता हूं तो इस आशंका से कांप उठता हूं कि
कहीं मेरी प्रार्थना स्वीकार न हो जाये।

ऐसी मनःस्थिति में ही साधक को आवश्यक जीवन दृष्टि तथा साहस प्रदान करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—"इस मार्ग में अभिक्रम का नाश या प्रत्यवाय नहीं होता; इस धर्म का स्वल्पांश भी महान् भय से रक्षा करता, है"; —"कल्याण मार्ग का कोई पथिक दुर्गति को नहीं जाता"; "निस्सन्देह मनुष्य का मन बड़ा चंचल है और बड़ी कठिनाई से निग्रह में आता है, फिर भी वैराग्य तथा अभ्यास से यह सम्भव है?" आदि-आदि।

आध्यात्मिकता के पुनर्जागरण का शंखनाद

आचार्यश्री तुलसी ने आज के भौतिकता-प्रधान युग में धर्म अर्थात् आध्यात्मिकता के पुनर्जागरण के लिए जो शंखनाद किया है, वह धर्म-संस्थापन के समय-समय पर होने वाले दैवी प्रयासों की शृंखला की ही एक कड़ी है। व्यवहार क्षेत्र में उन्होंने 'अणुव्रत' की नई व्याख्या करके साधना के मार्ग को सरल बनाया है। धर्म-पथ पर एक अणु के बराबर भी प्रगति की तो उसके अनेक हितकर प्रभाव होंगे, यह स्पष्ट है। सबसे बड़ा हित तो यही है कि अधर्म से विमुख होने पर ही धर्म-पथ पर एक पग भी बढ़ा जा सकेगा, अतएव हम अधोगति से पूर्णतः बच जायेंगे। दूसरे, साधना के पथ की लम्बाई या दुरूहता पर ध्यान लगने से जो आशंका व दुविधा हमें अभिभूत कर लेती है, उसके बजाय हम केवल अगले एक कदम की ही सोचें तो रास्ता सरलता से कटता जायेगा। बहुत चलना है, मुश्किल चलना है, इस भय के स्थान पर अणुव्रत यह भावना सामने रखता है कि एक कदम तो चलो। महात्मा गांधी कहते थे, "मेरे लिए एक कदम काफी है" (One step enough for me)। संसार जानता है कि एक-एक करके वे कितने कदम चले और मनुष्य-मात्र के लिए साधना का कितना ऊँचा मानदण्ड स्थापित कर गए। यदि हम इस प्रकार एक-एक कदम भी चलें तो उस पश्चात्ताप के गर्त में न पड़ेंगे, जिसके बारे में एक ईसाई संत ने कहा है—

जिसे सन्मार्ग समझा, उस पर चल न पाया।
जिसे कुमार्ग समझा, उससे टल न पाया।

अथवा—

किमहं साधु नाकरवम् किमहं पापमकरवमिति।

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि का उपदेश आध्यात्मिक जीवन-दर्शन की मानी हुई आधार-शिलाएं हैं। यह उपदेश धर्म के प्रारम्भकाल से दिया जाता रहा है। शाश्वत धर्म के इन मूल सिद्धान्तों को मानव-जीवन के प्रारम्भिक युग में ही तपस्या, चिन्तन एवं स्वानुभव के आधार पर प्रतिपादित किया गया था, किन्तु इसका यह अर्थ

नहीं कि इस कारण हम अणुव्रत-आन्दोलन के मूल्य को न समझें और कहें कि इसमें तो नवीनता नहीं है। जैसा कि पहले कहा गया है—जीवन-दर्शन के क्षेत्र में मौलिक नवीन सिद्धान्तों की खोज ने प्राचीनतम सिद्धान्तों की सत्यता को खंडित नहीं, पुष्ट ही किया है। यहाँ नई खोज, नये प्रयास का लक्ष्य पिछले सिद्धान्त का उखाड़ना नहीं, वर्तमान स्थितियों में उसकी व्यावहारिकता प्रतिपादित करके उसे नया-नया रूप देना होता है। इस दृष्टि से अणुव्रत-आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी कार्य कर रहा है। कालान्तर मे धर्म और व्यवहार में जो खाई पड़ गई है, जो द्वैत उत्पन्न हो गया है, उसे मिटा कर धर्म को व्यावहारिक जीवन में सम्यक् प्रकार से स्थापित करने का यह नवीनतम प्रयास इस दृष्टि से अत्यन्त अभिनन्दनीय है।

इस पुनीत अवसर पर आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के हेतु मे इन कुछ वाक्य-पुष्पों की अंजलि अर्पित है। सच्ची श्रद्धांजलि तो यही होगी कि आचार्यश्री के उपदेशों की ओर हमारा ध्यान जाये, हम उन पर विचार करें, उन्हें समझें उन पर आचरण करें जिससे हममें मानवोचित आध्यात्मिकता फिर से जागे, हमारी धर्म में आस्था दृढ़ हो और धर्म-व्यवहार में उतरे।

प्रथम दर्शन और उसके बाद

श्री सत्यदेव विद्यालंकार

वे प्रथम दर्शन मैं कभी भूल नहीं सकता। राजस्थान के कुछ स्थानों का दौरा करने के बाद मैं जयपुर पहुँचा। उन दिनों जयपुर के जैन समाज में कुछ सामाजिक संघर्ष चल रहा था। जयपुर पहुँचने पर उसके बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करने की इच्छा स्वाभाविक थी। जैन समाज के साथ मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध था। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा के प्रधानमंत्री लाला प्रसादीलालजी पाटनी, कई वर्ष हुए, 'जैन-दण्डनम्' नामक पुस्तक लेकर मेरे पास आये। पुस्तक में जैन समाज पर कुछ गर्हित आक्षेप किये गए थे। उनके कारण वे उसको सरकार द्वारा जब्त करवाना चाहते थे। मेरे प्रयत्न से उनका वह कार्य हो गया। इस साधारण-सी घटना के कारण मेरा अखिल भारतीय दिगम्बर महासभा के माध्यम से जैन समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित हुआ और पाटनीजी के अनुग्रह से वह निरन्तर बढ़ता ही चला गया। इसी कारण उस संघर्ष के बारे में मेरे हृदय में जिज्ञासा पैदा हुई।

मैंने एक मित्र से उसका कारण पूछा; वे कुछ उदासीन भाव से बोले कि आपको इसमें क्या दिलचस्पी है। मैंने विनोद में उत्तर दिया कि पत्रकार के लिए हर विषय में रुचि रखनी आवश्यक है। इस पर भी उन्होंने मुझे टालना ही चाहा। कुछ आग्रह करने पर उन्होंने कहा कि जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायों में बहुत पुराना संघर्ष चला आता है। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में तो फौजदारी तथा मुकदमेबाजी तक का लम्बा सिलसिला कई वर्षों तक जारी रहा। इसी प्रकार इन सम्प्रदायों का स्थानकवासियों तथा तेरापंथियों के साथ और उनका आपस में भी मेल नहीं बैठता। यहाँ तेरापंथ-सम्प्रदाय के आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास चल रहा है और उनके प्रवचनों के प्रभाव के कारण दूसरे सम्प्रदायों के लोग उनके प्रति ईर्ष्या करने लगे हैं। उनका आपस का पुराना वैर नये सिरे से जाग उठा है।

मेरी दिलचस्पी के कारण उन्होंने स्वयं ही यह प्रस्ताव किया कि क्या आप आचार्यश्री के दर्शन करने के लिए चल सकेंगे? मैंने कहा कि मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है! एक आचार्य महापुरुष के दर्शनों से कुछ लाभ ही मिलेगा। उन्होंने कुछ समय बाद मुझे सूचना दी कि दोपहर को दो बजे बाद का समय ठीक रहेगा।

प्रथम दर्शन

लगभग अढ़ाई बजे मैं उनके साथ उस पण्डाल में पहुँच गया, जिसमें आचार्यश्री के प्रवचन हुआ करते थे। मैं अपने मित्र के साथ अजनबी-सा बना हुआ उपस्थित लोगों की पीछे की पंक्ति में एक कोने में जा बैठा। यदि मैं भूलता नहीं, तो पूज्य आचार्यश्री उस समय उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री दौलतमल भण्डारी के साथ बातचीत करने में संलग्न थे। आचार्यश्री की निर्मल, स्वच्छ और पवित्र वेश-भूषा तथा उनके रौबीले चेहरे में कुछ अद्भुत-सा आकर्षण दीख पड़ा। मैं चुपचाप २०-२५ मिनट बैठ कर चला आया। मैंने कोई बातचीत उस समय नहीं की और न करने की मुझे इच्छा ही हुई। कारण केवल यह था कि मैं उनकी बातचीत में खलल पैदा नहीं करना चाहता था। परन्तु जैसे ही उठ कर मैं चला, पूज्य आचार्यश्री की दृष्टि मुझ पर पड़ी और मुझे ऐसा लगा जैसे कि उनकी आँखों ने मुझे घेर लिया हो। फिर भी चुपचाप वहाँ से लौट आया। वह थे पहले दर्शन, जिनका चित्र मेरे सामने आज भी वैसा ही बना हुआ है।

जयपुर से प्रवास करने के बाद आचार्यश्री का दिल्ली में आगमन हुआ। अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात किया जा चुका था। नैतिक चरित्र-निर्माण के, अणुव्रत-आन्दोलन के सन्देश को लेकर आचार्यश्री अपने संघ के साथ राजधानी पधारे

थे। इसी कारण आचार्यश्री के पधारने की विशेष चर्चा थी। नई दिल्ली होते हुए अपने संघ के साथ आचार्यश्री ने जब दिल्ली-दरवाजे की ओर से राजधानी की पुरानी नगरी में प्रवेश किया और दरियागंज से चाँदनी चौक होते हुए आप नया-बाजार पहुँचे तो दर्शक वह दृश्य देख कर मुग्ध रह गये। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि महाकवि तुलसी के **सन्त हंस गुण गहहिं पय परिहरि बारि बिकार** शब्दों के अनुसार क्षीर-नीर का मन्थन करने के लिए मानसरोवर से राजहंसों की टोली राजधानी में अवतरित हुई हो। सचमुच भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, मुनाफाखोरी, मिलावट तथा अनैतिकता के वातावरण को शुद्ध व पवित्र करने के लिए आचार्यश्री के अणुव्रत-आन्दोलन का नैतिक सन्देश दूध को दूध और पानी को पानी कर देने वाला ही था।

तीन घोषणाएं

नयाबाजार में पदार्पण करने के बाद जो पहला प्रवचन हुआ, उसके कारण मेरे लिए आचार्यश्री का राजधानी की ऐतिहासिक नगरी में शुभागमन एक अनोखी ऐतिहासिक घटना थी। वह प्रवचन मेरे कानों में सदा ही गूँजता रहता है और उसके कुछ शब्द कितनी ही बार उद्धृत करने के कारण मेरे लिए शास्त्रीय वचन के समान महत्त्वपूर्ण बन गये हैं। आचार्यश्री की पहली घोषणा यह थी कि यह तेरापंथ किसी व्यक्ति-विशेष का नहीं है। यह प्रभु का पंथ है। इसीलिए इसके प्रवर्तक आचार्यश्री भिखनजी ने यह कहा कि यह मेरा नहीं, प्रभु ! तेरा पंथ है। इस घोषणा द्वारा आचार्यश्री ने यह व्यक्त किया कि वे किसी भी प्रकार की संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित न होकर, राष्ट्र-कल्याण तथा मानव-हित की भावना से प्रेरित होकर राजधानी आये हैं।

दूसरी घोषणा आचार्यश्री की यह थी कि मैं अणुव्रत-आन्दोलन द्वारा उन राष्ट्रीय नेताओं के उस आन्दोलन को बलशाली तथा प्रभावशाली बनाना चाहता हूँ, जो राष्ट्रीय जीवन को ऊँचा उठा कर उसमें पवित्रता का संचार करने में लगे हैं।

इसी प्रकार तीसरी घोषणा आचार्यश्री ने यह की थी कि मैं अपने समस्त साधु-संघ तथा साध्वी-संघ को राष्ट्र के नैतिक उत्थान के इस महान् कार्य में लगा देना चाहता हूँ।

इन घोषणाओं का स्पष्ट अभिप्राय यह था कि जिस नैतिक नव-निर्माण के महान् आन्दोलन का सूत्रपात राजस्थान के सरदारशहर में किया गया था, उसको राष्ट्रव्यापी बना देने का शुभ संकल्प करके आचार्यश्री राजधानी पधारे थे। स्थानीय समाचारपत्रों में इसी कारण आचार्यश्री के शुभागमन का हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन किया गया। मैं उन दिनों में दैनिक 'अमर-भारत' का सम्पादन करता था। इन घोषणाओं से प्रभावित होकर मैंने 'अमर भारत' को अणुव्रत-आन्दोलन का प्रमुख पत्र बना दिया और उसके लिए भारी-से-भारी लोकापवाद को सहन करते हुए मैं अपने इस व्रत पर अडिग रहा।

उपेक्षा, उपहास और विरोध

श्रेयांसि बहु विघ्नानि की कहावत आचार्यश्री के इस शुभागमन और महान् नैतिक आन्दोलन पर भी चरितार्थ हुई। आन्दोलन का राजधानी में सूत्रपात होने के साथ ही विरोध का बवण्डर भी उठ खड़ा हुआ। ऐसे प्रत्येक आन्दोलन को उपेक्षा, उपहास, भ्रम और विरोध का प्रारम्भ में सामना करना ही पड़ता है। फिर उसके लिए सफलता की झाँकी दीख पड़ती है। अणुव्रत-आन्दोलन को उपेक्षा और उपहास का इतना सामना नहीं करना पड़ा, जितना कि विरोध का। इस विरोधपूर्ण वातावरण में ही अणुव्रत-आन्दोलन के प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में टाउन-हाल के सामने किया गया। न केवल राजधानी में, अपितु समस्त देश के कोने-कोने में उसकी प्रतिध्वनि गूँज उठी। कुछ प्रतिक्रिया विदेशों में भी हुई। हमारे देश का कदाचित् ही कोई ऐसा नगर बचा होगा, जिसके प्रमुख समाचारपत्रों में अणुव्रत-आन्दोलन और सम्मेलन की चर्चा प्रमुख रूप से नहीं की गई और उस पर मुख्य लेख नहीं लिखे गये। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास तथा अन्य नगरों के समाचारपत्रों ने बड़ी-बड़ी आशाओं से आन्दोलन एवं सम्मेलन का स्वागत किया। बात यह थी कि

अनैतिकता और भ्रष्टाचार दूसरे महायुद्ध की देन है और इन बुराइयों से सारे ही विश्व का मानव-समाज पीड़ित है। वह इनसे मुक्ति पाने के लिए बेचैन है। इससे भी कहीं अधिक बिभीषिका विश्व के मानव के सिर पर तीसरे सम्भावित महा-युद्ध की काली घटाओं के रूप में मँडरा रही है। तब ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कि आचार्यश्री ने अणुव्रत-आन्दोलन द्वारा मानव की इस पीड़ा व बेचैनी को ही प्रकट किया हो और उसको दूर करने के लिए एक सुनिश्चित अभियान शुरू किया हो, इसीलिए उसका जो विश्वव्यापी स्वागत हुआ, वह सर्वथा स्वाभाविक था।

सबसे बड़ा आक्षेप

इस विश्व-व्यापी स्वागत के बावजूद राजधानी के अनेक क्षेत्रों में अणुव्रत-आन्दोलन को सन्देह एवं आशंका से देखा जाता रहा और उसको अविश्वास तथा विरोध की घनी घाटियों में से गुजरना पड़ा। विरोधियों और आलोचकों का सबसे बड़ा आक्षेप यह था कि आचार्यश्री एक पंथ-विशेष के आचार्य हैं और वह पंथ संकीर्ण साम्प्रदायिकता, अनुदारता तथा असहिष्णुता से ओत-प्रोत है। आन्दोलन का सूत्रपात उस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए किया गया है और उस सम्प्रदाय के अनुयायी अपने आचार्य को पुजवाने के लिए उसमें लगे हुए हैं। यह भी कहा जाता था कि इस सम्प्रदाय की सारी व्यवस्था अधिनायकवाद पर आधारित है। उसके आचार्य उसके सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अधिनायक हैं। वर्तमान प्रजा-तन्त्र-युग में अधिनायकवाद पर आश्रित आन्दोलन बड़ा खतरनाक है। इसी प्रकार के तरह-तरह के आरोप व आक्षेप आन्दोलन पर किये जाते थे। तेरापंथी सम्प्रदाय की मान्यताओं व मर्यादाओं के सम्बन्ध में संकुचित व संकीर्ण साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार व विरोध करने वाले इसी पक्षपातपूर्ण चश्मे से अणुव्रत-आन्दोलन को देखते थे और उस पर मनमाने आरोप व आक्षेप करने में तनिक भी संकोच न करते थे। तरह-तरह के हस्तपत्रक छाप कर बाँटे गए और दीवारों पर बड़े-बड़े पोस्टर भी छाप कर चिपकाये गए। विरोध करने वालों ने भरसक विरोध किया और आन्दोलन को हानि पहुँचाने में कुछ भी कसर उठा न रखी।

इस बवण्डर का जो प्रभाव पड़ा, उसको प्रकट करने के लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होना चाहिए। कुछ साथियों का यह विचार हुआ कि अणुव्रत-आन्दोलन का परिचय राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को देकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। उनका यह अनुमान था कि राष्ट्रपतिजी नैतिक नव-निर्माण के महत्त्व को अनुभव करने वाले महानुभाव हैं। उनको यदि इस नैतिक आन्दोलन का परिचय दिया गया तो अवश्य ही उनकी सहानुभूति प्राप्त की जा सकेगी। श्रीमान् सेठ मोहनलालजी कठोतिया के साथ मैं राष्ट्रपति-भवन गया और उनके निजी सचिव से चर्चा-वार्ता हुई, तो उसने स्पष्ट कह दिया कि यह आन्दोलन विशुद्ध रूप से साम्प्रदायिक है और ऐसे किसी साम्प्रदायिक आन्दोलन के लिए राष्ट्रपति की सहानुभूति प्राप्त नहीं की जा सकती। मैंने अनुरोध किया कि राष्ट्रपतिजी से एक बार मिलने का अवसर तो आप दें, परन्तु वे उसके लिए भी सहमत न हुए। यह एक ही उदाहरण पर्याप्त होना चाहिए; यह दिखाने के लिए कि आचार्यश्री को राजधानी में प्रारम्भिक दिनों में कैसे विरोध, भ्रम, उदासीनता तथा प्रतिकूल परि-स्थितियों में अणुव्रत-आन्दोल की नाव को खेना पड़ा। इसके विपरीत जिस धैर्य, संयम, साहस, उत्साह, विश्वास तथा निष्ठा से काम लिया गया, उसका परिचय इतने से ही मिल जाना चाहिए कि विरोधी आन्दोलन के उत्तर में एक भी हस्त-पत्रिका प्रकाशित नहीं की गई। एक भी वक्तव्य समाचारपत्रों को नहीं दिया गया और किसी भी कार्यकर्ता ने अपने किसी भी व्याख्यान में उसका उल्लेख तक नहीं किया—प्रतिवाद करना तो बहुत दूर की बात थी। जबकि आचार्यश्री के प्रभाव, निरीक्षण और नियन्त्रण में इस अपूर्व धैर्य और अपार संयम से कार्यकर्ता आन्दोलन के प्रति अपने कर्तव्य-पालन में संलग्न थे, तब यह तो अपेक्षा ही नहीं की जा सकती थी कि पूज्यश्री के प्रवचनों में कभी कोई ऐसी चर्चा की जाती। अणुव्रत-सम्मेलन के अधिवेशन में भी कुछ विघ्न डालने का प्रयत्न किया गया, परन्तु सम्पूर्ण अधिवेशन में विरोधियों की चर्चा तक नहीं की गई और प्रतिरोध अथवा असन्तोष का एक शब्द भी नहीं कहा गया। आन्दोलन अपने सुनिश्चित मार्ग पर अव्याहत गति से निरन्तर आगे बढ़ता गया।

अधिकाधिक सफलता

आचार्यश्री के उस प्रथम दिल्ली-प्रवास में राजधानी के कोने-कोने में अणुव्रत-आन्दोलन का सन्देश पूज्यश्री के प्रवचनों द्वारा पहुँचाया गया और दिल्ली से प्रस्थान करने से पूर्व ही उसके प्रभाव के अनुकूल आसार भी चारों ओर दीखने लग गए थे। राजधानी के अतिरिक्त आसपास के नगरों में आन्दोलन का सन्देश और भी अधिक तेजी से फैला। यह प्रकट हो गया कि तपस्या और साधना निरर्थक नहीं जा सकती। विश्वास, निष्ठा और श्रद्धा अपना रंग दिखाये बिना नहीं रह सकते। रचनात्मक और नव-निर्माणात्मक प्रवृत्तियों को असफल बनाने के लिए कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाये, वे असफल नहीं हो सकतीं। अणुव्रत-आन्दोलन का १०-१२ वर्ष का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि कोई भी लोक-कल्याणकारी शुभ कार्य, प्रवृत्ति अथवा आन्दोलन असफल नहीं हो सकता। राजधानी की ही दृष्टि से विचार किया जाये तो आचार्यश्री की प्रत्येक दिल्ली-यात्रा पहली की अपेक्षा दूसरी, दूसरी की अपेक्षा तीसरी और तीसरी की अपेक्षा चौथी अधिकाधिक सफल, आकर्षक और प्रभावशाली रही है। राष्ट्रपति-भवन, मन्त्रियों की कोठियों, प्रशासकीय कार्यालयों और व्यापारिक तथा औद्योगिक संस्थानों एवं शहर के गली-कूचों व मुहल्लों में अणुव्रत-आन्दोलन की गूंज ने एक-सरीखा प्रभाव पैदा किया। उसको साम्प्रदायिक बता कर अथवा किसी भी अन्य कारण से उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकी और उसके प्रभाव को दबाया नहीं जा सका। पिछले बारह वर्षों में पूज्य आचार्यश्री ने दक्षिण के सिवाय प्रायः सारे ही भारत का पाद-विहार किया है और उसका एकमात्र लक्ष्य नगर-नगर, गाँव-गाँव तथा जन-जन तक अणुव्रत-आन्दोलन के सन्देश को पहुँचाना रहा है। राजस्थान से उठी हुई नैतिक निर्माण की पुकार पहले राजधानी में गूँजी और उसके बाद सारे देश में फैल गई। राजस्थान, पंजाब, मध्यभारत, मध्यप्रदेश, खानदेश, बम्बई और पूना; इसी प्रकार दूसरी दिशा में उत्तरप्रदेश बिहार तथा बंगाल और कलकत्ता की महानगरी में पधारने पर पूज्य आचार्यश्री का स्वागत तथा अभिनन्दन जिस हार्दिक समारोह व धूमधाम से हुआ, वह सब अणुव्रत-आन्दोलन की लोकप्रियता, उपयोगिता और आकर्षण शक्ति का ही सूचक है।

मैंने बहुत समीप से पूज्य आचार्यश्री के व्यक्तित्व की महानता को जानने व समझने का प्रयत्न किया है। अणुव्रत-आन्दोलन के साथ भी मेरा बहुत निकट-सम्पर्क रहा है। मुझे यह गर्व प्राप्त है कि पूज्यश्री मुझे 'प्रथम अणुव्रती' कहते हैं। आचार्यश्री के प्रति मेरी भक्ति और अणुव्रत-आन्दोलन के प्रति मेरी अनुरक्ति कभी भी क्षीण नहीं पड़ी। आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा और अणुव्रत-आन्दोलन के प्रति विश्वास और निष्ठा में उत्तरोत्तर वृद्धि ही हुई है। महात्मा गांधी ने देश में नैतिक नव निर्माण का जो सिलसिला शुरू किया था, उसको आचार्यश्री के अणुव्रत-आन्दोलन ने निरन्तर आगे ही बढ़ाने का सफल प्रयत्न किया है। यह भी कुछ अत्युक्ति नहीं है कि नैतिक नव-निर्माण की दृष्टि से पूज्य आचार्यश्री ने उसे और भी अधिक तेजस्वी बनाया है। चरित्र-निर्माण हमारे राष्ट्र की सबसे बड़ी महत्त्वपूर्ण समस्या है। उसको हल करने में अणुव्रत-आन्दोलन जैसी प्रवृत्तियाँ ही प्रभावशाली ढंग से सफल हो सकती हैं, यह एकमत से स्वीकार किया गया है। राष्ट्रीय नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रवक्ताओं और लोकमत का प्रतिनिधित्व करने वाले समाचार-पत्रों ने एक स्वर से उसके महत्त्व और उपयोगिता को स्वीकार किया है। संत बिनोबा का भूदान और पूज्य आचार्यश्री का अणुव्रत-आन्दोलन, दोनों का प्रवाह दोनों के पादविहार के साथ-साथ गंगा और जमुना की पुनीत धाराओं की तरह सारे देश में प्रवाहित हो रहा है। दोनों की अमृतवाणी सारे देश में एक जैसी गूंज रही है और भौतिकवाद की घनी काली घटाओं में बिजली की रेखा की तरह चमक रही है। मानव-समाज ऐसे ही संत महापुरुषों के नव जीवन के आशामय सन्देशों के सहारे जीवित रहता है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में जब अणुबमों और महा-विनाशकारी साधनों के रूप में उसके द्वार पर मृत्यु को खड़ा कर दिया गया है, तब ऐसे संत महापुरुषों के अमृतमय सन्देश की और भी अधिक आवश्यकता है। आचार्य-प्रवर श्री तुलसी और संत-प्रवर श्री विनोबा इस विनाशकारी युग में नव जीवन के अमृतमय सन्देश के ही जीवन्त प्रतीक हैं। धन्य हैं हम, जिन्हें ऐसे संत महापुरुषों के समकालीन होने और उनके नैतिक नव-निर्माण के अमृत सन्देश सुनने का सौभाग्य प्राप्त है!

अणुव्रत-आन्दोलन के पिछले ग्यारह-बारह वर्षों का जब मैं सिंहावलोकन करता हूँ, तब मुझे सबसे अधिक

आशाजनक जो आसार दीख पड़ते हैं, उनमें उल्लेखनीय है—आचार्यश्री के साधु-संघ का आधुनिकीकरण। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि साधु-संघ के अनुशासन, व्यवस्था अथवा मर्यादाओं में कुछ अन्तर कर दिया गया है। वे तो मेरी दृष्टि में और भी अधिक दृढ़ हुई हैं। उनकी दृढ़ता के बिना तो सारा ही खेल बिगड़ सकता है; इसलिए शिथिलता की तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकता। मेरा अभिप्राय यह है कि आचार्यश्री के साधु-संघ में अपेक्षाकृत अन्य साधु संघों के सार्वजनिक भावना का अत्यधिक मात्रा में संचार हुआ है और उसकी प्रवृत्तियाँ अत्यधिक मात्रा में राष्ट्रोन्मुखी बनी हैं। आचार्यश्री ने जो घोषणा पहली बार दिल्ली पधारने पर की थी, वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई है। उन्होंने अपने साधु संघ को जन-सेवा तथा राष्ट्र-सेवा के लिए अर्पित कर दिया है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होना चाहिए। वह यह कि जितने जनोपयोगी साहित्य का निर्माण पिछले दस-ग्यारह वर्षों में आचार्यश्री के साधु-संघ द्वारा किया गया है और जन-जागृति तथा नैतिक चरित्र-निर्माण के लिए जितना प्रचार-कार्य हुआ है, वह प्रमाण है इस बात का कि समय की माँग को पूरा करने में आचार्यश्री के साधु-संघ ने अभूतपूर्व कार्य कर दिखाया है और देश के समस्त साधुओं के सम्मुख लोक-सेवा तथा जन-जागृति के लिए एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर दिया है। युग की पुकार सुनने वाली संस्थाएं ही अपने अस्तित्व को सार्थक सिद्ध कर सकती हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आचार्यश्री के तेरापंथ साधु-संघ ने अपने अस्तित्व को पूरी तरह सफल एवं सार्थक सिद्ध कर दिया है।

तुभ्यं नमः श्रीतुलसीमुनीश !

आशुकविरत्न पण्डित रघुनन्दन शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

अणुव्रतैः शान्तिनितान्तशीलै रस्त्रै रमोघैः कलहं विजेतुम्।
त्वं भारतोर्व्यां कुरुषे विहारं, तुभ्यं नमः श्रीतुलसीमुनीश ॥१॥
त्वं लोकबन्धोः सदृशो विभासि, लोकान्धकारस्य विनाशनाय।
पापाधमैधांसि विदग्धुमर्हः, प्राज्ञैः प्रतीतोऽस्यकृशः कृशानुः ॥२॥
चिन्ताग्निना प्रज्वलिताङ्गभाजां, शान्तं सुशीतं हृदयं करोषि।
दोषैरशेषै रहितं ब्रुवन्ति, विदांवरा स्त्वामशशं शशाङ्कम् ॥३॥
रत्नोपमानि प्रवरव्रतानि, दीनाय दारिद्र्य-हताय दत्से।
विद्वद्वरा स्त्वां मधुरं वदन्तमक्षारतोयं जलधिं विदन्ति ॥४॥
अहिंसया निर्हृत लोकदुःखं, सद् ब्रह्मचर्यव्रतभूषिताङ्गम्।
अपुत्रभार्यं विजहद् गृहं त्वां, मन्यामहे गान्धिमगाधबुद्धिम् ॥५॥
अशेषशब्दाम्बुधिपारयातं, सारस्वताः संप्रति सन्दिहन्ति।
त्वं पाणिनिं वा तुलसीमुनिं वा, दाक्षी[1] सुतं वा वदना[2] सुतं वा ॥६॥
साधूं स्त्वदीयान् सम भोज्यवस्त्रान्, एक क्रिया नेक गुरौ निबद्धान्।
वीक्ष्य प्रवीणा इह निर्णयन्ति, न साम्यवादं न समाजवादम् ॥७॥
गीतामपि त्वां परितः पठन्तं, जैनागमान् पूर्णतया रटन्तम्।
शौद्धोदने ग्रन्थवरान् भणन्तं, स्वं-स्वं विदुर्वैदिकजैनबौद्धाः ॥८॥

१ दाक्षी, पाणिनिमाता २ वदना, तुलसी माता

सम्प्रति वासवः

मुनिश्री कानमलजी

सुरसभेव सभा तव राजति, सुरसभाव सभा नव राजति।
त्वमपि संसदसंप्रति वासवः, कुतुहलं मम बिभ्रति वासवः ।।१।।
यमवलोक्य भवन्तमिवोज्ज्वलं, परिवृतं भगणैः रिव साधुभिः।
अवकिरन्तमिवामृतधारया, सितरुचं परमंचसिताम्बरे ।।२।।
कुमुदिनी मुदिनी मुदिनीरधि रधिपतिः स्वगृहं स्वगृहं प्रति।
सुभगवां भगवान् भगवांछया, सकल साध्यल साध्यल नाध्यय ।।३।।

निर्द्वन्द्वो द्वन्द्वमाश्रितः

मुनिश्री चन्दनमलजी

विनयेन वराविद्या, विवेको विद्यया सह।
वकारत्रयमाबाल्यात्, समगंस्त त्वयि प्रभो ।।१।।
पाठकः पाठकालेयः, सेव्यमानोसि सेवकः।
तितीर्षुस्तारकश्चापि, निर्द्वन्द्वो द्वन्द्वमाश्रितः ।।२।।
वृद्धिकृद् वर्द्धमानो यः, श्रमणः श्रमतत्परः।
विरोधिषु महावीरः, संगताख्यात्रयी त्वयि ।।३।।
पञ्चविंशतिवर्षेषु, भ्रामं भ्रामं भुवस्तले।
गुप्तं नैदंयुगीनैस्तद्, यत्त्वयोपकृतं गणे ।।४।।
पुत्रस्त्वमतिजानोसि, देव ! पुत्र चतुष्टये।
वृत्तिं सर्व जनीनां यत्, समाश्रित्य विराजसे ।।५।।
ध्वान्तं दुर्णयसंभूतं, दूरयन् धवलेश्वर।
धवलस्ते समारोहो, विश्वं धवलयिष्यति ।।६।।
स्वयं प्रकाशमानोथो, अर्थसार्थं प्रकाशयन्।
भानुमानिव लोकेस्मिन्, जयतात्तुलसी प्रभुः ।।७।।

तुलसीं वन्दे

श्री यतीन्द्र विमल चौधरी
मन्त्री-वङ्गीय संस्कृत शिक्षा परिषद्

आचार्यतुलसीं वन्दे जैनधर्मस्वरूपकम्।
'तेरापन्थि' महासङ्घ-मैत्रीबन्धनहेतुकम् ।।१।।
महावीर महाधर्म-सुधारसप्रदायकम् ।।
अणुव्रत-प्रचारेण विश्वशुद्धिविधायकम् ।।२।।

चिरं जयतु श्रीतुलसामुनीन्द्रः

मुनिश्री नवरत्नमलजी

अर्हन त्वमेव भगवन्नुपकारकत्वात् सिद्धोपि विश्ववसुधातल आश्रयत्वात्
आचारचिन्तनपटोरनुयोगकृच्चोपाध्याय आर्य ! मुनि उज्ज्वलसाधकत्वात् ।।१।।
विद्यार्थिनोविनयशासनशीलयुक्तान् व्यापारिणः सरलसत्यपथप्रविष्टान्
कर्माधिकारिमनुजान् नयनीति निष्ठान् कुर्वन् चिरं जयतु श्रीतुलसीमुनीन्द्रः ।।२।।

•

न मनुजोऽमनुजोऽर्हति तत्तुलम्

मुनिश्री पुष्पराजजी

सु तुलसी भुवने स्त्यमरः प्रियो, न मनुजोऽमनुजोऽर्हति तत्तुलम् ।
हृत विधि सुविधिं शरणागतं, प्रकुरुते हरते च तदापदम् ।।१।।
तदमले कमले चलनेऽधुना, सुमनसं मनसोपहरन्नरम्,
सुमनसा प्रणमन्नऽहमुत्सुकः, सुसमये धवले ह्यभिनन्दनम् ।।२।।

•

निर्मलात्मा यशस्वी

मुनिश्री वत्सराजजी

लोकोद्धारं समयविदुरः कर्तुमुद्यद् वचस्वी,
स्वात्मोद्धारं समयविदुरो नित्यमीशो मनस्वी ।
स्वान्योद्भासी गृहमणिनिभः सत्तपस्वी महस्वी,
चेतस्तल्पे लसतु तुलसी निर्मलात्मा यशस्वी ।।१।।
को नो विद्यात् तरुणतरणिं तीव्र तेजः प्रतापं,
भूम्याकाशंयदुदयवशाद् भासते सम्प्रकाशम् ।
तोषं यातं निखिलभुवनं क्रान्तिशीलं निरीक्ष्य,
शोषं यातो जनपथ ततः केवलं पंकराशिः ।।२।।
कल्याणाभं दिवि दिनमणिं नित्य मुच्चैश्चरिष्णु,
मीर्ष्या-म्लाना तिरयितु मिमे वारिवाहा यतन्ते ।
पातस्तेषां भवति तरसा वीक्षणीयो विपाकः,
श्रद्धा स्फीता भवति भुवने भास्वतां तद् विरोधात् ।।३।।

•

कोपि विलक्षणात्मा

मुनिश्री डूंगरमलजी

आचार्यवर्यपदमाप्य सुशास्त्रसिन्धुं, निर्मथ्य तत्त्वसुमणीनुपगम्य पूज्य ।
श्रीमान् स्वयं समभवत् कृतवांश्च सङ्घं, विष्णुर्भवानजनि कोपि विलक्षणात्मा ॥१॥
योगात्मवद् वैदिक ब्रह्मवत् किम्, व्याप्तं त्रिलोके सुयश स्त्वदीयम् ।
तेषां तु बाधाऽनुपलब्धिमात्रात्, प्रत्यक्षतस्ते सुयशः-प्रसिद्धिः ॥२॥
अस्तं कदा याति कदा ह्युदेति, न ज्ञानमाप्नोति जनस्तवान्तिके ।
वैशेषिकं मुक्तिपद समर्पयन्, वैशेषिकः कोपि विलक्षणो भवान् ॥३॥
प्रत्यक्षसिद्धान् सुगुणांस्त्वदीयान्, मीमांसका नैव विलोकयन्ति ।
गुणा न संतीति मतं मतं यत्, सत्येपि सूर्ये जनुषान्धका यथा ॥४॥
प्रतिभया चकितं जगतीतलं, मधुरया सुगिरा तृपिता नराः ।
तमभिनन्दितवान् धवलोत्सवे, गुरुवरं तुलसीं मुनि डुंगरः ॥५॥

●

निरन्तरायं पदमाप्तुकामः

मुनिश्री शुभकरणजी

कल्याणकांक्षिन् सुकृतिन् प्रयोगिन् कृतिन् प्रयोगिन् तुलसीमुनीश ।
सर्वान् सदा पाहि निरन्तरायं निरन्तरायं पदमाप्तुकामः ॥१॥
जीयाच्चिरं विश्वदिनेशतेजो, दिनेशतेजोपि भवेदणीयम् ।
गतागतिप्रज्ञ समागमज्ञ, समागमज्ञ स्थितधिन् मुमुक्षो ॥२॥

●

वन्द्यो न केषां भवेत् ?

श्री विद्याधर शास्त्री, एम० ए०

राष्ट्रे नित्यमणुव्रतादिषु जनान् संयोजयन् पावयन्,
भ्रष्टाचारतमः सदा स्वविषयात् सोन्मूलमुच्छेदयन् ।
तत्तच्छास्त्रनयादिशोधनपरः शिष्यप्रदेयागमः,
आचार्यस्तुलसी सभादिनकरो वन्द्यो न केषां भवेत् ॥१॥
रत्नं भारतसंस्कृते मुनिवरो मान्यो मनस्वी महान्,
नेता कोऽपि कृती स्वशुभ्रयशसा सर्वा दिशः पूरयन् ।
भव्येऽस्मिन् धवले महोत्सवदिने विभ्राजमानोऽधिकम्,
आचार्यस्तुलसी विलक्षणमतिर्जातोऽभिनंद्योऽखिलैः ॥२॥

●

निष्ठाशील शिक्षक

मुनिश्री दुलीचन्दजी

आचार्यश्री तुलसी केवल भारत में ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय जगत् मे ख्याति प्राप्त महापुरुष है। इसमें उनके मौलिक विचार और उन पर पूर्ण निष्ठा ही मुख्य कारण है। जैन परम्परा में, एक बड़े संघ के अधिनायक होने के कारण उन्हें अपने संघ में विद्या और प्रचार-कार्य में अनवरत रत रहना पड़ता है। जैन साधुओं के लिए नियमानुसार निरन्तर एक स्थान में रहना तो निषिद्ध है ही, फिर भी वे साधारणतः एक क्षेत्र में एक महीने तक और चातुर्मास की स्थिति हो तो एक क्षेत्र में चार महीने तक रह सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे घूमते रहते हैं। किन्तु आचार्यश्री इससे भी कुछ आगे बढ़े और उन्होंने एक देशव्यापी यात्रा प्रारम्भ की। इन कुछ वर्षों में उन्होंने करीब १५-१६ हजार मील की यात्राएं की हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल आदि अनेक प्रान्तों मे घूम-घूम कर उन्होंने जनता में नैतिकता की मशाल जगाई। यह सब कार्य चातुर्मास के अतिरिक्त निरन्तर विहार करते रहने पर ही बन पाया है। यदि एक-एक गाँव में महीने-महीने भर बैठे रहते तो इस प्रकार एक देशव्यापी यात्रा कभी सम्भव नहीं थी।

पैदल विहार करते हुए भी उन्होंने अपने संघ में विद्या की एक मन्दाकिनी बहायी है। यह उनकी एक निष्ठा का फल है। प्रातः और सायं दोनों समय विहार करते रहना और उसके साथ-साथ अध्ययन-कार्य भी चालू रखना, यह एक अनहोनी-सी बात लगती है। दिन-भर मे १५-१६ मील चल लेने के पश्चात् शरीर की क्या दशा होती है, यह तो सर्वविदित है ही। इसके उपरान्त भी आचार्यश्री अपनी शिष्य मण्डली को विश्राम करने की बेला में अध्ययन रत रखते थे। साधु-गण भी इस समय अत्यन्त मनोयोग के साथ अध्ययन कार्य में संलग्न रहते थे। कभी-कभी जब आचार्यश्री एकनिष्ठ होकर अपने शिष्य समुदाय को अध्ययन करवाते तो प्राचीन महर्षि-मुनियों की याद हो आती थी। आचार्यश्री अनेक कार्यों में व्यस्त होते हुए भी अपने शिष्यों को संस्कृत-व्याकरण, दर्शन, सिद्धान्त, साहित्य आदि अनेक कठिन विषयों का अध्ययन कराने में पूर्ण रुचि रखते है।

इस प्रकार आचार्य प्रवर ने अध्ययन-परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए एक परीक्षाक्रम भी बनाया। योग्य, योग्यतर और योग्यतम यह एक परीक्षा क्रम है। योग्य में तीन वर्ष, योग्यतर में दो वर्ष और योग्यतम में दो वर्ष; इस प्रकार सात वर्ष का यह आध्यात्मिक शिक्षा-क्रम है। इस परीक्षाक्रम में अध्ययनार्थ कुछ वैदिक, बौद्ध और जैनेतर धर्म के ग्रन्थ भी लिए गए हैं। उदाहरणार्थ--गीता, महाभारत, धम्मपद आदि-आदि।

इस परीक्षा क्रम के ऊपर भी एक 'कल्प' नामक परीक्षा है जोकि दर्शन, सिद्धान्त, व्याकरण आदि किसी भी विषय में विशेषज्ञ होने की इच्छा रखने वाला दे सकता है। उपर्युक्त विहारादि की कठिनाइयों के बावजूद भी अनेक साधु संतों ने इस परीक्षा क्रम में परीक्षा देकर सफलता प्राप्त की है।

वस्तुतः यह देखा जाये तो आचार्यश्री के सान्निध्य में चलने वाला यह अध्ययन कार्य किसी भी विद्यालय से कम नहीं कहा जा सकता। इसको यदि हम एक चलता-फिरता विश्वविद्यालय भी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। एक स्थान पर रह कर अध्ययन-अध्यापन होना बड़ा सरल है, किन्तु इस प्रकार ग्रामानुग्राम घूमते हुए इस कार्य में दक्षता प्राप्त कर लेना, एक टेढ़ी खीर है। यह एक आचार्यश्री जैसी तपःपूत आत्मा की प्रेरणा का ही सुफल है; अन्यथा आज हम देख रहे हैं कि अनेकानेक सुविधाओं व प्रलोभनों के बावजूद भी आज के विद्यार्थी कैसा अध्ययन करते हैं, यह किसी से

छिपा हुआ नहीं है। साधुओं ने जिस प्रकार आचार्य प्रवर के इस तात्त्विक अध्ययनक्रम को सफल बनाने के लिए प्राणप्रण से चेष्टा की, उसी प्रकार साध्वी समाज ने भी दत्तचित्त होकर ज्ञान प्राप्ति में कोई कमी नहीं रखी। फलतः उनके साधु संत संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी, मारवाड़ी आदि अनेकों भाषाओं के प्रभावशाली पंडित बने।

आचार्यश्री के साधु समाज में आज अनेक साधु संस्कृत व हिन्दी के आशु कवि हैं। अनेक साधु-साध्वियाँ कविता लिखने में सिद्धहस्त हैं। अनेक साधु गद्य-पद्य के लेखक हैं। उनके कुछ साधुओं ने संस्कृत, हिन्दी व प्राकृत की नवीन व्याकरणों की भी रचना की है। उदाहरणार्थ—भिक्षुशब्दानुशासनमहाव्याकरण, कालूकौमुदी, तुलसी प्रभा, तुलसी मंजरी व जय हिन्दी व्याकरण आदि। अनेक साधु तात्त्विक ग्रन्थों के लेखक व अनुशीलक बने। अनेक साधु अवधान विद्या के पारंगत भी बने। जिनमें कुछ शतावधानी, पंचशतावधानी, सहस्रावधानी और सार्धसहस्रावधानी भी हैं। इस प्रकार आचार्य प्रवर की उत्साहदायिनी प्रेरणा पाकर अनेक साधु उच्चकोटि के विद्वान् बने। पारस लोहे को कंचन बनाता है, 'पारस' नहीं, किन्तु आचार्यश्री अपने अनेक शिष्यों को अपने समकक्ष लाये। आचार्यश्री में यह एक विशेष ध्यान देने की बात है कि वे विद्याध्ययन कराने के लिए किसी के भी साथ संकीर्णता का बरताव नहीं करते। आचार्य प्रवर ने अपने कुछ शिष्यों को जैन-सिद्धान्तों के शोधकार्य में भी जोता। वह कार्य इतनी यात्राओं के होते हुए भी सुचारु रूप से चल रहा है। जहाँ पर प्रचार, पर्यटन, जन-सम्पर्क, अध्ययन, अध्यापन आदि अनेक कार्य साथ-साथ चल रहे हों, वहाँ सब कार्यों की गति स्वभावतः ही मंद पड़ जाती है। किन्तु आचार्यप्रवर के वचनों में न जाने कौन-सी अद्भुत शक्ति भरी हुई है कि उनके सान्निध्य में चलने वाले अनेक कार्य उसी तीव्र गति से चल रहे हैं। अनेक कार्यक्रमों की व्यस्तता में भी उनका एक भी शिष्य पठन-पाठन के परिश्रम से पीछे नहीं हटता।

आचार्यश्री के कन्धों पर संघ के गुरुतर दायित्व का भार है, अतः उन्हें अन्यान्य कार्यों के लिए अवकाश मिल पाना आसान नहीं है, फिर भी वे व्याख्यान, प्रचार, बातचीत, चर्चा आदि अनेकानेक कार्यों में व्यस्त रहते हैं। तेरापंथ सम्प्रदाय की प्रणाली के अनुसार छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सारे कार्य उन्हीं की आज्ञा के अनुसार सम्पादित होते हैं। अतः इन छोटे-मोटे कार्यों में भी उन्हें ही ध्यान बटाना पड़ता है। इस प्रकार प्रत्येक समय में वे कार्यों से 'सावन भादों' में बादलों से नीले नभ की तरह घिरे रहते हैं। सुबह चार बजे से लेकर रात को नौ बजे तक वे अत्यन्त उत्साहपूर्वक अपने एक-एक कार्य के लिए सजग रहते हैं। यहाँ तक कि वे अपने नियोजित कार्यों के लिए कभी-कभी भोजन को भी गौण कर देते हैं। चर्चा, प्रश्नोत्तर, अध्ययन, अध्यापन आदि कार्य करते समय तो वे अपने-आपको भूल से ही जाते है। चर्चा, वार्ता व प्रश्नोत्तरों के कारण रात को कभी-कभी ग्यारह व बारह बजे तक जागते रहते हैं। उधर पश्चिम रात्रि में साधुओं को स्वाध्याय व पढ़ाने के लिए वे नियमित रूप से चार बजे उठते हैं। इस प्रकार उनकी एकनिष्ठा ने साधु-समाज को जो विद्या की एक अमोघ शक्ति दी है, वह अतुलनीय है।

बिहार, बंगाल, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि अनेक देशों में आचार्यश्री के अनुयायी लोग रहते हैं। वे लोग सहस्रों ही नहीं, अपितु लाखों की संख्या में हैं। वे लोग भी तात्त्विक और सद्व्यवहारिक ज्ञान से वंचित न रह जाएं, इसको दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने उपर्युक्त प्रत्येक प्रान्त के प्रत्येक गाँव व नगर में अपने साधु-साध्वीगण के दल भेज कर उन्हें भी ज्ञानार्जन करने का अवसर प्रदान किया। इस प्रकार लोगों को तात्त्विक ज्ञान की अवगति कराने के लिए आचार्यप्रवर ने एक नई दिशा दी। इसका भी एक परीक्षाक्रम निर्धारित किया गया। कलकत्ता तेरापंथी महा-सभा द्वारा प्रतिवर्ष इस परीक्षाक्रम में अध्ययन करने वालों की परीक्षा ली जाती है। सहस्रों बालक, बालिकाएं व तरुण इसमें अध्ययन कर अपने ज्ञानांकुर को विकसित करने में अग्रसर होते हैं।

आचार्यप्रवर आचार के क्षेत्र में जितने निष्ठाशील आचारी, विचार के क्षेत्र में जितने निष्ठाशील विचारक, सद्व्यवहार के क्षेत्र में जितने सद्व्यवहारी और चर्चा के क्षेत्र में जितने चर्चावादी हैं, उतने ही शिक्षा क्षेत्र में एक निष्ठाशील शिक्षक भी हैं। तेरापंथ संघ में आज जो अप्रत्याशित शैक्षणिक प्रगति देख रहे हैं, उसका सारा श्रेय उसी एक उत्कट निष्ठाशील आत्मा को है, जिसने अपना अमूल्य समय देकर चतुर्विध संघ को आगे लाने का प्रयत्न किया है।

आञ्जनेय तुलसी

आचार्य जुगलकिशोर
शिक्षा-मंत्री, उत्तरप्रदेश सरकार

संजीवन विद्या का रहस्य

मानव विचार, मनन और मन्थन में अनेकानेक शक्तियों का पुंज है। वह अपने जीवन को साधना द्वारा नितान्त उज्ज्वल बना सकता है। वैसे तो प्राणीमात्र में सिद्धत्व और बुद्धत्व जैसे गुणों की उपलब्धि की सम्भावनाएं हैं, किन्तु वे अपनी शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलताओं के कारण इसके महत्त्व को हृदयंगम करने में बहुत कम क्षमता रखते हैं। मानव के अलावा अन्य प्राणियों का यह दुर्भाग्य है कि वे उसकी भाँति अपने हिताहित व कृत्याकृत्य को परख नहीं सकते। विवेकबुद्धि का उनमें अभाव है। इस भाँति केवल मानव ही एक ऐसा विचारशील एवं मननशील प्राणी है, जिसमें अपने हित-अहित और कृत्य-अकृत्य को परखने की अद्भुत क्षमता पायी जाती है। मानव ही अपने जीवन की संजीवन विद्या के रहस्य को समझ सकता है।

यह सब होते हुए भी आज परिस्थिति कुछ भिन्न-सी नजर आती है। किसी कारणवश आज मानव की वह चेतना-शक्ति मन्द पड़ गई है। यही मूलभूत कारण है, जिससे वह स्वार्थ में अन्धा होकर अनैतिकता की ओर अग्रसर हो गया है। उसके जीवन में सात्त्विकता की कमी हो रही है और अवांछनीय तत्त्व घर करने लगे हैं। मानव मानव में विश्वास की भावना का ह्रास हो रहा है। वह दूसरों के अधिकारों की परवाह नहीं करता। ऐसी स्थिति में उसके विवेक को जगाने का कोई उपक्रम चाहिए। अनैतिकता की व्याधि को स्वाहा करने के लिए कोई अमोघ औषधि चाहिए।

मानव की यह सुषुप्त चेतना तभी पुनर्जागृत हो सकती है जब उसमें चरित्र का बल हो। उसके प्रत्येक कार्य में अहिंसा व नैतिकता की पुट हो। जनवंद्य आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन इस दिशा में एक अभिनव प्रयास कर रहा है। वह दिग्भ्रान्त मानव-समाज को नैतिकता की खुराक दे रहा है और उसे एक दिशा-दर्शन देता है। अणुव्रत-आन्दोलन वास्तव में एक ऐसे समाज की रचना करना चाहता है जिसमें मिलावट, चोरबाजारी, दुराचार, अनाचार, बेई-मानी, ठगी, धूर्तता और स्वार्थान्धता आदि का पूर्ण रूप से अन्त हो जाये तथा मानव शीलवान्, सच्चरित्र व सद्गुण-सम्पन्न हो।

एक रचनात्मक अनुष्ठान

आचार्यश्री तुलसी ने समस्त मानव समाज को मैत्री, प्रेम और सद्भावना का सन्देश ऐसे समय में दिया है जबकि उसे उसकी परम आवश्यकता थी। भारतवर्ष के गाँव-गाँव में पैदल घूम-घूम कर आचार्यश्री ने जनता को यह बताया कि उनके विचारों की यह त्रिवेणी किस प्रकार मानव-समाज का कल्याण कर सकती है। महात्मा गांधी ने जिस समय अहिंसा के बल पर स्वराज्य दिलाने का वचन दिया था, तब अधिकांश लोगों ने यह सोचा था कि क्या गांधीजी अपने सम्पूर्ण जीवन में भी यह कर दिखाने में सफल होंगे। उन्होंने आलोचकों की परवाह न करते हुए अपना प्रयास जारी रखा और अन्त में परतन्त्रता की सदियों पुरानी बेड़ियाँ तोड़ फेंकी। जिस प्रकार स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए अहिंसा व सत्य का आश्रय लिया गया, उसी प्रकार उसकी रक्षा के लिए भी अहिंसा और सत्य का ही आश्रय लेना होगा। इन गुणों को विकसित करने की आवश्यकता है। अणुव्रत-आन्दोलन इस दिशा में एक स्पृहणीय प्रयास है। यह हमारे सौभाग्य और उज्ज्वल

भविष्य का सूचक है। राजस्थान की तपोभूमि से निःसृत आज यह आन्दोलन केवल भारतवर्ष की ही चारदीवारी में सीमित नहीं रहा है, बल्कि विदेशों में भी इसकी चर्चा होने लगी है। वास्तव में यह एक रचनात्मक अनुष्ठान है। अपने जीवन-काल के विगत लगभग बारह वर्षों में इस आन्दोलन के अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास हुआ है और उनमें आशातीत सफलता भी मिली है। संक्षेप में यह आन्दोलन जन-जीवन का परिमार्जन चाहता है। जहाँ वह नैतिक पतन की ओर जाते हुए मानव को नैतिक नव-जागरण की प्रेरणा देता है, वहाँ वह मनोमालिन्य, वैमनस्य व संघर्ष की ओर जाते हुए मानव-समाज को मैत्री की बात भी कहता है। वास्तव में यह आन्दोलन एक विचार-क्रान्ति है। यह मनुष्य को आदि से अन्त तक जकड़ता नहीं। इसका काम विचारों में स्वच्छता ला देना है। निःसन्देह यह उपक्रम सभी अर्थों में विचार-उच्चता का पोषक है और इसके प्रवर्तक जनवंद्य आचार्यश्री तुलसी सब के लिए वन्दनीय हैं; क्योंकि उन्होंने एक सम्प्रदाय-विशेष के अधिशास्ता होते हुए भी साम्प्रदायिक भावनाओं से परे रह मानव-मात्र को धर्म ग्रन्थों का नवनीत निकाल कर जीवन-संहिता के रूप में अणुव्रत-आन्दोलन का अनुपम पाथेय दिया है, जिसका उपभोग कर वह (मानव) अपने जीवन को तो सात्त्विक ढंग से बिता ही सकता है, पर साथ-ही-साथ दूसरों के लिए भी वह सुविधाशील बन सकता है।

ऐसे कल्याणकारी महापुरुष के चरणों में मानव का शीश स्वयं ही झुक जाता है और उसकी हृत्तन्त्री से स्वतः ही यह भावना मुखर हो उठती है कि ऐसा युगपुरुष सदियों तक मानव-मात्र का पथ-प्रदर्शन करता रहे और अपने आध्यात्मिक बल से मूर्च्छित नैतिकता में प्राण प्रतिष्ठित करने के लिए संजीवनी का अवतारण कर आञ्जनेय बने।

आचार्यश्री तुलसी के आचार्य काल एवं सार्वजनिक सेवाकाल के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने पर उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रकट करता हूँ। इन पच्चीस वर्षों के सेवाकाल में अणुव्रत-आन्दोलन को जो बल प्राप्त हुआ है, वह किसी से छिपा नहीं है। हम सबकी यही कामना है कि उस बहुमुखी व्यक्तित्व एवं राष्ट्रीय चरित्र पुनर्निर्माण के कार्य में उनका नेतृत्व हमें सर्वदा प्राप्त होता रहे। इस शुभ अवसर पर मैं अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी को अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

तरुण तपस्वी आचार्यश्री तुलसी

श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया, एम० ए०

आचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन-ग्रन्थ मे मुझे भी कुछ लिखने के लिए आमन्त्रित किया गया, पर मैं क्या लिखूं? जिनको हम इतनी निकटता मे जानते है, उनके बारे में कुछ कहना उतना ही कठिन है, जितना प्रसुप्त प्रज्ञा के द्वारा शक्ति को सीमा-बद्ध करना।

मै उन्हें बचपन से जानती हूं। कई बार सोचा भी था कि मैं सुविधा से उनके बारे में अपनी अनुभूतियाँ लिखूंगी। उनके व्यक्तित्व को जितनी निकटता से देखा, उतना ही निखरा हुआ पाया। उस जमाने में वे इतने विख्यात न थे, किन्तु विलक्षण अवश्य थे। उनकी तपश्चर्या, मन और शरीर की अद्भुत शक्ति और आध्यात्मिकता के तत्वांकुर गुरु की दिव्य-दृष्टि से छिप न सके और वे इस जैन संघ के उत्तराधिकारी चुन लिये गए। इन्होंने प्राचीन मर्यादाओं की रक्षा करते हुए, सम्पूर्ण व्यवस्था को, मौलिकता का एक नया रूप दिया। सारे संघ की बल-बृद्धि और शक्ति को इकट्ठा कर तपश्चर्या और आत्म-शुद्धि का सुगम मार्ग बतलाते हुए, संकीर्णता के बन्धनों को काटते हुए, शान्ति-स्थापना का संकल्प ले आगे बढ़े। जन-समूह ने इनका स्वागत किया और तब इनका सेवा-क्षेत्र द्रौपदी के चीर की तरह विस्तृत हो गया। आचार्यश्री तुलसी ने धार्मिक इतिहास की परम्पराओं पर ही बल नहीं दिया, बल्कि व्यक्ति और समय की आवश्यकताओं को समझ उसके अनुरूप ही अपने उपदेशों को मोड़ा। संघ के स्वतन्त्र व्यक्तित्व और वैशिष्ट्य का निर्वाह करते हुए साम्प्रदायिक भेदों को हटाने का भगीरथ प्रयत्न किया।

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन-व्यवहार की मूल भित्ति मानने वाले इस संघ के सूत्रधार के उपदेशों से जनता आश्वस्त हुई। आज के विश्व की इस विषम परिस्थिति में, जब सेवा का स्थान स्वार्थ ने, विश्वास का सन्देह ने, स्नेह और श्रद्धा का स्थान घृणा ने ले लिया है, तब इन्होंने भगवान् महावीर की अहिंसा-नीति का हर व्यक्ति में समन्वय करते हुए नये दृष्टिकोण से एक नई पृष्ठभूमि तैयार की।

मानव को देव नहीं, मानव बनाने का इनका गम्भीर प्रयत्न, बिना किसी फल और कीर्ति की आकांक्षा के निरन्तर चलता है। इनको अपने जीवन अथवा सेवा के लिए कोई आर्थिक साधन नहीं जुटाने पड़ते। बिना किसी प्रतिद्वन्द्विता की भावना से प्रभावित हुए अपने कार्यों को रचनात्मक रूप देते रहते है। पद और प्रशसा की भावना से उपराम होकर ये मानव की असहिष्णु हृदय-भूमि को नैतिक हल से जोतते हैं। प्रेम और धर्म के बीजों को बोते है। शास्त्रों के निचुड़े हुए अर्क से उन्हें सींचते हैं। क्षेत्रज्ञ की तरह उसकी रखवाली करते है, यही उनके अस्तित्व और सफलता की कुंजी है। यही इस पंथ का गुह्यतम इतिवृत्त है कि इतने थोड़े काल में विज्ञान और विनाश की इस कसमसाती बेला में भी समाज में इन्होंने अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है।

नगरों और ग्रामों में घूम कर, छाया, पानी, शीत, आतप आदि यातनाएं सहन कर लोक-कल्याण करते है। जीवन की सफलता के अचूक मन्त्र इस अणुव्रत को इस अहिंसा के देवदूत ने एक सरल जामा पहना कर लोगों के सामने रखा। सुगन्धित द्रव्यों के धूम्रसमूह-सा यह अनन्त आसमान में उठा और इहलोक और परलोक के द्वार पर प्रकाश डाला।

जब आचार्यश्री पद्मासन की तरह एक सुगम आसन में बैठते है तो उनके पारदर्शी ज्योति-विस्फारित नेत्रों से विशद आनन्द और नीरव शान्ति का स्रोत बहता है। उनकी वाणी में मिठास, मार्मिकता और सहज ज्ञान का एक प्रवाह-सा रहता है, जिसे सर्व-साधारण भी सहज ही ग्रहण कर सकता है। जीवन को सुन्दर बनाने के लिए इनके

पास पर्याप्त सामग्री है।

मैं इतना कुछ जानते हुए भी इस धर्म के गूढ़ तत्त्वों को आज तक हृदयंगम नहीं कर सकी हूँ, क्योंकि इन्होंने अपने आपको इतना विशाल बना लिया है कि इनको जान लेना ही इनके आदर्शों को सटीक समझ लेना है, क्योंकि ये ही इनकी सत्यता के साकार प्रतीक हैं। वैसे तो सारे ही धर्म-पंथ बड़े कठिन और ऊबड़-खाबड़ हैं, परन्तु इस पंथ के पथिक तो खाँड़े की तीखी धार पर ही चलते हैं। गुरु के प्रति शिष्यों का पूर्ण आत्म-समर्पण और उनके व्यक्तित्व इस तरुण तपस्वी के आदेशों में इस तरह समा जाते हैं, जैसे बृहत् साम का स्तुति-पाठ इन्द्र में समा जाता है।

त्याग की वेदी पर कर्मों का होम करने के बाद भी ये बड़े कर्मठ हैं। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक इनके क्षण बंधे हुए होते हैं। काल की अनन्तता में विश्वास करते हुए भी इनका पलार्धपल का हिसाब उसी तरह होता है, जैसा अवसान-वेला में वणिक् की दूकान का। इनके जीवन की कोई मिसल या मसला दूसरे दिन के लिए नहीं छोड़ा जाता। सारे दिन की आलोचना करने के बाद इनका मानस-पटल उस गहरे जलाशय-सा मालूम देता है, जिसकी तरंगें विलीन हो गई हों—थाह हीन, शान्त!

इस धार्मिक फिरके के संतों ने अपने-आपको आधुनिक प्रलोभन से इतना ऊपर उठा रखा है कि आज के अपूर्ण युग में ये अपनी कठिन मर्यादाओं से बँधे हुए जीते कैसे हैं?

त्याग और तप की प्रतिमूर्त्ति ये आचार्य और सूई की अनी से ऊँट को निकालने वाला इनका धर्म श्रेय और प्रेय का ज्ञान कराने में समर्थ है।

चरैवेति चरैवेति की साकार प्रतिमा

श्री आनन्द विद्यालंकार
सहसम्पादक — नवभारत टाइम्स, दिल्ली

'चरैवेति' का आदि और सम्भवतः अन्तिम प्रयोग ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेप उपाख्यान में हुआ है। उसमें इन्द्र के मुख से राजपुत्र रोहित को यह उपदेश दिलाया गया है कि **पश्य सूर्यस्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवेति चरैवेति।** इसका अर्थ है—'हे रोहित! तू सूर्य के श्रम को देख। वह चलते हुए कभी आलस्य नहीं करता। इसलिए तू चलता ही रह, चलता ही रह।' यहाँ 'चलता ही रह' का निगूढार्थ है कि 'तू जीवन में निरन्तर श्रम करता रह।' इन्द्र ने इस प्रकरण में सूर्य का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, उससे सुन्दर और सत्य अन्य कोई उदाहरण नहीं हो सकता। इस समस्त ब्रह्माण्ड में सूर्य ही सम्भवतः एक ऐसा भासमान एवं विश्व-कल्याणकर पिण्ड है, जिसने सृष्टि के आरम्भ से अपनी जिस आदि-अनन्त यात्रा का आरम्भ किया है, वह आज भी निरन्तर जारी है। इस ब्रह्माण्ड में गतिमान पिण्ड और भी हैं; परन्तु जो गति पृथ्वी पर जीवन की जनक तथा प्राणिमात्र में प्राण की सर्जक है, उसका स्रोत सूर्य ही है। वह सूर्य कभी नहीं थकता। अपने अन्तहीन पथ पर अनालस-भाव से वह निरन्तर गतिमान है। श्रम का एक अतुलनीय प्रतीक है वह! 'चरैवेति' अपने सम्पूर्ण रूप में उसी में साकार हुआ है।

जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि

सूर्य के लिए जो सत्य है, वह इस युग में इस पृथ्वी पर आचार्यश्री तुलसी के लिए भी सत्य है। जोधपुर-स्थित लाडनूं नगर के एक सामान्य परिवार में जन्म-प्राप्त यह पुरुष शारीरिक दृष्टि से भले ही सूर्य की तरह विशाल एवं भास-मान न हो, परन्तु उसका जो अन्तर्मन और प्रखर बुद्धि है, उसकी तुलना सूर्य से सहज ही की जा सकती है। उसके मान-सिक ज्योति-पिण्ड ने अपने चैतन्य-काल से जनहितकारी किरणों का जो विकिरण आरम्भ किया है, उसका कोई अन्त नहीं है। वह अविराम जारी है। भौतिक शरीर जरा-मरण और क्लान्ति-धर्मा है, किन्तु आचार्यश्री तुलसी ने अविराम श्रम से यह सिद्ध कर दिया है कि काल-क्रम के अनुसार जरा-मरण उन्हें भले ही आत्मसात् कर ले, परन्तु क्लान्ति उन्हें यावज्जीवन स्पर्श नहीं करेगी। जीवन में यह कितनी बड़ी व श्रेष्ठ उपलब्धि है। कितना महान् आदर्श है उस मानव-समाज के लिए, जिसका भौतिक और आध्यात्मिक कल्याण भी इसमें ही निहित है—**नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति।**

भाग्य और श्रम दोनों ही मानव की अनमोल निधि हैं। इनमें से एक सहज प्राप्त है और दूसरी यत्न-साध्य। भाग्य की महिमा संसार में कितनी ही दृष्टिगोचर होती हो और **भाग्यं फलति सर्वत्र** पर मानव का कितना ही अखण्ड विश्वास हो, परन्तु श्रम की जो गरिमा है, उसकी तुलना उससे नहीं की जा सकती। भाग्य तो परोपजीवी है और श्रम भाग्य का निर्माता। यह श्रम का ही प्रताप है, जिससे धरती शस्यश्यामला होती है और मनुज महिमा को प्राप्त होता है। संसार में जो कुछ सुख-समृद्धि दृष्टिगोचर है, उसके पीछे यदि कोई सर्जक शक्ति है तो वह श्रम ही है। नितान्त वन्य जीवन से उन्नति और विकास के जिस स्वर्ण शिखर पर मानव आज खड़ा है, वह श्रम की महिमा का ही स्वयं-भाषी प्रतीक है। जिस श्रम में इतनी शक्ति हो और जो सूर्य की तरह उस शक्ति का सागर हो, उससे अधिक 'चरैवेति' की साकार प्रतिमा अन्य कौन हो सकता है? आचार्यश्री तुलसी ने अपने अब तक के जीवन से यह सिद्ध कर दिया है कि श्रम ही जीवन का सार है और श्रम में ही मानव की मुक्ति निहित है।

आचार्यश्री तुलसी ने अपने बाल्यकाल से जो अथक श्रम किया है, उसके दो रूप हैं—ज्ञान-प्राप्ति और जन-कल्याण। बालक तुलसी जब दस वर्ष के भी नहीं थे, तभी से ज्ञानार्जन की दुर्दमनीय अभिलाषा उनमें विद्यमान थी। अपने बाल्यकाल के संस्मरणों में एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—'अध्ययन में मेरी सदा से बड़ी रुचि रही। किसी भी पाठ को कण्ठस्थ कर लेने की मेरी आदत थी। धर्म-सम्बन्धी अनेक पाठ मैंने बचपन में ही कण्ठाग्र कर लिये थे।' अध्ययन के प्रति उनकी तीव्र लालसा और श्रम का ही यह परिणाम था कि ग्यारह वर्ष की अल्प वय में तेरापंथ में दीक्षित होने के बाद दो वर्ष की अवधि में ही इतने पारंगत हो गए कि उन्होंने अन्य जैन साधुओं का अध्यापन प्रारम्भ कर दिया। उनकी यह ज्ञान-यात्रा केवल अपने लिए नहीं, अपितु दूसरों के लिए भी थी। निरन्तर श्रम के परिणामस्वरूप वे स्वयं तो संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड पण्डित हो ही गए, अपितु उन्होंने एक ऐसी शिष्य-परम्परा की स्थापना भी की, जिन्होंने ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण उन्नति की है। उनमें से अनेक प्रसिद्ध दार्शनिक, ख्यातनामा लेखक, श्रेष्ठ कवि तथा संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड उद्भट विद्वान् है।

आचार्यश्री की स्मृति-शक्ति तो अद्भुत एवं सहजग्राही है ही; परन्तु उनकी जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती के रूप में जो बीस हजार श्लोक विद्यमान हैं, वे उठते-बैठते निरन्तर उनके श्रम-साध्य पारायण का ही परिणाम है। उनमें जो कवित्व और कुशल वक्तृत्व प्रकट हुआ है, उसके पीछे श्रम की कितनी शक्ति छिपी है, इसका अनुमान सहज ही नहीं लगाया जा सकता। ब्रह्म मुहूर्त्त से लेकर रात्रि के दस बजे तक का उनका समस्त समय ज्ञानार्जन और ज्ञान-दान में ही बीतता है। भगवान् महावीर के 'एक क्षण को भी व्यर्थ न गँवाओ' के आदर्श को उन्होंने साक्षात् अपने जीवन में उतारा है। स्वयं की चिन्ता न कर सदा दूसरों की चिन्ता की है। वे प्रायः कहा करते हैं कि 'दूसरों को समय देना अपने को समय देने के समान है। मैं अपने को दूसरों से भिन्न नहीं मानता।' जिस पुरुष की समय और श्रम के प्रति यह भावना हो और जो स्वयं ज्ञान का गोमुख होकर ज्ञान की जाह्नवी बहा रहा हो; उससे अधिक 'चरैवेति' को सार्थक करने वाला कौन है? उपदेष्टा इन्द्र को कभी स्वप्न भी नहीं हुआ होगा कि किसी काल में एक ऐसा महापुरुष इस पृथ्वी पर जन्म लेगा जो उसका मूर्तिमन्त उपदेश होगा।

सर्वतः अग्रणी सम्प्रदाय

आचार्यश्री तुलसी के तेरापंथ का आचार्यत्व ग्रहण करने से पूर्व, अधिकांश साध्वियाँ बहुत अधिक शिक्षित नहीं थीं। यह आचार्यश्री तुलसी ही थे, जिन्होंने उनके अन्दर ज्ञान का दीप जगाया। जिस समय उन्होंने साध्वियों का विद्यारम्भ किया था तो केवल तेरह शिष्याएं थीं; परन्तु आज उनकी संख्या दो सौ से अधिक है और वे विभिन्न विषयों का अध्ययन कर रही हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने शिक्षा-पद्धति में भी संशोधन किये। पाठ्यक्रम को उन्होंने तीन भागों में बाँट दिया—प्रथम में उन्होंने दर्शन, साहित्य, व्याकरण, शब्दकोष, इतिहास, फलित ज्योतिष तथा विभिन्न कला एवं भाषाओं के ज्ञान की व्यवस्था की; दूसरे में जैन धर्म की शिक्षा की तथा तीसरे में धर्म-ग्रन्थों के ज्ञान की। साधु-साध्वियों के बौद्धिक एवं मानसिक स्तर को उन्नत करने के उद्देश्य से प्रबन्ध-लेखन, कविता-पाठ और धार्मिक एवं दार्शनिक वाद-विवादों की व्यवस्था भी की। ग्यारह वर्ष तक वे निरन्तर ज्ञानार्जन और ज्ञान-दान की पवित्र प्रवृत्तियों में संलग्न रहे। इस अद्भुत श्रम का ही यह फल है कि तेरापंथ आज भारत के सर्वतः अग्रणी सम्प्रदायों में से एक है।

ज्ञान के क्षेत्र में आचार्यश्री तुलसी ने जो महान् कार्य किया है, उसका एक महत्त्वपूर्ण अंग और भी है और वह है—जैन धर्म-ग्रन्थों—आगमों पर उनका अनुसन्धान। ये आगम भगवान् महावीर के उपदेशों का संग्रह हैं। वे ज्ञान के भण्डार हैं; परन्तु भगवान् महावीर के निर्वाण के उत्तरकालीन पच्चीस सौ वर्ष के समय-प्रवाह ने इन आगमों में अनेक स्थलों पर दुर्बोध्यता उत्पन्न कर दी है। आचार्यश्री तुलसी के पथ-प्रदर्शन में अब इन आगमों का हिन्दी-अनुवाद तथा शब्दकोष तैयार किया जा रहा है। जिस दिन यह कार्य पूर्णतः सम्पन्न हो जायेगा, उस दिन संसार यह जान सकेगा कि तपःपूत इस व्यक्ति में श्रम के प्रति कैसी अटूट भक्ति है! यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि अपनी ज्ञान-साधना से आचार्यश्री तुलसी ने यह सिद्ध कर दिया है कि वे श्रम के ही दूसरे रूप हैं।

आचार्यश्री तुलसी की दिनचर्या भी अविराम श्रम का एक उदाहरण है। वे ब्रह्म मुहूर्त में ही शय्या छोड़ देते हैं। एक-दो घण्टे तक आत्म-चिन्तन और स्वाध्याय के अनन्तर प्रतिक्रमण—सब नियमों और प्रतिज्ञाओं का पारायण करते हैं। हलासन, सर्वांगासन, पद्मासन उनका प्रिय एवं नियमित व्यायाम है। इसके पश्चात् एक घण्टे से अधिक का समय वे जनता को उपदेश तथा उनकी जिज्ञासाओं को शान्त करने में व्यतीत करते हैं। भोजनानन्तर विश्राम-काल में हल्का-फुल्का साहित्य पढ़ते हैं। उसके बाद दो से ढाई घण्टे तक का उनका समय साधुओं और साध्वियों के अध्यापन में बीतता है। विभिन्न विषयों पर विभिन्न लोगों से वार्ता के बाद वे दो घण्टे तक मौन धारण करते हैं और इस काल में वे पुस्तक-लेखन और अध्ययन करते हैं। सूर्यास्त से पूर्व ही रात्रि का भोजन ग्रहण करने के अनन्तर प्रतिक्रमण और प्रार्थना का कार्यक्रम रहता है। एक घण्टे तक पुनः स्वाध्याय अथवा ज्ञान-गोष्ठी के बाद आचार्यश्री शय्या ग्रहण कर लेते हैं। उनका यह कार्यक्रम घड़ी की सुई की तरह चलता है और उसमें कभी व्याघात नहीं होता। जब तक किसी व्यक्ति में श्रम और वह भी परार्थ के लिए श्रम करने की हार्दिक भावना न हो, तब तक उक्त प्रकार का यंत्रवत् जीवन असम्भव है।

आचार्यश्री के श्रम का दूसरा रूप है—जन-कल्याण। वैसे तो जो ज्ञानार्जन और ज्ञान-दान वे करते हैं, वह सब ही जन-कल्याण के उद्देश्य से है; किन्तु मानव को अपने हिरण्यमय पाश में बांधने वाले पापों से मुक्ति के लिए उन्होंने जो देशव्यापी यात्राएं की हैं और अपने शिष्यों से कराई हैं, उनका जन-कल्याण के क्षेत्र में एक विशिष्ट महत्त्व है। इन यात्राओं से आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध के शिष्यों द्वारा की गई वे यात्राएं स्मरण हो आती हैं जो उन्होंने मानवमात्र के कल्याण के लिए की थीं। जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने इस यात्रारम्भ से पूर्व अपने साठ शिष्यों को पंचशील का सन्देश प्रसारित करने का आदेश दिया था, ठीक उसी प्रकार आचार्यश्री तुलसी ने आज से बारह वर्ष पूर्व अपने छः सौ पचास शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा था—"साधुओ और साध्वियो! तुम्हारे जीवन आत्म-मुक्ति और जन-कल्याण के लिए समर्पित है। समीप और सुदूर-स्थित गाँवों, कस्बों और शहरों को पैदल जाओ। जनता में नैतिक पुनरुत्थान का सन्देश पहुँचाओ।" तेरापंथ का जो व्यावहारिक रूप है, उसके तीन अंग है—१ पवित्र एवं साधुतापूर्ण आचरण, २ भ्रष्टाचार से मुक्त व्यवहार और ३. सत्य में निष्ठा एवं अहिंसक प्रवृत्ति। आचार्यश्री तुलसी ने अपने शिष्यों को जो उक्त आदेश दिया था, उसका उद्देश्य तेरापंथ के इसी रूप की जनता-जनार्दन के जीवन में अवतारणा थी।

अणुव्रत चक्र प्रवर्तन

वर्तमान में भारतीय समाज की जो दशा है, वह किसी से छिपी नहीं है। प्राचीन आध्यात्मिकता का स्थान नितान्त भौतिकता ने ले लिया है। अन्तर्मुख होने के स्थान पर व्यक्ति सर्वथा बहिर्मुख हो गया है। विलासिता संयम पर आरूढ़ हो गई है और सर्वत्र भोग और भ्रष्टाचार का ही वातावरण दृष्टिगोचर होता है। यह स्थिति किसी भी समाज के लिए बड़ी दयनीय है। इस दुरवस्था से मुक्ति के लिए ही आचार्यश्री ने जनता में अणुव्रत चक्र प्रवर्तन का निश्चय किया। यह अणुव्रत ही वस्तुतः तेरापंथ का व्यावहारिक रूप है। इस 'अणुव्रत' शब्द में अणु का अर्थ है—सबसे छोटा और व्रत का अर्थ है—वचन—दृढ़ संकल्प। जब व्यक्ति इस व्रत को ग्रहण करेगा तो उससे यही अभिप्रेत होगा कि उसने अन्तिम मंजिल पर पहुँचने के लिए पहली सीढ़ी पर पैर रख दिया है। इस अणुव्रत के विभिन्न रूप हो सकते हैं और ये सब रूप पूर्णता के ही आरम्भक बिन्दु हैं। आचार्यश्री तुलसी ने इसी अणुव्रत को देश के सुदूर भागों तक पहुँचाने के लिए अपने शिष्यों को आज से बारह वर्ष पूर्व आदेश दिया था। तब से लेकर अब तक ये शिष्य शिमला से मद्रास तथा बंगाल से कच्छ तक सैकड़ों गाँवों और शहरों में पैदल पहुँचकर अणुव्रत की दुन्दुभी बजा चुके हैं। इस अवधि में आचार्यश्री ने भी अणुव्रत के सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने के लिए जो अत्यन्त आयासकर एवं दीर्घ यात्राएं की है, वे उनके सूर्य की तरह अविराम श्रम की शानदार एवं अविस्मरणीय प्रतीक हैं। राजस्थान के छापर गाँव से उन्होंने अपनी अणुव्रत-यात्रा का आरम्भ किया। उसके बाद वे जयपुर आये और वहाँ से राजधानी दिल्ली। दिल्ली से उन्होंने पैदल-ही-पैदल पंजाब में भिवानी, हाँसी, संगरूर, लुधियाना, रोपड़ और अम्बाला की यात्रा की। इसके बाद राजस्थान होते हुए वे बम्बई, पूना और हैदराबाद के समीप तक गये। वहाँ से लौटकर उन्होंने मध्यभारत के विभिन्न स्थानों तथा राजस्थान की पुनः यात्रा की। इसी प्रकार

उन्होंने उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल के लम्बे यात्रा-पथ तय किये।

भारत के आध्यात्मिक स्रोत

आचार्यश्री तुलसी की ये यात्राएं चरित्र-निर्माण के क्षेत्र में अपना अभूतपूर्व स्थान रखती हैं। उनकी तुलना अनैतिकता के विरुद्ध निरन्तर जारी धर्मयुद्धों से की जा सकती है। अपने शिष्यों समेत स्वयं यह महान् एवं अविराम श्रम करके आचार्यश्री तुलसी ने समस्त देश में शान्ति एवं कल्याण का एक ऐसा पवन प्रवाहित किया है, जिसकी शीतलता जन-मानस को स्पर्श कर रही है और जो अपने में सागरं सागरोपमः की तरह अनुपम है। जो आध्यात्मिक सन्तोष और आत्म-विश्वास की भावना इन यात्राओं के परिणामस्वरूप जनता को प्राप्त हुई, उसने समाज को चरित्र के चारु, किन्तु कठिन पथ पर चलने के लिए नवीन प्रेरणा प्रदान की है। अब तक लगभग एक करोड़ व्यक्ति अणुव्रत-आन्दोलन के सम्पर्क में आ चुके हैं और एक लाख से अधिक व्यक्तियों ने उससे प्रभावित होकर बुरी आदतों का परित्याग कर दिया है। आचार्यश्री तुलसी सूर्य की तरह ही न केवल दिव्यांग हैं, अपितु सूर्य की तरह ही उनकी समस्त दिनचर्या है। वे भारत के आध्यात्मिक स्रोत हैं। उन्होंने अपने चैतन्य काल से अब तक जो कार्य किया है, उस सब पर उनके श्रान्तिहीन श्रम की छाप विद्यमान है। वह जनता-जनार्दन का एक ऐसा इतिहास है जिसकी तुलना धर्म-संस्थानों के इतिहास से की जा सकती है। इस सकाम संसार में वह निष्काम दीप की तरह जल रहा है। जीवन का एक पल भी उनका ऐसा नहीं है, जिसमें उन्होंने अपनी ज्योति का दान दूसरों को न दिया हो। वह 'चरैवेति' की तरह एक ऐसी साक्षात् प्रतिमा है जिसके सम्मुख सिर सहज ही श्रद्धा से नत हो जाता है।
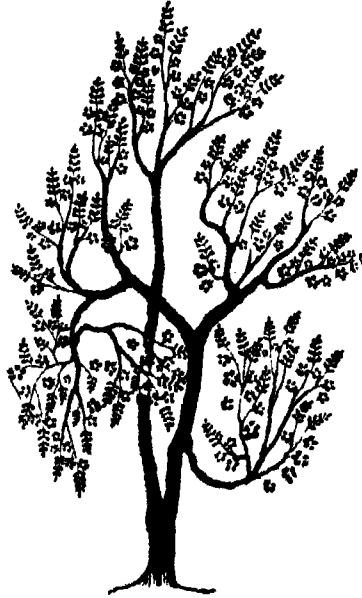
नवोत्थान के सन्देश-वाहक

श्री अमरनाथ विद्यालंकार
शिक्षामंत्री, पंजाब सरकार

आचार्य तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन वस्तुतः देश में नैतिकता और नियन्त्रण के प्रचार का आन्दोलन है। महात्मा गांधी ने अपनी पचास वर्ष की कठोर तपस्या द्वारा देश के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया, जिससे हम खून का एक कतरा बहाये बिना ही आजाद हो गये। इतिहास में अहिंसा और नैतिकता की इतनी बड़ी विजय इतने बड़े विशाल राजनैतिक क्षेत्र में प्रथम बार ही प्राप्त हुई। आज जब मानव समाज को संगठित तथा व्यवस्थित करने के लिए इतने प्रकार सोचे जा रहे हैं और मानव स्वभाव तथा भावनाओं के विकारों को बाह्य भौतिक उपायों द्वारा शान्त करने के नये-नये प्रकार उपस्थित किये जा रहे हैं; इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि नैतिक तथा आध्यात्मिक उपायों की यथार्थता तथा श्रेष्ठता व्यावहारिक रूप से सिद्ध की जाये। भारतीय विचारधारा के अनुसार इतिहास में अनेक बार क्षात्र भावनाओं पर ब्रह्मत्व की श्रेष्ठता व्यावहारिक रूप से सिद्ध की जा चुकी है।

महात्मा गांधी के पश्चात् आचार्य विनोबा और आचार्यश्री तुलसी ने नैतिकता के सन्देशवाहक का कठिन भार अपने कन्धों पर लिया है। और हमें उनका अनुसरण करना चाहिए।

आचार्यश्री तुलसी की गणना उन महान् धर्म-नायकों और संतों में है, जो केवल धर्मोपदेश देने ही में अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं करते, अपितु जन-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत होकर अपने समस्त क्रिया-कलाप को जनसेवा की साधना में समर्पित कर देते हैं। हमारे देश में बहुत थोड़े ऐसे धर्म-गुरु हैं जो स्वयं विद्वान् तथा ज्ञानवान् होते हुए भी अपनी विद्वता तथा पाण्डित्य पर सन्तुष्ट होकर नहीं बैठे रहते, अपितु लोकैषणाओं से निर्लिप्त रह कर ही जन साधारण के साथ उठते-बैठते, चलते-फिरते हैं और इस प्रकार अपने सदाचरणों के माध्यम से सामान्य जनों का मार्ग-दर्शन करते हैं।

आचार्यश्री तुलसी ने जैन मुनियों और थेरो के परम्परागत महान् दर्शन शास्त्र को जीवन दर्शन की भाषा में अनूदित किया और उसे 'अणुव्रत-आन्दोलन' का रूप दिया। प्राचीन दर्शन नवोत्थान का सन्देश लेकर भारतीय जन-साधारण को नव युग की प्रेरणा देने लगा।

समाज व्यवस्था के बिना क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकता। विशृंखल व्यक्तियों को परस्पर जोड़ कर समाज के रूप में सुसंगठित करने वाली कड़ियाँ कानून की तलवारों से गढ़ी नहीं जा सकती। मानव को मानव से जोड़ने वाली कड़ियाँ भावनात्मक होती हैं। लाठी से हाँके जाने वाले भेड़ों के रेवड़ की भाँति इन्सान भी मजमे के रूप में इकट्ठे भले ही किये जा सकते हैं, परन्तु जब तक उनकी हृदयतन्त्री के तार सम्मिलित होकर एक सुर में बज नहीं उठते, तब तक समाज नहीं बनता।

मैं जानता हूँ, आचार्यश्री तुलसी के संवेदनशील व्यक्तित्व तथा नैष्ठिक नैतिकतापूर्ण सदाचरण से प्रभावित होकर अनेक चतुर दुनियादार भौतिक सफलता के उपासकों ने नैतिकतापूर्ण जीवन का प्रसाद पाया है।

आचार्यप्रवर का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जा रहा है, इस अवसर पर शुद्ध प्रसूनों की यह तुच्छ भेंट उनके चरणों में समर्पित करते हुए मैं अपने-आपको धन्य मानता हूँ।

कुशल विद्यार्थी

मुनिश्री मीठालालजी

वस्तुत: कुशल विद्यार्थी ही कुशल अध्यापक होता है और कुशल अध्यापक ही औरों को प्रशिक्षित कर सकता है। जो बहुत अभिज्ञ होने पर भी जिज्ञासु भाव को संजोये रखे और सत्य के अनुसन्धान में 'मम-तव' के भेद में न उलझे वही व्यक्ति कुशल विद्यार्थी एवं अध्यापक होता है। विद्यालय विशेष से उसका लाग-लगाव नहीं होता। वह जहाँ होता है, वही उसके लिए विद्यालय बन जाता है और निरवकाश उसका कार्य सुचारु रूप से चालू रहता है। मेरा यह कहना सम्भवत: लोगों को अचरज में डालेगा कि आचार्यश्री तुलसी एक विद्यार्थी हैं।

मैं क्या कहूँ, वे स्वयं अपने को ऐसा मानते हैं और ऐसा बने रहने में ही उन्हें अपना और संसार का भावी विकास-दर्शन होता है। वे बहुत बार दूसरों को परामर्श भी यही देते हैं कि साहित्य की तह तक पहुँचने के लिए सदा प्रत्येक व्यक्ति को वयोवृद्ध और ज्ञान-वृद्ध हो जाने पर विद्यार्थी ही बना रहना चाहिए। ज्ञान की जब इयत्ता नहीं तब थोड़ा-सा ज्ञान पाकर अपने को इयत्ता-प्राप्त या सत्य के अन्तिम छोर तक पहुँचा मान लेना निरा अज्ञान है। वैचारिक दुराग्रह भी इसी स्थिति में पनपता है और वही व्यक्ति को सत्य से बहुत परे ढकेल देता है। सत्य का आग्रह अवश्य उपादेय है, किन्तु सत्य वही नहीं है जो व्यक्ति ने जाना, माना या अपना लिया। तो सत्य को पाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अथ से इति तक विद्यार्थी बने रहना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

सत्य को उपलब्ध करने की कुंजी

विद्यार्थी दुराग्रही या स्वमताग्रही नहीं होता और जो दुराग्रही या स्वमताग्रही होता है, वह विद्यार्थी भी नहीं होता। विद्यार्थी में निकेवल सत्य का आग्रह होता है। वह अपने अभिमत को ही सत्य नहीं, किन्तु सत्य को ही अपना अभिमत मानता है। वह किसी भी अभिमत को अपना तब तक ही मानता है, जब तक उसे वह सत्य लगता है। असत्य लगने के पश्चात् उसके परित्याग में उसे तनिक भी संकोच नहीं होता। आचार्यश्री ने एक चिन्तन गोष्ठी में अपना चिन्तन नवनीत प्रस्तुत करते हुए कहा था—'हमें जो समीचीन लगे उसे नि:संकोच भाव से आत्मसात् करना है। हम अनुकरण प्रिय नहीं, सत्य-प्रिय और सत्य-गवेषक हैं। सत्य पर आधारित बड़े-से-बड़ा परिवर्तन हमारे लिए अपेक्षणीय है और असत्य पर आधारित छोटे-से-छोटा परिवर्तन हमारे लिए उपेक्षणीय है, हेय है। कोरी अनुकरण-प्रियता में सत्य ओझल रहता है। नवीन चिन्तन के लिए अपने मस्तिष्क को सदा उन्मुक्त रखना चाहिए। किसी भी समय सत्य का कोई पहलू स्पष्ट हो सकता है जो अतीत में हमारे लिये अस्पष्ट रहा हो। चिन्तन का द्वार बन्द करने में विकास की इतिश्री हो जाती है।' यह है सत्य को उपलब्ध करने की आचार्यश्री की कुंजी।

आचार्यश्री प्राचीन परम्परा को आवश्यक और उचित महत्त्व प्रदान करते हैं, किन्तु प्राचीनता के साथ सत्य का गठ-बन्धन है और अर्वाचीनता के साथ नहीं, ऐसा उन्हें स्वीकार्य नहीं।

वे सर्वथा न प्राचीनता के समुत्थापक हैं और न सर्वथा अर्वाचीनता के सम्पोषक। वे प्राचीनता और अर्वाचीनता दोनों को तुल्य महत्त्व देते हैं, बशर्ते कि उसमें सचाई और औचित्य हो। सच्चाई से रिक्त न प्राचीनता उनके लिए उपादेय है और न अर्वाचीनता। सच्चाई प्राचीनता में भी हो सकती है और अर्वाचीनता में भी। प्राचीनता मात्र हेय नहीं और अर्वाचीनता मात्र उपादेय नहीं। दोनों में हेय अंश भी है और उपादेय अंश भी। ये हैं उनके एक और एक दो जैसे

स्पष्ट विचार। प्राचीनता के हेय अंश को छोड़ने में और अर्वाचीनता के उपादेय अंश को स्वीकार करने में वे कभी भी नहीं सकुचाते। यह उनकी स्पष्ट और मूलभूत रीति है। यही तो उनकी कुशल विद्यार्थिता है। विद्यार्थी पारखी होता है। उसका लगाव सत्य के सिवाय दूसरे के साथ हो भी कैसे सकता है!

तटस्थ दृष्टि

विद्यार्थी की दृष्टि तटस्थ होती है और उसके आलोक में वह सबको पढ़ता है। आचार्यश्री ने तटस्थ दृष्टि के आलोक में भारतीय दर्शनों का अध्ययन किया। दर्शनों में जहाँ अतटस्थ दृष्टिवाले लोगों को पूर्व-पश्चिम का विभेद दीखता है, वहाँ आचार्यश्री को अभेद अधिक दीखा। वे कहते हैं—"सभी आस्तिक दर्शनों के मूलभूत उद्देश्य में साम्य है, उपासना या साधना पद्धति में थोड़ा-बहुत विभेद अवश्य है। सभी दर्शनों में हमें ऐक्य के बीज अधिक उपलब्ध होंगे और अनैक्य के कम। थोड़े से अनैक्य के आधार पर लड़ना, झगड़ना और राग-द्वेष को उत्तेजना देना धर्म के नाम पर अधर्म का सम्पोषण करना है। उचित यह है कि हम अनैक्य के प्रति, सहिष्णु बनें और एक स्वर से ऐक्य के प्रसार में दत्तचित्त बनें।

यह सही है कि तटस्थ दृष्टि रखे बिना किसी भी दर्शन के हृदय को छुआ नहीं जा सकता। किसी भी दर्शन के प्रति गलत धारणा को लेकर उसे पढ़ना उसके प्रति अन्याय करना है। अतः दर्शन के विद्यार्थी के लिए तटस्थ दृष्टि ही स्पृहणीय है, जिसका कि आचार्यश्री में स्पष्ट प्रतिभास होता है।

आचार्यश्री समन्वय की भाषा में बोलते हैं, समन्वय की दृष्टि से सोचते हैं और लिखते हैं। समन्वयमूलक वृत्ति ने ही उन्हें जनप्रिय बनाया है। वे जो बात कहते है, वह सीधी लोगों के गले उतर जाती है। उनकी वाणी में ओज, हृदय में पवित्रता और साधना में उत्कर्ष है। उत्साह उनका अनुचर है। अत्यधिक कार्य व्यस्तता भी उनके सतत प्रसन्न स्वभाव को खिन्न बनाने में सर्वथा अक्षम्य ही रहती है। जन-जन के जीवन को नैतिकता से प्रशिक्षित करना ही उनका व्यसन है। उनका जीवन एक प्रेरक जीवन है, इसलिए वे नैसर्गिक कुशल अध्यापक हैं। उनके जीवन से लोगों को जो विश्व-बन्धुता और नैतिकता की प्रबल प्रेरणाएं उपलब्ध हुई है, वे सतत अविस्मरणीय है।

भारत के कोने-कोने से समायोज्यमान धवल समारोह आचार्यश्री की अविस्मरणीय सेवाओं की स्मृति मात्र है। इस अवसर पर मैं भी अपने को आचार्यश्री के अभिनन्दन से वंचित रखूँ, यह मुझे अभीष्ट नहीं।

महान् धर्माचार्यों की परम्परा में

श्री पी० एस० कुमारस्वामी
भूतपूर्व राज्यपाल, उड़ीसा

जब मैं यह सोचता हूँ कि मानव जन्म कितना दुर्लभ है और वह भी भारत जैसी पुण्य भूमि में, तो मेरा मस्तिष्क महान् विचारों से भर उठता है। यह हमारे देश का सौभाग्य है कि समय-समय पर इसमें महान् विवेकी पुरुषों ने जन्म लिया है और उन्होंने हमारे धर्म पर चढ़े हुए मैल को धोया है तथा लोगों को सही मार्ग दिखाया है। वास्तव में ऐसे पुरुषों ने देश की कीर्ति को आलोकित किया है और उनके विचारों ने सभी के हृदय को प्रभावित किया है। यह भव्य परम्परा वैदिक युग से प्रारम्भ हुई। जैन और बौद्ध धर्म के संस्थापकों ने भी हमको ज्ञान का प्रकाश प्रदान किया है और उनके बाद भी ऐसे सुप्रसिद्ध महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने इस देश की आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि की है। आज भारत के लिए यह समझा जाता है कि वह मानव-कल्याण के लिए अपना नैतिक योग दान देने में समर्थ है तो इसका कारण यही है कि भूत-काल में संतों और ऋषि-मुनियों ने भारत के लोगों को आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न बनाया था।

इस परम्परागत ज्ञान और विवेक का आधार यह विचार है कि सद् विचार, सद्ज्ञान और सदाचार से सुख की प्राप्ति होती है। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि यही शाश्वत और प्रेरक सन्देश अणुव्रत-आन्दोलन का भी मूलाधार है जिससे जीवन की शुद्धि होती है और दैनिक मानव-व्यवहार में नैतिकता और सत्य का समावेश होता है। वर्तमान समय में जब मानव मन भौतिकवाद के जाल में फँस रहा है, हमें अपना पथ आलोकित करने के लिए एक व्याव-हारिक और प्रेरक धर्म की आवश्यकता है। आचार्यश्री तुलसी उपयुक्त अवसर पर अवतरित हुए हैं। वे हमारे महान् धर्माचार्यों की परम्परा में हैं। वे हमें सद्विचार और सदाचार का मार्ग दिखा रहे हैं।

आज जगत की क्या अवस्था है, यह किसी से छुपा हुआ नहीं है। हमारे देश ने भी यदि वर्तमान असंस्कारी विचारधाराओं को अपनाया होता तो वह बुरे मार्ग पर चल पड़ता। किन्तु सौभाग्य से महात्मा गांधी ने हमारी समाज-नीति को प्रभावित किया। उन्होंने हमारी राजनीति को आध्यात्मिक रूप देने का प्रयास किया और हमें गर्हित भौतिक-वाद से बचा लिया। मुझे विश्वास है कि अणुव्रत-आन्दोलन भी अहिंसा, सत्य, स्वावलम्बन और स्वार्थ-त्याग पर बल दे कर राष्ट्र का कल्याण सिद्ध करने के लिए कठोर परिश्रम करेगा। ये सिद्धान्त किसी एक धर्म की बपौती नहीं हैं, सभी धर्म उनको मान्यता देते हैं। यह हो सकता है कि कोई धर्म उनके पालन पर न्यूनाधिक बल देता हो।

मुझे यह ज्ञात हुआ है कि आचार्यश्री तुलसी जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के नवम आचार्य हैं। इससे मुझे ख्याल आता है कि जैन धर्म का कितना व्यापक प्रचार रहा है। उसके प्राचीन और उदात्त सिद्धान्तों ने अकबर जैसे महा-पुरुषों को और आधुनिक काल में महात्मा गांधी को भी प्रेरणा दी है। जैन जीवन-दृष्टि राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अंग ही बन गई है। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जैन साहित्य और उसकी कलात्मक परम्परा भारतीय संस्कृति के समकक्ष बन गई हैं।

यह मैं इसलिए कहता हूँ कि दक्षिण भारत में भी जैन ग्रन्थकारों ने तमिल साहित्य को समृद्ध बनाया है। इससे प्रकट होता है कि उन्होंने इस क्षेत्र की भाषा को अपने धर्म की महत्ता और सन्देश का माध्यम बनाने में कोई हानि नहीं समझी। कला और नैतिकता के क्षेत्र में जैनों की उपलब्धियाँ और जीवन के इस क्षेत्र में जैन समाज की उल्लेखनीय

सफलताएं महत्त्वपूर्ण रही हैं। यह भी सर्वविदित है कि गांधीवाद पर जैन धर्म का कितना भारी प्रभाव पड़ा था।

मैं आशा करता हूँ कि आचार्यश्री तुलसी उत्तम और व्यवहारिक नागरिकता का विकास करने का अपना पावन कार्य निरन्तर करते रहेंगे और सभी सत्य-शोधकों के लिए समान मंच उपलब्ध करेंगे। मेरी कामना है कि वह लोगों को सही मार्ग बताएं और उनमें सरल और साहसी जीवन एवं सदाचार की नई चेतना उत्पन्न करके राष्ट्र का नैतिक कल्याण सिद्ध करने में यशस्वी हों।

←→

अभिनन्दन गीत

श्री मतवाला मंगल

हे! युग-स्रष्टा, युग-द्रष्टा, युग के नूतन पंथ-प्रवर्तक
हे! विश्व-शान्ति के अग्रदूत, हे, नूतन विश्व-प्रदर्शक
षट्-शत करोड़ भयभीत हस्त
भौन्तिक प्रवाह में पड़े पस्त
तव अभय-पंथ लखते प्रशस्त
कर रहे तुम्हारा वन्दन, हे, लोक-वन्द्य! तव वन्दन
तव कोटि-कोटि अभिनन्दन।

तुम अति उदार, उन्नत, विशाल, जाज्वल्यमान शुभदायक
युग के चिन्तन-मन्थन-दर्शन के तुम प्रकाण्ड विधायक
उद्भव तुम से लख अणु-प्रकीर्ण
हो रहा रुद्ध तिमिरावतीर्ण
झर रहे पत्र सब जीर्ण-शीर्ण
बन रहा इन्द्रवन मरुवन, हे लोक-दीप! तव वन्दन
तव कोटि-कोटि अभिनन्दन।

भौतिक सुषुप्ति में लीन लोक-नेत्रों के तुम उन्मेषक
अध्यात्म-प्रात के नवल सूर्य, अणुव्रत के तुम अन्वेषक
तुमने उच्चारा दिव्य मन्त्र
हर व्यक्ति धरा का है स्वतन्त्र
है मैत्रि-भाव सुशस्त्र-अस्त्र
है ताज्य आज रण-अर्चन, हे लोक-देव तव अर्चन
तव कोटि-कोटि अभिनन्दन।

तुलसी आया ले 'चरैवेति' का नव सन्देश

श्री कीर्तिनारायण मिश्र, एम० ए०

फैला जब चारों ओर तिमिर का अन्ध जाल
अन्याय-अनय-हिंसा का नित दंशन कराल,
शोषण-मर्दन की पीड़ा से जब त्रस्त देश
तुलसी आया ले 'चरैवेति' का नव सन्देश।

इसकी वाणी में नवयुग का नूतन प्रकाश
संस्कृति-दर्शन का तेज अमित जीवन-विकास,
आदर्श-समुज्ज्वल शान्त-स्निग्ध-शुचि-सौम्य-रूप
गढ़ता विकृतियों में मानव-आकृति अनूप।

यह तुम्हें न कोई नयी बात कहने जाता
या तर्क-वितर्कों में न तुम्हें यह उलझाता;
जो भूल चुके तुम मार्ग उसे फिर अपनाओ
सात्विक जीवन के तत्त्वों से परिचय पाओ।

संयमित बनालो आज कि अपने जीवन को
परिग्रह की ओर न ले जाओ अपने मन को,
संकल्प-वरण कर जीवन को पावन कर लो
अन्तर ज्योतित करने का व्रत धारण कर लो।

तुम भूल चुके उस तीर्थंकर का शुभ सन्देश
जिसकी किरणों से ज्योतित होता था स्वदेश,
यह आज उसी का गान सुनाने आया है
जागो-जागो यह तुम्हें जगाने आया है।

तुलसी का 'अणुव्रत' जागृति का अभिनव प्रतीक
अध्यात्मवाद का परिपोषक, सद्धर्म-लीक;
दिग्भ्रान्तों का वह करता है पथ-निर्देशन
सभ्यता-संस्कृति के तत्त्वों का अनुशीलन।

यह अनाचार की आज रहा दीवार तोड़
जागरण के लिए नीति-भीति को रहा जोड़;
अज्ञान तिमिर को चीर, ज्ञान का भर प्रकाश
कर रहा आज वह मानव का अन्तर्विकास।

करता न कभी आमर्ष-कलह की एक बात
या धर्मभेद की इसके सम्मुख क्या बिसात ?
बस एक लक्ष्य इसका—'जीवन मंगलमय हो
अन्याय-अनय औ' कल्मषका क्षण में लय हो।'

हो गये आज तुम हो अतिशय आचरण-भ्रष्ट
कर रहे आज तुम स्वयं आत्म-बल को विनष्ट;
अपनी आँखें खोलो, यदि तुम कुछ सको देख
तो देखो अपने धर्मदूत की ज्योति-रेख।

व्रत करते हैं कुछ लोग स्वार्थ की सिद्धि-हेतु
व्रत करते हैं कुछ लोग, बनाने स्वर्ग-सेतु;
लेकिन यह 'अणुव्रत' कैसा जिसमें नहीं स्वार्थ
निष्काम कर्म यह है नैतिकता प्रचारार्थ।

भगवान् महावीर और बुद्ध की परम्परा में

मुनिश्री सुखलालजी

भगवान् महावीर और बुद्ध का नाम उन अत्यल्प व्यक्तियों में से है, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को एक नई चेतना दी है। वैसे रत्नगर्भा वसुन्धरा पर न जाने कितने महावीर और बुद्ध उतरे होंगे, पर उनकी अपनी यह एक विशेषता रही है कि अपने पीछे वे एक पुष्ट-परम्परा-प्रवाह को छोड़ गये हैं। निश्चय ही परम्परा में अविरल चैतन्य नहीं रहता। कभी-कभी उसे मन्दता का प्रकोप भी सहना पड़ता है, पर सततवाहिता की यह एक सहज उपलब्धि है कि उसमें समय-समय पर कुछ ऐसे उन्मेष आते रहते हैं जो उसकी अतीत की मन्दता को भी क्षुण्ण होने से बचा देते है। यही कारण है कि ढाई हजार वर्षों के बाद भी हम महावीर और बुद्ध को भूल नहीं पाये हैं। श्रमण-संस्कृति के क्षितिज पर आज एक ऐसे तेज-पुंज का उदय हो रहा है, जो भगवान् महावीर और बुद्ध को एक बार पुनः अभिव्यक्ति देने का प्रयास कर रहा है।

हमारा संसार प्रतिध्वनियों का एक स्रोत है। युग-युग में यहाँ सदा कोई-न-कोई महामहिम मानव प्रतिध्वनित होता ही रहता है। पर भारत की प्रतिध्वनि-पंक्ति में भगवान् महावीर और बुद्ध का विशेष प्रभाव रहा है। उन्होंने न जाने कितने महापुरुषों को पैदा कर अध्यात्म के अंकुर को प्रकाशसिक्त किया है। निश्चय ही भगवान् महावीर और बुद्ध भी अपने आपमें किसी ध्वनि की ही प्रतिध्वनि रहे होंगे। पर उनकी प्रतिध्वनि अपने आपमें इतनी दूरगामी थी कि वर्तमान में भी हम उसे आचार्यश्री तुलसी के रूप में सुन रहे हैं।

महावीर और बुद्ध आज हमारे बीच साहित्य के रूप में उपस्थित हैं। यद्यपि इतिहास की यह दुर्बलता है कि वह सब स्थितियों को अपने में प्रतिबिम्बित नहीं कर पाता। पर इसके बाद भी आज उनके विषय में जो कुछ अवशेष रह गया है, वह उनके महत्त्व को अच्छी प्रकार से व्यक्त कर देता है। कालक्रम से उन पर बहुत से आवरण भी चढ़ाये गये हैं, इसलिए हमें उनका वास्तविक स्वरूप समझने में कठिनाई भी हो सकती है। पर भगवान् के महत्त्व को भक्त ही बढ़ाता है, यह भी हमें भूल नहीं जाना चाहिए। इस प्रकार कुल मिला कर उनका स्वरूप जो हमारे सामने है, वह अत्यन्त आकर्षक है।

अपने समय में महावीर और बुद्ध को कितना महत्त्व मिला था, यह एक विवादास्पद विषय है। उस समय भी एक साथ छः तीर्थंकरों का अस्तित्व जैन और बौद्ध दोनों साहित्य स्वीकार करते हैं। पर परिस्थिति के आघात-प्रत्याघातों से बच कर हम तक केवल वे दो ही पहुँच पाये हैं। यह तथ्य पूर्ण अनावृत है; अतः उनके साहित्य को पढ़ कर आचार्यश्री तुलसी के जीवन पर दृष्टिपात किया जाये तो बहुत-सी घटनाएं उनमें एक अलभ्य-साम्य रेखा हमारे सामने खींच देती हैं। अतः कुछ घटनाओं को मैं यहाँ अंकित करना चाहता हूँ, जिनको मैंने अपनी आँखों से देखा है। क्योंकि विचारों का हिम ही पिघल कर घटनाओं के सलिल-प्रवाह के रूप में हमारे सामने बहता है। निश्चय ही आचार्यश्री तुलसी के सामने वे ही आदर्श हैं जो श्रमण संस्कृति के उद्भावकों के सामने रहे थे। अतः विचार-साम्य तो उनमें होगा ही, पर आचार्यश्री ने उन पर अपने अपनत्व की जो मुद्रा लगाई है, वह निश्चय ही उनके अपने व्यक्तिगत व्यवहार की देन है।

महावीर और बुद्ध के जीवन को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि हम किसी ऐसी मूर्त्ति के सामने बैठे हैं जो चारों ओर से श्रद्धामय है। सचमुच श्रद्धा जीवन का एक विशेष गुण है। कुछ लोग उसे अन्धी कह कर उससे परहेज कर सकते

हैं, पर व्यवहार मे उससे किसी भी प्रकार से बचा जा सकता हैं; ऐसा नहीं लगता। बल्कि प्रत्येक सरस व्यक्तित्व में श्रद्धा का अपूर्व स्थान रहेगा ही। श्रद्धेय स्वयं श्रद्धाशील बन कर ही अपने पद तक पहुँच पाता है। जिसने श्रद्धा का अनुगमन नहीं किया, वह कभी श्रद्धेय नहीं बन सकता। भगवान् महावीर और बुद्ध भी श्रद्धा के आदान-प्रदान में पूर्ण प्रवीण थे। यही कारण है कि हम उन्हें सदा श्रद्धालुओं से घिरा पाते हैं। उनके चारों ओर लिपटा श्रद्धा-सिचय कभी-कभी इतना अपारदर्शी हो जाता है कि वे स्वयं भी उसमें छिप जाते हैं। पर श्रद्धा में इतनी अकल्प्य शक्ति होती है कि कभी-कभी तर्क उसका साथ ही नहीं दे पाता।

महापुरुष का पुण्य प्रसाद

मुझे कलकत्ते की वह घटना याद है। उस दिन आचार्यश्री कलकत्ता के विवेकानन्द रोड पर आस्थित चोपड़ों के मकान में ठहरे हुए थे। लोगों का आवागमन भरपूर था। उसी के बीच एक बंगाली दम्पति ने आचार्यश्री के कक्ष में प्रवेश किया। बंगाल की भक्ति-भावना तो भारत विश्रुत है ही, अतः आते ही उस युगल ने प्रणिपात किया और एक ओर हट कर खड़ा हो गया। आचार्यश्री ने अपनी दृष्टि उनकी ओर उठाई तो पति कहने लगा—गुरुदेव ! सच-मुच आप हमारे लिए भगवान् हैं। आचार्यश्री के लिए यह शब्द प्रयोग नया नहीं था, अतः उनकी प्रशस्ति सुन शान्त हो गए। पर पति ने फिर दोहराया—गुरुदेव ! आप सचमुच हमारे लिए भगवान् ही हैं। उसकी मुख-मुद्रा में इतनी स्वाभाविकता थी कि इस बार आचार्यश्री के चेहरे पर एक प्रश्न चिह्न उभर आया।

पति अपनी पत्नी की ओर संकेत कर कहने लगा—यह मेरी पत्नी है। कई वर्षों से क्षय-ग्रस्त थी। अनेक उप-चार करवाने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर बढ़ते-बढ़ते यह अन्तिम किनारे पर आ गई और हम लोगों ने सोच लिया, बस अब यह ठीक होने की नहीं है, अतः दवा बन्द कर दी और शान्तिपूर्वक आयु शेष की प्रतीक्षा करने लगे। पर इसी बीच एक दिन मैंने 'अणुव्रत-पण्डाल' में आपका प्रवचन सुना। तो मुझे उसमें कुछ दिव्य-ध्वनि-सी अनुभव हुई। मैं आपकी मुखाकृति से अपरिचित होकर ही तो पण्डाल में आया था और जब आपकी वीणा-वाणी के स्वरालापों को सुना तो मन में आया—जरूर यह कोई दिव्य पुरुष है।

उस दिन मैं फिर आपके दर्शन की भावना लेकर अपने घर लौट गया। पर दूसरी बार जब मैं प्रवचन-पण्डाल से लौटा तो खाली हाथ नहीं लौटा। उस दिन मेरे साथ आपकी चरण-धूलि भी थी। घर आकर मैंने उसे स्वच्छ बर्तन में रख दिया और पत्नी से नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी करके इस पुण्य-प्रसाद को खाते रहने का आदेश दे दिया। मैंने इसे यह भी बता दिया कि यह एक महापुरुष की चरण-रेणु है। पत्नी ने श्रद्धा से इस क्रम को निभाया और इसी का यह परि-णाम है कि आज यह बिल्कुल स्वस्थ होकर आपके सामने खड़ी है।

सुनने वालों को थोड़ा विस्मय हुआ, पर श्रद्धा में अपरिमित शक्ति होती है, यह जान कर मैंने मन-ही-मन आचार्य चरणों में सिर झुका दिया। मैं नहीं जानता स्वास्थ्य-विज्ञान इस प्रसंग को कैसे सुलझायेगा ? पर इतना निश्चित है कि श्रद्धा से बड़े-बड़े अकल्प्य कार्य सुगम हो जाते है। आचार्यश्री ने वैसा स्थान पाया है, यह न केवल यही घटना बता रही है, अपितु इस प्रकार की अनेकों घटनाएं लिखी जा सकती हैं। हो सकता है, यह सब स्वाभाविक ही होता हो, पर यदि कोई व्यक्ति इतनी श्रद्धा अर्जित कर सकता है, उसे महापुरुष कहने में शब्दों का दुरुपयोग नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास है।

समान श्रद्धेय

कुछ लोगों का विश्वास है कि श्रद्धा अज्ञान की सहचारिणी है, पर आचार्यश्री ने अपने व्यक्तित्व-बल से जहाँ साधारण जन की श्रद्धा का अर्जन किया है, वहाँ देश-विदेश के शिक्षित मानस को भी अपनी ओर खींचा है। यह सच है कि ज्ञान-विज्ञान में आज बहुत तेजी से प्रगति हो रही है और इस युग में किसी को पुरानी बातें नहीं सुहाती हैं, पर रुचि और अरुचि के प्रश्न को मेरे विचार से नये और पुराने के साथ नहीं जोड़ना चाहिए; क्योंकि ज्यों-ज्यों नई बातें पुरानी होती जा रही हैं, त्यों-त्यों पुरानी बातें भी नवीनता धारण करती जा रही हैं। उसमें आवश्यकता केवल उचित माध्यम की है।

यदि उसे संप्रसारित करने वाला व्यक्तित्व प्रबुद्ध होगा तो पुरानी बातें भी नवता का आकार ग्रहण करने लगेंगी। यही कारण है, आचार्यश्री के व्यक्तित्व ने बीसवीं सदी के इस विज्ञान बहुल युग में भी पदयात्रा के महत्त्व को ध्वनित किया है। संयम और साधना के प्रति युग में एक अनुराग भावना संप्रसारित हुई है। भगवान् महावीर और बुद्ध को जिस प्रकार झोंपड़ी से लेकर राजप्रसादों की श्रद्धा समान रूप से मिलती थी, उसी प्रकार आचार्यश्री ने भी झोंपड़ियों से लेकर राज-प्रसादों तक का समान सम्मान पाया है। राष्ट्रपति भवन में भी उन्हें जिस प्रकार एक संत के रूप में देखा गया था; उसी प्रकार गरीबों को झोंपड़ी में भी उन्हें एक संत के समान ही समझा गया। राष्ट्रपति ने उनसे राष्ट्र के सुधार के लिए अणुव्रत-आन्दोलन की आवश्यकता बताई तो उस हरिजन-दम्पति की घटना भी उनके महत्त्व पर कम प्रकाश नहीं डाल रही है।

आचार्यश्री जयपुर से आगे श्री माधोपुर की ओर जा रहे थे। बीच के एक गाँव में विश्राम के लिए ठहरे तो उनके चारों ओर लोग एकत्रित हो गए। आचार्यश्री ने उन्हें व्यसन-मुक्ति का उपदेश दिया और आगे चल पड़े। बीच मार्ग में एक हरिजन महिला आई और बोली—बाबाजी ! क्या आप मेरे घर में भी आ सकते है ? आचार्यश्री ने तत्क्षण अपने चरण उसके घर की ओर बढ़ा दिए। महिला के हर्ष का पारावार नहीं रहा। अपने घर में आचार्यश्री को पाकर कहने लगी—बाबाजी ! यह मेरा पति तमाखू बहुत खाता है। मैंने इसे बहुत समझाया, पर यह मेरी बात मानता ही नहीं है। मैं इससे कहती हूँ—तू कोई कमाई न कर सके तो मत कर; घर का कार्य मैं चला लूंगी, पर कम-से-कम व्यसनों मे तो पैसों को बर्बाद मत कर। अब आपने आज हमारे आंगण को पवित्र कर दिया है तो इसकी तमाखू भी छुड़वा दीजिये।

आचार्यश्री ने अपनी बड़ी आँखें उस हरिजन पर गड़ाई और बोले—तू तमाखू नहीं छोड़ सकता ?

एक क्षण के लिए उसके हृदय में द्वन्द्व हुआ और फिर वह बोला—अच्छा बाबा ! आज से नही खाऊँगा, प्रतिज्ञा करवा दीजिये। आचार्यश्री यह भिक्षा पाकर प्रसन्न मुख वापस लौट आये, मानो कहना चाहते हों, मेरा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया है।

पुष्करजी जा रहा हूँ !

आचार्यश्री जब ग्रामीणों से बात करते हैं तो ऐसा लगता है जैसे उनसे उनका गाढ़ परिचय रहा है। एक बार लाडनूं में मध्याह्न के समय आचार्यश्री भाई-बहिनों के बीच बैठे थे कि दो किसान भाई जल्दी से आये और वंदना कर जाने लगे। आचार्यश्री ने उन्हें पूछा—कौन हो ? कहाँ से आये हो भाई ? जाने की इतनी क्या जल्दी है ? उनमें से एक ने कहा—महाराज हम किसान हैं। यह आज इसी गाड़ी से पुष्करजी जा रहा है; अतः जल्दी है।

आचार्यश्री—अच्छा ! पुष्करजी जा रहे हो ? क्यों जाते हो वहाँ ?

किसान—वहाँ स्नान करेंगे। भगवान् के दर्शन करेंगे, साधुओं के भी दर्शन होंगे।

आचार्यश्री—स्नान करने से क्या होगा ?

किसान—सब पाप धुल जायेंगे।

आचार्यश्री—तब तो वहाँ तालाब में रहने वाली मछलियों के पाप सबसे पहले धुलेंगे ?

बात कुछ चमकाने वाली थी। किसान बोला—वहाँ हमारे साधुओं के दर्शन होंगे।

आचार्यश्री—तो क्या साधुओं में भी हमारे और तुम्हारे दो होते हैं ? साधु तो सभी के होते हैं, बशर्ते कि वे वास्तव में ही साधु हों और समझो कि सच्चे साधु वे ही होते हैं जो अपने पास पैसा नहीं रखते। अच्छा तो तुम वहाँ साधुओं को कुछ भेंट चढ़ाओगे ?

किसान—जरूर (आवाज में दृढ़ता थी)।

आचार्यश्री—तो तुम साधु के पास आये हो, क्या कोई भेंट लाये हो ?

अपनी जेब टटोल कर उसने एक रुपया निकाला और आचार्यश्री को देने लगा। आचार्यश्री ने उसे हाथ में लिया और कहने लगे—अरे ! एक रुपये से क्या होगा ?

किसान—बस, महाराज ! हम तो एक रुपया ही चढ़ाते हैं और आपके पास तो अनेक भक्त लोग आते हैं, एक-एक रुपया देंगे तो भी बहुत हो जायेंगे।

आचार्यश्री—पर बताओ रुपये का हम करें क्या ?

किसान—किसी धर्मार्थ काम में लगा देना।

आचार्यश्री—पर धर्म के लिए पैसे की जरूरत नहीं होती। वह तो आत्मा से ही होता है। तब फिर साधुओं के पास पैसा किस काम का ? हम तो पैसा नहीं लेते। यह लो तुम्हारा रुपया।

किसान को बड़ा आश्चर्य हुआ। कहने लगा—महाराज ! हमने तो आज तक ऐसा साधु नहीं देखा जो पैसा नहीं लेता हो। वह कुछ दुविधा में पड़ गया। सोचने लगा पुष्करजी में नहाने से पाप नहीं उतरते और उन संतों के दर्शन करने से कोई कल्याण नहीं हो सकता जो पैसा रखते हैं, तब फिर पुष्करजी जाऊँ या नहीं जाऊँ ?

आचार्यश्री—भाई ! वह तुम तुम्हारी जानो। हमने तुम्हें रास्ता बता दिया है। करने में तुम स्वतन्त्र हो।

किसान कुछ विचार कर बोला—अच्छा महाराज ! अब पुष्कर जी नहीं जाऊँगा। आपके पास ही आऊँगा।

आचार्यश्री—पर यहाँ आने मात्र से कल्याण नहीं होने वाला है, कुछ नियम करोगे तो कल्याण होगा।

किसान—क्या नियम महाराज !

आचार्यश्री ने उसे प्रवेशक अणुव्रती के नियम बताये और वह उसी समय सोच-समझ कर अणुव्रती बन गया।

भगवान् महावीर और बुद्ध के हाथ में कोई राज्य सत्ता नहीं थी, पर उन्होंने देश के मानस को बदलने के लिए जो प्रयास किया है, वह सम्भवतः कोई भी राज्य-सत्ता नहीं कर सकती। आचार्यश्री ने भी यही कार्य करने का प्रयास किया है।

सत्ता और उपदेश

एक बार आचार्यश्री महाराष्ट्र में विहार कर रहे थे। बीच में एक गाँव मे सड़क पर ही अनेक लोग इकट्ठे हो गये। कहने लगे—आचार्य जी ! हमें भी कुछ उपदेश देते जायं। अपनी शिष्य मंडली के साथ आचार्यश्री वहीं वृक्ष की छाया में बैठ गये और पूछने लगे—क्यों भाई ! शराब पीते हो ? ग्रामीण एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

आचार्यश्री—तुम्हारे यहाँ तो शराबबन्दी का कानून है न ?

ग्रामीण—हाँ महाराज ! है तो सही।

आचार्यश्री—तब फिर तुम शराब तो कैसे पीते होंगे ? कोई नहीं बोला। चारों ओर मौन था। फिर आचार्यश्री कहने लगे—देखो भाई ! हम सरकार के आदमी नहीं हैं, हम तो साधु हैं। तुम हमसे डरो मत। सच्ची-सच्ची बात बता दो। धीरे-धीरे लोग खुलने शुरू हुए और कहने लगे—महाराज ! कानून है तो बाहर है। घर में तो नहीं है न ? अतः लुक-छिप कर पीने से कौन गवाह करने वाला है।

आचार्यश्री—पर सरकार के आदमी तो देख-रेख करने आते होंगे ?

ग्रामीण—देख-रेख कौन करता है महाराज ! वे तो उल्टे हमारे घर पीकर जाते हैं।

आचार्यश्री ने हम साधुओं से कहा—यह है कानून की विडम्बना। पर उपस्थित समुदाय की ओर उन्मुख होकर कहने लगे—देखो भाई ! शराब पीना अच्छा नहीं है। इससे मनुष्य पागल बन जाता है।

ग्रामीण—बात तो ठीक है महाराज ! पर हमारे से तो यह छूटती नहीं है।

आचार्यश्री—देखो तुम मनुष्य हो। मनुष्य शराब के वश हो जाये, यह अच्छा नहीं, छोड़ दो इसे।

ग्रामीण—पर महाराज ! यह हमें बहुत प्यारी हो गई है।

आचार्यश्री—अच्छा तो तुम ऐसा करो, एकदम नहीं छोड़ सकते तो कुछ दिनों के लिए तो छोड़ दो। उपस्थित जनसमुदाय में से अनेक लोगों ने यथाशक्य मद्य पीने का त्याग कर दिया। कुछ ने अपनी मर्यादा कर ली कुछ व्यक्तियों ने बिल्कुल भी त्याग नहीं किया। एक नौजवान भाई पास में खड़ा था। आचार्यश्री ने उसका नाम पूछा, तो वह भाग

खड़ा हुआ। लोग उसे समझा-बुझा कर वापस लाये। आचार्यश्री ने उससे पूछा—क्यों भाई ! तुम भाग क्यों गये ? कहने लगा मैं नहीं छोड़ सकता। आप सरकार में कहीं रिपोर्ट कर दें तो ?

आचार्यश्री—हम किसी की रिपोर्ट नहीं करते। हम साधु हैं। हम तो उपदेश के द्वारा ही समझाते हैं। तुम सोचो, यह अच्छी नहीं है। बहुत समझाने-बुझाने के बाद उसने महीने में केवल चार दिन शराब पीने का त्याग किया। यह है कानून और हृदय-परिवर्तन का एक चित्र।

हमने आपको नहीं पहिचाना

पहले परिचय में आचार्यश्री को समझना जरा कठिन होता है। क्योंकि आज साधु-वेष में जो अन्याय पल रहे हैं, उन्हें देखते यह सम्भव भी नहीं है। पर ज्यों ही उन्होंने आचार्यश्री का परिचय पाया, उन्हें अपने-आप पर पश्चात्ताप हुआ है।

आचार्यश्री जब सौराष्ट्र के समीप से गुजर रहे थे, रास्ते में एक गाँव आया। हमारा वहाँ जाने का पहला ही अवसर था। एक साथ इतने बड़े संघ को देख कर वहाँ के लोग दहल गये और हमारे विषय में तरह-तरह की बातें करने लगे। कई लोग कहते—ये कांग्रेसी हैं, अतः वोटों के लिए आये हैं। कई लोग कहते—ये साधु का वेष बनाये डाकू हैं। कई लोग कहते—ये अपने धर्म का प्रचार करने आये हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार की आशंकाओं के कारण लोगों ने हमें वहाँ रहने को स्थान भी बड़ी मुश्किल से दिया। एक टूटा-फूटा मन्दिर था। उसी में हम सब जाकर ठहर गये। अनेक प्रकार के कुतूहल लेकर कुछ लोग आये तो आचार्यश्री ने प्रवचन करना शुरू कर दिया। लोग बैठ गये और प्रवचन सुनने लगे। प्रवचन सुन कर उन लोगों के सारे संशय उच्छिन्न हो गये। फिर हम भिक्षा के लिए गये। हमारी भिक्षा विधि को देख कर तो वे और भी प्रभावित हुए। दोपहर को अनेक लोग मिल कर आये। बातचीत की, प्रवचन सुना तो उनकी आँखें खुल गई। आचार्यश्री वहाँ से विहार कर शाम को जाने वाले थे, अतः उनमें से एक बूढ़ा आदमी आगे आया और कहने लगा—"बापू! आज-आज तो आपको यहाँ रुकना पड़ेगा। आँखों में आँसू भरकर वह बोला—मैं आपको सच बताऊं, हमने आपको पहचाना नहीं। हमने समझा ये कोई डाकू हैं। इसलिए न तो हम आपकी भक्ति कर पाये और न आपसे कुछ लाभ ही उठा सके। आप तो महान् हैं, हमें क्षमा करें और आज रात-रात यहाँ जरूर ठहरें। पर आचार्यश्री को आगे जाने की जल्दी थी, अतः ठहर नहीं सके और चल पड़े। लोगों ने आँसू भरे चेहरे से आचार्यश्री को बिदाई दी।

महापुरुषों का क्षणमात्र जीवन में अकल्प्य परिवर्तन कर देता है, उसी का एक चित्र है। ढलते दिन ढलती अवस्था का एक जर्जर देह हरिजन आचार्यश्री के पास आया और कहने लगा—महाराज ! आपके दर्शन करने आया हूँ। पिछली बार जब आप यहाँ आये थे तो मैंने आपसे तमाखू नहीं पीने का व्रत लिया था। याद है न आपको ? आचार्यश्री के उस समय मौन था, अतः बोले नहीं। कुछ संकेत ही किये; वृद्ध ने अपना कहना जारी रखा। क्यों याद नहीं महाराज आपके सामने ही तो मैंने अपनी चिलम तोड़ी थी। अब तक पूरा पालन करता हूँ उस नियम का। आचार्यश्री को भी घटना याद हो आई। अपनी गर्दन हिलाकर उन्होंने उसकी स्वीकृति दी और इशारे से बताया—अभी मेरे मौन है। वृद्ध ने फिर कहना प्रारम्भ किया—महाराज ! वह नियम तो मैंने पूरा निभाया है, पर मेरी एक बुरी आदत और है। मैं अफीम खाता हूँ। बिना उसके रहा नहीं जाता। पर सोचता हूँ, आज आपके पास आया हूँ तो उसे भी छोड़ता जाऊँ। मैं खुद तो छोड़ नहीं सकता, पर आपके पास त्याग करने पर किसी प्रकार मैं उसे निभा ही लूंगा। अतः आज मुझे अफीम-सेवन करने का त्याग दिलवा दीजिए और सचमुच उसने अफीम-सेवन का त्याग कर दिया।

आत्म-विश्वास का जीता-जागता चित्रण

एक छोटा-सा गाँव। पाठशाला का मकान। सायंकालीन प्रार्थना से थोड़े समय पहले का समय। एक प्रौढ़ किसान आचार्यश्री के सामने कर-बद्ध खड़ा है। आचार्यश्रीने पूछा—कहाँ से आये हो भाई ! कहने लगा—यहीं थोड़ी दूर पर एक गाँव है, वहाँ से आया हूँ।

आचार्यश्री—इतनी देर से कैसे आये ?

किसान—दिन में मेरा लड़का तथा स्त्री आ गये थे। उन्होंने कहा—तुम भी जा आओ। सो खेत से सीधा ही आपके दर्शन करने आया हूँ महाराज !

आचार्यश्री—पर केवल दर्शन करने से क्या होगा ? क्या तमाखू पीते हो ?

किसान—पीता हूँ महाराज ! बचपन से ही पीता हूँ।

आचार्यश्री—हाथ दिखाओ तो तुम्हारे ? देखो इनमें तमाखू के दाग बैठ गये। धोने से भी नहीं उतरते, तो क्या पेट में ऐसे दाग नहीं बैठेंगे ? और सच तो यह है कि तमाखू से जीवन में भी दाग बैठ जाता है। यह अच्छी नहीं है भाई !

किसान—तो क्या छोड़ दूँ इसे ?

आचार्यश्री—हाँ, जरूर छोड़ दो।

किसान—लो लो आज से ही तमाखू पीने का त्याग है।

आचार्यश्री—पर निभाना पड़ेगा इसे ? केवल त्याग करने से ही कुछ नहीं हो जाता।

किसान—इसमें क्या शक है। प्राण चले जायें, पर प्रण नहीं जायेगा।

मानव के आत्म-विश्वास का यह एक जीता-जागता चित्रण है।

इतना सब कुछ होते हुए भी आचार्यश्री अपने-आपको एक अकिंचन भिक्षु मानते हैं। उस समय जेठ का महीना था। जोधपुर से लाडनूं की ओर विहार हो चुका था। आँधियाँ चलने लगी थीं, अतः आचार्यश्री का सारा शरीर अलाइयों से भर गया था। बार-बार खुजली आती थी। एक साधु 'हैजलीन' लाये और निवेदन किया इसे लगाने से आपको आराम रहेगा। आचार्यश्री ने कहा—भाई ! यह तो अमीर लोगों की दवा है। हम तो अकिंचन फकीर हैं; हमारे ऐसी दवाइयाँ काम नहीं आ सकतीं ? हमारी दवाई तो जब वर्षा आयेगी और ठण्डी-ठण्डी हवा चलेगी तो अपने-आप हो जायेगी।

आचार्यश्री ने जहाँ लाखों लोगों की श्रद्धा पाई है, वहाँ अनेक लोगों के विरोध को भी उन्हें सहन करना पड़ा है। पर उन्होंने इसे इस प्रकार हँस कर टाल दिया जैसे मानो भगवान् महावीर और बुद्ध की आत्मा ही उनमें बोल रही हो।

यह जोधपुर की घटना है। दीक्षा प्रसंग को लेकर विरोध बातूल प्रबल वेग से बह रहा था। कुछ लोगों ने विरोध में कोई कमी नहीं रखी थी। अतः उन्होंने एक दिन उस सड़क को, जिससे होकर आचार्यश्री जंगल जाते थे, पोस्टरों से पाट दिया। थोड़े-थोड़े फासलों पर पोस्टर चिपके हुए थे। उस विरोध-बेला में भी आचार्यश्री के अधरों से स्मित फूट रहा था। बोले—इन लोगों ने कितने पोस्टर चिपकाए हैं; पर एक कमी इन्होंने रख दी। यदि पोस्टर नजदीक-नजदीक लगाये होते तो हमारे पैर तारकोल से गन्दे होने से बच जाते। सचमुच ऐसी बात कोई महापुरुष ही कह सकता है।

जैसा मैंने देखा

श्री कैलाशप्रकाश, एम० एस-सी०
स्वायत्त शासनमंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार

युग आये और चले गये। अनेकों उसके काल-प्रवाह में बह गये। उनका अस्तित्व के रूप में नाम-निशान तक नहीं रहा। अस्तित्व उसी का रहता है जो कुछ कर-गुजरता है। व्यक्ति की महानता इसी में है कि वह युग के अनुस्रोत में नहीं बहे, बल्कि मानव-कल्याणकारक कार्य-कलापों से युग के प्रवाह को अपनी ओर मोड़ ले। इस रत्नगर्भा वसुन्धरा ने समय-समय पर ऐसे नररत्न पैदा किये हैं जो कि युग के अनुस्रोत में नहीं बहे, बल्कि स्व-साधना के साथ-साथ उन्होंने मानव मात्र का कल्याण किया। स्वनामधन्य आचार्यश्री तुलसी भी उसी गगन के एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं जो कि अपनी साधना में निरत रहते हुए भी आज के युग में परिव्याप्त अवांछनीय तत्त्वों का निवारण करने के हेतु मानव-समाज में नैतिकता का उद्घोषण कर रहे हैं।

वर्षों के प्रयास के बाद हमें विदेशी दासता से मुक्ति मिली। अपनी सरकार बनी, जनता के प्रतिनिधि शासक बने। यद्यपि हम राजनैतिक दृष्टि से पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हैं, लेकिन अनैतिकता की दासता से मानव-समाज आज भी जकड़ा है; अतएव सही स्वतन्त्रता का आनन्द हम तब तक अनुभव नहीं कर सकते, जब तक जन-मानस में अनैतिकता की जगह नैतिकता घर न कर ले, पारस्परिक द्वेष-भावना मिटाकर उसका स्थान मैत्री न ले ले। वास्तव में, हमारे राष्ट्र की नींव तभी मजबूत हो सकती है, जबकि वह नैतिकता पर आधारित हो, वरना वह धूल के टीले की तरह हवा के झोंके मात्र से हिल जायेगी। फिर भी हमारे बीच एक आशा की किरण है। जनवन्द्य आचार्यश्री तुलसी इस दिशा में अभिनव प्रयास कर रहे हैं और जन-जन में आध्यात्मिकता का पाञ्चजन्य फूंक रहे हैं। उनके द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन एक प्रकाश-स्तम्भ है जो मानव के लिए एक दिशा-दर्शन है तथा उसके लिए क्या हेय, ज्ञेय या उपादेय है, यह मार्ग बताता है।

वैसे तो 'अणुव्रत' कोई नवीन वस्तु नहीं। युगों से उसकी चर्चा धर्मशास्त्रों में आती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों को अनेकों नामों से अभिहित किया गया है, जिनका उद्देश्य लगभग एक-सा है; परन्तु जहाँ तक अणुव्रत-आन्दोलन का सम्बन्ध है, उनमें एक नवीनता है। इसके नियमोपनियम बनाते समय आचार्यश्री ने निस्सन्देह बहुत ही दूरदर्शिता से काम लिया है। जहाँ तक मैं समझा हूँ, उन्होंने प्रमुख रूप से यही प्रयास किया है कि मानव-समाज में बहुलता से बुराइयाँ व्याप्त हैं, पहले उन्हीं पर प्रहार किया जाये। वे यह भी जानते हैं कि आज का मानव आधिभौतिकता की चकाचौंध में चुंधिया गया है, आधारभूत नैतिक मान्यताओं के प्रति उसकी श्रद्धा कम होती जा रही है, शास्त्रों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का पालन नहीं किया जा रहा है; अतएव इस आन्दोलन के रूप में आपने मानव-समाज को एक व्यावहारिक संहिता दी है, जिस पर आचरण कर कम-से-कम वह दूसरों के अधिकारों को न हड़प, अनैतिकता से दूर रहकर, चरित्रवान् बनने की ओर अग्रसर हो।

मेरा आन्दोलन से कुछ सम्बन्ध रहा है। इसके साहित्य को पढ़ा, उस पर मनन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वास्तव में यह एक आन्दोलन है, जिससे मानव-कल्याण सम्भव है। इस आन्दोलन की विशेषता यह पाई कि इसके प्रवर्तक आचार्यश्री तुलीसी या इसके प्रचारक उनके अन्तेवासी जितना स्वयं करते हैं, उससे कहीं कम करने का उपदेश देते हैं। वास्तव में प्रभाव भी ऐसे ही पुरुषों का पड़ता है, जो स्वयं साधना-रत हैं और जिनका जीवन त्याग व तपस्या से मंजा है, जिनके जीवन में सात्त्विकता है। आचार्यश्री में संयम का तेज है, उनकी वाणी में ओज है, मुख-मण्डल

पर अद्भुत आध्यात्मिक आकर्षण है। ऐसे सत्पुरुष जब इस प्रकार के आन्दोलनों का संचालन करते है तो उसकी सफलता में तनिक भी संशय नहीं रह जाता।

आचार्यश्री तुलसी ने इस आन्दोलन का प्रवर्तन कर मानव-समाज का हित किया है। वे सबके वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं, आदरणीय हैं। उनके आचार्य-काल के इस धवल समारोह के पुण्य अवसर पर मैं भी इन शब्दों के साथ अपनी भाव-भरी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ तथा यह कामना करता हूँ कि वे युगों-युगों तक इसी प्रकार मानव-जाति का कल्याण और आध्यात्मिकता का प्रसार करते रहें!

● ● ●

शत-शत अभिवन्दन

मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल'

आर्य! तुम्हारे चरणों में शत-शत अभिवन्दन
दीर्घ दृष्टि तुम; इसीलिए यह जगत तुम्हारे
पद विन्यासों का करता आया अभिनन्दन
मानव उच्च रहा है सदा तुम्हारी मति में
और उसी पर टिका अटल विश्वास तुम्हारा
कब माना उसको नृशंस, विषयान्ध, विगर्हित
क्योंकि हृदय का स्वच्छ सदा आकाश तुम्हारा
बाहर सतत वही लोचन पथ में आता है
जो होता है निहित निगोपित अंतरंग में
जैसा सलिल पयोनिधि में रहता बहता है
वैसा ही उभरा करता चंचल तरंग में
तुम मानवता के उन्नायक बने प्रतिक्षण
काट-काट कर युग के सब जड़ता मय बन्धन
आर्य! तुम्हारे चरणों में शत-शत अभिवन्दन।

प्राण तुम्हारे सदा सत्य के लिए निछावर
प्राप्य सत्य से बढ़ कर कोई है न तुम्हारा
राग, रोष के सारे तिमिर तिरोहित होते
सत्य अचल है विमल विभास्वर वह उजियारा
जहाँ असत्य का पोषण होता, दुख ही दुख है
इसीलिए बस सत्य-साधना तुम बतलाते
आत्मोदय की उस प्रशस्त पद्धति का गौरव
अपने मुख से गाते गाते नहीं अघाते
ताप शमन का कार्य सहा करते रहते हो
मिटा रहे हो प्रतिपल वितथ जनित आक्रन्दन
आर्य! तुम्हारे चरणों में शत-शत अभिवन्दन।

अणुव्रत, आचार्यश्री तुलसी और विश्व-शांति

श्री अनन्त मिश्र
सम्पादक—सन्मार्ग, कलकत्ता

नागासाकी के खण्डहरों से प्रश्न

विश्व के क्षितिज पर इस समय युद्ध और विनाश के बादल मँडरा रहे हैं। अन्तरिक्ष-यान और आणविक विस्फोटों की गड़गड़ाहट से सम्पूर्ण संसार हिल उठा है। हिंसा, द्वेष और घृणा की भट्ठी सर्वत्र सुलग रही है। संसार के विचारशील और शान्तिप्रिय व्यक्ति आणविक युद्धों की कल्पना मात्र से आतंकित हैं। ब्रिटेन के विख्यात दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसेल आणविक परीक्षण-विस्फोटों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए ८६ वर्ष की आयु में सत्याग्रह कर रहे हैं। प्रशान्त महासागर, सहारा का रेगिस्तान, साइबेरिया का मैदान और अमेरिका का दक्षिणी तट भयंकर अणुबमों के विस्फोट से अभिगुंजित हो रहे है। सोवियत रूस ने ५० से १०० मेगाटन के अणुबमों के विस्फोट की घोषणा की है तो अमेरिका ५०० मेगाटन के बमों के विस्फोट के लिए प्रस्तुत है। सोवियत रूस और अमेरिका द्वारा निर्मित यान सैकड़ों मील ऊँचे अन्तरिक्ष के पर्दे को फाड़ते हुए चन्द्रलोक तक पहुँचने की तैयारी कर रहे हैं। छोटे-छोटे देशों की स्वतन्त्रता बड़े राष्ट्रों की कृपा पर आश्रित है। ऐसे संकट के समय स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि संसार में वह कौन-सी ऐसी शक्ति है जो अणुबमों के प्रहार से विश्व को बचा सकती है। जिन लोगों ने द्वितीय युद्ध के उत्तरार्द्ध में जापान, नागासाकी और हिरोशिमा जैसे शहरों पर अणुबमों का प्रहार होते देखा है, वे उन नगरों के खण्डहरों से यह पूछ सकते हैं कि मनुष्य कितना क्रूर और पैशाचिक होता है।

निस्सन्देह मानव की क्रूरता और पैशाचिकता के शमन की क्षमता एकमात्र अहिंसा में है। सत्य और अहिंसा में जो शक्ति निहित है, वह अणु और उद्जन बमों में कहाँ! भारतवर्ष के लोग सत्य और अहिंसा की अमोघ शक्ति से परिचित हैं; क्योंकि इसी देश में तथागत बुद्ध और श्रमण महावीर जैसे अहिंसा-व्रती हुए हैं। बुद्ध और महावीर ने जिस सत्य व अहिंसा का उपदेश दिया, उसी का प्रचार महात्मा गांधी ने किया। ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने के लिए गांधीजी ने अहिंसा का ही प्रयोग किया था। सत्य और अहिंसा के सहारे गांधीजी ने सदियों से परतन्त्र देश को राजनैतिक स्वतन्त्रता और चेतना का पथ प्रदर्शित किया। अतः भारतवर्ष के लोग अहिंसा की अमोघ शक्ति से परिचित हैं। सत्य, अहिंसा, दया और मैत्री के सहारे जो लड़ाई जीती जा सकती है, वह अणुबमों के सहारे नहीं जीती जा सकती।

वर्तमान युग में सत्य, अहिंसा, दया और मैत्री के सन्देश को यदि किसी ने अधिक समझने का यत्न किया है तो निःसंकोच अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक के नाम का उल्लेख किया जा सकता है। अणुबम के मुकाबले आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत अधिक शक्तिशाली माना जा सकता है। अणुव्रत से केवल बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ ही नहीं जीती जा सकतीं, बल्कि हृदय की दुर्भावनाओं पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

युद्ध के कारण का उन्मूलक

जैन-सम्प्रदाय के आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन नैतिक अभ्युत्थान के लिए किया गया बहुत बड़ा अभियान है। मनुष्य के चरित्र के विकास के लिए इस आन्दोलन का बहुत बड़ा महत्त्व है। चोरबाजारी, भ्रष्टाचार, हिंसा,

द्वेष, घृणा और अनैतिकता के विरुद्ध आचार्यश्री तुलसी ने जो आन्दोलन प्रारम्भ किया है, वह अब सम्पूर्ण देश में व्याप्त है। अणव्रत का अभिप्राय है उन छोटे-छोटे व्रतों का धारण करना, जिनसे मनुष्य का चरित्र उन्नत होता है। सरकारी कर्मचारी, किसान, व्यापारी, उद्योगपति, अपराधी और अनीति के पोषक लोगों ने भी अणुव्रत को धारण कर अपने जीवन को स्वच्छ बनाने का यत्न किया है। कठोर कारादण्ड भोगने के बाद भी जिन अपराधियों के चरित्र में सुधार नहीं हुआ, वे अणुव्रती बनने के बाद सच्चरित्र और नीतिवान् हुए। इस प्रकार अणुव्रत मानव-हृदय की उन बुराइयों का उन्मूलन करता है जो युद्ध का कारण बनती हैं। आचार्यश्री तुलसी का मैत्री-दिवस शान्ति और सद्भावना का सन्देश देता है।

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति आइजन होवर और सोवियत प्रधानमंत्री श्री निकिता ख्रुश्चेव के मिलन के अवसर पर आचार्यश्री तुलसी ने शान्ति और मैत्री का जो सन्देश दिया था, उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव और संघर्ष को रोकने की दिशा में अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी को उल्लेखनीय सफलता मिली है। उन्होंने विभिन्न धर्मों और विश्वासों के मध्य समन्वय स्थापित कराने का प्रयास किया है। यही आचार्यश्री तुलसी के अणुव्रत-आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता है।

विश्व-शान्ति के प्रसार में उल्लेखनीय योग-दान

अन्तर्राष्ट्रीय विचारकों के मत में आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से विश्व-शान्ति और सद्भावना के प्रसार में उल्लेखनीय योग-दान किया है। हिंसा की दहकती हुई ज्वाला पर वे अहिंसा का शीतल जल छिड़क रहे हैं। आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन अब केवल भारत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसका प्रसार विदेशों में भी हो गया है। हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत का पैदल भ्रमण करके आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत का जो सन्देश दिया है, उससे राष्ट्र के चारित्रिक उत्थान में मूल्यवान् सहयोग मिला है। अगर संसार के सभी भागों में लोग अणुव्रतों को ग्रहण करें तो युद्ध की सम्भावना बहुत अंशों तक समाप्त हो जायेगी। विश्व-युद्ध को रोकने के लिए आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत एक अमोघ अस्त्र है। यूरोप में चलने वाले 'नैतिक पुनरुत्थान आन्दोलन' की तुलना में अणुव्रत-आन्दोलन का महत्त्व अधिक है। अगर संसार के विशिष्ट राजनीतिज्ञ अणुव्रतों के प्रति अपनी आस्था प्रकट करें तो युद्ध का निवारण करना आसान हो सकता है। केनेडी, मैकमिलन, दगाल और ख्रुश्चेव जैसे राजनीतिज्ञ जिस दिन अणुव्रत ग्रहण कर लेंगे, उसी दिन युद्ध की सम्भावना समाप्त हो जायेगी।

सन्तुलित व्यक्तित्व

साहू शान्तिप्रसाद जैन

श्री आचार्य तुलसीजी महाराज ने लगभग दो वर्ष पूर्व जब एक पूरा चातुर्मास कलकत्ते में व्यतीत किया तो मुझे अनेक बार उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला। दो दिन उनका वास मेरे निवास-स्थान पर भी रहा। उनका संयम उनकी साधु-वृत्ति के अनुरूप तो है ही, मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया उनके सन्तुलित व्यक्तित्व की उस पावन मधुरता ने जो संयम का अलंकार है। उनका तत्त्वश्रद्धान जितना परम्परागत है, उससे अधिक उसमें वे अंश है जो उनके अपने चिन्तन, मनन और आत्मानुभाव से उपजे हैं। उनकी जीवनचर्या का परम्पराबद्ध मार्ग कितना कठिन और कष्टसाध्य है। मैंने पाया है कि आचार्यश्री दूसरों के आग्रहों को चुनौती नहीं देते, चुनौतियों को आमंत्रित करते हैं और दृष्टि का सामंजस्य खोजते हैं। तत्त्वचर्चा और धार्मिक प्रवचन को उन्होंने मनुष्य के दैनिक जीवन की समस्याओं से जोड़ कर धर्म को जीवन की गति और हृदय का स्पन्दन दिया है। अणुव्रतों की व्यवस्था जिन आचार्यों ने की थी, उनके लिए ये व्रत समाज के नैतिक संगठन और निराकुल संरक्षण के आधारभूत सिद्धान्त थे। ज्यों-ज्यों धर्म जीवन से विच्छिन्न होकर रूढ़ होता गया, अणुव्रत की महत्ता उसी अनुपात में शास्त्रगत अधिक और जीवनगत कम हो गयी। अणुव्रत-चर्चा की सार्थकता आन्दोलन के रूप में जो भी हो, आचार्यश्री तुलसी को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने अणुव्रतों का प्रतिपादन युग के संदर्भ में किया और व्यापक स्तर पर समाज का ध्यान केन्द्रित किया।

आचार्यश्री तुलसी धवल समारोह के अवसर पर मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

आशा की झलक

श्री त्रिलोकीसिंह

नेता, विरोधी दल, उ० प्र० विधान सभा

आचार्यश्री तुलसी आधुनिक युग के उन लोगों में से है, जिन्होंने समाज के उत्थान के लिए महान प्रयत्न किया है। उनके द्वारा संचालित अणुव्रत-आन्दोलन दरअसल गिरते हुए मानव को उठाने के लिए महान प्रयत्न है। कहने को तो वह छोटे-छोटे व्रत हैं, किन्तु उनके अपनाने के बाद कोई ऐसी बात नहीं रह जाती जो मनुष्य के विकास में बाधा पहुँचाये।

सच बात तो यह है कि वे समय के खिलाफ चल रहे हैं। इस समय ऐसा वातावरण है कि चारों ओर ढील-ढाल नजर आती है। समाज बजाय जाति-विहीन होने के मर्यादा विहीन होता जा रहा है। ऐसे समय में किसी का यह प्रयत्न कि नई मर्यादा कायम हो, साधारण बात नहीं है। आचार्यजी जो कार्य कर रहे हैं, उससे इस देश में आशा की झलक निकलती मालूम होती है। मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि समाज का कल्याण इनके बताये हुए रास्ते से हो सकता है। मुझे इसमें भी सन्देह नहीं कि जिस प्रकार वे इस आन्दोलन का संचालन कर रहे हैं, उसमें अवश्य सफल होंगे।

महावीर व बुद्ध के सन्देश प्रतिध्वनित

श्री करणसिंहजी , सदस्य लोकसभा

महाराजा, बीकानेर

अणुव्रत-आन्दोलन कोई राजनीतिक यज्ञ नहीं है। यह तो मानव मात्र की आध्यात्मिक उन्नति का प्रयास है। इसका उद्देश्य है कि जीवन पवित्र बने। दैनिक जीवन में सच्चाई व प्रामाणिकता आये। थोड़े में कहा जाये तो अणुव्रत-आन्दोलन चरित्र का आन्दोलन है। यह किसी सम्प्रदाय, जाति, धर्म व व्यक्ति विशेष का न होकर सबका है। इसमें किसी अधिकार अथवा पद की व्यवस्था नहीं है।

आज के युग में जब हम अपने चारों ओर देखते हैं तो बड़े दुःख के साथ अनुभव करते हैं कि देश में सर्वत्र भ्रष्टाचार, जातिवाद, क्षेत्रवाद आदि अनेक विषैले कीटाणु हमारे समाज को नष्ट करने में व्यस्त हैं। ऐसी दशा में उसका उद्धार केवल अणुव्रत जैसे आन्दोलनों द्वारा ही हो सकता है।

इसके साथ-ही-साथ प्रत्येक आन्दोलन के संचालन में उसके प्रमुख कार्यकर्ताओं में उस आन्दोलन की मर्यादानुसार कार्य करने की क्षमता का होना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि उसका उद्देश्य। यह कितनी प्रसन्नता की बात है कि अणुव्रत-आन्दोलन को आचार्यश्री तुलसी का आशीर्वाद प्राप्त है।

आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व देश के पूर्वी अंचल से भगवान् श्री महावीर और गौतम बुद्ध के आध्यात्मिक सन्देश समग्र भारतवर्ष में गूंजे थे। भगवान् श्री महावीर का सन्देश पंच अणुव्रत के रूप में था और गौतम बुद्ध का सन्देश पंचशील के रूप में। आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत सन्देश पश्चिम से पूर्व की ओर प्रतिध्वनित हुआ है। यह इस अंचल का सौभाग्य है। उनके धवल समारोह के अवसर पर उनके कार्यों के प्रति श्रद्धा प्रकट करना प्रत्येक विचारशील अपना कर्तव्य समझता है।

●

विकास के साथ धार्मिक भावना

श्री दीपनारायणसिंह

सिंचाई मंत्री, बिहार सरकार

आचार्यश्री तुलसी के दर्शन प्रथम बार कई साल पहले मुझे जयपुर में हुए। तब से अनेकों बार उनके दर्शन का अवसर मुझे मिला है। जन-समाज के नैतिक बल को बढ़ाने के लिए उनका प्रवचन असरदार होता है। बराबर पैदल यात्रा कर समाज के कल्याण के लिए वे रास्ता बनाते हैं। उनका सरल जीवन तथा सुन्दर स्वास्थ्य बहुत ही प्रभावशाली है।

भारतवर्ष आज स्वतन्त्र है। विकास का काम जोरों से चल रहा है। ऐसे समय में धार्मिक भावनाओं का समुचित विकास होता रहे और समाज नैतिकता के रास्ते पर चले, इसकी बड़ी आवश्यकता है। ऐसे कार्यों के लिए आचार्यश्री तुलसी जैसे मार्ग-दर्शक की आवश्यकता है। मेरी शुभ कामना है कि आचार्यश्री तुलसी स्वस्थ रहकर सदा समाज का मार्ग-दर्शन कराते रहें।

आध्यात्मिकता के धनी

श्री प्रफुल्लचन्द्रसेन,
खाद्य मंत्री, बंगाल

आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन कर भारत के धर्म गुरुओं के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है। आज जबकि जाति, प्रान्त, भाषा व धर्म के नाम पर अनेकानेक झगड़े खड़े हो रहे हैं, स्वार्थ-भावना की प्रबलता है, साम्प्रदायिकता निष्कारण ही पनप रही है, आचार्यश्री तुलसी द्वारा नैतिक क्रान्ति का आह्वान सचमुच ही उनके दूरदर्शी चिन्तन का परिणाम है। आचार्यजी विशुद्ध मानवतावादी हैं और प्रत्येक वर्ग में व्याप्त बुराई का निराकरण करना चाहते है। मुझे उनके दर्शन करने का अनेकशः सौभाग्य मिला है और निकट बैठ कर उनके पवित्र उपदेश सुनने का भी। वे आध्यात्मिकता के धनी हैं और उनमें साधना का प्रखर तेज है। वे भारतीत ऋषि-परम्परा के वाहक हैं, अतः भारतीय जनता को उन्हें अपने बीच में पाकर गौरव की अनुभूति भी है। उनके प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त करना प्रत्येक देशवासी का अपना कर्तव्य है।

आप्त-जीवन में अमृत सीकर

श्री उदयशंकर भट्ट

आणविक युद्ध को रोकने का एकमात्र उपाय अणुव्रत-साधना है। युद्ध युद्धों को नहीं रोक सकते। मरण के साधनों से जीवन नहीं मिल सकता। शान्ति, अपरिग्रह, क्षमा, आत्म-संतोष, सर्वभूतहिते रति ही जीवन के कल्याण-मार्ग है। मनुष्य का सबसे बड़ा दुःख तृष्णाओं के पीछे भटकना है। इस भटकाव का कहीं अन्त नहीं है। मृगतृष्णा अज्ञान संभूत है, जो निरन्तर एक तृष्णा से दूसरी, तीसरी इस प्रकार अनन्त तृष्णाओं को उत्पन्न करती है। तृष्णा अज्ञानान्ध तम है। उसमें स्वार्थों का प्रकाश है, प्रकाशाभास; एवं कामना की पूर्ति से अन्य कामनाओं, अनन्त कामनाओं के चक्कर में हमारा जीवन भ्रमित होकर अतृप्ति का ग्रास हो जाता है। ऐसी अवस्था में आत्म-संतोष, आत्म-चिन्तन ही हमें एकाग्र, शान्ति, मूर्धन्य सुख, परम तृप्ति दे सकता है।

आचार्यश्री तुलसी ने हमें इस दिशा में आप्त-जीवन में अमृत सीकर की तरह नई दृष्टि दी है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, क्षमा, दया के अक्षय अस्त्र देकर आजीवनीय तत्त्वों से संघर्ष करके जीवन का प्रतिष्ठा-प्रण दान किया है। अहिंसा सार्वकालिक अस्त्र है। भले ही वह कुछ काल के लिए निर्बल दिखाई दे, किन्तु उससे युगयुगान्तर प्रकाशित होते हैं और इससे पारस्परिक जीवन की चरम एवं परम प्राणमयी धाराएं गतिमान होती रहती है। सत्य आचरण, सत्य के प्रति निष्ठा और स्वयं सत्यात्मा के दर्शन होते हैं, जो हमारे जीवन का चरम उल्लास है। मेरी कामना है, आचार्यश्री तुलसी के जीवन चिन्तन से निकले 'अणुव्रत' के उद्‌गार निरन्तर हमारे लिए चिर सुख के कारण बनें। हम अपने में अपने सुख को खोज-कर आत्म-प्रकाश हों। मेरा आचार्य तुलसी को शत-शत अभिवन्दन।

नैतिकता का वातावरण

श्री मोहनलाल गौतम
भूतपूर्व सामुदायिक विकासमंत्री, उत्तरप्रदेश सरकार

आचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना के बारे में जानकर अतीव प्रसन्नता हुई।

आचार्यश्री तुलसी स्वयं अपने जीवन से तथा अपने अणुव्रत-आन्दोलन के द्वारा जिस नैतिकता का वातावरण उत्पन्न कर रहे हैं, वह आज के युग में भारतीय जीवन को सजीव और सशक्त रखने के लिए आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है। आन्तरिक शोध के अभाव में बाह्य प्रगति कल्याणप्रद के स्थान पर हानिकर होगी, यह निर्विवाद है।

मुझे विश्वास है कि इस अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा आचार्यश्री तुलसी के जीवन, विचार पद्धति और कार्यप्रणाली पर जो बहुमुखी प्रकाश पड़ेगा, वह हमारे जन जीवन को आलोकित कर सही मार्ग की ओर उन्मुख करने में सहायक होगा।

प्राचीन सभ्यता का पुनरुज्जीवन

महाशय बनारसीदास गुप्ता
उपमन्त्री, जेल विभाग, पंजाब सरकार

आचार्यश्री तुलसी जैसे उस महान् तपस्वी के दर्शन मैंने उस समय किये थे, जब कि वे हजारों मील की पद-यात्रा करते हुए हांसी (पंजाब) पधारे थे। मैंने भी आपका पंजाब सरकार और पंजाब की जनता की ओर से, हजारों नर-नारी जो भारत के सभी प्रान्तो से वहाँ आये हुए थे, उनकी विशाल उपस्थिति में अभिनन्दन और स्वागत किया था। आचार्यश्री तुलसी का यह परिश्रम भारत की प्राचीन सभ्यता को पुनरुज्जीवित करने में सफल हो रहा है और रहेगा। देश की स्वतन्त्रता के भरण-पोषण के लिए जहाँ तमाम साधन जुटाने की आवश्यकता है, वहाँ इस देश में चरित्र-निर्माण का महान् कार्य चलाने की भी महती आवश्यकता है। आपके पुनीत प्रयत्न के फलस्वरूप लाखों प्राणी इस महान् कार्य में जुटे हुए हैं। परन्तु इतना ही काफी नहीं है। यह देश तो बड़ा महान् है। इसका भूतकाल बड़ा महान् रहा है। आओ! मिल कर इसके भविष्य को भी उज्ज्वल बनाएं।

मैंने पिछले चार सालों में आचार्यश्री तुलसी के चरण-चिह्नों पर चलने का थोड़ा-सा प्रयास किया है। पदयात्राएं कीं और गाँव-गाँव में जाकर सांस्कृतिक जीवन का संदेश दिया। इससे मुझे यह अनुभव हुआ कि यह रास्ता महान् कल्याणकारी है। भारतवर्ष को आप जैसे हजारों तपस्वी साधुओं की परम आवश्यकता है ताकि यह देश फिर से धर्मपरायण होकर ऊँचे आदर्शों, अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए आपके बताये हुए मार्ग पर चल सके और संसार में फिर विख्यात होकर आध्यात्मिकता के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर सके। मैं इस शुभ अवसर पर आपका अभिनन्दन करता हूँ।

सर्वोत्कृष्ट उपचार

श्री वृन्दावनलाल वर्मा, झाँसी

मुझे आचार्यश्री तुलसी के दर्शनों का सौभाग्य तो कभी प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु मैं पत्रों में प्रकाशित उनकी वाणी को नत-मस्तक होकर पढ़ा करता हूँ।

हमारे देश के लिए इस समय ऐसे महान् सत्पुरुष की परम आवश्यकता है। समाज और राष्ट्र का ही वह हित नहीं कर रहे है, प्रत्युत मानव भर का भी। राष्ट्र में कुछ प्रवृत्तियाँ विघटन की ओर हैं। आचार्यश्री घृणा और द्वेष को तिरोहित करवाकर समाज को संगठित—सच्चे और कल्याणकारी रूप में संगठित करने का शुभ कार्य कर रहे हैं। साथ ही वे व्यक्ति के विकास और उत्थान पर भी ध्यान दिये हुए हैं। तभी तो उन्होंने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति कम-से-कम पन्द्रह मिनट प्रतिदिन स्वाध्याय करे और एकाग्र मन होकर किसी स्वस्थ विषय का चिन्तन करे। आजकल जहाँ देखिये वहाँ जीवन पर तरह-तरह का बोझ बढ़ता जा रहा है। व्यक्ति में बेचैनी बढ़ रही है। इसके कारण समाज में खटपट और व्यक्तियों में नाना प्रकार के रोग फैल रहे हैं। आचार्यश्री का बतलाया हुआ उपचार सर्वोत्कृष्ट है। जो जिस प्रकार इसे अपना सके, अवश्य अपनाये और उसका अभ्यास करे। मुझे रत्तीभर भी सन्देह नहीं कि इससे व्यक्ति को सन्तुलन प्राप्त होगा और साथ ही समाज को सगठन एवं उत्थान।

आध्यात्मिक जागृति

सवाई मानसिंहजी

महाराजा, जयपुर

आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन ने गत बारह वर्षों में जो प्रगति की है, वह आशातीत व सन्तोषप्रद है। इस भीषण संघर्ष के युग में जनता को अध्यात्म मार्ग-प्रदर्शन की आवश्यकता है। भौतिक जागृति से अधिक महत्त्वपूर्ण हमारी आध्यात्मिक जागृति है, जिसके अभाव में जीवन सुखी नहीं बन सकता। संसार का वास्तविक कल्याण तभी हो सकता है, जबकि जन-साधारण के चरित्र की ओर ध्यान दिया जाये। आचार्यश्री तुलसी ने इस दिशा में चारित्रिक जागृति का एक ठोस कदम रखा है। सबसे बड़ी विशेषता इस आन्दोलन की यह है कि बिना किसी जाति, सम्प्रदाय और वर्ग-भेद के जनता इसमें भाग लेकर लाभान्वित हो रही है। राष्ट्रव्यापी इस पुनीत कार्य की प्रगति में जिन महानुभावों ने अपना योग दिया है, वे भी बधाई के पात्र हैं।

मेरी हार्दिक कामना है कि नैतिक निर्माणकारी व जन-जीवन की शुद्धि का यह उपक्रम पूर्ण सफलता प्राप्त करे एवं अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास सिद्ध हो।

आचार्यश्री तुलसी का तपःपूत जीवन सुषुप्त मानवता को उद्‌बुद्ध करने में संजीवनी का कार्य कर रहा है। अशान्ति और हिंसा से प्रताड़ित समाज को उनके उपदेशों से राहत की अनुभूति होगी, इसमें सन्देह नहीं है।

उत्कट साधक

श्री मिश्रीलाल गंगवाल

वित्तमन्त्री, मध्यप्रदेश सरकार

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। आचार्यश्री तुलसी अहिंसा और सत्य के उपासक तथा भारतीय संस्कृति और दर्शन के उत्कट साधक हैं। वे सरल, मृदुभाषी 'साधु' शब्द को वास्तविक रूप में चरितार्थ करने वाले आदर्श पुरुष हैं। उनके समक्ष किसी भी बुद्धिजीवी का मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है। उनकी गणना देश के गणमान्य साहित्य सेवियों और संस्कृत तथा दर्शन के गिने-चुने विद्वानों में की जाती है। उनसे अनेक व्यक्तियों को साहित्य और दर्शन में रुचि रखने की प्रेरणा मिली तथा उनके सान्निध्य मे बैठ कर अनेक जनोपयोगी पुस्तकों का सृजन करने का अनेकों को अवसर मिला। उन्होंने केवल समाज का ही मार्ग-दर्शन नहीं किया वरन साधु-समाज में फैली अनेक बुराइयों का उन्मूलन करने के लिए संस्कृति, दर्शन और नैतिकता को नया मोड़ देकर अध्यात्म का सही मार्ग प्रशस्त किया। उनका व्यक्तित्व तथा उनके द्वारा जन हित में किये गए अनेक कार्य दोनों ही एक-दूसरे के पूरक होकर जन-मानस के लिए श्रद्धा की वस्तु बने हैं। ऐसे महान् व्यक्ति का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर निश्चित ही समाज के लिए एक बड़ा उपादेय कार्य किया जा रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इससे जन-मानस को आत्मीय बोध प्राप्त होगा। मैं अभिनन्दन ग्रन्थ की हृदय से सफलता चाहता हूं।

● ● ●

महान् आत्मा

डा० कामताप्रसाद जैन, पी-एच० डी०, एम० आर० ए० एस०

संचालक—अखिल विश्व जैन मिशन

सुवासित फूलों की सुगन्धि अनायास ही सर्वत्र फैलती है। तदनुरूप जो महान् आत्मा अपना समय ज्ञानोपयोग रूप आत्मानुभूति-चर्या में बिताता है उसका यश भी दिग्दिगन्त में फैल जाता है। कहा भी है—**णाणोपयोग जो कालगमइ तसु तणिय कित्ति भुवणयला भमइ।** श्रद्धेय आचार्य तुलसीजी इसी श्रेणी के संत है, महान आत्मा हैं। गत बुद्ध जयन्ती समारोह के अवसर पर जब दिल्ली मे जैनों ने जो सांस्कृतिक सम्मेलन किया था, उसी में हमें उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मंच पर श्वेत वस्त्रों में सज्जित वे बड़े ही सौम्य और शान्त दिखाई पड़ रहे थे। उनके हृदय की शुभ्र उज्ज्वलता मानो उनके वस्त्रों को चमका रही थी। उनका ज्ञान, उनकी लोकहित भावना और धर्म-प्रसार का उत्साह अपूर्व और अनुकरणीय है। अणुव्रत-आन्दोलन के द्वारा वे सर्वधर्म का प्रचार सभी वर्गों में करने में सफल हो रहे हैं। एक ओर जहाँ वे महामना राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री नेहरू को सम्बोधित करते हैं तो दूसरी ओर गाँव और खेतों के किसानों और मजदूरों को भी सन्मार्ग दिखाते हैं। उनका संगठन देखते ही बनता है? वे सच्चे श्रमण हैं। उनका अभिनन्दन सार्थक तभी हो, जब हम सब उनकी शिक्षा को जीवन में उतारें। इन शब्दों में मैं अपनी श्रद्धा के फूल उनको अर्पित करता हुआ उनके दीर्घ-आयु की मंगल कामना करता हूँ।

प्रभावशाली चारित्रिक पुनर्निर्माण

डा० जवाहरलाल रोहतगी

उपमंत्री, उत्तरप्रदेश सरकार

हमारे देश की पुरातन परम्परा रही है कि जब कभी राष्ट्र पर कोई संकट आया, ऋषि-मुनियों ने अपनी साधना और तपोबल को लोकोपकार की दिशा में उन्मुख किया और जन-साधारण में आत्म-विश्वास पैदा किया, जिसके फलस्वरूप दुरूह कार्य भी सरल और सुगम हो गये। यह परम्परा आज भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है।

आचार्यश्री तुलसी सरीखे बिरले लोग हमारे बीच मे हैं जो न केवल राष्ट्र के नैतिक उत्थान में लगे हुए हैं, वरन् उसकी छोटी-से-छोटी शक्ति के यथेष्ट उपयोग की चेष्टा कर रहे हैं। साथ ही आचार्य प्रवर के नेतृत्व में प्रभावशाली साधु समाज जन-सम्पर्क द्वारा चारित्रिक पुनर्निर्माण के कार्य में लगा हुआ है।

सच पूछा जाये तो आज के युग में जब हम आर्थिक एवं सामाजिक पुनरुत्थान के लिए योजनाबद्ध कार्य कर रहे हैं, अणुव्रत जैसे आन्दोलन का विशेष महत्त्व है। इससे हमारे उद्देश्यों को पूरा करने में बड़ा सम्बल मिलता है।

मुझे प्रसन्नता है कि आचार्यश्री तुलसी के सार्वजनिक सेवा-काल के पच्चीस वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में अभिनन्दन का आयोजन किया गया है। मैं आपके प्रयास की सफलता की कामना करता हूँ।

●

तपोधन महर्षि

श्री लालचन्द सेठी

आचार्यश्री तुलसी वर्तमान अशान्ति के युग मे शोक-सन्तप्त अशान्त मानव को जीवन की शान्तिमय रूपरेखा के मार्गदर्शक, तपोधन एवं महर्षि के रूप में आज भारत मे विद्यमान हैं। आचार्य तुलसीजी ने अपूर्व साधना से न केवल अपना ही जीवन धन्य किया है, बल्कि अपने प्रभावशाली साधु-संघ को भी एक विशेष गति-विधि देकर जन-कल्याण के लिए अर्पित किया है, जो बड़ा ही श्रेयस्कर कार्य है। वह केवल जैन-समाज के निमित्त ही नहीं, वरन् समस्त मानव-जाति के लिए एक ध्येय के रूप में रहेगा।

मेरी आचार्य तुलसी के प्रति अटूट श्रद्धा है। जो पावन कार्य वे कर रहे हैं, वह दिग्दिगन्त में उनके नाम को सदा अमर रखेगा।

धवल समारोह मनाने के कार्यक्रम एवं अभिनन्दन ग्रन्थ की रूपरेखा का जो निर्माण हुआ है, तदर्थ हार्दिक बधाई देता हूँ और चाहता हूँ कि ये कार्य खूब ही समारोहपूर्वक सम्पन्न हों और आचार्यश्री तुलसीजी महाराज के तप, ज्ञान एवं सदुपदेश मानव की अशान्ति मिटाकर उन्हे शान्ति प्राप्त कराने में सहायक हों, यही मेरी हार्दिक कामना है।

मेरी बहुत दिनों से इच्छा हो रही है कि आकर महामहिम श्री तुलसीजी महाराज के दर्शन कर अपने को धन्य समझूँ, किन्तु कार्याधिक्य की उलझनों के कारण यह इच्छा पूर्ण नही हो पा रही है और मन की मन में ही गोते खाती रहती है। आशा है कि यह शुभ दिन भी अवश्य ही प्राप्त होगा।

अनेक विशेषताओं के धनी

डा० पंजाबराव देशमुख

कृषिमंत्री, भारत सरकार

यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि आचार्यश्री तुलसी जी के महान् कार्यों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के उद्देश्य से उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया गया है। यों तो आचार्यजी अनेक गुणों और विशेषताओं के धनी है— हिन्दी साहित्य, दर्शन और शिक्षा भी उनके अधिकृत क्षेत्र हैं। संस्कृत और हिन्दी भाषा के विकास में उनका व्यापक योग है, फिर भी उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि उन्होंने अपने-आपको और अपने प्रभावशाली साधु-संघ को जन-कल्याण के लिए अर्पित किया है।

मुझे आशा है कि अधिक-से-अधिक लोग उनके महान कार्यों तथा आदर्शों का नुसरण करते हुए लोक-कल्याण की भावना को अपनायेंगे।

वास्तविक उन्नति

श्री गुरमुख निहालसिंह

राज्यपाल, राजस्थान

आचार्य तुलसी के जीवन व कार्य से हमें सदा प्रेरणा मिलती रहेगी और हमारा यह प्रयत्न होना चाहिए कि जो सिद्धान्त उन्होंने हमारे सामने रखे हैं उनको ग्रहण करें। देश का वास्तविक उन्नति तभी हो सकती है जब कि सामाजिक और आर्थिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उत्थान भी हो।

सफल बनें

सरसंघचालक मा० स० गोलवलकर

आचार्यजी को यहाँ के सभी की ओर से एवं प० पू० श्री गुरुजी की ओर से विनम्र प्रणाम प्रेषित करने की कृपा करें। उनको परम कृपालु परमात्मा सुदीर्घ एवं निरामय आयु प्रदान करे ताकि दुःख से भरे हुए, शोषित, पीड़ित, मार्गदर्शन के लिए इधर-उधर भटकने वाले त्रस्त मानव समाज को पथ-प्रदर्शन करने में वे सफल बनें।

—मु० कृ० चौपाईवाले

समाज के मूल्यों का पुनरुत्थान

श्री मोहनलाल सुखाड़िया

मुख्यमंत्री, राजस्थान सरकार

मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि आचार्यश्री तुलसी धवल समारोह समिति की ओर से एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है।

आचार्यश्री तुलसी देश के एक साधु-संघ के नेता तथा अणुव्रत-आन्दोलन के प्रणेता है, जिसका उद्देश्य समाज के मूल्यों का पुनरुत्थान तथा समाज का नैतिक विकास है। अभिनन्दन ग्रन्थ में नैतिक तथा सामाजिक विषयों पर प्रेरणाप्रद तथा उपादेय सामग्री का संकलन होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं इस अवसर पर आचार्यप्रवर के दीर्घ जीवन के लिए शुभकामना करते हुए ग्रन्थ की सफलता चाहता हूँ।

आचार-प्रधान महापुरुष

श्री अलगूराय शास्त्री

वनमंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार

श्री तुलसीजी वर्तमान युग के सदाचार प्रचारकों तथा आचार-प्रधान महापुरुषों में सूर्य समान देदीप्यमान व्यक्ति है। उनकी प्रेरणाओं से जन-मानस में उच्च आचरण के लिए उथल-पुथल उत्पन्न हो जाती है। मुझे इनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्री तुलसीजी दीर्घ आयु प्राप्त करें और मानव समाज को आचार-शिखर पर ले जाकर उन्हें सिद्धशिला का अधिकारी बनावें, यही कामना है, ईश्वर से यही याचना है।

अपना ही परिशोधन

डा० हरिवंशराय 'बच्चन' एम० ए०, पी-एच० डी०

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आचार्यश्री तुलसी के अभिनन्दन का आयोजन किया गया है। संत का अभिनन्दन क्या? हम अपना ही परिशोधन कर रहे हैं। योजना की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामना। सब कुछ आचार्य के अनुरूप हो।

उनके कार्य से कौन अपरिचित है। मुझ-जैसे अपरार्थ को भी उनकी करुणा का प्रसाद मिल चुका है। एक दिन उन्होंने स्वयं पाद-विहार से आकर मेरे घर पर मुझे दर्शन दिये थे और मेरे घर को पवित्र किया था।

मुझे उनके विषय में कहने का अधिकार नहीं। मेरा प्रणाम उनके चरणों में निवेदित कर दें।

एक अनोखा व्यक्तित्व

मुनिश्री धनराजजी

मेरे दीक्षक, शिक्षक व गुरु होने के कारण मैं उन्हें असाधारण प्रतिभा सम्पन्न, साहित्य जगत् के उज्ज्वल नक्षत्र, अमित आत्मबली, कुशल अनुशासक व अनुत्तर आचार-निधि आदि उपमाओं से अलंकृत करूँ, ऐसी बात नहीं है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की शीतलता और जलधि का गाम्भीर्य प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं, उसी प्रकार महापुरुषों के व्यक्तित्व को निखारने की आवश्यकता नहीं होती; वह स्वतः निखरित होता है। महापुरुष जिस ओर चरण बढ़ाते हैं, वही मार्ग; जो कहते हैं, वही शास्त्र और जो कुछ करते हैं, वही कर्तव्य बन जाता है। महापुरुष तीन कोटि के माने गये हैं, १. जन्मजात, २. श्रम व योग्यता के बल पर और ३. कृत्रिम, जिन पर महानता थोपी जाती है।

आचार्यश्री तुलसी को जन्मजात महापुरुष कहने में कोई आपत्ति नहीं, किन्तु तो भी श्रम और योग्यता से बने इस स्वीकरण में भी दो मत नहीं होंगे।

कर-कंकण को दर्पण की तरह ही प्रत्यक्ष को प्रमाण की अपेक्षा नहीं होती। इतिहास कहता है—पूर्वजात महापुरुषों का अमर व्यक्तित्व स्वतः धरा के कण में चमत्कृत हुआ है तो फिर वर्तमान में हो तो आश्चर्य व नवीनता क्या हो सकती है?

आचार्यश्री तुलसी के व्यक्तित्व का अरुण आलोक मजदूर की झोंपड़ी से लेकर राष्ट्रपति भवन तक फैल चुका है; इसकी अनुभूत यथार्थता को स्पष्ट करके ही मैं आगे लिखना चाहूँगा।

घटना जुलाई सन् १९५९ की है। राजस्थान की राजधानी जयपुर की यातायात संकुल मिर्जा इस्माइल रोड स्थित दूगड़ बिल्डिंग की दूसरी मंजिल में मैं ठहरा हुआ था। एक युवक पारिवारिक कलह से ऊब कर मेरे पास आया। कहने लगा मुझे मंगल पाठ सुनाओ। मैंने सुना दिया। वह उसी समय वहाँ से नीचे सड़क पर कूद पड़ा। मैं अवाक् रह गया। उसके चोट भी लगी। जोरों से चिल्लाने लगा। सैकड़ों लोग इकट्ठे हो गये। वातावरण कुछ कलुषित हो गया। उसे थाने में ले जाया गया। वहाँ उसने कह दिया—उस मकान में तीन साधु भी ठहरे हुए हैं। उन्होंने किसी के कहने से निष्कारण ही मुझे पकड़ कर नीचे गिरा दिया। थानेदार ने पूछा—वे साधु कौन हैं? उसने कहा—आचार्यश्री तुलसी के शिष्य तेरापंथी साधु हैं। थानेदार आचार्यश्री के सम्पर्क में आ चुका था। उसने कहा—तुम झूठ बोलते हो। आचार्य तुलसी व उनके शिष्य ऐसा काम कभी नहीं कर सकते। मैं उनसे अच्छी तरह परिचित हूँ। आखिर दो-चार डण्डे लगने पर युवक ने सच्ची घटना रख दी और कहा मैं स्वयं ही नीचे गिरा था। साधुओं का कोई दोष नहीं। मैंने बहकावे में आकर झूठ ही उनका नाम लिया है। अस्तु! यह है आपके बहुमुखी व्यक्तित्व की परिचायिका एक छोटी-सी घटना।

आज आपका व्यक्तित्व एक राष्ट्रीय परिधि में सीमित न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है। बम्बई में श्री वेरन आदि कतिपय अमेरिकनों ने आचार्यश्री से कहा—"हम आपके माध्यम से अणुव्रतों का प्रचार अपने देश में करना चाहते हैं, क्योंकि वहाँ इनकी आवश्यकता है।"

सन् १९५४ में जापान में हुए सर्व धर्म सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने यह निश्चय किया कि अणुव्रतों का प्रचार वहाँ भी होना चाहिए।

द्वितीय महायुद्ध की लपटों से झुलसे हुए संसार को 'अशान्त विश्व को शान्ति का सन्देश' नाम से आपने एक सन्देश दिया, जिस पर टिप्पणी करते हुए महात्मा गांधी ने लिखा, "क्या ही अच्छा होता, दुनिया इस महापुरुष

के बताये हुए मार्ग पर चलती।"

सात्त्विक विचारधारा की अपेक्षा

आज अनेक व्यक्ति आपके सम्पर्क के लिए उत्सुक रहते है। उसका मूल कारण है—आपका प्रसरणशील व्यक्तित्व। लाखों व्यक्तियों ने आपका साक्षात् सम्पर्क किया है। आपके नाम और नैतिक उपक्रमों से तो करोड़ों व्यक्ति परिचित हैं। आपके प्रति जन-मानस की जो श्रद्धा और भावना है, उसका सही चित्रण इस लघुकाय निबन्ध में असम्भव है, किन्तु यह कहने का लोभ भी संवृत नहीं कर सकता कि प्राचीन और अर्वाचीन युगल विचारधाराएं आपके प्रति आशंसोपचित है। यद्यपि आप किसी को भौतिक समृद्धि अथवा स्वराज्य-प्रदान नहीं करते, किन्तु आपके प्रेरणा पीयूष से मानव सहज उन्मार्ग को छोड़ कर सन्मार्ग को ग्रहण कर जीवन का वास्तविक लक्ष्य प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। विविध समस्याओं की जड़ आप विचार-दारिद्रय को ही मानते हैं। मनुष्य का वर्तमान और भविष्य दोनों विचारों पर ही अवलम्बित है। शुद्ध और सात्विक विचारधारा की अपेक्षा है। इसके अभाव में अनेक समस्याओं का उद्‌गमन होता है।

आपके विशाल व्यक्तित्व के अनेक कारणों में मैं आचार को प्राथमिकता देता हूँ। जिसका आचार आकाश की तरह विशद और सुस्थिर है, उसका व्यक्तित्व भी अनन्त व असीम है। आचारहीन व्यक्तित्व बिना नींव के प्रासाद तुल्य होता है। किसी का व्यक्तित्व प्रायोगिक होता है और किसी का नैसर्गिक। आपका व्यक्तित्व द्विधात्मक है। आचार की अपेक्षा नैसर्गिक और विचार-दारिद्रय को मिटाने की अपेक्षा प्रायोगिक। अतः आपके व्यक्तित्व के आगे अनोखा विशेषण युक्तिसंगत ही है।

मानवता के उन्नायक

श्री यशपाल जैन

सम्पादक—जीवन साहित्य

आचार्यश्री तुलसी का नाम मैंने बहुत दिनों से सुन रखा था, लेकिन उनसे पहले-पहल साक्षात्कार उस समय हुआ जबकि वे प्रथम बार दिल्ली आये थे और कुछ दिन राजधानी में ठहरे थे। उनके साथ उनके अन्तेवासी साधु-साध्वियों का विशाल समुदाय था और देश के विभिन्न भागों से उनके सम्प्रदाय के लोग भी बहुत बड़ी संख्या में एकत्र हुए थे।

विभिन्न आलोचनाएं

आचार्यश्री को लेकर जैन समाज तथा कुछ जैनेतर लोगों में उस समय तरह-तरह की बातें कही जाती थी। कुछ लोग कहते थे कि वह बहुत ही सच्चे और लगन के आदमी हैं और धर्म एवं समाज की सेवा दिल से कर रहे हैं। इस के विपरीत कुछ लोगों का कहना था कि उनमें नाम की बड़ी भूख है और वह जो कुछ कर रहे हैं, उसके पीछे तेरापंथी सम्प्रदाय के प्रचार की तीव्र लालसा है। मैं दोनों पक्षों की बातें सुनता था। उन सबको सुन-सुन कर मेरे मन पर कुछ अजीब-सा चित्र बना। मैं उनसे मिलना टालता रहा।

अचानक एक दिन किसी ने घर आकर सूचना दी कि आचार्यश्री हमारे मुहल्ले मे आये हुए हैं और मेरी याद कर रहे हैं। मेरी याद ? मुझे विस्मय हुआ। मैं गया। उनके चारों ओर बड़ी भीड़ थी और लोग उनके चरण स्पर्श करने के लिए एक-दूसरे को ठेल कर आगे आने का प्रयत्न कर रहे थे। जैसे-तैसे उस भीड़ में से रास्ता बना कर मुझे आचार्यश्री जी के पास ले जाया गया। उस भीड़-भाड़ और कोलाहल में ज्यादा बातचीत होना तो कहाँ सम्भव था, लेकिन चर्चा से अधिक जिस चीज की मेरे दिल पर छाप पड़ी, वह था आचार्यश्री का सजीव व्यक्तित्व, मधुर व्यवहार और उन्मुक्तता। हम लोग पहली बार मिले थे, लेकिन ऐसा लगा मानो हमारा पारस्परिक परिचय बहुत पुराना हो।

उसके उपरान्त आचार्यश्री से अनेक बार मिलना हुआ। मिलना ही नहीं, उनसे दिल खोल कर चर्चाएं करने के अवसर भी प्राप्त हुए। ज्यों-ज्यों मैं उन्हें नजदीक से देखता गया, उनके विचारों से अवगत होता गया, उनके प्रति मेरा अनुराग बढ़ता गया। हमारे देश में साधु-सन्तों की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। आज भी साधु लाखों की संख्या में विद्यमान हैं; लेकिन जो सच्चे साधु हैं, उनमें से अधिकांश निवृत्ति-मार्गी हैं। वे दुनिया से बचते हैं और अपनी आत्मिक उन्नति के लिए जन-रव से दूर निर्जन स्थान में जाकर बसते हैं। आत्म-कल्याण की उनकी भावना और एकान्त में उनकी तपस्या निःसन्देह सराहनीय है, पर मुझे लगता है कि समाज को जो प्रत्यक्ष लाभ उनसे मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है, "मेरे लिए मुक्ति सब कुछ त्याग देने में नहीं है। सृष्टि-कर्ता ने मुझे अगणित बन्धनों में दुनिया के साथ बाँध रखा है।"

आचार्यश्री तुलसी इसी मान्यता के पोषक हैं। यद्यपि उनके सामने त्याग का ऊँचा आदर्श रहता है और वे उसकी ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होते रहते हैं, तथापि वे समाज और उसके सुख-दुःख के बीच रहते हैं और उनका अहर्निश प्रयत्न रहता है कि मानव का नैतिक स्तर ऊँचा उठे, मानव सुखी हो और समूची मानव-जाति मिल-जुल कर प्रेम से रहे। वह एक सम्प्रदाय-विशेष के आचार्य अवश्य हैं; लेकिन उनकी दृष्टि और उनकी करुणा संकीर्ण परिधि से आवृत नहीं है।

वे सबके हित का चिन्तन करते हैं और समाज-सेवा उनकी साधना का मुख्य अंग है।

गांधीजी कहा करते थे कि समाज की इकाई मनुष्य है और यदि मनुष्य का जीवन शुद्ध हो जाए तो समाज अपने-आप सुधर जायेगा। इसलिए उनका ओर हमेशा मानव की शुचिता पर रहता था। यही बात आचार्यश्री तुलसी के साथ है। वे बार-बार कहते हैं कि हर आदमी को अपनी ओर देखना चाहिए, अपनी दुर्बलताओं को जीतना चाहिए। वर्तमान युग की अशान्ति को देख कर एक बार एक छात्र ने उनसे पूछा—'दुनिया में शान्ति कब होगी?' आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'जिस दिन मनुष्य में मनुष्यता आ जायेगी।' अपने एक प्रवचन में उन्होंने कहा—'रोटी, मकान, कपड़े की समस्या से अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या मानव में मानवता के अभाव की है।'

मानव-हित के चिन्तक

मानव-हित के चिन्तक के लिए आवश्यक है कि वह मानव की समस्याओं से परिचित रहे। आचार्यश्री उस दिशा में अत्यन्त सजग हैं। भारतीय समाज के सामने क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं, राष्ट्र किस संकट से गुजर रहा है, अन्तर्राष्ट्रीय जगत के क्या-क्या मुख्य मसले हैं, इनकी जानकारी उन्हें रहती है। वस्तुतः बचपन से ही उनका झुकाव अध्ययन और स्वाध्याय की ओर रहा है और जीवन को वे सदा खुली आँखों से देखने के अभिलाषी रहे हैं। अपने उसी अभ्यास के कारण आज उनकी दृष्टि बहुत ही जागरूक रहती है और कोई भी छोटी-बड़ी समस्या उनकी तेज आँखों से बची नहीं रहती।

जैन-धर्मावलम्बी होने के कारण अहिंसा पर उनका विश्वास होना स्वाभाविक है। लेकिन मानवता के प्रेमी के नाते उनका वह विश्वास उनके जीवन की श्वास बन गया है। हिंसा के युग में लोग जब उनसे कहते हैं कि आणविक अस्त्रों के सामने अहिंसा कैसे सफल हो सकती है तो वे साफ जवाब देते हैं, "लोगों का ऐसा कहना उनका मानसिक भ्रम है। आज तक मानव-जाति ने एक स्वर से जैसा हिंसा का प्रचार किया है, वैसा यदि अहिंसा का करती तो स्वर्ग धरती पर उतर आता। ऐसा नहीं किया गया, फिर अहिंसा की सफलता में सन्देह क्यों?"

आगे वे कहते हैं—"विश्व शान्ति के लिए अणबम आवश्यक है, ऐसा कहने वालों ने यह नहीं सोचा कि यदि वह उनके शत्रु के पास होता तो।"

धर्म पुरुष

आचार्यश्री की भूमिका मुख्यतः आध्यात्मिक है। वे धर्म-पुरुष है। धर्म के प्रति आज की बढ़ती विमुखता को देख कर वे कहते हैं, "धर्म से कुछ लोग चिढ़ते हैं, किन्तु वे भूल पर हैं। धर्म के नाम पर फैली हुई बुराइयों को मिटाना आवश्यक है, न कि धर्म को। धर्म जन-कल्याण का एकमात्र साधन है।"

इसी बात को आगे समझाते हुए वे कहते हैं—"जो लोग धर्म त्याग देने की बात कहते हैं, वे अनुचित करते हैं। एक आदमी गन्दे विषैले पानी से बीमार हो गया। अब वह प्रचार करने लगा कि पानी मत पीओ, पानी पीने से बीमारी होती है। क्या यह उचित है? उचित यह होता कि वह अपनी भूल को पकड़ लेता और गन्दा पानी न पीने को कहता। धर्म का त्याग करने की बात कहने वालों को चाहिए कि वे जनता को धर्म के नाम पर फैले हुए विकारों को छोड़ना सिखाएँ, धर्म छोड़ने की सीख न दें।"

धर्म क्या है, इसकी बड़े सरल सुबोध ढंग से उन्होंने इन शब्दों में व्याख्या की है—"धर्म क्या है? सत्य की खोज, आत्मा की जानकारी, अपने स्वरूप की पहचान, यही तो धर्म है। सही अर्थ में यदि धर्म है तो वह यह नहीं सिखलाता कि मनुष्य मनुष्य से लड़े। धर्म नहीं सिखलाता कि पूँजी के मापदण्ड से मनुष्य छोटा या बड़ा है। धर्म नहीं सिखलाता कि कोई किसी का शोषण करे। धर्म यह भी नहीं कहता कि बाह्य आडम्बर अपना कर मनुष्य अपनी चेतना को खो बैठे। किसी के प्रति दुर्भावना रखना भी यदि धर्म में शुमार हो तो वह धर्म किस काम का। वैसे धर्म से कोसों दूर रहना बुद्धिमत्तापूर्ण होगा।"

आज राजनीति का बोलबाला है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'राज' को केन्द्र में रख कर सारी नीतियाँ बन और चल रही हैं; जबकि चाहिए यह कि केन्द्र में मनुष्य रहे और सारी नीतियाँ उसी को लक्ष्य में रख कर संचालित हों। उस अवस्था में प्रमुखता मानव को होगी और वह तथा मानव-नीति राज और राजनीति के नीचे नहीं, ऊपर होगी। आज सबसे अधिक कठिनाइयाँ और गन्दगी इस कारण फैली है कि राजनीति जिसका दूसरा अर्थ है सत्ता, पद, लोगों के जीवन का चरम लक्ष्य बन गई है और वे सारी समस्याओं का समाधान उसी में खोजते हैं। कहा जाता है कि सर्वोत्तम सरकार वह होती है जो लोगों पर कम-से-कम शासन करती है; लेकिन इस सच्चाई को जैसे भुला दिया गया है। इस सम्बन्ध में आचार्यश्री का स्पष्ट मत है—"राजनीति लोगों के जरूरत की वस्तु होती होगी। किन्तु सबका हल उसी में ढूंढना भयंकर भूल है। आज राजनीति सत्ता और अधिकारों को हथियाने की नीति बन रही है। इसीलिए उस पर हिंसा हावी हो रही है। इससे संसार सुखी नहीं होगा। संसार सुखी तब होगा, जब ऐसी राजनीति घटेगी और प्रेम, ममता तथा भाईचारा बढ़ेगा।"

वे चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को विकास का पूरा अवसर मिले; लेकिन यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि मनुष्य स्वतन्त्र हो। स्वतन्त्रता से उनका अभिप्राय यह नहीं है कि उसके ऊपर कोई अंकुश ही न हो और वह मनमानी करे। ऐसी स्वतन्त्रता तो अराजकता पैदा करती है और उससे समाज संगठित नहीं, छिन्न-भिन्न होता है। उनके कथनानुसार—"स्वतन्त्र वह है, जो न्याय के पीछे चलता है। स्वतन्त्र वह है, जो अपने स्वार्थ के पीछे नहीं चलता। जिसे अपने स्वार्थ और गुट में ही ईश्वर-दर्शन होता है, वह परतन्त्र है।"

आगे वे फिर कहते हैं—"मैं किसी एक के लिए नहीं कहता। चाहे साम्यवादी, समाजवादी या दूसरा कोई भी हो; उन्हें समझ लेना चाहिए कि दूसरों का इस शर्त पर समर्थन करना कि वे उनके पैरों तले चिपटे रहें, स्वतन्त्रता का समर्थन नहीं है।"

कुशल अनुशासक

वे किसी भी वाद के पक्षपाती नहीं हैं। वे नहीं चाहते कि मानव पर कोई भी ऐसा बाह्य बन्धन रहे, जो उसके मार्ग को अवरुद्ध और विकास को कुण्ठित करे। पर इससे यह न समझा जाये कि संगठन अथवा अनुशासन में उनका विश्वास नहीं है। वे स्वयं एक सम्प्रदाय के आचार्य हैं और हजारों साधु-साध्वियों के सम्प्रदाय और शिष्य मण्डली के मुखिया हैं। उनके अनुशासन को देख कर विस्मय होता है। उनके साधु-साध्वियों में कुछ तो बहुत ही प्रतिभाशाली और कुशाग्रबुद्धि के हैं; लेकिन क्या मजाल कि वे कभी अनुशासन से बाहर हों। जब किसी क्षुद्र स्वार्थ के लिए लोग मिलते हैं तो उनके गुट बनते हैं और गुटबन्दी कदापि श्रेयस्कर नहीं होती। इसी प्रकार वाद का अर्थ है, आंखों पर ऐसा चश्मा चढ़ा लेना कि सब चीजें एक ही रंग की दिखाई दें। कोई भी स्वाधीनचेता और विकासशील व्यक्ति न गुटबन्दी के चक्कर में पड़ सकता है और न वाद के। मनुष्य अपने व्यक्तित्व के दीपक को लेकर भले ही वह कितना ही छोटा क्यों न हो, अपने मार्ग को प्रकाशमान करता रहे, जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाता रहे, यही उसके लिए अभीष्ट है।

वास्तविक स्वतन्त्रता का आनन्द वही ले सकता है, जो परिग्रह से मुक्त हो। अपरिग्रह की गणना पंच महाव्रतों में होती है। आचार्यश्री अपरिग्रह के व्रती हैं। वे पैदल चलते हैं; यहाँ तक कि पैरों में कुछ भी नहीं पहनते। उनके पास केवल सीमित वस्त्र, एकाध पात्र और कुछ पुस्तकें हैं। समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को देख कर वे कहते हैं—"लोग कहते हैं कि जरूरत की चीजें कम हैं। रोटी नहीं मिलती, कपड़ा नहीं मिलता। यह नहीं मिलता, वह नहीं मिलता, आदि आदि। मेरा ख्याल कुछ और है। मैं मानता हूँ कि जरूरत की चीजें कम नहीं, जरूरतें बहुत बढ़ गई हैं, संघर्ष यह है। इसमें से अशान्ति की चिनगारियाँ निकलती हैं।"

अपनी आन्तरिक भावना को व्यक्त करते हुए वे आगे कहते हैं—"एक व्यक्ति महल में बैठा मौज करे और एक को खाने तक को न मिले, ऐसी आर्थिक विषमता जनता से सहन न हो सकेगी।"

"प्रकृति के साथ खिलवाड़ करने वाले इस वैज्ञानिक युग के लिए शर्म की बात है कि वह रोटी की समस्या को

नहीं सुलझा सकता।"

आज का युग भौतिकता का उपासक बन रहा है। वह जीवन की चरम सिद्धि भौतिक उपलब्धियों में देखता है। परिणाम यह है कि आज उसकी निगाह धन पर टिकी है और परिग्रह के प्रति उसकी आसक्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है। वह भूल गया कि यदि सुख परिग्रह में होता तो महावीर और बुद्ध क्यों राजपाट और दुनिया के वैभव को त्यागते और क्यों गांधी स्वेच्छा से अकिंचन बनते। सुख भोग में नहीं है, त्याग में है और गौरीशंकर की चोटी पर वही चढ़ सकता है जिसके सिर पर बोझ की भारी गठरी नहीं होती। आचार्यश्री मानते हैं कि यदि आज का मनुष्य अपरिग्रह की उपयोगिता को जान ले और उस रास्ते चल पड़े तो दुनिया के बहुत से संकट अपने आप दूर हो जायेंगे।

मानव के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को शुद्ध बनाने के लिए आचार्यश्री ने कई वर्ष पूर्व अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात किया था और वह आन्दोलन अब देश व्यापी बन गया है। उस नैतिक क्रान्ति का मूल उद्देश्य यह है कि मनुष्य अपने कषायों को देखे और उन्हें दूर करे। इसके साथ-साथ जो भी काम उसके हाथ में हो, उसके करने में नैतिकता का पूरा-पूरा आग्रह रखे। इस आन्दोलन को अधिक-से-अधिक व्यापक और सक्रिय बनाने के लिए आचार्यश्री ने बड़े परिश्रम और लगन से कार्य किया है और आज भी कर रहे हैं, चूंकि इस आन्दोलन का अन्तिम लक्ष्य मानव जाति को सुखी बनाना है, इसलिए उसका द्वार सब के लिए खुला है। उसमें किसी भी धर्म, मत अथवा सम्प्रदाय का व्यक्ति भाग ले सकता है। अणुव्रत के व्रतियों में बहुत से जैनेतर स्त्री-पुरुष भी हैं।

इसी आन्दोलन के अन्तर्गत प्रति वर्ष अहिंसा तथा मैत्री-दिवस भी देश भर में मनाये जाते हैं। जिससे तनाव का वातावरण सुधरे और यह इच्छा सामूहिक रूप से व्यक्त हो कि वास्तविक सुख और शान्ति हिंसा एवं वैर से नहीं, बल्कि अहिंसा और भाईचारे से स्थापित हो सकती है।

प्रभावशाली वक्ता और साहित्यकार

आचार्यश्री प्रभावशाली वक्ता तथा अच्छे साहित्यकार भी हैं। उनके प्रवचनों में शब्दों का आडम्बर अथवा कला की छटा नहीं रहती। वे जो बोलते हैं, वह न केवल सरल-सुबोध होता है, अपितु उसमें विचारों की स्पष्टता भी रहती है। जटिल-से-जटिल बात को वे बहुत ही सीधे-सादे शब्दों में कह देते है। कभी-कभी वे अपनी बात को समझाने के लिए कथा-कहानियों का आश्रय लेते हैं। वे कहानियाँ वास्तव में बड़ी रोचक एवं शिक्षाप्रद होती हैं।

आचार्यश्री प्राय: कविताएं भी लिखते रहते हैं। जब उन कविताओं का सामूहिक रूप में सस्वर पाठ होता है तो बड़ा ही मनोहारी वायुमण्डल उत्पन्न हो जाता है।

लेकिन वे प्रवचन करते हों अथवा गद्य-पद्य लिखते हों, उनके सामने मानव की मूर्ति सदा विद्यमान रहती है और मानवता के उत्कर्ष की उदात्त भावना उनके हृदय में हिलोरें लेती रहती है।

आचार्य विनोबा कहा करते हैं कि भूदान यज्ञ के सिलसिले में उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया है; लेकिन उन्हें एक भी दुर्जन व्यक्ति नहीं मिला। मानव के प्रति उनकी यह आस्था उनका बहुत बड़ा सम्बल है। यथार्थत: प्रत्येक व्यक्ति में सद् और असद् दोनों प्रकार की वृत्तियाँ रहती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सद्वृत्तियाँ सदा जागृत रहें और असद् वृत्तियों को मनुष्य पर हावी होने का अवसर न मिले।

आचार्यश्री तुलसी भी इसी विश्वास को लेकर चल रहे हैं। वे लोगों को अपने अन्दर आत्म-विश्वास पैदा करने की प्रेरणा देते हैं और कहते हैं कि इस दुनिया में कोई भी बुरा नहीं है। अच्छा काम करने की क्षमता हर किसी में विद्यमान है।

आचार्यश्री के सामने वास्तव में बड़ा ऊँचा ध्येय है, पर मानना होगा कि कुछ मर्यादाएं उनके कार्य की उपयोगिता को सीमित करती हैं। वे एक सम्प्रदाय विशेष के हैं; अत: अन्य सम्प्रदायों को अवसर है कि वे मानें कि वे उनके उतने निकट नहीं हैं। फिर वे आचार्य के पद पर बैठे हैं, जो सामान्य जनों के बराबर नहीं, बल्कि ऊँचाई पर है। इसके अतिरिक्त उनके सम्प्रदाय की परम्पराएं भी हैं। यद्यपि उनके विकासशील व्यक्तित्व ने बहुत-सी अनुपयोगी परम्पराओं को छोड़ देने

का साहस दिखाया है। तथापि आज भी अनेक ऐसी चीजें हैं जो उन पर बन्धन लाती हैं।

सहिष्णुता का आदर्श

जो हो, इन कठिनाइयों के होते हुए भी उनकी जीवन-यात्रा बराबर अपने चरम लक्ष्य की सिद्धि की ओर ही रही है। उनमें सबसे बड़ा गुण यह है कि वे बहुत ही सहिष्णु हैं। जिस तरह वे अपनी बात बड़ी शान्ति से कहते हैं, उसी तरह वे दूसरे की बात भी उतनी ही शान्ति से सुनते हैं। अपने से मतभेद रखने वाले अथवा विरोधी व्यक्ति से भी बात करने में वे कभी उद्विग्न नहीं होते। मैंने स्वयं कई बार उनके सम्प्रदाय की कुछ प्रवृत्तियों की, जिनमें उनका अपना भी बड़ा हाथ रहता है, उनके सामने आलोचना की है; लेकिन उन्होंने हमेशा बड़ी आत्मीयता से समझाने की कोशिश की है। एक प्रसंग यहाँ मुझे याद आता है कि एक जैन विद्वान् उनके बहुत ही आलोचक थे। हम लोग बम्बई में मिले। संयोग से आचार्यश्री भी उन दिनों वहीं थे। मैंने उन सज्जन से कहा कि आपको जो शंकाएं हैं और जिन बातों से आपका मतभेद है, उनकी चर्चा आप स्वयं आचार्यश्री से क्यों न कर लें? वे तैयार हो गये। हम लोग गये काफी देर तक बातचीत होती रही। लौटते में उन सज्जन ने मुझसे कहा—"यशपालजी, तुलसी महाराज की एक बात की मुझ पर बड़ी अच्छी छाप पड़ी है।" मैंने पूछा—"किस बात की?" बोले, "देखिये, मैं बराबर अपने मतभेद की बात उनसे कहता रहा, लेकिन उनके चहरे पर शिकन तक नहीं आई। एक शब्द भी उन्होंने जोर से नहीं कहा। दूसरे के विरोध को इतनी सहनशीलता से सुनना और सहना आसान बात नहीं है।"

अपने इस गुण के कारण आचार्यश्री ने बहुत से ऐसे व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है, जो उनके सम्प्रदाय के नहीं हैं।

अपनी पहली भेंट से लेकर अब तक के अपने संसर्ग का स्मरण करता हूँ तो बहुत से चित्र आँखों के सामने घूम जाते हैं। उनसे अनेक बार लम्बी चर्चाएं हुई हैं, उनके प्रवचन सुने हैं, लेकिन उनका वास्तविक रूप तब दिखाई देता है, जब वे दूसरों के दुःख की बात सुनते हैं। उनका संवेदनशील हृदय तब मानों स्वयं व्यथित हो उठता है और यह उनके चेहरे पर उभरते भावों से स्पष्ट देखा जा सकता है।

पिछली बार जब वे कलकत्ता गये थे तो वहाँ के कतिपय लोगों ने उनके तथा उनके साधु-साध्वी वर्ग के विरुद्ध एक प्रचार का भयानक तूफान खड़ा किया था। उन्हीं दिनों जब मैं कलकता गया और मैंने विरोध की बात सुनी तो आचार्यश्री से मिला। उनसे चर्चा की। आचार्यश्री ने बड़े विह्वल होकर कहा—"हम साधु लोग बराबर इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि हमारे कारण किसी को कोई असुविधा न हो।...स्थान पर हमारी साध्वियाँ ठहरी थी। लोगों ने हम से आकर कहा कि उनके कारण उन्हे थोड़ी कठिनाई होती है। हम ने तत्काल साध्वियों को वहाँ से हटाकर दूसरी जगह भेज दिया। यदि हमें यह मालूम हो जाये कि हमारे कारण यहाँ के लोगों को परेशानी या असुविधा होती है तो हम इस नगर को छोड़ कर चले जायेंगे।"

आचार्यश्री ने जो कहा, वह उनके अन्तर से उठकर आया था।

भारत-भूमि सदा से आध्यात्मिक भूमि रही है और भारतीय संस्कृति की गूंज किसी जमाने में सारे संसार में सुनाई देती थी। आचार्यश्री की आँखों के सामने अपनी संस्कृति तथा सभ्यता के चरम शिखर पर खड़े भारत का चित्र रहता है। अपने देश से, उसकी भूमि से और उस भूमि पर बसने वाले जन से, उन्हें बड़ी आशा है और तभी गहरे विश्वास के साथ कहा करते हैं—"वह दिन आने वाला है, जब कि पशु बल से उकताई दुनिया भारतीय जीवन से अहिंसा और शान्ति की भीख माँगेगी।"

आचार्यश्री शत जीवी हों और उनके हाथों मानवता की अधिकाधिक सेवा होती रहे, ऐसी हमारी कामना है।

—※—

महामानव तुलसी

प्रो० मूलचन्द सेठिया, एम० ए०
बिरला आर्ट्स कालेज, पिलानी

आचार्यश्री तुलसी का नाम भारत में नैतिक पुनरुत्थान के आन्दोलन का एक प्रतीक बन गया है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन अन्धकार में दीप-शिखा की तरह सबका ध्यान आकृष्ट कर रहा है। एक मुग्ध विस्मय के साथ युग देख रहा है कि एक सम्प्रदाय के आचार्य में इतनी व्यापक संवेदनशीलता, दूरदर्शिता और अपने सम्प्रदाय की परिधि से ऊपर उठ कर जन-जीवन की नैतिक-समस्याओं से उलझने और उन्हें सुलझाने की प्रवृत्ति कैसे उत्पन्न हुई? आचार्यश्री तुलसी को निकट से देखने वाले यह जानते हैं कि इसका रहस्य उनकी महामानवता में छिपा है। मानवीय संवेदना से प्रेरित होकर ही उन्होंने अनैतिकता के विरुद्ध अणुव्रत-आन्दोलन आरम्भ किया। आज के युग में, जब कि प्रत्येक वर्ग एक-दूसरे को भ्रष्टाचार के लिए उत्तरदायी सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है और स्वयं अपने को निर्दोष घोषित करता है, आचार्यश्री तुलसी अपने निर्लेप व्यक्तित्व के कारण ही यह अनुभव कर सके कि भ्रष्टाचार एक वर्ग-विशेष की समस्या न होकर निखिल मानव-समाज की समस्या है। जितनी व्यापक समस्या हो, उसका समाधान भी उतना ही मूलग्राही होना चाहिए। आचार्यश्री तुलसी ने इस मानवीय समस्या का मानवीय समाधान ही प्रस्तुत किया है। उनका सन्देश है कि जन-जीवन के व्यापक क्षेत्र में, जो व्यक्ति जहां पर खड़ा है, वह अपने बिन्दु के केन्द्र से वृत्त बनाते हुए समाज के अधिकाधिक भाग को परिशुद्ध करने का प्रयत्न करे। यही कारण है कि जब अन्यान्य विचारक विवाद और वितर्क के द्वारा प्याज के छिलके उतारते ही रह गये, आचार्यश्री तुलसी अपनी दृढ़ निष्ठा और अपार मानवीय संवेदना के सम्बल को लेकर भ्रष्टाचार की समस्या के व्यावहारिक समाधान में संलग्न हो गये।

पवित्रता का वृत्त

यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि किसी भी समस्या को उसके व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही समझा और सुलझाया जा सकता है; परन्तु जब तक सामाजिक वातावरण में परिवर्तन नहीं हो, तब तक हाथ-पर-हाथ धर कर बैठे रहना भी तो एक प्रकार की पराजित मनोवृत्ति का परिचायक है। जो समाज-तंत्र की भाषा में सोचते हैं, वे बड़े-बड़े आंकड़ों के माया-जाल में उलझे हुए निकट भविष्य में ही किसी चमत्कार के घटित होने की आशा में निश्चेष्ट बैठे रहते हैं, परन्तु जो मानव को व्यक्ति-रूप में जानते हैं और नित्यप्रति सैकड़ों व्यक्तियों के सजीव सम्पर्क में आते हैं, उनके लिए कार्य-क्षेत्र सदैव खुला रहता है। आचार्यश्री तुलसी के लिए व्यक्ति समाज की एक इकाई नहीं; प्रत्युत समाज ही व्यक्तियों की समष्टि है। वे समाज से होकर व्यक्ति के पास नहीं पहुँचते, वरन् व्यक्ति से होकर समाज के निकट पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। समाज तो एक कल्पना है, जिसकी सत्यता व्यक्तियों की समष्टि पर निर्भर है, परन्तु व्यक्ति अपने-आप में ही सत्य है, हालांकि उसकी सार्थकता समाज की मुखापेक्षिणी होती है। आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन इसी व्यक्ति को लेकर चलता है, समाज तो उसका दूरगामी लक्ष्य है। वे व्यक्ति को सुधार कर समाज के सुधार को चरम परिणति के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं; समाज के सुधार की अनिवार्य परिणति व्यक्ति का सुधार नहीं मानते। इसलिए उनका प्रयत्न अपने प्रारम्भिक रूप में कुछ स्वल्प-सा, नगण्य-सा प्रतीत हो सकता है; परन्तु उसमें महान् सम्भावनाएं छिपी

हुई हैं। कुछ निष्ठावान् व्यक्ति समाज में एक ऐसा पवित्रता का वृत्त तो बना ही सकते हैं, जो उत्तरोत्तर विस्तृत होते हुए कभी सम्पूर्ण समाज को अपने घेरे के अन्दर ले सकता है। खेद है कि अणुव्रत-आन्दोलन की इस महती सम्भावना की ओर विचारकों का ध्यान बहुत कम आकृष्ट हुआ है।

मित्र, दार्शनिक और मार्ग-दर्शक

दस-बारह वर्षों के सीमित काल में आचार्यश्री तुलसी ने अपने अणुव्रत-आन्दोलन को एक नैतिक शक्ति का रूप प्रदान कर दिया है। इस आन्दोलन का मूलाधार कोई राजनैतिक या आर्थिक संगठन नहीं, बल्कि आचार्यश्री तुलसी का महान् मानवीय व्यक्तित्व ही है। एक सम्प्रदाय के मान्य आचार्य होते हुए भी आचार्यप्रवर ने अपने व्यक्तित्व को साम्प्रदायिक से अधिक मानवीय ही बनाये रखा है। आचार्यप्रवर अणुव्रतियों के लिए केवल संघ-प्रमुख ही नहीं, उनके मित्र, दार्शनिक और मार्ग-दर्शक (Friend, Philosopher and Guide) भी हैं। वे अपने जीवन की कठिनाइयों, उलझनों और सुख-दुःख की सैकड़ों बातें आचार्यश्री तुलसी के सम्मुख रखते हैं और उनको अपने संघ-प्रमुख द्वारा जो समाधान प्राप्त होता है, वह उनकी सामयिक समस्याओं को सुलझाने के साथ ही उन्हें वह नैतिक बल भी प्रदान करता है जो अन्ततः आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करता है। आचार्यश्री तुलसी की दृष्टि में हल है हलकापन जीवन का। आचार्यप्रवर मनुष्य के जीवन को भौतिकता के भार से हलका देखना चाहते हैं, उसके मन को राग-विराग के भार से हलका देखना चाहते हैं और अन्ततः उसकी आत्मा को कर्मों के भार से हलका देखना चाहते हैं। उनकी दृष्टि ध्रुवतारे की तरह इसी जीव-मुक्ति की ओर लगी हुई है; परन्तु वे लघु मानव को अँगुली पकड़ कर धीरे-धीरे उस लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाना चाहते हैं। मेरी दृष्टि में आचार्यश्री तुलसी आज भी समाज-सुधारक नहीं, एक आत्म-साधक ही हैं और उनका समाज-सुधार का लक्ष्य आत्म-साधना के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण करना ही है।

आज के युग में जबकि प्रत्येक व्यक्ति पर कोई-न-कोई 'लेबल' लगा हुआ है और दलों के दलदल में धँसे हुए मानवता के पैर मुक्त होने के लिए छटपटा रहे है, किसी व्यक्ति में मानव का हृदय और मानवता का प्रकाश देखकर चित्त में आह्लाद का अनुभव होता है। हमारा यह आह्लाद आश्चर्य में बदल जाता है, जब कि हम यह अनुभव करते हैं कि एक बृहत् एवं गौरवशाली सम्प्रदाय के आचार्य होने पर भी उनकी निर्विशेष मानवता आज भी अक्षुण्ण है। निस्सन्देह आचार्यश्री तुलसी एक महान् साधक हैं, सहस्रों साधकों के एकमात्र मार्ग-निर्देशक है। एक धर्म-संघ के व्यवस्थापक हैं और एक नैतिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं; परन्तु और कुछ भी होने के पूर्व वे एक महामानव हैं। वे एक महान् संत और महान् आचार्य भी इसी लिए बन सके हैं कि उनमें मानवता का जो मूल द्रव्य है, वह कसौटी पर कसे हुए सोने के समान शुद्ध हैं।

आचार्यश्री तुलसी ने अपने आचार्यत्व के पच्चीस वर्ष पूरे किये हैं और इसी उपलक्ष में धवल-समारोह मनाया जा रहा है। सम्भवतः रजत-समारोह इसलिए नहीं मनाया जा रहा है कि वह तो उनके लिए मिट्टी है। हाँ, श्वेताम्बर-परम्परा के आचार्य होने के नाते धवल का, उनके लिए कुछ आकर्षण हो सकता है। उनकी सम्पूर्ण साधना धवलता की ही तो साधना है—वस्त्र की धवलता, चित्त की धवलता, वृत्तियों की धवलता और अन्ततः आत्मा की अमल धवलता। आचार्यश्री तुलसी अपने को धवल बना कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए, वे युग की कालिमा को भी धो-पोंछकर धवल बना देने पर तुले हुए हैं। इसीलिए तो आज उनके धवल-समारोह में एक विचार और एक लक्ष्य में विश्वास रखने वाले सभी सम्प्रदायों और दलों के व्यक्ति सम्मिलित हो रहे हैं। इस धवल-समारोह के उज्ज्वल क्षणों में उन अमल-धवल चरणों में मेरा भी प्रणत प्रणाम ! क्या मेरा यह प्रणाम भी उस महामानव के चरणों में जाकर धवल बन सकेगा ?

हे गौरव-गिरि उत्तुंग काय !
पद-पूजन का भी क्या उपाय ?

भारतीय संत-परम्परा के एक संत

डा० युद्धवीर सिंह
अध्यक्ष, औद्योगिक सलाहकार परिषद्, दिल्ली प्रशासन

आचार्य प्रवर श्री तुलसी से मेरा सम्पर्क आज से लगभग कोई आठ-दश वर्ष पूर्व स्थापित हुआ। उसके बाद उनके दर्शन और उनके भाषण सुनने का लगातार अवसर मिलता रहा। उनकी कृपा से मैंने तेरापंथ, जिसके वे आचार्य हैं, उसका कुछ साहित्य आदि और आचार्यश्री भिक्षु का जीवन-चरित्र भी पढ़ा।

आचार्यश्री तुलसी भारत के सन्तों की परम्परा में एक सन्त तुल्य हैं। आपकी वाणी में रस है, आपके सम्पर्क में मनुष्य अपनी आत्मा का उत्थान होते हुए अनुभव करता है। आपका जीवन तपस्वी जीवन है और आपका व्यक्तित्व आकर्षक है। एक छोटी-सी सम्प्रदाय के नेता होते हुए भी आपने हर मजहब और हर प्रान्त के अच्छे-अच्छे लोगों को आकर्षित किया है। आपके आचार्य-काल के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के इस शुभ अवसर पर मैं आपके चरणों में अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

आपने नैतिकता की ओर विशेष ध्यान दिया और उसी के लिए अणुव्रत-आन्दोलन चलाया। आन्दोलन में बहुत से लोग सम्मिलित हुए और निःसन्देह उसका असर भी लोगों पर पड़ा है। मेरी कुछ ऐसी धारणा है कि यदि आचार्य-प्रवर एक साम्प्रदायिक आचार्य न होकर मुक्त होते हुए ऐसा आन्दोलन चलाते तो उसका व्यापक असर होता। आपके एक सम्प्रदाय के आचार्य होने के कारण जनता का ध्यान सम्भवतः इतना उस ओर आकर्षित न हुआ हो, जितना होना चाहिए था। फिर भी आपके त्याग, तपस्या और व्यक्तिगत प्रभाव से प्रभावित होकर बहुत से लोगों का नैतिक उत्थान हुआ है और होगा।

मेरी ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना है कि आचार्य प्रवर दीर्घायु हों और उनको जो शिष्य मिलें, वे उनके कार्य को आगे बढ़ाएं और वे शिष्य न केवल उनके पंथ में बल्कि उसके बाहर भी मिलें, जिससे उनका अत्युपयोगी और अत्यावश्यक अणुव्रत-आन्दोलन देश में व्यापक रूप धारण करके देश की आचार-हीनता और गिरती हुई नैतिकता को रोकने में समर्थ हो; क्योंकि स्वतन्त्र भारत सर्वथा उन्नत तभी होगा, जब त्याग और तपस्या एवं सत्य और अहिंसा के मूल सिद्धान्तों को धारण करके उसका आचार ऊँचा होगा। आचार्यजी को मैं एक बार फिर नमस्कार करता हूँ और उनके प्रयत्नों की सफलता के लिए प्रार्थना करता हूँ।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व : एक अध्ययन

मुनिश्री रूपचन्दजी

जीवन अनन्त गुणात्मक है। उसका विकास ही व्यक्तित्व की महत्ता का आधार बनता है। महान् और साधारण; ये दोनों शब्द गुणात्मक तारतम्य ही लिये हुए हैं, जो कि व्यक्ति-व्यक्ति के व्यक्तित्व का विभाजन करते हैं। अन्यथा हम एक व्यक्ति के लिए महान् और दूसरे व्यक्ति के लिए साधारण शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते। आचार्यश्री महान् हैं; क्योंकि उनका व्यक्तित्व महान् है। उनका व्यक्तित्व महान् इसलिए है कि वे साधारण की भूमिका को विशिष्ट बनाते हुए चलते हैं। कोई भी व्यक्ति साधारण से अस्पृष्ट रह कर महान् नहीं बनता है। किन्तु वह साधारण को विशिष्ट बनने का विवेक देता है, इसलिए महान् बनता है। मेरा विवेक सब पर छा जाये, यह चेतना का अहं है। महत्ता उससे अतीत है। वह प्रत्येक सुषुप्त विवेक को जगाने के लिए पथ-निर्देशन भी करती है और उसके समुचित विकास के लिए पर्याप्त अवकाश भी देती है। जहाँ इसका अभाव होता है, वहाँ व्यक्ति अनुशास्ता बन सकता है, महान् नहीं। सीधे शब्दों में कहें तो उसका अधिकार केवल कलेवर तक पहुँच सकता है, प्राण उसके लिए सदैव ही अगम्य रहते हैं। आचार्यश्री का व्यक्तित्व महान् इसलिए है कि प्राण उनके लिए गम्य ही नहीं बने, किन्तु प्राणों ने उनका अनुगमन कर उनका लक्ष्य भी पाया।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व बहुमुखी है। वे एक ओर जहाँ अध्यात्म-साधना में तल्लीन हैं, वहाँ दूसरी ओर एक बृहत् संघ के अनुशास्ता भी। तीसरी ओर वे व्यक्ति-व्यक्ति की समस्याओं को समाहित करने में तत्पर हैं तो चौथी ओर अध्ययन, स्वाध्याय और शिक्षा-प्रसार के लिए अथक प्रयास करते दिखाई देते हैं। प्राचीन आगमिक साहित्य की शोध के लिए जहाँ वे अहर्निश जुटे हुए है तो इसके साथ ही जीवन की प्राचीन रूढ़ता के उन्मूलन में भी वे बद्ध परिकर हैं। इस प्रकार उनके जीवन का प्रत्येक क्षण अदम्य उत्साह और सतत गतिशीलता से ओत-प्रोत है। जीवन की डोर को हाथ में थामें जो उसको जितना अधिक विस्तार दे सकता है, वही व्यक्तित्व-विकास की समग्रता पा सकता है। व्यक्ति-व्यक्ति में अपनत्व की पुट बिखेर देना व्यक्तित्व की सबसे बड़ी सफलता है। यह तभी सम्भव है, जबकि व्यक्ति अपने 'व्यक्ति' से ऊपर उठ कर अपना सब कुछ उत्सर्ग कर दे। जीवन अनन्त तृष्णाओं का संगम-स्थल है। यह प्रत्येक जीवधारी की सामान्य अवस्थिति थी। किन्तु चिन्तन की उदात्तता यहीं विश्राम लेना नहीं चाहती। वह और आगे बढ़ती है और वहाँ तक बढ़ती है, जहाँ कि तृष्णाएं छिछली बनती हुई तृप्ति का भी पार पाने का यत्न करती है। तृष्णा और तृप्ति हमारी मानसिक कल्पनाओं की ही तो कलनाएं हैं। वे कलनाएं जब उनका पार पा लें, तब व्यक्ति देहातीत बन जाता है। वैसी स्थिति में उसके लिए आगत और अनागत, दृश्य और अदृश्य की सभी सीमाएं होने पर उनसे वह बाधित नहीं हो सकता। क्योंकि उन्हें वह उत्साहपूर्वक आत्म-सात् करने का प्रण लिये चलता है; उत्सुकता और उद्विग्नता जैसा कोई भी तत्त्व उसके लिए अवशेष नहीं रह जाता।

जीवन की दो अवस्थाएं

व्यक्ति और देवत्व जीवन की ये दो अवस्थाएं हैं। व्यक्तित्व वह है जो कि व्यक्ति का स्व होता है और देवत्व वह है जो कि व्यक्तित्व को कुछ विशिष्ट ऐश्वर्य में समारोपित करता है। व्यक्तित्व लौकिक होता है और देवत्व अलौकिक। अलौकिक हमारे व्यवहार को नहीं साध सकता। वह व्यवहार के लिए सदा आदर्श और अगम्य ही बना रहता है,

इसलिए उसकी दृष्टि में उस (देवत्व) का कोई मूल्य भी नहीं। आचार्यश्री एक मानव हैं। इसलिए उनका अंकन भी उनके अपने व्यक्तित्व से करना अधिक समुचित होगा। वे मानव हैं, इसलिए सभी मानव विवशताएं भी उनमें उसी रूप में विद्यमान हैं, जिस रूप में प्रत्येक सामान्य जीवन के समक्ष आती रहती है। फिर भी उनका व्यक्तित्व अन्य से विशिष्ट इसलिए है कि उन्होंने सामान्य की भूमिका पार कर विवशताओं को परास्त ही नहीं किया, किन्तु उसे सहयोगी गुणों के रूप में परिवर्तित भी कर दिया। तिमिर को मिटाना उनके जीवन का लक्ष्य नहीं, किन्तु उसको आलोक में परिवर्तित कर देना, यही उनका आत्म-घोष रहा है। विरोधी के साथ भी मित्रता का व्यवहार करना अहिंसा का विकास है। किन्तु अहिंसा की पराकाष्टा वह है, जहाँ शत्रु नाम की कोई चीज रह ही न जाये, सब कुछ मित्र में परिणत हो जाये।

व्यक्ति की प्रत्येक प्रवृत्ति अपने आस-पास के वातावरण की अनुकूलता पाकर फले-फूले यह स्वयं एक निष्क्रियता है। सक्रियता वह है, जहाँ व्यक्ति जीवन भर स्थूल दृष्टि से निष्क्रिय रह कर भी गतिशीलता के लिए जूझता रहे। गतिशीलता कभी भी वातावरण की अनुकूलता सहन नहीं कर सकती। प्रतिकूल परिस्थिति में भी अपना धैर्य न खोये यह व्यक्ति की महत्ता का परिचायक है, किन्तु व्यक्ति की महत्ता वहाँ दुगुनी हो जाती है, जब कि वह पथ में आने वाले प्रत्येक रोड़ों को भी लक्ष्य का महत्त्व समझा कर उसमें गति-प्रेरकता भर दे। इसमें आचार्यश्री सिद्धहस्त हैं। वे चलते हैं, प्रतिकूल परिस्थिति में भी चलते रहे है, किन्तु अकेले ही नहीं, समूह को साथ लेकर चलते है। वे प्रत्येक व्यक्ति को महत्त्व देते हैं और उसकी योग्यता का अंकन भी करते हैं। उनकी गति का क्रम भी यही है कि जो गति से अनजान हैं, उन्हें गति का भान कराना; जो जानते हैं, किन्तु फिर भी प्रमादवश रुद्ध हैं, उन्हें प्रेरणा देना और गति करने वालों को निरन्तर आगे बढ़ते रहने के लिए समुचित अवकाश देना। योग्यता का मूल्यांकन जहाँ नहीं होता, वहाँ नई प्रतिभाएं तो विकसित हो ही नहीं सकती। किन्तु विकसित प्रतिभाएं भी मुरझा जाती है; अतः उसका समुचित रूप से नियोजन करना गतिमत्ता के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

कुशल अनुशासक

आचार्यश्री एक कुशल अनुशासक हैं। अनुशास्ता बनना सहज है, किन्तु उसमें कुशलता निखर आये, यह अनुशासन की सफलता है। शासक शासितों के साथ घुल-मिल जाये, यह कुशलता की कसौटी है। उस पर खरा उतरने वाला ही संघ को विकास व विस्तार दे सकता है; क्योंकि वहाँ अनुशासकत्व भी त्याग और बलिदान की परिधि में रह कर अपना कार्य साधता है। आज जहाँ अनुशासन करने की व्यक्ति-व्यक्ति में भूख लगी है, वहाँ उसके दायित्व को समझने का प्रयास कहाँ है? आचार्यश्री ने एक बार अपने प्रवचन में कहा—'अनुशासक बनने की अपेक्षा अनुशासन का पालन करना अधिक सहज होता है। अनुशासन-पालन में व्यक्ति को केवल अपनी ही चिन्ता होती है, किन्तु अनुशासकत्व में न जाने कितने अनजानों की भी चिन्ता रखनी पड़ती है। अनुशासकत्व का दायित्व क्या लेना है, मानो कांटों का ताज धारण करना है।' किन्तु इस गुरुतर भार का महत्त्व तभी है, जब अनुशासक उसके दायित्व को समझे। वस्तु सत्य हमें बताता है कि अनुशासन करना एक पृथक् कर्म है और उसके दायित्व को समझना एक पृथक् कर्म। दायित्व के अभाव में ही अनुशासन लड़खड़ाता है, अन्यथा अनुशासन में उच्छृंखलता पनप ही नहीं सकती। वर्तमान राज्यतंत्र विकास नहीं पा रहा है, समाज-व्यवस्था भी अस्त-व्यस्त है और कह देना चाहिए कि बीते हुए 'कल' के माप-दण्ड 'आज' के समक्ष लड़खड़ा रहे हैं और आने वाले 'कल' के समक्ष 'आज'। ऐसा क्यों है? इसलिए कि दायित्व का अंकन नहीं हो रहा है। अनुशासकत्व अनुशासन को विवेक देता है कि वह अपना कर्तव्य समझे। किन्तु उसके साथ ही यह प्रश्न भी उभरता है कि उसका अपना भी कोई दायित्व होता होगा? जहाँ यह चिन्तन नहीं होता, वहीं शासन क्रान्ति का रूप लेता है।

तेरापंथ शासन एकतंत्रीय परम्परा पर आधारित है, इसलिए यह अधिक अपेक्षित होता है कि उसका शास्ता योग्यता सम्पन्न हो। संघ के प्रत्येक व्यक्ति को नियन्ता के रूप में वह तभी स्वीकार्य हो सकता है जबकि शास्ता के प्रति प्रत्येक हृदय समान रूप से श्रद्धा और समर्पण से अन्वित हो और श्रद्धा व समर्पण को शास्ता तभी प्राप्त कर सकता है जब कि उसके समस्त व्यवहार एक इस प्रकार की कसौटी पर कसे हों, जो सर्वमान्य हैं। प्रजातंत्र में इसके लिए सम्भवतः

इतना महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं। किन्तु एकतंत्र में इसका सर्वोपरि स्थान है। एकतंत्र का प्रयोग वहीं असफल रहा है, जहाँ कि शास्ता के व्यवहारों पर अहंता ने अपना स्थान जमा लिया। एकतंत्र की यही सबसे बड़ी दुर्बलता है और यदि वह कुशल अनुशास्ता द्वारा पाट दी जाती है तो वह समाज सम्भवतः अन्य किसी समाज से उन्नति और विकास की घुड़दौड़ में पिछड़ नहीं सकता। मुझे एक घटना याद आ रही है। एक बार की बात है कि आचार्यश्री के समक्ष एक विवादास्पद प्रसंग उपस्थित हुआ। दोनों पक्षों ने अपने-अपने पक्ष सबलता पूर्वक रखे। आचार्यश्री सुनते रहे और सुनते रहे किन्तु एक शब्द भी उत्तर में नहीं कहा। बात की समाप्ति पर दोनों ही पक्ष निर्णय सुनने को आतुर थे। पर आचार्यश्री ने निर्णय की अपेक्षा उसी दिन से एकासन (एक समय भोजन) करना आरम्भ कर दिया। एकासन का पहला दिन बीता, दूसरा दिन बीता और तीसरा दिन भी बीत गया। दोनों पक्षों के आग्रह पर यह निर्मम प्रहार था जो उसे सहन नहीं कर सका। उसके बन्धन ढीले पड़े और विवाद स्वयं समाहित हो गया। तब सभी ने माना कि विवाद के अन्त के लिए यह निर्णय उस निर्णय की अपेक्षा कहीं अधिक अमोघ व सहज था। ऐसे एक नहीं, अनेकों अवसर शास्ता के समक्ष आते हैं जबकि अनुशासन स्वयं अनुशासक का परीक्षण करना चाहता है। परीक्षण ही नहीं, कभी-कभी उसे अनुशासित भी करता है ताकि संघ की सुचारुता बनी रहे। आचार्यश्री इसमें कितने कुशल और कहाँ तक सफल रहे हैं, इसके लिए तेरापंथ संगठन का सर्वांगीण विकास एक ज्वलन्त प्रमाण लिये हमारे सामने है।

प्रत्येक चेतना का यह स्वभाव होता है कि वह अपने से भिन्न चेतना में कुछ वैशिष्ट्य खोजना चाहती है। जहाँ से वह मिल जाता है, उसे वह सहर्षतया अपना समर्पण भी कर देती है, किन्तु समर्पण भी अपना स्थायित्व वहीं गाड़ता है, जहाँ उसे नित नई स्फुरणाएं और उसे सँवारने वाली साज-सज्जा मिलती रहे। अन्यथा वह अस्थायी नही बन सकता। वैशिष्ट्य भी जब दूसरी चेतना को देने का उपक्रम करने लगता है तब कृत्रिमता पनपने लगती है और वह उस दुर्बलता को अवसर पाकर प्रकट कर ही देती है। सच तो यह है कि वैशिष्ट्य से चेतना का समर्पण जब तक स्वयं कुछ न कुछ ग्रहण करता रहेगा, तब तक ही वह निभ सकेगा। कृत्रिमता भले ही कुछ समय के लिए उसे भुलावे में रख सकती है, किन्तु समर्पण उससे प्रेरणा नही पा सकता। इस दृष्टि से भी श्रद्धेय का व्यक्तित्व उस रूप में निखर यह अपेक्षित होता है, जिसमें कि वह सबकी श्रद्धा समान रूप से पचा सके। क्षण-स्थायी आस्था को प्रतिपल भटकने का भय बना रहता है तो उसे अन्त तक निभाने में श्रद्धेय भी सफल नहीं हो सकता। यह एक ऐसा सम्बन्ध है जिसमें कि मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय का प्राधान्य होता है। यही कारण है कि तर्क उसे सिद्ध करने में सदा ही असफल रहा है। वस्तुवृत्या तेरापथ संगठन में शासक-शासित की भावना के प्राधान्य की अपेक्षा उसमें गुरु-शिष्य भाव रहे, इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है। नेतृत्व-पालन करने वालों में नेता की अनिवार्यता का भान हो, तभी शिष्यत्व का भाव उभरता है। वहाँ हृदय का प्राधान्य रहता है, मस्तिष्क का नहीं। यही कारण है कि एक अकिंचन संगठन जिसके संचालन में अर्थ का कोई प्रश्न ही नहीं, आज दो सौ वर्षों से भी अक्षुण्ण और गतिशीलता लिये अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहा है। मैं नहीं समझता कि विश्व के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण मिलता हो जिसमें कि बिना किसी प्रकार के भौतिक मूल्यों के आधारित कोई भी संगठन का स्थायित्व इतने लम्बे समय तक और वह भी अपनी उत्तरोत्तर उज्ज्वलता और विकास को अपने में समेटे चला हो। प्रसिद्ध विचारक जैनेन्द्रजी से एक बार तेरापंथ के बारे में उनके विचार पूछे गये तो उन्होने बताया कि "जो कुछ मैं जानता हूँ, उससे इस संगठन के प्रति मुझमें विस्मय का भाव होता है। कारण कि उसके केन्द्र में सत्ता नहीं है। सत्ता को अधिकार, हथियार और सम्पत्ति से सुरक्षित और समर्थ बनाया जाता है।" तो क्या तेरापंथ को एक ऐसे रूप में स्वीकार किया जा सकता है जो कि सत्ता और सम्पत्ति से दूर कुछ परम तत्त्वों से ही अपनी मौलिकता संचित करता हो। यह पूछने पर उन्होंने बताया कि मैं इससे सहमत हूँ। कारण कि मैं आस्तिक हूँ। आस्तिक का मतलब मैं समष्टि को चित्-केन्द्रित और चित्-संचालित मानता हूँ। यह चित्-अस्तित्व का संसार है।...मेरी श्रद्धा है कि जहाँ संगठन के केन्द्र में यह चित् तत्त्व है, वही संगठन का जीवन है और शुभ है। अन्यथा संगठन में संदिग्ध का मेल होता है और उसमे फिर जीवन का अहित होने लगता है। मानव संगठन के सम्बन्ध में यह श्रद्धा आज खत्म हुई-सी जा रही है कि बिना सत्ता और सम्पदा के वह उदय में आ सकता या कायम रह सकता है।...इस अनास्था को टूटना चाहिए और मालूम होना चाहिए कि कुछ और

भी तत्त्व है—चिन्मय तत्त्व, आध्यात्मिक तत्त्व, नैतिक तत्त्व आदि; जिस के चारों ओर मानव-संघटना हो सकती है और होनी चाहिए। यदि ऐसा हो तो मेरा विश्वास है, हम देख पायेंगे कि यह संघटना काल को भेदती हुई स्थायी बनती है, उसमें उगने और बढ़ने के बीज रहते हैं।

सप्राण नेतृत्व

व्यक्ति और संगठन इतने संश्लिष्ट और एकात्मक होते हैं कि हम उनमें विभेद देख ही नहीं सकते। यह तभी सम्भव है, जब उसका नेता संघटनात्मक प्रवृत्तियों में अनुयायी वर्ग को एक-रस कर दे। एक-रसात्मकता व्यक्ति संठन के बीच में अभिन्नता ही स्थापित नहीं करती, किन्तु वह उसमे अपनी अनिवार्यता भी आरोपित कर देती है। वहाँ न व्यक्ति संघ के लिए भारभूत बनता है और न व्यक्ति के लिए संगठन ही स्वतंत्रता-अपहरण की स्थिति उपस्थित करता है। जैनेन्द्र जी के शब्दों में—"मैं स्वतंत्रता शब्द को बहुत ऊँचा नहीं मानता। मेरे निकट स्वतंत्रता की सार्थकता सर्वथा देने में हैं, लेने में तनिक भी नहीं, अर्थात् मुझे प्रेम प्रिय है। अपनी स्वतंत्रता उस नाते मुझे अप्रिय भी हो सकती है। आचार्य तो, मान लो, एक के बजाय अनेक भी हो सकते है। लेकिन क्या आदमी में अन्तःकरण और विवेक भी दो हो सकते हैं। क्या विवेक के आधिपत्य को स्वतंत्रता का घातक कहना होगा ? यदि आचार्य सत्ता भोगी नहीं है; उस समाज या संघ के अन्तःकरण का प्रतीक है तो उसमें मैं पूरा-पूरा औचित्य देखता हूँ।" किन्तु यह सब तभी सम्भव है जबकि आचार्य या संघ-संचालक उसमें सजीवता भर दे। मानव की प्रत्येक कृति अपने में एक अकल्पित सम्भार लिए हुए है। पर वह सम्भार तभी खलता है, जब वह प्राण-शून्य बन जाता है। प्रत्येक कला में अमरत्व वहीं निखरता है, जब वह सजीव और जीवन्त हो। निष्प्राण तो यह शरीर भी भारभूत बन जाता है। आचार्यश्री की यह सर्वाधिक विशेषता रही है कि उन्होंने अपने नेतृत्व को सप्राण बनाये रखा है। इसे नेता की ही सफलता मानना चाहिए। अनुपालक वर्ग तो उसे रूढ़ व निष्प्राण बनाने को प्रतिपल तत्पर दिखाई देता है। वह संघ की प्रत्येक पद्धति को शरीर से ही पकड़ने का प्रयत्न करता है। उसके साथ चेतना कहीं छूट न जाये, यह कार्य उसके नेता से ही सम्भव होता है। यही कारण है कि तेरापंथ अपनी उज्ज्वलतर धारा लिए अविरल गति से आगे बढ़ रहा है।

सफल कलाकार

उनके जीवन का कलात्मक पक्ष अधिक प्रभाव और प्रवाह पूर्ण रहा है। सत्यं, शिवं, सुन्दरं मनुष्य का स्वभाव है। वह उसे अपने जीवन में साकार देखना चाहता है। किन्तु वह तभी सम्भव है जबकि वह अपनी प्रत्येक कृति मे कलात्मकता भर दे। हम सत्यं, शिवं, सुन्दरं का रचनात्मक रूप कला को मान ले तो कोई असंगत नहीं होगा। इस प्रकार प्रवृत्ति की प्राणवत्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कला का रूप निखरे। प्रत्येक वस्तु मे जो सरसता और सौन्दर्य का दर्शन होता है, वह कला का ही परिणाम है। कलाकार उसमें जितनी अधिक कलात्मकता भर पाता है, उसमें सौन्दर्य उतना ही अधिक चमत्कार लिये अवतरित होता है। धरती का प्रत्येक अणु अपने में सौन्दर्य समेटे हुए है। परन्तु उसका प्रक्रियात्मक और प्रयोगात्मक रूप केवल कलाकार के हाथों से ही सम्भव होता है। उसकी कुशलता प्रत्येक नीरसता में सरसता उंडेल देती है। संस्कृत व्याकरण की दुरूहता से उसके छात्र अनभिज्ञ नहीं हैं। सम्भवतः व्याकरण की इस दुरूहता के कारण संस्कृत लोक-भाषा बनने में अभी तक सफल नहीं हो रही है। किन्तु यही विषय जब आचार्यश्री के द्वारा विद्यार्थीगण पढ़ते हैं तो सचमुच ही यह अनुभव होता है कि यह विषय अन्य विषयों से कम रसात्मक नहीं। पर यह अनुभूति व्याकरण की सुगमता सिद्ध नहीं कर सकती। यह तो अध्यापक की विलक्षणता है जो कि अपने अध्यापन में वह कलात्मकता भर देता है जिससे विद्यार्थी उसे काव्य की-सी सरसता प्राप्त कर सके। इसका यह परिणाम है कि वे व्याकरण, दर्शन, तर्क-शास्त्र और आगमिक ज्ञान जैसे दुर्गम विषयों को भी सफलतापूर्वक प्रसारित करते रहे हैं। उन्होंने संस्कृत का सांगोपांग अध्ययन स्वयं तो किया ही, किन्तु संघ के शिक्षा-पाठ्यक्रम में प्रमुख स्थान देकर मृत-भाषा कही जाने वाली संस्कृत-भाषा को जीवन्तता दी है। ठीक इसी प्रकार उन्होंने अपने प्रत्येक क्रिया-कलापों में कला की पुट का आरोपण किया

है या उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति में कला का स्फुरण सहज रूप से हुआ है; क्योंकि वे सफल कलाकार जो ठहरे।

अपनी आत्म-साधना

आचार्यश्री के व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष जिसे कि मैं मानता हूँ, उनकी अपनी आत्म-साधना है। प्रत्येक व्यक्तित्व अपनी दुर्बलताओं से अधिक मर्माहत होता है। यह आघात भी ऐसा होता है जिसका कि कोई उपचार नहीं। व्यक्तित्व की सबसे बड़ी असफलता वह होती है, जहाँ व्यक्ति स्वयं अपने से ही कतरा जाता है। इसका अभाव प्रत्येक क्रिया में कुण्ठा भरता है और अन्ततः असफलता और निराशा के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं आता।

सामान्यतया साधना और संसार दोनों के क्षेत्र सर्वथा पृथक्-पृथक् होते हैं। साधना के अभ्यास काल के लिए यह आवश्यक भी होता है। अन्यथा संसार की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों में वह कभी ही भटक जाये। किन्तु साधना की परिपक्वता में संसार उससे अस्पृष्ट नहीं रहता है। साधक के लिए समूचा ब्रह्माण्ड साधनामय हो जाता है। वह साधना के उत्कर्ष का फल है। उसके लिए यह आवश्यक होता है कि साधक अपने क्रिया-कलापों में साधना का समारोहण कर दे। वह अपनी प्रवृत्ति और साधना के बीच विलगना न पनपने दे। प्रायः साधक वहीं फिसलता है जबकि वह साधना और प्रवृत्ति के बीच सामंजस्य नहीं रख पाता। जो इस पर विजयी बना, वह अध्यात्म की भाषा में जीवन-मुक्त बना। आचार्यश्री अपनी वर्तमान अवस्था में साधना की कौन-सी भूमिका पार कर रहे हैं, यह प्रश्न सम्भवतः उनके लिए नहीं है, किन्तु हमारे लिये अवश्य है जो कि बुद्धि के कठघरे में बँधे हुए हैं। वे अपने में जो कुछ बनना चाहते हैं या जो कुछ हैं, वह उनके लिए कुछ भी विशेष नहीं। क्योंकि वे अपने में एक-रस हैं। एक-रसता में कुछ भी भिन्न नहीं रह जाता और उसी एक-रसता में वे साधना और संसार को घुला-मिला देखना चाहते हैं। व्यक्ति और साधनाके बीच में समय की रेखाएं खिंच जायें, यह उनको बिल्कुल मान्य नहीं। उनके अपने शब्दों में "विचार प्रवाहमान रहते हैं, तब तक उनमें स्वच्छता रहती है। उसका प्रवाह रुकता है, वे पंकिल बन जाते हैं। रूढ़ियां अनावश्यक नहीं होतीं। व्यक्ति या समाज को जीवित रखने के लिए देश-काल के अनुरूप रूढ़ि का आलम्बन लेना होता है। यहाँ पर रूढ़िवाद नहीं है। रूढ़िवाद वह है, जो देश-काल के बदले जाने पर भी देश-काल-जनित स्थिति को न बदलने का आग्रह करे।" इसी भावना को लक्षित करते हुए कहा गया :

इस काल पुरुष की रेखा में सिमटे जीवन को
उस असीम की ओर बढ़ाना चाहते हो,
व्यवहार जहाँ पर तरल रूप ले बह जाता
उस चरम सत्य को व्यक्त बनाना चाहते हो।

सच तो यह है कि आचार्यश्री जो कुछ है, हमारे समक्ष है और जो कुछ बनना चाहते है, वह भी दृष्टि से ओझल नहीं है। फिर हमारे अन्तर-चक्षु या चर्म-चक्षु उन्हें कहाँ तक परखते हैं, यह अपनी-अपनी योग्यताओं पर भी अवलम्बित है।

द्वितीय संत तुलसी

श्री रामसेवक श्रीवास्तव
सहसम्पादक—नवभारत टाइम्स, बम्बई

सन् १९५५ की बात है, जब अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी बम्बई में थे और कुछ दिनों के लिए वे मुलुण्ड (बम्बई का एक उपनगर) में किसी विशिष्ट समारोह के सिलसिले में पधारे हुए थे। वहीं पर एक प्रवचन का आयोजन भी हुआ था। सार्वजनिक स्थान पर सार्वजनिक प्रवचन होने के नाते मैं भी उसका लाभ उठाने के उद्देश्य से पहुँचा हुआ था।

प्रवचन में कुछ अनिच्छा से ही सुनने गया था, क्योंकि इससे पूर्व मेरी धारणा साधुओं तथा उपदेशकों के प्रति, विशेषतया धर्मोपदेशकों के प्रति कोई बहुत अच्छी न थी और ऐसे प्रसंगों में प्रायः महात्मा तुलसीदास की उस पंक्ति को दोहराने लगता था जिसमें उन्होंने **पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे** कहकर पाखंडी धर्मोपदेशकों की अच्छी खबर ली है। परन्तु आचार्यश्री तुलसी के प्रवचन के बाद जब मैंने उनकी और उनके शिष्यों की जीवनचर्या का निकट से निरीक्षण कियातब तो मैं स्वयं अपनी लघुता से बरबस इतना दब-सा गया कि आत्म-ग्लानि एक अभिशाप बन कर मेरे पीछे पड़ गई और आचार्यश्री तुलसी जैसे निरीह संत के प्रति अनजाने ही अश्रद्धा का भाव मन में लाने के कारण बड़ा पश्चात्ताप हुआ। मारे लज्जा के मैं कई दिनों तक फिर किसी ऐसे समारोह में गया ही नहीं।

मुनिश्री से भेंट

कुछ दिन बाद मुनिश्री नगराजजी की सेवा में मुझे उपस्थित होने का सौभाग्य मिला। आपने मुझे अणुव्रत पर कुछ साहित्य तैयार करने की प्रेरणा दी। मैंने अपनी असमर्थता के साथ अपनी हीनता का भी स्पष्टतः निवेदन किया और बताया कि अणुव्रत-आन्दोलन के किसी भी नियम की कसौटी पर मैं खरा नहीं उतर सकता; तब, ऐसी स्थिति में इस विषय पर लिखने का मुझे क्या अधिकार है ? मुनिश्री ने कहा कि अणुव्रत का मूलाधार सत्य है और सत्य-भाषण कर आपने एक नियम का पालन तो कर ही लिया। इसी प्रकार आप अन्य नियमों का भी निर्वाह कर सकेंगे। मुझे कुछ प्रोत्साहन मिला और मैंने अणुव्रत तथा आचार्यश्री तुलसी के कतिपय ग्रन्थों का अध्ययन कर कुछ समझने की चेष्टा की और एक छोटा-सा लेख मुनिश्री की सेवा में प्रस्तुत कर दिया। लेख अत्यन्त साधारण था, तो भी मुनिश्री की विशाल सहृदयता ने उसे अपना लिया। तब से अणुव्रत की महत्ता को कुछ आँकने का मुझे सौभाग्य मिला और मेरी यह भ्रान्ति भी मिट गई कि सभी धर्मोपदेशक तथा संत निरे परोपदेशक ही होते हैं। सच तो यह है कि गोस्वामी तुलसी की वाणी की वास्तविक सार्थकता मैंने आचार्यश्री तुलसी के प्रवचन में प्राप्त की।

जीवन और मृत्यु

गोस्वामी तुलसी ने नैतिकता का पाठ सर्वप्रथम अपने गृहस्थ जीवन में और स्वयं अपनी गृहिणी से प्राप्त किया था; किन्तु आचार्यश्री तुलसी ने तो आरम्भ से ही साधु-वृत्ति अपनाकर अपनी साधना को नैतिकता के उस सोपान पर पहुँचा दिया है कि गृहस्थ और संन्यासी, दोनों ही उससे कृतार्थ हो सकते हैं। तुलसी-कृत रामचरितमानस की सृष्टि गोस्वामी तुलसी ने 'स्वान्तः सुखाय' के उद्देश्य से की, किन्तु वह 'सर्वान्तःसुखाय' सिद्ध हुआ; क्योंकि संतों की सभी विभू-

तियाँ और सभी कार्य अन्यों के लिए ही होते आए हैं। **परोपकाराय सतां विभूतयः।** फिर आचार्यश्री तुलसी ने तो आरम्भ से ही अपने सभी कृत्य परार्थ ही किए हैं और परार्थ को ही स्वार्थ मान लिया है। यही कारण है कि उनके अणुव्रत-आन्दोलन में वह शक्ति समायी हुई है जो परमाणु शक्ति-सम्पन्न बम में भी नहीं हो सकती; क्योंकि अणुव्रत का लक्ष्य रचनात्मक एवं विश्वकल्याण है और आणविक शस्त्रों का तो निर्माण ही विश्व-संहार के लिए किया जाता है। एक जीवन है तो दूसरा मृत्यु। तो भी जीवन मृत्यु से सदा ही बड़ा सिद्ध हुआ है और पराजय मृत्यु की होती है, जीवन की नहीं। नागासाकी तथा हिरोशिमा में इतने बड़े विनाश के बाद भी जीवन हिलोरें ले रहा है और मृत्यु पर अट्टहास कर रहा है।

वास्तविक मृत्यु

मानव की वास्तविक मृत्यु नैतिक ह्रास होने पर होती है। नैतिक आचरण से हीन होने पर वस्तुतः मनुष्य मृतक से भी बुरा हो जाता है, क्योंकि साधारण मृत्यु होने पर 'आत्मा' अमर बनी रहती है। **न हन्यते हन्यमाने शरीरे** (गीता)। किन्तु नैतिक पतन हो जाने पर तो शरीर के जीवित रहने पर भी 'आत्मा' मर चुकती है और लोग ऐसे व्यक्ति को 'हृदयहीन', 'अनात्मवादी', 'मानवता के लिए कलंक' कहकर पुकार उठते हैं। इसी प्रकार नैतिकता से हीन राष्ट्र चाहे जैसा भी श्रेष्ठ शासनतन्त्र क्यों न अंगीकार करे, वह जनता की आत्मा को सुखी तथा सम्पन्न नहीं बना सकता। ऐसे राष्ट्र के कानून तथा समस्त सुधार-कार्य प्रभावकारी सिद्ध नहीं होते और न उसकी कृतियों में स्थायित्व ही आने पाता है; क्योंकि इन कृतियों का आधार सत्य और नैतिकता नहीं होती, अपितु एक प्रकार की अवसरवादिता अथवा अवसरसाधिका वृत्ति ही होती है। नैतिक संबल के बिना भौतिक सुख-साधनों का वस्तुतः कोई मूल्य नहीं होता।

अणु और अणुव्रत-आन्दोलन

आज के युग में आणविक शक्ति का प्राधान्य है और इसीलिए इसे अणु युग की संज्ञा देना सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। विज्ञान आज अपनी चरम सीमा पर है और उसने अणुमात्र में भी ऐसी शक्ति खोज निकाली है, जो अखिल विश्व का संहार कुछ मिनटों में ही कर डालने में समर्थ है। इस सर्वसंहारकारी शक्ति से सभी भयभीत हैं और तृतीय विश्वव्यापी युद्ध के निवारणार्थ जो भी प्रयास प्रकारान्तर से आज किये जा रहे हैं, उनके पीछे भी भय की यही भावना समायी हुई है।

पश्चिमी राष्ट्रों की संगठित शक्ति से भयभीत होकर रूस ने पुनः आणविक शस्त्रास्त्रों के परीक्षण की घोषणा ही नहीं कर दी है, वस्तुतः वह दो-चार परीक्षण कर भी चुका है। रूस के इस आचरण की स्वाभाविक प्रतिक्रिया अमरीका पर हुई है और अमरीका ने भूमिगत आणविक परीक्षण आरम्भ कर दिये हैं।

अमरीका प्रक्षेपास्त्रों की होड़ में रूस से पहले से ही पिछड़ा हुआ है और इसीलिए रूस को उस दिशा में और अधिक बढ़ने का मौका वह कदापि नहीं दे सकता। साथ ही, विश्व के अन्य देशों पर भी इसकी प्रतिक्रिया हुई है और बेलग्रेड में आयोजित तटस्थ देशों का सम्मेलन इस घटना से कदाचित् अत्यधिक प्रभावित हुआ है; क्योंकि सम्मेलन शुरू होने के दिन ही रूस ने अपनी यह आतंककारी घोषणा की है। इस प्रकार आज का विश्व आणविक शक्ति के विनाशकारी परिणाम से बुरी तरह त्रस्त है। सभी ओर 'त्राहि-त्राहि'-सी मची हुई है; क्योंकि युद्ध शुरू हो चुकने पर कदाचित् कोई 'त्राहि-त्राहि' पुकारने के लिए भी शेष न रह जायेगा। इस विषम स्थिति का रहस्य है कि शान्ति के आवरण में युद्ध की विभीषिका सर्वत्र दिखाई पड़ रही है?

परिग्रह और शोषण की जनयित्री

जब मानव भौतिक तथा शारीरिक सुखों की प्राप्ति के लिए पाशविकता पर उतर आता है और अपनी आत्मा की आन्तरिक पुकार का उसके समक्ष कोई महत्त्व नहीं रहता, तब उसकी महत्त्वाकांक्षा परिग्रह और शोषण को जन्म

देती है, जिसका स्वाभाविक परिणाम साम्राज्य अथवा प्रभुत्व-विस्तार के रूप में प्रकट होता है। अपने लिए जब हम आवश्यकता से अधिक पाने का प्रयास करते हैं, तब निश्चय ही हम दूसरों के स्वत्व के अपहरण की कामना कर उठते हैं; क्योंकि औरों की वस्तु का अपहरण किये बिना परिग्रह की भावना तृप्त नहीं की जा सकती। यही भावना औरों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति को जन्म देती है, जिसका व्यवहारिक रूप हम 'उपनिवेशवाद' में देखते हैं। शोषण की चरम स्थिति क्रान्ति को जन्म देती है, जैसा कि फ्रांस और रूस में हुआ और अन्ततः हिंसा को ही हम मुक्ति का साधन मानने लगते हैं तथा साम्यवाद के सबल साधन के रूप में उसका प्रयोग कर शान्ति पाने की लालसा करते हैं, किन्तु शान्ति फिर भी मृग-मरीचिका बनी रहती है। यदि ऐसा न होता तो रूस शान्ति के लिए आणविक परीक्षणों का सहारा क्यों लेता और किसी भी समझौता-वार्ता की पृष्ठभूमि में शक्ति-सन्तुलन का प्रश्न क्यों सर्वाधिक महत्त्व पाता रहता?

मिथ्याचरण

भारत के प्राचीन एवं अर्वाचीन महात्माओं ने सत्य और अहिंसा पर जो अत्यधिक बल दिया है, उसका मुख्य कारण मानव को सुख का वह सोपान प्राप्त कराना ही रहा है, जहाँ तृष्णा और वितृष्णा का कोई चिह्न शेष नहीं रह जाता। सभी धर्मों ने अपरिग्रह और त्याग पर अत्यधिक बल दिया है, जो मूलतः सत्य और अहिंसा के ही रूपान्तर हैं। सत्य की प्राप्ति के लिए सत्य का आचरण अनिवार्य बताया गया है—**सच्चं लोगम्मि सारभूयं** (जैन) **यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुखी** (बौद्ध) **अहमनृतात् सत्यमुपैमि** (वैदिक)।

वास्तविक धर्म मनसा, वाचा और कर्मणा शुद्धाचरण माना गया है और मन से भी प्रतिकूल आचरण करने वाले को 'पाखण्डी' तथा 'मिथ्याचारी' बताया गया है—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥ —गीता

मिथ्याचरण स्वयं अपने में एक छलना है, तब औरों में भी अविश्वास उत्पन्न करे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

विश्व की महान् शक्तियाँ शान्ति के नाम पर युद्ध की गुप्त रूप से जो तैयारियाँ कर रही हैं, यह मिथ्याचरण का ही द्योतक है और इसीलिए पूर्व तथा पश्चिम में पारस्परिक विश्वास का नितान्त ह्रास होकर भय की भावना उद्दीप्त हो उठी है।

भारत में आज सर्वोत्कृष्ट प्रजातन्त्र विद्यमान होते हुए भी प्रजा (जनता) सुखी एवं सन्तुष्ट क्यों नहीं है? मद्यनिषेध के लिए इतने कड़े कानून लागू होने पर और केन्द्र द्वारा इतना अधिक प्रोत्साहन दिये जाने पर भी वह कारगर होता क्यों दिखाई नहीं पड़ता? भ्रष्टाचार रोकने के लिए प्रशासन की ओर से इतना अधिक प्रयास किये जाने पर भी वह कम होने के स्थान में बढ़ क्यों रहा है? इन सबका मूल कारण मिथ्याचरण नहीं तो और क्या है? आन्तरिक अथवा आत्मिक विकास किये बिना केवल बाह्य-विकास बन्धन-मुक्ति का साधन नहीं हो सकता। विज्ञान तथा अणु शक्ति का विकासमात्र ही उत्थान का एकमात्र साधन नहीं है।

अणुशक्ति (विज्ञान) के साथ-साथ आज अणुव्रत (नैतिक आचरण) को अपनाना भी उतना ही, अपितु उससे कहीं अधिक, महत्त्व रखता है, जितना महत्त्व हम विज्ञान के विकास को देते हैं और जिसे राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक स्वतन्त्रता का मूलाधार भी मान बैठे हैं।

अणुव्रत के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी के शब्दों में भारतीय परम्परा में महान् वह है जो त्यागी है। यहाँ का साहित्य त्याग के आदर्शों का साहित्य है। जीवन के चरम भाग में निर्ग्रन्थ या संन्यासी बन जाना तो सहज वृत्ति है ही, जीवन के आदि भाग में भी प्रव्रज्या आदेय मानी जाती रही है: **यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।**

त्यागपूर्ण जीवन महाव्रत की भूमिका या निर्ग्रन्थ वृत्ति है। यह निरपवाद संयम-मार्ग है, जिसके लिए अत्यन्त विरक्ति की अपेक्षा है। जो व्यक्ति अत्यन्त विरक्ति और अत्यन्त अविरक्ति के बीच की स्थिति में होता है, वह अणुव्रती

बनता है। आनन्द गाथापति भगवान् महावीर से प्रार्थना करता है—'भगवन् ! आपके पास बहुत सारे व्यक्ति निर्ग्रन्थ बनते हैं, किन्तु मुझमें ऐसी शक्ति नहीं कि मैं निर्ग्रन्थ बनूं। इसलिए मैं आपके पास पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत; द्वादश व्रतरूप गृही धर्म स्वीकार करूँगा।[1]

यहाँ शक्ति का अर्थ है विरक्ति। संसार के प्रति, पदार्थों के प्रति, भोग-उपभोग के प्रति जिसमें विरक्ति का प्राबल्य होता है, वह निर्ग्रन्थ बन सकता है। अहिंसा और अपरिग्रह का व्रत उसका जीवन-धर्म बन जाता है। यह वस्तु सबके लिए सम्भव नहीं। व्रत का अणु-रूप मध्यम मार्ग है। अव्रती जीवन शोषण और हिंसा का प्रतीक होता है और महाव्रती जीवन दुःशक्य। इस दशा में अणुव्रती जीवन का विकल्प ही शेष रहता है।

अणुव्रत का विधान व्रतों का समीकरण या संयम और असंयम, सत्य और असत्य, अहिंसा और हिंसा, अपरिग्रह और परिग्रह का मिश्रण नहीं, अपितु जीवन की न्यूनतम मर्यादा का स्वीकरण है।

चारित्रिक आन्दोलन

अणुव्रत-आन्दोलन मूलतः चारित्रिक आन्दोलन है। नैतिकता और सत्याचरण ही इसके मूलमंत्र हैं। आत्म-विवेचन और आत्म-परीक्षण इसके साधन हैं। आचार्यश्री तुलसी के अनुसार यह आन्दोलन किसी सम्प्रदाय या धर्म-विशेष के लिए नहीं है। यह तो सबके लिए और सार्वजनीन है। अणुव्रत जीवन की वह न्यूनतम मर्यादा है जो सभी के लिए ग्राह्य एवं शक्य है। चाहे आत्मवादी हों या अनात्मवादी, बड़े धर्मज्ञ हों या सामान्य सदाचारी, जीवन की न्यूनतम मर्यादा के बिना जीवन का निर्वाह सम्भव नहीं है। अनात्मवादी पूर्ण अहिंसा में विश्वास न भी करें, किन्तु हिंसा अच्छी है, ऐसा तो नहीं कहते। राजनीति या कूटनीति को अनिवार्य मानने वाले भी यह तो नहीं चाहते कि उनकी पत्नियाँ उनसे छलनापूर्ण व्यवहार करें। असत्य और अप्रामाणिकता बरतने वाले भी दूसरों से सच्चाई और प्रामाणिकता की आशा करते हैं। बुराई मानव की दुर्बलता है, उसकी स्थिति नहीं। कल्याण ही जीवन का चरम सत्य है जिसकी साधना व्रत (आचरण) है। अणुव्रत-आन्दोलन उसी की भूमिका है।

अणुव्रत-विभाग

अणुव्रत पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य या स्वदार संतोष और अपरिग्रह या इच्छा-परिमाण।

१. अहिंसा—अहिंसा-अणुव्रत का तात्पर्य है—अनर्थ हिंसा से अनावश्यकता शून्य केवल प्रमाद या अज्ञानजनित हिंसा से बचना। हिंसा केवल कायिक ही नहीं, मानसिक भी होती है और वह अधिक घातक सिद्ध होती है। मानसिक हिंसा में सभी प्रकार के शोषणों का समावेश हो जाता है और इसीलिए अहिंसा में छोटे-बड़े अपने-बिराने, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि विभेदों की परिकल्पना का निषेध अपेक्षित होता है।

२. सत्य—जीवन की सभी स्थितियों में नौकरी, व्यापार, घरेलू या राज्य अथवा समाज के प्रति व्यवहार में सत्य का आचरण अणुव्रती की मुख्य साधना होती है।

३. अचौर्य—**लोभाविले आययइ अदत्तम्** (जैन) **लोके अदिन्नं नादियति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं** (बौद्ध) अचौर्य में मेरी निष्ठा है। चोरी को मैं त्याज्य मानता हूँ। गृहस्थ-जीवन में सम्पूर्ण चोरी से बचना सम्भव न मानते हुए अणुव्रती प्रतिज्ञा करता है—१. मैं दूसरों की वस्तु को चोर-वृत्ति से नहीं लूंगा, २. जानबूझकर चोरी की वस्तु नहीं खरीदूंगा और न चोरी में सहायक बनूंगा, ३. राज्यनिषिद्ध वस्तु का व्यापार व आयात-निर्यात नहीं करूँगा, ४. व्यापार में अप्रमाणिकता नहीं बरतूंगा।

४. ब्रह्मचर्य—**१. तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं** (जैन), **२. माते कामगुणे रमस्सु चित्तं** (बौद्ध) **३. ब्रह्मचर्येण**

---

१ **नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे जाव पव्वइत्तए। अहण्णं देवाणुप्पियाणं अन्तिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालस विहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि—उपासकदशांग ॥ १ ॥**

तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत (वेद)।

ब्रह्मचर्य अहिंसा का स्वात्मरमणात्मक पक्ष है। पूर्ण ब्रह्मचारी न बन सकने की स्थिति में एक पत्नीव्रत का पालन अणुव्रती के लिए अनिवार्य ठहराया गया है।

५. अपरिग्रह—१. 'इच्छाहु आगाससम अणंतया' (जैन), **२. तण्हक्खयो सब्ब दुक्खं जिनाति** (बौद्ध), **३. मागृधः कस्यस्विद्धनम्** (वैदिक) परिग्रह से तात्पर्य संग्रह से है। किसी भी सद्गृहस्थ के लिए संग्रह की भावना से पूर्णतया विरत रहना असम्भव है। अतः अणुव्रत में अपरिग्रह से संग्रह का पूर्ण निषेध का तात्पर्य न लेते हुए अमर्यादित संग्रह के रूप में गृहीत है। अणुव्रती प्रतिज्ञा करता है कि वह मर्यादित परिणाम से अधिक परिग्रह नहीं करेगा। वह घूस नहीं लेगा। लोभवश रोगी की चिकित्सा में अनुचित समय नहीं लगायेगा। विवाह आदि प्रसंगों के सिलसिले में दहेज नहीं लेगा, आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अणुव्रत विशुद्ध रूप में एक नैतिक सदाचरण है और यदि इस अभियान का सफल परिणाम निकल सका तो वह एक सहस्र कानूनों से कहीं अधिक कारगर सिद्ध होगा और भारत या अन्य किसी भी देश में ऐसे आचरण से प्रजातन्त्र की सार्थकता चरितार्थ हो सकेगी। प्रजातन्त्र धर्मनिरपेक्ष भले ही रहे, किन्तु जब तक उसमें नैतिकता के किसी मर्यादित मापदण्ड की व्यवस्था की गुंजाइश नहीं रखी जाती, तब तक वह वास्तविक स्वतन्त्रता की सृष्टि नहीं कर सकता और न ही जनसाधारण के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठा सकता है। स्वतन्त्रता की ओट में स्वच्छन्दता और आर्थिक उत्थान के रूप में परिग्रह तथा शोषण को ही खुलकर खेलने का मौका तब तक निस्संदेह बना रहेगा, जब तक इस आणविक युग में विज्ञान की महत्ता के साथ-साथ अणुव्रत-जैसे किसी नैतिक बन्धन की महत्ता को भी भली-भाँति आँका नहीं जाता। विश्व-शान्ति की कुञ्जी भी इसी नैतिक बन्धन में निहित है। वस्तुतः पंचशील, सह-अस्तित्व, धार्मिक सहिष्णुता अणुव्रत के अंगोपांग जैसे ही हैं। अतः आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन आज के अणुयुग की एक विशिष्ट देन ही समझा जाना चाहिए।

भारत विश्व में यदि प्राचीन अथवा अर्वाचीन काल में किसी कारण सम्मानित रहा अथवा आज भी है तो अपने सत्य, त्याग, अहिंसा, परोपकार (अपरिग्रह) आदि नैतिक गुणों के कारण ही, न कि अपनी सैन्य शक्ति अथवा भौतिक शक्ति के कारण। किन्तु, आज देश में जो भ्रष्टाचार व्याप्त है और नैतिक पतन जिस सीमा तक पहुँच चुका है, उसे एक 'नेहरू का आवरण' कब तक ढँके रहेगा? एक दिन तो विश्व में हमारी कलई खुल कर ही रहेगी और तब विश्व हमारी वास्तविक हीनता को जान कर हमारा निरादर किये बिना न रहेगा। अतः भारतवासियों के लिए आणविक शक्ति के स्थान में आज अणुव्रत-आन्दोलन को शक्तिशाली बनाना कहीं अधिक हितकारी सिद्ध होगा और मानव, राष्ट्र तथा विश्व का वास्तविक कल्याण भी इसी में निहित है।

आचार्यश्री तुलसी का वह कथन, जो उन्होंने उस दिन अपने प्रवचन में कहा था, मुझे आज भी याद है कि "एक स्थान पर जब हम मिट्टी का बहुत बड़ा और ऊँचा ढेर देखते हैं तब हमें सहज ही यह ध्यान हो जाना चाहिए, किसी अन्य स्थान पर इतना ही बड़ा और गहरा गड्ढा खोदा गया है।"

शोषण के बिना संग्रह असम्भव है। एक को नीचे गिराकर दूसरा उन्नति करता है। किन्तु जहाँ बिना किसी का शोषण किये, बिना किसी को नीचे गिराये सभी एक साथ आत्मोन्नति करते हैं, वही है जीवन का सच्चा और शाश्वत मार्ग।

'अणुव्रत' नैतिकता का ही पर्याय है और उसके प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी महात्मा तुलसी के पर्याय कहे जा सकते हैं।

युवा आचार्य और वृद्ध मन्त्री

मुनिश्री विनयवर्धनजी

आचार्यश्री तुलसी ने बाईस वर्ष की अल्पतम आयु में आचार्य-पद का भार सम्भाला। उनके मन्त्री मुनिश्री मगनलालजी उस समय लगभग उनसे तिगुनी आयु में थे। युवा आचार्य और वृद्ध मन्त्री का यह एक अनोखा मेल था। योग्य सेवक का मिल जाना भी स्वामी के सौभाग्य का विषय होता है। योग्य मन्त्री का मिल जाना राजा का अपना सौभाग्य है ही। मन्त्रीमुनि एक तपे हुए राजसेवक थे। इससे पूर्व वे क्रमशः चार आचार्यों को अपनी असाधारण सेवाएं दे चुके थे। आचार्यश्री तुलसी ने उन्हें मन्त्री-पद से विभूषित किया, पर इससे पूर्व भी वे अपनी कार्य-क्षमता से मंत्रीमुनि कहलाने लगे थे। उनका मन्त्रीत्व सर्वसाधारण से उद्भूत हुआ और यथासमय आचार्यश्री तुलसी के द्वारा मण्डित हुआ। आचार्यश्री के शासनकाल में लगभग तेईस वर्ष की सेवाएं उन्होंने दी। उनके जीवन की उपलब्धियां अगली पीढ़ी के लिए एक खोज का विषय बन गई है। प्रत्येक उपलब्धि के पीछे उनका नीति-कौशल ही आधारभूत था। एक-एक करके पांच आचार्यों से वे सम्मानित होते रहे। यह एक विलक्षण बात थी। इसके मुख्य कारण दो थे: एक तो यह कि प्रत्येक आचार्य के पास समर्पित होकर रहे। अपनी योग्यता और प्रभाव का उपयोग उन्होंने उनके लिए किया। वे नितान्त निष्काम सेवी थे। **सर्वबापद्गतो राजा भोग्यो भवति मंत्रिणां** का विचार उनको छू तक नहीं गया था। आचार्यश्री तुलसी जब संघ के नूतन अधिनायक बने तो उन्होंने अपना सारा कौशल चतुर्विध संघ का ध्यान उनमें केन्द्रित करने के लिए लगाया। उन्होंने आचार्यश्री को अन्तरंग रूप से सुझाया—आप समय-समय पर साधु-साध्वियों के बीच मुझे कोई न कोई उलाहना दिया करें, इससे अन्य सभी लोग अनुशासन में चलना सीखेंगे। आचार्यवर ने ऐसे प्रयोग अनेकों बार किये भी। एक बार की घटना है—कुछ एक प्रमुख श्रावक किसी बात के लिए अनुरोध कर रहे थे। मन्त्रीमुनि ने भी उनके अनुरोध का समर्थन किया। श्रावकों ने कहा—अब तो आप फरमा ही दीजिये; मंत्रीमुनि ने भी हमारा समर्थन कर दिया है। आचार्यश्री ने ओजस्वी शब्दों में कहा—क्या मैं सब बातें मगनलालजी स्वामी के निर्देश पर ही करता हूँ। सब श्रावक सन्न रह गए। युवक आचार्य ने अपने वृद्ध मन्त्री को कितना अवगणित कर दिया। पर विशेषता तो यह थी कि मंत्रीमुनि का नूर जरा भी बिगड़ा नहीं। वे आचार्यों के लिए विनम्र परामर्शदाता थे। स्पष्टवादिता व सिद्धान्तवादिता का हौआ उनके सिर पर नहीं था। लोग उन्हें कभी-कभी 'जी हुजूर' भी बतलाते, पर आचार्यों के साथ बरतने की उनकी अपनी निश्चित नीति थी। यही कारण था कि विभिन्न नीति-प्रधान आचार्यों के शासन-काल में समान रूप से रहे। नाना झंझावात उनके ऊपर से गुजरे, जिनमें अनेकों के चरण डगमगा गए, पर वे अपनी नीति पर अटल रहे और उनका सुन्दर परिणाम जीवन भर उन्होंने भोगा।

वे अपने जीवन में सदैव लोकप्रिय रहे। जीवन के उत्तरार्द्ध में तो मानो वे सर्वथा अनालोच्य ही हो गए। इसका कारण था, विरोध का प्रतिकार उन्होंने विरोध से नहीं किया। **'अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति'** की कहावत चरितार्थ हुई। प्रतिस्पर्धी भी निःसन्तान होकर समाप्त होते गए। लोकप्रियता का एक अन्य कारण था कि वे दायित्व-मुक्त रहना पसन्द करते थे। बहुत थोड़े ही काम उन्होंने अपने जिम्मे ले रखे थे। आचार्य ही सब काम निबटाते रहे, यह उनकी प्रवृत्ति थी। किसी को अनुगृहीत कर अपना प्रभाव बढ़ाने का शौक उनमें नहीं था। उनका विश्वास था—भलाई असन्दिग्ध नहीं होती, उसमें किसी की बुराई भी बहुधा फलित हो जाती है। इसलिए निर्लिप्तता ही व्यक्ति के लिए सुखद मार्ग है। इस विश्वास में सब लोग भले ही सहमत न हों, पर उनकी लोकप्रियता का तो यह एक प्रमुख कारण था ही।

उनके जीवन में नित नये उन्मेष आते रहते थे। बहुधा अवकाश प्राप्त व्यक्ति बहुत दिनों तकलीफ कर अपना प्रभाव सीमित करता है। मंत्रीमुनि ६० वर्ष तक जीए। वर्षों तक वे वार्धक्य और रुग्णावस्था से पूरी तरह ग्रसित रहे, पर उनके जीवन की यह विलक्षण बात थी कि परिस्थितियाँ स्वयं बदलकर उनके लिए किसी न किसी प्रकार से श्रेय बटोर कर ले आतीं। टाला गया भी श्रेय उन्हें चतुर्गुणित होकर मिलता। इस प्रकार ये अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक नूतन ही बने रहे। उनके जीवन का एक उल्लेखनीय आनन्द था—घोर तपस्वी मुनिश्री सुखलालजी और विद्या वारिधि मुनिश्री सोहनलालजी जैसे आत्म साथ मुनियों का योग।

वे अत्यन्त मित-भाषी थे। उनके मुख से सदैव नपी-तुली बात निकलती। दूसरों को देने के लिए उनकी प्रमुख शिक्षा थी—

"वचन रतन मुखकोट है, होट कपाट बणाय।
सम्भल-सम्भल हरफ काढ़िये, नहीं परवश पड़ जाय।

यही दोहा बचपन में उन्होंने मुझे याद करवाया था।

हो सकता है उनकी वाणी का संयम ही उनके लिए वाक्सिद्धि बन गया हो। अनेकानेक लोग आज भी उनके वचन-सिद्धि की गाथा गाते हैं। सरदारशहर की घटना है। मुनिश्री नगराजजी व मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी दिल्ली की ओर विहार करा रहे थे। मंत्रीमुनि पहुँचाने के लिए कुछ दूर पधारे। वन्दन और क्षमायाचना की वेला में मंत्रीमुनि ने मुनिश्री नगराजजी के कान में कहा—"देखो, दिल्ली जाओ हो, जवाहरलाल नेहरू स्यूं भी बात करनी पड़े तो भी मन में संकोच नहीं राखणो। शासण री बात बताने में कोई डर नहीं।" मुनिश्री वहाँ से विहार कर गये। प्रधानमन्त्री नेहरू से मुनिजनों का तब तक कोई सम्पर्क नहीं था। कोई आसार भी सामने नहीं थे। उसी वर्ष प्रथम बार मुनिश्री से प्रधानमन्त्री की ४० मिनट बातचीत हुई। मुनिश्री ने जिस निस्संकोच भाव से अणुव्रत-आन्दोलन का कार्यक्रम सामने रखा वे अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने मुनिश्री से आचार्यश्री को दिल्ली बुलवाने का भी आमन्त्रण करवाया। अणुव्रत-सभा में भाग लेने की बात भी उसी समय निश्चित कर दी। यह वही वर्ष था जिस वर्ष आचार्यवर सरदारशहर चतुर्मास कराकर केवल ग्यारह दिनों में दिल्ली पधारे। राष्ट्रपति तथा नेहरूजी ने प्रथम बार अणुव्रत आयोजनों में भाग लिया। इस प्रकार मंत्री-मुनि मगनलालजी स्वामी की वाक्सिद्धि के उदाहरणों को संजोया जाये तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन सकता है।

उनकी सेवाएं तेरापंथ साधु-संघ के लिए महान् थीं। कौन जानता था मेदपाट की पथरीली भूमि में जन्मा यह बालक महान् धर्म-संघ का मन्त्री बनेगा। कौन जानता था, केवल बारह आने की विद्या पढ़ने वाला बालक इतना असाधारण, दूरदर्शी और अनुपम मेधावी होगा। पर यह कहावत भी सत्य है—"होनहार विरवान के होत चीकने पात"। जब ये पाठशाला में पढ़ते थे तो गुरु ने बुद्धि-परीक्षा की दृष्टि से सभी छात्रों से पूछा—यज्ञोपवीत की खूंटी कौनसी है? उपस्थित छात्र एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। गुरु ने इनकी ओर देखा तो उन्होंने झट से उत्तर दे डाला—यज्ञोपवीत की खूंटी कान है। गुरु और छात्र सभी इस उत्तर से आनन्द-विभोर हुए।

यह है संक्षेप में युवा आचार्य के वृद्ध मंत्री की जीवन गाथा।
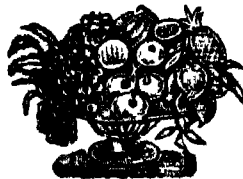
संत-फकीरों के अगुआ

बेगम अलीज़हीर
अध्यक्षा, समाज कल्याण बोर्ड, उत्तरप्रदेश

यह जानकर निहायत खुशी हुई कि आचार्यश्री तुलसी धवल समारोह समिति अणुव्रत-आन्दोलन के रहनुमा आचार्यश्री तुलसीजी का अभिनन्दन समारोह मनाने जा रही है और उनकी शान में एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी तैयार कर रही है।

आचार्यश्री तुलसी हमारे देश के उन संत-फकीरों के अगुआ हैं, जिन्होंने इस बात को महसूस किया कि देश की आजादी को कायम रखने के लिए यह बहुत जरूरी है कि हमारे देश के रहने वालों का नैतिक और चारित्रिक स्तर ऊंचा हो। इसके बिना किसी तरह से हमारी असली तरक्की मुमकिन नहीं है। इसलिए उन्होंने अपने साढ़े छः सौ शिष्य साधुओं और साध्वियों का रुझान इस ओर खींचा कि सारे देश का ध्यान अणुव्रत-आन्दोलन के असूलों की ओर खींचने में जुट जाओ। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने तेरापंथ समाज के साथ सारे देश को यह महसूस कराया कि अणुव्रत के असूलों पर चलना हमारे लिए बहुत जरूरी है।

एक बार जब अणुव्रत-आन्दोलन का सालाना जलसा सन् १९५७ में सुजानगढ़ (राजस्थान) में हुआ तो उत्तर-प्रदेशीय अणुव्रत समिति के संयोजक ने हमें भी उसमें भाग लेने की दावत दी। यह पहला मौका था जब हमने नजदीक से आचार्यश्री तुलसी और उनके विद्वान् व बहुत-सी विद्याओं व हुनरों में माहिर शिष्यों, साधुओं और साध्वियों को देखा। ये सभी अच्छे-अच्छे घरों के थे और सारे दुनियावी सुखों को छोड़ कर इस नये सुख की दुनिया में आ चुके थे, जिसे हम रूहानी जिन्दगी का सुख कहते हैं।

आचार्यश्री तुलसी से मिलने पर हमने देखा कि वे सही माने में एक फकीर की जिन्दगी बसर करते हुए इस बात की कोशिश में जुटे हुए हैं कि हमारी तरक्की के साथ-साथ सारी दुनिया की तरक्की हो। यही वजह है कि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी लोग उनके बताये हुए अणुव्रत के असूलों को पसन्द करते हैं।

आज के जमाने में हम इन्सान का आर्थिक स्तर तो ऊंचा करने में जुटे हुए हैं; लेकिन उसके मुकाबले में उसके जीवन का स्तर ऊंचा करने की कितनी कोशिश हम कर रहे हैं, यह सोचने की बात है। हम अपने देश की तरक्की के लिए पंचवर्षीय योजना चला रहे हैं, लेकिन पंचवर्षीय योजनाओं की कामयाबी के लिए जरूरी है कि देश में रहने वालों का नैतिक और चारित्रिक स्तर काफी ऊंचा हो। इसके बिना देश में राष्ट्रीय चेतना नहीं जाग सकती है।

यह तो सभी लोग जानते है कि सच बोलना चाहिए, किसी को सताना नहीं चाहिए, दुनिया भर की दौलत बटोरने की कोशिश नही करनी चाहिए; लेकिन सवाल यह है कि कितने लोग इस बात पर अमल करते हैं? आचार्यश्री तुलसी का आन्दोलन महज लैक्चर देने का या नसीहत देने का आन्दोलन नहीं है, बल्कि यह उन बातों पर अमल करने का आन्दोलन है। आचार्यश्री तुलसी और उनके शिष्य खुद महाव्रतों का पालन करते हुए हरएक को इस बात के लिए राजी करने की कोशिश करते हैं कि कम-से-कम लोग अणुव्रतों पर चलने का अहद करें। इसके लिए वे, जो लोग इन असूलों को पसन्द करते हैं, उनसे प्रतिज्ञा-पत्र भरवाते हैं कि कम-से-कम एक साल वे इन असूलों पर जरूर चलेंगे। इस तरह से यह महज़ कहने की नहीं, बल्कि करने की तहरीक है, जगने और जगाने की तहरीक है, नामुमकिन को मुमकिन बना देने की तहरीक है। आचार्यश्री तुलसी ने मरीज इंसान की नब्ज़ को अच्छी तरह से समझा है। उसे इंसानियत का पैग़ाम किस

तरह सुनाया जाये और उस पर चलने के लिए किस तरह जोश पैदा किया जाये, यह आज के जमाने में और लोगों की बनिस्पत ज्यादा अच्छी तरह समझा है।

आज सबसे ज्यादा कमी चरित्र की है। आज इस चरित्र की कमी की वजह से एक इंसान दूसरे इंसान का ऐतबार खो चुका है, एक जमात दूसरी जमात का ऐतबार खो चुकी है और एक मुल्क दूसरे मुल्क का ऐतबार खो चुका है। इस बे-ऐतबार (अविश्वास) के जमाने में हरएक को एक-दूसरे से खतरा पैदा हो गया है और इस खतरे का सामना करने के लिए दुनिया के मुल्क अणुबम और उद्जन बम आदि का सहारा ले रहे हैं; जिनके इस्तेमाल से न सिर्फ एक मोहल्ला या एक शहर, बल्कि सूबे-के-सूबे, देश-के-देश साफ हो जायेंगे। ऐसे नाजुक जमाने में अणुबम के मुकाबले में अणुव्रत-आन्दोलन चला कर आचार्यश्री तुलसी ने दुःख और निराशा के अन्धकार में भटकती हुई दुनिया को सुख-शान्ति की एक नई रोशनी दी है।

यह ठीक है कि अणुव्रत-आन्दोलन के चलाने वाले आचार्यश्री तुलसी जैन-श्वेताम्बर तेरापंथ-समाज के नवें आचार्य हैं, परन्तु मेरी दृष्टि में आचार्यश्री तुलसी दुनिया को मानवता का वही सन्देश सुना रहे हैं जिसे कभी योगिराज कृष्ण ने सुनाया, महावीर स्वामी ने सुनाया, महात्मा गौतम बुद्ध ने सुनाया, जिसके लिए हजरत मुहम्मद साहब ने हिजरत किया और हमारे देश के राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी शहीद हुए। आज उसी मानवता का सन्देश, इंसानियत का पैगाम आचार्यश्री तुलसी और आचार्य विनोबा भावे हमें सुना रहे हैं।

हमारा यह फर्ज है कि तन, मन और जी-जान से जहाँ तक मुमकिन हो, उनके इस आन्दोलन को कामयाब बनाने की हम पूरी कोशिश करें। इसी में हम सबकी भलाई है, हमारे देश की भलाई है और हमारी इस दुनिया की भी भलाई है।

आज ऐसे महात्मा आचार्यश्री तुलसी का धवल समारोह मनाया जा रहा है। समझ में नहीं आता, किन शब्दों में मैं अपने जज्बात का इजहार करूँ, किन शब्दों में अपनी भावनांजलि पेश करूँ। फिर भी इन चन्द शब्दों में मैं अपनी ख्वाहिश का इजहार करती हूँ कि वे चिरायु हों और सब लोगों की इसी तरह अणुव्रत-आन्दोलन और मैत्री-दिवस आदि के जरिये रहनुमाई करें जिससे कि हमारी यह दुनिया आज की फैली हुई मुसीबतों से नजात पा सके, छुटकारा पा सके। आदमी सच्चे माने में आदमी बन कर एक-दूसरे का मान करना सीख सके। सब लोग मिल-जुलकर सुख से रह सकें और इंसान की खुशहाली के लिए किन बातों की जरूरत है और किन बातों की नहीं है, यह समझ सकें, एक जौहरी की तरह हीरे और पत्थर की पहचान कर सकें।

भारतीय दर्शन के अधिकृत व्याख्याता

सरदार ज्ञानसिंह राड़ेवाला
सिंचाई और बिजली मंत्री, पंजाब सरकार

संत और गुरु का महत्त्व भारतवर्ष में सदा से रहा है। गुरु नानक ने भी संत-सेवा और गुरु-भक्ति पर अधिक-से-अधिक बल दिया। आचार्यश्री तुलसी केवल संत ही नहीं; वे संत-नायक हैं। उनकी वाणी साढ़े छः सौ साधु-साध्वियों की वाणी है। अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन कर आपने सारे देश को नैतिक उद्‌बोध दिया है। देश में इसकी सबसे बड़ी आवश्यकता थी। देश आजाद हुआ और बड़ी-बड़ी योजनाएं यहां क्रियान्वित हो रही हैं। पर देशवासियों का चारित्र यदि ऊँचा नहीं हो जाता तो वह भौतिक निर्माण केवल बिना रूह का शरीर रह जाता है। रोटी और कपड़े से भी अधिक जरूरी मनुष्य का अपना चरित्र है, पर आज हम जो महत्त्व रोटी और कपड़े को दे रहे हैं वह चरित्र को नहीं। रोटी और कपड़े की समस्या भी तभी बनती है, जब मनुष्य का चरित्र ऊँचा नहीं रहता। मनुष्य जो अपने बारे में सोचता है, वह पड़ोसी के बारे में नहीं सोचता। छोटे स्वार्थों के लिए बड़े स्वार्थों का हनन करता है।

भारतवर्ष धार्मिक देश कहलाता है। हम बात-बात में धर्म की दुहाई भी देते हैं, पर धर्म का जो स्वरूप हमारे जीवन-व्यवहार में मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है। आज धर्म केवल मठों, मन्दिरों, गुरुद्वारों तक ही सीमित कर दिया गया है। धर्म का सम्बन्ध जीवन व्यवहार के प्रत्येक क्षण से रहना चाहिए। बाजारों और आफिसों में जब तक धर्म नहीं पहुँचता, तब तक देश का कल्याण नहीं है। धर्म के अभाव में ही झूठा तौल-माप, चोरबाजारी और रिश्वत आदि चल रहे हैं। जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, अणुव्रत-आन्दोलन का जन्म धर्म के इसी दबे पहलू को उठाने के लिए हुआ है। अणुव्रत-आन्दोलन धर्म को बाजारों, आफिसों और राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्रों में लाना चाहता है। अणुव्रतों का हार्द है — किसी भी क्षेत्र में कार्य करता हुआ व्यक्ति अपने धर्म-कर्म को न खोये। इन्सानियत का खयाल रखे। कोई भी अनैतिक कर्म न करे। अणुव्रत-आन्दोलन का जितना विस्तार हमारे देश में होगा, उतना ही देश हर माने में ऊँचा होगा।

मुझे यह जान कर बहुत ही प्रसन्नता हुई कि आचार्यश्री के नेतृत्व में साढ़े छः सौ साधु-साध्विजन व्यवस्थित रूप से सारे देश में नैतिक जागृति का कार्य कर रहे हैं। मैंने दिल्ली में मुनिश्री नगराजजी के पास वह तालिका भी देखी, जिसमें अणुव्रत केन्द्रों का और वहाँ कार्य करने वाले साधुजनों का पूरा ब्यौरा था। सचमुच यह कार्य साधु-संतों से ही होने का है। भारतवर्ष के कोटि-कोटि लोग जिस श्रद्धा से उनकी बात सुनते हैं, उतनी और किसी की नहीं। उसका एक कारण भी है और वह यह है कि वे जो कहते हैं, उसका अपने जीवन में पालन करते हैं। वे शिक्षा अणुव्रत की देते हैं और स्वयं महाव्रतों पर चलते हैं। दूसरे सभी लोगों में कथनी और करनी का वह आदर्श नहीं मिलता, अतः उनकी कही बात उतनी कारगर नहीं होती।

किसी भी देश की महत्ता और सफलताओं का मूल्यांकन केवल भौतिक उपलब्धियों से ही नहीं किया जाता, बल्कि नैतिक धरातल से ही लगाया जाता है। भारतीय संस्कृति का चिरकाल से यही दृष्टिकोण रहा है और स्वाधीनता के उपरान्त इसी लक्ष्य को मूर्त रूप देने की आवश्यकता थी। इस दिशा में मनोयोग से काम करने वाले महानुभावों में आचार्यश्री तुलसी तथा इनके द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन ने अन्य संस्थाओं के लिए एक आदर्श स्थापित किया है। अतः ऐसे समाज सुधारक भारतीय संस्कृति के महान् विद्वान् और भारतीय दर्शन के अधिकृत व्याख्याता के आचार्यत्व के पच्चीस वसन्त पूरे हो जाने के उपलक्ष में जो अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, वह न केवल आभार प्रदर्शन मात्र ही है, अपितु इससे हमें सतत कर्मरत रहने और राष्ट्र में भावनात्मक ऐक्य स्थापित करने की प्रेरणा भी प्राप्त होगी।

परम साधक तुलसीजी

श्री रिषभदास रांका
सम्पादक, जैन जगत्

बारह साल पहले मैं आचार्यश्री तुलसीजी से जयपुर में मिला था। तभी से परस्पर में आकर्षण और आत्मीयता बराबर बढ़ती रही है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से इच्छा रहते हुए भी मैं जल्दी-जल्दी नहीं मिल पा रहा हूँ, फिर भी निकटता का सदा अनुभव होता रहता है और आज भी उस अनुभव का आनन्द पा रहा हूँ।

धवल समारोह उन पर आचार्य-पद का उत्तरदायित्व प्राप्त होकर पच्चीस वर्ष बीतने के निमित्त से मनाया जा रहा है, यही इसकी विशेषता है। व्यक्ति का जन्म कब हुआ और उसकी कितने साल की उम्र हुई, यह कोई महत्त्व की बात नहीं है। पर उसने अपने जीवन में जो कुछ वैशिष्ट्य प्राप्त किया, कोई विशेष कार्य किया हो, वही महत्त्वपूर्ण बात है।

इस जिम्मेदारी को सौंपते समय उनकी आयु बहुत बड़ी नहीं थी। उनके सम्प्रदाय में उनसे वयोवृद्ध दूसरे संत भी थे; परन्तु उनके गुरु कालूगणीजी ने योग्य चुनाव किया; यह तुलसीजी ने आचार्य-पद के उत्तरदायित्व को उत्तम प्रकार से निभाया; इससे सिद्ध हो गया।

कुछ आशंकाएं

वैसे किसी तीर्थंकर, अवतार, पैगम्बर, मसीहा ने जो उपदेश दिया हो उसकी समयानुसार व्याख्या करने का कार्य आचार्य का होता है। उसे तुलसीजी ने बहुत ही उत्तम प्रकार से किया, यह कहना ही होगा। कुछ लोग उन्हें प्राचीन परम्परा के उपासक मानते हैं और कुछ उस परम्परा में क्रान्ति करने वाले भी। पर हम कहते हैं कि वे दोनों भी जो कहते हैं, उसमें कुछ न कुछ सत्य जरूर है, पर पूर्ण सत्य नहीं है। तुलसीजी पुरानी परम्परा या परिपाटी चलाते है, यह ठीक है; पर शाश्वत सनातन धर्म को नये शब्दों में कहते हैं, यह भी असत्य नहीं है। कई लोगों को इसमें छल दिखाई देता है तो कईयों को दम्भ। उनका कहना है कि यह सब अपना सम्प्रदाय बढ़ाने के लिए है। लेकिन तुलसीजी छल या माया का आश्रय लेकर अपने सम्प्रदाय को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हों, ऐसा हमें नहीं लगता। क्योंकि उनमें हमें इस समझ के दर्शन हुए हैं कि कुछ व्यक्तियों को तेरापंथी या जैन बनाने की अपेक्षा जैन धर्म की विशेषता का व्यापक प्रचार करना ही श्रेयस्कर है। उनमें इच्छा जरूर है कि अधिक लोग नीतिवान् चरित्रशील व सद्गुणी बनें। यदि व्यापक क्षेत्र में काम करना हो तो सम्प्रदाय-वृद्धि का मोह बाधक ही होता है।

यदि आज कोई किसी को अपने सम्प्रदाय में खींचने की कोशिश करता है तो हमें उस पर तरस आता है। लगता है कि वह कितना बेसमझ है और तत्त्वों के प्रचार की एवज में परम्परा से चली आई रूढ़ियों के पालन में धर्म-प्रचार मानता है। हमें उनमें ऐसी संकुचित दृष्टि के दर्शन नहीं हुए। इसलिए हम मानते हैं कि उनमें छल सम्भव नहीं है।

दंभ या प्रतिष्ठा-मोह के बारे में भी कभी-कभी चर्चा होती है। उनके प्रतिकूल विचार रखने वाले कहते हैं कि वे जैसा जो आदमी हो, वैसी बात करते हैं। मन में एक बात हो और दूसरा भाव प्रकट करना दंभ ही तो है। यदि इतने साल परिश्रम कर यही साधना की हो तो रत्न को चन्द रुपयों में बेचने जैसा है ही। जब साधना के मार्ग में दंभ से बढ़ कर कोई दूसरा बाधक दुर्गुण न हो, तब क्या तुलसीजी जैसा साधक—विकास मार्ग का प्रतीक—इसी दंभ में उलझ जायेगा, विश्वास नहीं

होता। हमने देखा है कि उनसे चर्चा करने के लिए आने वालों में कई बहुत उत्तेजित होकर ऐसी बातें भी कह बैठते हैं जो सहसा सभ्य और संस्कारी व्यक्ति के मुँह से नहीं निकल सकतीं, फिर भी वे गरम नहीं होते, उन्हें उत्तेजित होते हमने नहीं देखा। यह शान्ति साधना द्वारा प्राप्त है या दिखावा? हमारी यह हिम्मत नहीं कि हम उसे दिखावा कहें।

रही प्रतिष्ठा या बड़प्पन की भूख की बात, सो इस विषय में कई अच्छे लोगों के मन में गलतफहमी है कि उनके शिष्य बड़े-बड़े लोगों को लाकर उनका इतना अधिक प्रचार क्यों करते हैं? क्या यह बात आत्म-विकास में लगे हुए साधक के लिए उचित है? इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं है। आज विज्ञापन का युग है। अच्छी बात भी बिना प्रचार के आगे नहीं बढ़ती। यदि अपनी अच्छी प्रवृत्तियों या आन्दोलन के प्रचार के हेतु यह सब किया जाता हो तो क्या उसे अयोग्य या त्याज्य माना जा सकता है?

प्रतिष्ठा का मोह ऐसा है, जिसका त्याग करता हुआ दिखने वाला कई बार उसका त्याग उससे अधिक पाने की आशा से करता है। दूसरे पर आक्षेप करते समय हम अपना आत्म-निरीक्षण करें, तो पता लगेगा कि हमारी कहनी और करनी में कितना अन्तर है। हमें कई बार अपने-आपको समझने में कठिनाई होती है। लोकैषणा को त्यागने का प्रयत्न करने वाले ही जानते हैं कि ज्यों-ज्यों बाह्य त्याग का प्रयत्न होता है,त्यों-त्यों वह अन्तर में जड़ जमाता है। यह बात अपना मानसिक विश्लेषण,अपनी वृत्तियों का निरीक्षण-परीक्षण करने वाला ही जानता है। कई बार त्याग किये हुए ऐसा दिखाई देने वाले के हृदय में भी उसकी कामना होती है तो कई बार बाहर से दी हुई प्रतिष्ठा का भी जिसके हृदय पर असर न हुआ हो ऐसे साधक भी पाये जाते हैं। इसलिए तुलसीजी के हृदय में प्रतिष्ठा का मोह है या धर्म-प्रसार की चाह, इसका निर्णय हम जैसों को करना कठिन है, इसलिए इस बात को उन्हीं पर छोड़ दे, यही श्रेष्ठ है।

कर्मठ जीवन

उन्होंने जो धवल समारोह के निमित्त से वक्तव्य दिया, वह हमने देखा। वह भाषा दिखावे की नहीं लगती, हृदय के उद्गार लगते हैं। हमारी जब-जब बात हुई, हमने जो चर्चा की, वह आन्तरिक और साधना से सम्बन्धित ही रही है। हाँ, कुछ समाज से सम्बन्धित होने से सामाजिक चर्चा भी हुई, पर अधिकांश से साधना सम्बन्धित होती रही है। इसलिए हम उन्हें 'परम साधक' मानते आये हैं और कोई अब तक ऐसा प्रसंग उपस्थित नहीं हुआ कि हमें अपने मत को बदलना पड़ा हो। हमें उनमें कई गुणों के दर्शन हुए। ऐसी संगठन-चातुरी, गुणग्राहकता, जिज्ञासावृत्ति, परिश्रमशीलता, अध्यवसाय व शान्ति बहुत कम लोगों में पाई। हमने प्रत्यक्ष में उन्हें बारह-बारह, चौदह-चौदह घण्टे परिश्रम करते देखा है। कई बार हमने उनके भक्तों से कहा कि इस प्रकार वे उन पर अत्याचार न करें। वे सबेरे चार बजे उठ कर रात को ग्यारह बजे तक बराबर काम करते हैं, लोगों से चर्चा या वार्ता होती रहती है। हमने देखा न तो दिन को वे आराम करते हैं और न अपने साधुओं को करने देते हैं। ध्यान, चिन्तन, अध्ययन, व्याख्यान, चर्चा चलती ही रहती है। फिर जैन साधुओं की चर्या ऐसी होती है जिसमें स्वावलम्बन ही अधिक रहता है। सभी धार्मिक क्रियाएं चलती रहती हैं। इतने परिश्रम के बाद भी सन्तुलन न खोना कोई आसान बात नहीं है। कोई उनके साथ दो-चार रोज रहकर देखे तभी पता चल सकेगा कि वे कितने परिश्रमी है और यह बिना साधना के संभव नहीं है।

उन्होंने अपने साधुओं तथा साध्वियों को पठन-पाठन, अध्ययन तथा लेखन में निपुण बनाने में काफी परिश्रम और प्रयत्न किये। उनके साधु केवल अपने सम्प्रदाय या धर्म ग्रन्थों या तत्त्वों से ही परिचित नहीं, पर सभी धर्मों और वादों से परिचित हैं। उन्होंने कई अच्छे व्याख्याता, लेखक, कवि, कलाकार तथा विद्वानों का निर्माण किया है। केवल साधुओं को ही नहीं, श्रावक तथा श्राविकाओं को भी प्रेरणा देकर आगे बढ़ाया है।

आचार्य का कार्य

राजस्थान और राजस्थान में भी थली जैसा प्रदेश, ऐसा समझा जाता है, जहाँ पुराने रीति-रिवाज और रूढ़ियों का ही प्राबल्य है। उस राजस्थान में पर्दा तथा सामाजिक रीति-रिवाजों को बदलने की प्रेरणा देना सामान्य बात नहीं है, पर

अत्यन्त कठिन कार्य है। उन्होंने पर्दा प्रथा तथा सामाजिक कुरीतियों के प्रति समाज को सजग कर नया मोड़ दिया है। जैसे प्रगतिशील युवकों को लगता है कि वही पुरानी दवाई नई बोतल में भरकर दे रहे हैं, उसी तरह परम्परावादियोंको लगता है कि साधुओं का यह क्षेत्र नहीं, यह तो श्रावकों का—गृहस्थों का काम है। उनका क्षेत्र तो धार्मिक है। वे इस झंझट में क्यों पड़ते हैं। पर प्रगतिशील तथा परम्परावादियों के सिवा एक वर्ग ऐसे लोगों का भी है जो प्राचीन संस्कृति में विश्वास या निष्ठा रखते हुए भी अच्छी बात जहाँ से भी प्राप्त हो, लेना या ग्रहण करना श्रेयस्कर मानता है। उन्हें ऐसा लगता है कि तुलसीजी आचार्य है और आचार्य का कार्य है, धर्म की समयोपयोगी व्याख्या करने का, सो वे कर रहे हैं।

उन्होंने केवल जैनियों के लिए ही किया है, सो बात नहीं है। वे राष्ट्रीय दृष्टि से ही नहीं, अपितु मानव-समाज की दृष्टि से ही कार्य कर रहे हैं। अणुव्रत-आन्दोलन उसीका परिणाम है। अणुव्रत-आन्दोलन मानव-समाज जिन जीवन-मूल्यों को भुला रहा था, उसे स्थापित करता है। मानव का प्रारम्भ से सुख-प्राप्ति का प्रयत्न रहा है। ऋषि-मुनि, संत-साधक और मार्ग-द्रष्टा तीर्थंकर यह बताते आये हैं कि मनुष्य सद्गुणों को अपनाने से ही सुखी हो सकता है। सुख के भौतिक या बाह्य साधनों से वह सुखी होने का प्रयत्न करता तो है, लेकिन वे उसे सुखी नहीं बना सकते। सुखी बना जा सकता है, सद्गुणों को अपनाने से। अणुव्रत उसे सच्ची दृष्टि देता है। केवल किसी बात की जानकारी होने मात्र से काम नहीं चलता, पर जो ठीक बात हो, उसे जीवन में उतारने का प्रयत्न हो, विचारों को आचार की जोड़ मिले, तभी उसका उचित फल प्राप्त होता है। अणुव्रत केवल जीवन की सही दिशा नहीं बताता, पर सही दिशा में प्रयाण करने का संकल्प करवाता है और प्रयत्नपूर्वक प्रयाण करवाता है।

शुभ की ओर प्रयाण

भारत में सदा से जीवन-ध्येय बहुत उच्च रहा है, पर ध्येय उच्च रहने पर यदि उसका आचार संभव न रहे तो वह ध्येय जीवनोपयोगी न रह कर केवल वन्दनीय रह जाता है। पर अणुव्रत केवल उच्च ध्येय, जिसका पालन न हो सके, ऐसा करने को नहीं कहता। पर वह कहता है, उसकी जितनी पात्रता हो, जो जितना ग्रहण कर सके, उतना करे। प्रारम्भ भले ही अणु से हो, पर जो निश्चय किया जाये, उसके पालन में दृढ़ता होनी चाहिए। इस दृष्टि से अणुव्रत शुभ की ओर प्रयाण कर दृढ़तापूर्वक उठाया हुआ पहला कदम है।

मनोवैज्ञानिक जानते हैं कि संकल्प पूरा करने पर आत्म-विश्वास बढ़ता है और विकास की गति में तेजी आती है। इसलिए अणुव्रत भले ही छोटा दिखाई पड़े, लेकिन जीवन-साधना के मार्ग में महत्त्वपूर्ण कदम है। इस दृष्टि से आचार्यश्री तुलसीजी ने अणुव्रत को नये रूप में समाज के सन्मुख रख कर उसके प्रचार में अपनी तथा अपने शिष्य-समुदाय और अनुयायियों की शक्ति लगाई। यह आज के जीवन के सही मूल्य भुलाये जाने वाले जमाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। यदि इस आन्दोलन पर वे सारी शक्ति केन्द्रित कर इसे सफल कर सके तो केवल अपने धर्म या सम्प्रदाय का ही नहीं, अपितु मानव-जाति का बहुत बड़ा कल्याण कर सकते हैं। किन्तु हमने देखा है कि आन्दोलन को जन्म देने वाले या शुरू करने वाले जब विभिन्न प्रवृत्तियों में शक्ति को बाँट देते हैं, तब वह कार्य चलता हुआ दिखाई देने पर भी वह प्राणरहित, परम्परा से चलने वाली रूढ़ियों की तरह जड़ बन जाता है।

भारत का महान् अभियान

यदि अणुव्रत-आन्दोलन को सजीव तथा सफल बनाने के उद्देश्य से आचार्यश्री अपना सारा ध्यान उस पर केन्द्रित कर पूरी शक्ति से इस कार्य को करेंगे तो वह भारत का महान् अभियान होगा, जो अशान्त संसार को शान्त करने का महान् सामर्थ्य रखता है।

हमारा तुलसीजी की शक्ति में सम्पूर्ण विश्वास है। वे इस महान् अभियान को गतिशील बनाने का प्रयास करें, जिससे अशान्त मानव शान्ति की ओर प्रस्थान कर सके।

हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आचार्य तुलसीजी को दीर्घायु तथा स्वास्थ्य प्रदान कर, ऐसी शक्ति दें, जिससे उनके द्वारा अपने विकास के साथ-साथ समाज का अधिकाधिक कल्याण हो।

जन-जन के प्रिय

मुनिश्री मांगीलालजी 'मधुकर'

आचार्य तुलसी की यात्रा का इतिहास अणुव्रत-आन्दोलन के आरम्भ से होता है। यों तो आचार्यश्री की पद-यात्रा जीवन-भर ही चलती है, परन्तु यह यात्रा उससे कुछ भिन्न थी। पूर्ववर्ती यात्रा में स्व-साधन का ही विशेष स्थान था, पर इसमें 'स्व' के आगे 'पर' और जुड़ गया। इसलिए जनता की दृष्टि में इसका विशेष महत्त्व हो गया।

इसके पीछे बारह वर्ष का लम्बा इतिहास है। प्रस्तुत निबन्ध में कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख करना चाहूंगा, जिनसे आचार्यश्री तुलसी तेरापंथ के ही नहीं, बल्कि जन-जन के आराध्य और पूज्य बन गये हैं।

आचार्यश्री यात्रा प्रारम्भ करने के बाद राजस्थान, बम्बई, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल तथा पंजाब आदि देश के अनेक भागों में करीब पन्द्रह-सोलह हजार मील घूम चुके है। प्रतिवर्ष भारत के ही नही, अपितु विदेशों के भी अनेक पर्यटक यहाँ पर आते हैं। उनके सामने पथवर्ती हरे-भरे लहलहाते खेत, कलकल वाहिनी स्रोतस्विनियाँ, गगनचुम्बी पर्वत श्रेणियाँ, प्राकृतिक दृश्यों की बहारें और अनेक दर्शनीय स्थलों की मनोरमता का अनिर्वचनीय आनन्द लूटने का ही प्रमुख ध्येय होता है, परन्तु आचार्यश्री के लिए यह सब गौण है। वे इन सब बाहरी दृश्यों की अपेक्षा मानव के अन्तःस्थल में छिपे सौन्दर्य-दर्शन को मुख्य स्थान देते हैं। दस मील चले या पन्द्रह मील, स्थान पर पहुँचते ही बिना विश्राम स्थानीय लोगों की समस्याओं का अध्ययन कर, उचित समाधान देना उन्हें विशेष रुचिकर है। वे थोड़े समय में अधिक कार्य करना चाहते हैं, अतः कहीं एक दिन, कहीं दो दिन और कहीं-कहीं तो एक ही दिन में तीन-चार और पाँच-पाँच स्थानों पर पहुँच जाते हैं। लोग अधिक रहने के लिए आग्रह करते हैं; पर उनका उत्तर होता है—जो कुछ करना है, वह इतने समय में ही कर लो। दर्शक को आश्चर्य हुए बिना नही रहता, जब वे अपनी प्रभावोत्पादक शैली से अनेक विकट समस्याओं का बहुत थोड़े समय में ही समाधान दे देते हैं।

मामला एक दिन में सुलझ गया

आचार्यश्री 'सेमड़' (मेवाड़) गाँव में पधारे। उन्होंने सुना उस छोटे-से गाँव में अनेक विग्रह हैं। वे भी दस-दस और पन्द्रह वर्षों से चल रहे हैं। भाई-भाई के साथ मन-मुटाव, चाचा-भतीजे, बाप-बेटे, श्वसुर-जमाई और सास-बहुओं में झगड़ा है। वे इस कलह को दूर करने के लिए कटिबद्ध हो गये। उस दिन आचार्यश्री के प्रतिश्याय का प्रकोप था। कण्ठ भी कुछ भारी थे, फिर भी उसकी परवाह किये बिना उस कार्य में जुट गये। एक-एक पक्ष की राम-कहानी सुनी, कोमल-कठोर शिक्षाएं दीं और भविष्य में क्या करना है, यह दिग्दर्शन किया। वादी-प्रतिवादियों का हृदय बदला। आचार्यप्रवर ने दोनों पक्षों को सोचने के लिए अवसर दिया। सायंकालीन प्रतिक्रमण के बाद पुनः दोनों पक्ष उपस्थित हुए और आचार्यश्री की साक्षी से परस्पर क्षमायाचना करने लगे। कल तक जो ३६ के अंक की तरह पूर्व-पश्चिम थे और जिनकी आँखें ही नहीं मिलती थीं, वे आज गले मिल रहे थे। अनेक पंच व न्यायाधीश जिन मामलों को वर्षों तक नहीं सुलझा सके थे, वे एक दिन में सुलझ गये। क्या वे परिवार इस उपकार को जीवन-भर भूल सकेंगे ?

यह धर्म स्थान है

आचार्यश्री के व्यक्तित्व में एक सहज आकर्षण है। वे जहाँ-कहीं भी चले जायें सहस्रों व्यक्तियों की उपस्थिति

सहजतया हो जाती है। गाँव चाहे छोटा हो या बड़ा, प्रवचन के समय स्थान पूर्ण न भरे, ऐसे अवसर कम ही आते हैं। आचार्यश्री के शब्दों में "कहाँ से आ जाते हैं इतने लोग। न धूप की परवाह है और न वर्षा की। पता लगते ही पन्द्रह-पन्द्रह मील से पैदल चले आते हैं। कितनी श्रद्धा है इन ग्रामीणों में। मैं बहुत सुनता हूँ कि आजकल लोगों में धार्मिक भावना नहीं रही, पर यह बात मैं कैसे मान लूं कि यह बात सही है।"

एक समय था जब कुछ पुराणपन्थियों ने कहा—स्त्री और शूद्र को धर्म-श्रवण का अधिकार नहीं। आचार्यश्री की दृष्टि में यह गलत है। धर्म पर किसी व्यक्ति या जाति विशेष की मुहर छाप नहीं है। वह तो जाति-पाँति और वर्ग के भेदभावों से ऊपर उठा हुआ है। क्या वृक्षों की छाया, चन्द्रमा की चांदनी और सरिता का शीतल जल सामान्य रूप से सभी के लिए उपयोगी नहीं होता? उसी तरह धर्म भी किसी कठघरे में क्यों बँधा रहे। जितना अधिकार एक महाजन को है, उतना ही अधिकार एक हरिजन को भी है।

अभी-अभी मारवाड़ यात्रा के दौरान में आचार्यश्री 'सणया' नामक गाँव में थे। प्रवचन स्थल पर स्थानीय लोगों ने एक जाजम बिछाई। आचार्यप्रवर परीक्षार्थी साधु-साध्वियों को अध्ययन करवा रहे थे, अतः एक साधु ने प्रवचन आरम्भ किया। सभी वर्गों के लोग आ-आकर जमने लगे। एक मेघवाल भाई भी आया और उस जाजम पर बैठ गया। तथाकथित धार्मिकों को यह कैसे सह्य होता। वे उठे, आँखें लाल करते हुए उस भाई के पास पहुँचे और बुरा-भला कहते हुए वहाँ से उठने के लिए उसे बाध्य करने लगे। इस हरकत से उस भाई की आँखों में आँसू आ गये। आचार्यप्रवर सामने से सारा दृश्य देख रहे थे। उनका कोमल हृदय पसीज उठा। अध्यापन में मन नहीं लगा। तत्काल प्रवचन स्थल पर पहुँचे और कहने लगे—भाइयो, यह क्या है? एक व्यक्ति को अस्पृश्य मान कर उसका अपमान करना कहाँ तक उचित है। धर्म-स्थान में इस प्रकार का अनुचित बर्ताव, यह तो साधुओं का अपमान है। यह कोई आपकी साज-सज्जा देखने नहीं आया है अपितु संतों का प्रवचन और आध्यात्मिक बातें सुनने के लिए आया है। उसे नहीं सुनने देना कितना बड़ा अपराध है!

एक स्थानीय पंच बोला—पर यह जाजम तो आगन्तुक भाइयों के लिए बिछाई थी। यह बैठा ही क्यों। इसे क्या अधिकार था?

आचार्यश्री—किसने कहा तुम इसे बिछाओ। यह आपकी है, आप चाहे जिसे बिठाएं, किन्तु सार्वजनिक स्थान पर बिछा कर किसी व्यक्ति विशेष को जातीयता के आधार पर वंचित करना, शान्ति से बैठे हुए को अनुचित तरीके से उठाना, बिल्कुल गलत है। यहाँ आपके पंचायत भी तो होगी? उसमें जितने पंच हैं, क्या सारे महाजन ही हैं?

पंच—नहीं, एक हरिजन भी है।

आचार्यश्री—तो क्या पंचायत के समय उसके बैठने की अलग व्यवस्था होती है?

पंच—नहीं महाराज! वहाँ तो सभी साथ में ही बैठते हैं।

आचार्यश्री—तो फिर इस बेचारे ने आपका क्या बिगाड़ा है। इसके साथ इतना भेदभाव क्यों? याद रखो, यह धर्म-स्थान है।

इस प्रकार आचार्यश्री ने अनेक तर्क-वितर्कों से अस्पृश्यता की ओट में होने वाली घृणा की भावना को दूर करने पर बल दिया। प्रवचन समाप्ति पर घटना से सम्बन्धित व्यक्ति आये और इस बात के लिए माफी माँगने लगे। वह मेघवाल भाई तो गद्‌गद् हो रहा था।

मैं निहाल हो गया

बहुधा सुना जाता है कि आजकल लोगों पर धार्मिक उपदेशों का असर नहीं होता। ठीक है, हो भी कैसे जब तक उपदेश के पीछे वक्ता का जीवन न बोले। वक्ता में अगर आस्था हो तो श्रोता का जीवन तो पल भर में बदल जाये। क्या दयाराम की घटना इस तथ्य को अभिव्यक्त नहीं करती। दयाराम की उम्र साठ वर्ष से ऊपर होगी। पर अब भी पति-पत्नी मिलकर हाथों से एक कुआँ खोदने में व्यस्त हैं। लम्बा कद, गठीला बदन, बड़ी-बड़ी डरावनी आँखें व बिखरे हुए बाल देख कर हरेक व्यक्ति तो उसे बतलाने का भी सम्भवतः साहस न करे। वह अपने जीवन में अनेक लोगों की तिजोरियाँ

उड़ा चुका था। यही उसका प्रमुख धन्धा है।

अपने पार्श्ववर्ती गाँव में आचार्यश्री का शुभागमन सुन कर दर्शनों की उत्कण्ठा जगी तो चल पड़ा। उपदेश सुना, अच्छा लगा। रात्रिभर चिन्तन चला। सवेरे आचार्यश्री उसी की ढाणी के पास से गुजरे। पैर पकड़ लिये और कहने लगा—थोड़ा-सा दूध तो लेना ही पड़ेगा। आप मेरे गुरु हैं। मैं आपकी साक्षी से आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब से चोरी नहीं करूँगा, चाहे सौ मन सोना भी क्यों न हो, मेरे लिए हराम है। आचार्यप्रवर ने नियम दिलाते हुए दूध लिया तो वह हर्ष विह्वल हो गया। उसके मुँह से निकले शब्द 'मैं निहाल हो गया' अब भी मेरे कानों में गुनगुना रहे हैं।

बाबा तो बोलता-देखता है

आचार्यश्री 'पदराडे' में थे। इधर-उधर की बस्तियों के भीलों को पता लगा कि एक बड़े बाबा आये हैं, तो करीब पचास भाई इकट्ठे होकर आये और बाहर से ही आचार्यश्री को देखने लगे। वे कुछ सकुचा रहे थे। सम्भवतः सोच रहे थे कि बाबा हमारे से बात करे या न करे। आचार्यश्री ने उन्हें देखा तो उनका परिचय पूछने लगे। आचार्यश्री की मृदु-वाणी से वे इतने मुग्ध बने कि वहीं पर जम गये और कहने लगे—बाबा, हमें भी कुछ रास्ता बतलाइये।

आचार्यश्री ने बुराइयों के बारे में कहा, जो उनके जीवन में व्याप्त थीं तो एक बूढ़ा भील खड़ा होकर कहने लगा—'वाह! वाह! बाबा तो बोलता-देखता है।' तत्रस्थ श्रोताओं को आश्चर्य हुआ, जब उन भीलों ने परस्पर विचार-विमर्श कर वर्षों से पलने वाली बुराइयों को तिलांजलि देते हुए शिकार, शराब और महीने में एक दिन से अधिक मांस खाने का त्याग कर दिया और यह विश्वास दिलाया कि हम हमारी जाति के अन्य व्यक्तियों को भी इन उपदेशों पर चलने के लिए प्रेरित करेंगे।

साहित्य और सेठ

बच्चों में अच्छे संस्कार आएं, यह सभी को काम्य है, पर वे कैसे आएं, यह कोई नहीं सोचता। वे क्या करते है, कहाँ रहते हैं, क्या पढ़ते हैं, इस पर ध्यान दिये बिना इस स्थिति में परिवर्तन आ जाये, यह कम सम्भव है। इस कार्य को सम्पादित करने में अभिभावकों का आदेश-निर्देश तो मुख्य है ही, सत्साहित्य भी कम महत्त्व नहीं रखता। पर व्यापारी समाज का साहित्य से क्या वास्ता! इन वर्षों में आचार्यश्री की वरद प्रेरणा पाकर जहाँ अनेक बालक व युवक इस ओर रुचि लेने लगे हैं, वहाँ अनेक प्रौढ़ भी इस ओर आकर्षित हुए हैं।

आचार्यप्रवर 'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' पढ़ा रहे थे। एक भरे-पूरे परिवार वाले सेठजी आये। वे अच्छे तत्त्वज्ञ और समझदार श्रावक हैं। पुस्तक को देख कर पूछने लगे—कौनसी पुस्तक है?

आचार्यश्री—'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर'। स्वामीजी का समग्र साहित्य ऐसे तीन भागो में द्विशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हुआ है। पढ़ा है या नहीं? घर पर तो होगा?

सेठ—नहीं, गुरुदेव। मैं पोते—स्वयं तो पढ़ ही नहीं सकता, क्या करूँ मँगा कर!

आचार्यश्री ने पोते शब्द को दूसरे अर्थ में प्रयुक्त करते हुए कहा—पोते, स्वयं नहीं पढ़ सकते तो क्या हुआ पोते (पौत्र) तो पढ़ सकते हैं? पर कौन ध्यान दें। हजारों रुपये के गहने व अन्य आडम्बर की चीजें मँगा देंगे, पर साहित्य नहीं। घर पर रहने से कहीं कोई पढ़ ले तो? कहते हैं, बच्चों में संस्कार नहीं पड़ते। कहाँ से आये संस्कार? उन्हें अपने घर के साहित्य का ही पता नहीं है।

सेठ—गुरुदेव! आप ठीक फरमाते हैं। ऐसी ही बात है। घर पर रहने से तो कोई पढ़ेगा ही। इस छोटी-सी घटना से उसमें साहित्य के प्रति काफी रुचि जागृत हो गई। अब वे बहुधा वाचन के समय अनुपस्थित नहीं रहते और साहित्य भी अपने पास रखने लगे हैं।

अपना अहोभाग्य समझूँगा

महता जी अच्छे पढ़े-लिखे और प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कस कर मानने वाले व्यक्ति हैं। वे अणुव्रत-

आन्दोलन के माध्यम से आचार्यश्री के सम्पर्क में आये, एक बार नहीं अनेक बार। सूक्ष्मता से आचार-विचारों का अध्ययन किया और अणुव्रती बन गये। उन पर अणुव्रतों की गहरी छाप है। ग्राहक को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता, जब वह उनकी दुकान पर पैर धरते ही निम्नोक्त हिदायतें पढ़ता है :

१. भाव सबके लिए एक है जो कि प्राइस कार्ड पर लिखे हुए हैं।

२. भाव में फर्क आने पर तीन दिन के दरम्यान कपड़ा वापस लेकर पूरे दाम लौटाने का नियम है।

३. खरीद कर जाने के बाद भी मित्र-गण नापसन्द कर दें तो कपड़ा वापस लेकर दाम लौटाने की सुविधा है।

ऐसा केवल लिखा ही नहीं गया है, इसे अक्षरशः क्रियान्वित किया जाता है। यही कारण है कि उनकी दुकान की प्रतिष्ठा प्रतिदिन वृद्धिगत है। इस बार उन्होंने आचार्यश्री की पद-यात्रा में साथ रहने का कार्यक्रम बनाया। वे केवल १५ दिवस साथ में रहे, पर इस दौरान में आचार्यश्री द्वारा प्रतिपादित तत्त्वों का खूब सूक्ष्मता से अध्ययन किया। अणुव्रतों का प्रचार तो उनका मुख्य ध्येय ही बन गया है। वे जाने लगे तो उनका जी भर आया, पर जाना जरूरी था, अतः विवश थे। दो दिन बाद अपनी इस यात्रा की चर्चा करते हुए अपने एक मित्र को पत्र लिखा उसमें उनके मानसिक भावों की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि सारी जिन्दगी में सिर्फ ये १५ दिन ही काम के रहे हैं, बाकी सब निकम्मे। जो कृपा गुरुदेव की मुझ पर इन दिनों रही, उसको जन्म-जन्मान्तर भी भूल नहीं सकता। मेरी तरफ से गुरुदेव के चरणों में प्रतिज्ञा पत्र अर्ज कर देना कि मैं तेरापंथ तत्त्व, अणुव्रत-आन्दोलन, नया मोड़ व भविष्य में आपके किसी भी आदेश पर अपना सब कुछ अर्पण करने में अपने आपका अहोभाग्य समझूंगा।

आपका

चन्दनमल महता

लो बाबा इसे ही स्वीकार करो

आचार्यप्रवर जहाँ कहीं भी जायें, अपने कार्य को गौण नहीं करते। उनका यह ध्येय रहता है कि कोई भी व्यक्ति उनके पास न तो खाली हाथ आये और न खाली हाथ जाये। इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें कोई अर्थ चाहिए। उसे तो वे छूते भी नही। जब उन्होंने मेवाड़ यात्रा के दौरान में आदिवासी क्षेत्र में प्रवेश किया तो बहुत से गरासियों (भीलों) ने उनका स्वागत किया। आचार्यश्री ने मन्द-मन्द मुस्कराहते हुए पूछा—अरे भाई! खाली हाथ ही आये हो या भेंट के लिए भी कुछ लाये हो?

सब एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। एक भाई कुछ पैसे लेकर आगे आया और कहने लगा—बाबा मेरे पास तो इतने ही पैसे हैं। आप स्वीकार कीजिये।

स्मितवदन आचार्यश्री ने कहा—बस इतने ही? इस छोटी-सी भेंट से क्या होगा? मैं तो ऐसी भेंट चाहता हूँ जो तुम्हें सबसे अधिक प्रिय हो।

वह बेचारा असमंजस में पड़ गया। आखिर जब आचार्यश्री ने सारा भेद खोला तो वह प्रसन्न होकर बोला—बाबा! और तो कोई लत नहीं है एक शराब जरूर पीता हूँ।

आचार्यश्री—कितनी पीते हो।

व्यक्ति—बाबा! कितनी का मत पूछिये, वर्ष में पाँचसौ, सातसौ, हजार का कुछ भी पता नहीं है।

आचार्यश्री—भाई, शराब तो बहुत खराब है, अनेक बुराइयों की जड़ है। इसको तुम इतना प्रश्रय क्यों देते हो? जिस अर्थ को प्राप्त करने के लिए दिन-भर कड़ी मेहनत कर खून-पसीना एक करते हो, उसे यों बरबाद करो, क्या यह उचित है? क्या मैं तुमसे यह भेंट माँग लूं?

कुछ देर तो वह सोचता रहा। आखिर पौरुष जागा, आगे आया और बोला—लो बाबा! इसे ही स्वीकार करो। मैं आपके चरण छूकर कहता हूँ कि अब इसकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखूंगा।

मैं तो मनुष्य हूँ

आचार्यश्री के जीवन में **जहा पुण्णस्स कत्थई, तहा तुच्छस्स कत्थई, जहा तुच्छस्स कत्थई, तहा पुण्णस्स कत्थई** यह महावीर की वाणी पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। वे किसी व्यक्ति को, वह छोटा या हीन है, इस दृष्टि से नहीं आँकते, किन्तु उसकी मनुष्यता का अंकन करते हैं। उनके सामने अन्य भेद अतात्त्विक हैं। वे मानवता को विभक्त देखना नहीं चाहते।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया—आप हिन्दू है या मुसलमान।

आचार्यश्री—भाई न तो मैं हिन्दू हूँ और न मुसलमान। क्योंकि अगर मुझे हिन्दू कहें तो मेरे सिर पर चोटी नहीं है और अगर मुसलमान कहें तो दाढ़ी नहीं है। अत: मैं तो मनुष्य हूँ और मनुष्यता का ही विकास चाहता हूँ।

जन-प्रियता के तीन सूत्र

व्यक्ति साधना का फल पाना चाहता है, क्योंकि वह उसे प्रिय है पर साधना के क्षेत्र में उतरते हुए सकुचाता है, क्योंकि उसमें कुछ बलिदान करना पड़ता है, वह उसे अभिप्रेत नहीं है। आचार्यश्री का अटल विश्वास है कि हमें कुछ कार्य करना है तो बाधाओं को पार करते हुए भी चलना होगा। याद रहे हीरे में तभी चमक आती है, जब वह खरसाण पर चढ़ता है। अत: आज की परिस्थितियों को देखते हुए आचारात्मक धर्म के साथ-साथ विचारात्मक धर्म को भी विकसित किया जाना चाहिए। हमारा है इसलिए सत्य है, यह आग्रह व्यक्ति की बुद्धि को कुंठित कर देता है। उसमें नये-नये अन्वेषणों की आशा आकाश कुसुम ही सिद्ध होगी। जो व्यक्ति चिन्तन के द्वार खुले रख कर सत्य का अन्वेषण करता है, उसके सामने कठिनाइयाँ टिक नहीं सकतीं, वे स्वयं कपूर हो जाती हैं। आचार्यश्री इसी के मूर्त रूप हैं। अगर संक्षेप में कहा जाये तो आचार्यश्री की जन-प्रियता के तीन सूत्र हैं :

१. आचार व विचारों में उच्चता।

२. अनाग्रह बुद्धि।

३. दूसरों के विचारों को सहने की क्षमता।

इस वर्ष उन्हें आचार्य पद प्राप्त किये पूरे २५ वर्ष सम्पन्न हो रहे हैं। इस बीच में उन्होंने सहस्रों व्यक्तियों का नेतृत्व किया है, लाखों व्यक्तियों को मार्ग-दर्शन दिया है व करोड़ों व्यक्तियों को अपने विचारों से लाभान्वित किया है। आज भारत में ही नहीं, विदेशी व्यक्तियों की जबान पर भी उनका नाम है। जनता के लिए उनके चरण-चिह्न मार्ग-दर्शन का कार्य कर रहे हैं, इसलिए वे आज जन-जन के प्रिय बन गये है।

अनुशासक, साहित्यकार व आन्दोलन-संचालक

श्री माईदयाल जैन, बी० ए० (आनर्स), बी० टी०

इस युग को ज्ञान-विज्ञान का युग कहते हैं और आज के साधारण से शिक्षित स्त्री-पुरुष का यह दावा है कि वह सु-सूचित (Well-informed) भी है, पर वास्तविकता इसके विपरीत ही है। इस बात का मुझे तब पता लगा जबकि अप्रैल सन् १९५० में आचार्यश्री तुलसी अपनी शिष्य-मण्डली सहित दिल्ली पधारे और मैंने उनके आने की बात जैन जनता से सुनी। वे बातें विपक्षीय आलोचना से पूर्ण थी। पर मैं मानूं कि जैन-समाज की प्रवृत्तियों में तीस वर्ष तक भाग लेने पर भी मैंने श्वेताम्बर तेरापंथ या आचार्यश्री तुलसी का नाम नहीं सुना था। उनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञान न था। इस अज्ञान से मुझे दुःख ही हुआ।

और यदि मैं यहां यह कह दूं कि जैन-समाज के भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय वालों में आज भी इतनी विलगता है कि वे एक-दूसरे के बारे में बहुत कम जानते हैं, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। हमारे ज्ञान की यही स्थिति दूसरे धर्मों के सम्बन्ध में है। यह है हमारे ज्ञान की सीमा! इस स्थिति को बदलने के लिए परस्पर अधिक मेल-जोल बढ़ाना होगा।

और मैं ठहरा उग्र सुधारक, बुद्धिवादी तथा लेखक। पर श्रद्धा, धर्म-प्रेम तथा जिज्ञासा की मुझमें न तब कमी थी, न अब है। इसलिए मैं उनके भाषण में गया। पास ही बैठा—बिल्कुल अनजान-सा, अज्ञात-सा। उनके भाषण की ओर तो मेरा ध्यान था ही, पर मेरी आँखें—पैनी आँखें—उनके व्यक्तित्व तथा उनके हृदय को जाँचने-पड़तालने की कोशिश कर रही थीं।

उनके तेजस्वी चेहरे, सुगठित गौर वदन, मँझले कद और आकर्षक चुम्बकीय व्यक्तित्व और उनके विद्वत्तापूर्ण सन्तुलित तथा संयत भाषण की मेरे मन पर अच्छी छाप पड़ी। मैं निराश नहीं हुआ, बल्कि उनकी तरफ खिंचा और उनसे फिर मिलने की तीव्र अभिलाषा लेकर घर लौटा।

यह थी मेरी उनसे पहली भेंट—साक्षात्, पर मौन; या यों कहिए कि यह था उनका प्रथम दर्शन।

और तब से आज तक तो मुझे उनसे दिल्ली, हिसार, पानीपत तथा सोनीपत में कई बार मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनसे बातें हुई हैं, उन्हें पास से देखा भी है। उनके कई शिष्य-साधुओं से मेरा व्यक्तिगत गहरा परिचय है और उनका तथा उनके योग्य विद्वान् मुनियों द्वारा रचित बहुत-सा साहित्य पढ़ा है। उनके द्वारा संचालित अणुव्रत-आन्दोलन को सब रूपों में मैंने देखा है, उसकी सराहना भी सुनी है और परोक्ष में उस आन्दोलन की आलोचना, जैन-अजैन दोनों से सुनी है। जैसे राष्ट्रपति आदि की आचार-सीमाएं हैं, वैसे जैन साधु तथा पट्टधर आचार्य के पद के अनुसार उन्हें कुछ आचार-मर्यादाएं निभानी होती है और उन सीमाओं में रह कर वे प्रशंसनीय काम कर रहे हैं। इसलिए उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ी है। उनके महत्त्व का मैं कायल हुआ हूँ और मैं उनको जैन-समाज और देश की गौरवपूर्ण, महान् विभूति मानता हूँ।

मैं उनके जीवन को इन तीन पहलुओं से देखता हूँ—१. जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के पट्टधर आचार्य, २. कला-प्रेमी तथा साहित्य-सेवी और ३. अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक तथा संचालक। किसी महात्मा के व्यक्तित्व को अलग बांटना कठिन है; क्योंकि वह तो एक ही है, पर विचार करने के लिए इस पद्धति में आसानी रहती है।

आचार्यश्री तुलसी ग्यारह वर्ष की बाल्यावस्था में दीक्षा लेकर जैन साधु हुए और ग्यारह वर्ष तपस्या, साधु जीवन तथा कठोर प्रशिक्षण के बाद और अपनी योग्यता पर अपने गुरु—आचार्य के द्वारा बाईस वर्ष की आयु में (वि०-

सं० १९९३) में आचार्य चुने गए और तब से अब तक, पच्चीस वर्षों से, अपने इस पद के उत्तरदायित्व तथा कर्तव्यों को बड़ी योग्यता से पूरा कर रहे हैं। इनके साधु तथा साध्वी शिष्य-मण्डल की संख्या सात सौ के लगभग है और अनुयायी श्रावक-श्राविकाओं की संख्या भी बड़ी है। तमाम साधु-साध्वियों के अनुशासन और समस्त तेरापंथ की धार्मिक प्रवृत्तियों का संचालन आप करते हैं। आज जबकि समस्त देश में राजनैतिक दलों, मंत्री-मण्डलों, दफ्तरों और कालेजों तथा विश्व-विद्यालयों में अनुशासन हीनता या अनुशासन कम होने की बात देख-सुन रहे हैं, तब क्या यह बात कम आश्चर्य की है कि उनके शासन के विरुद्ध कहीं कोई आवाज सुनाई नहीं देती। इस पद को जैन-समाज में इतनी सुन्दरता से चलाने का श्रेय जैन तेरापंथी समाज को ही है। ऐसी व्यवस्था जैन-समाज के दूसरे सम्प्रदायों में है ही नहीं, भारत के दूसरे सम्प्रायों में भी नहीं है। साधुत्व के साथ-साथ प्रेमपूर्ण शासकत्व के इस सम्मिलन से आज के शासक बहुत-कुछ सीख सकते हैं। अपने आधीन साधु-साध्वियों के शिक्षण, प्रशिक्षण, ज्ञानवर्द्धन तथा उनकी गुप्त योग्यताओं को उभारने में वे कितने दत्तचित्त तथा प्रयत्नशील हैं, इसका मुझे कुछ ज्ञान है। सन् १९५१ को दिन के दो बजे मैं पानीपत धर्मशाला में उनसे मिलने गया और तब मैंने देखा कि वे अपने कुछ शिष्यों को संस्कृत-ग्रंथ पढ़ा रहे थे। मैं यह देखकर चकित रह गया। मैंने उन्हें प्रातः चार बजे से रात के नौ-दस बजे तक भिन्न-भिन्न कार्यों में व्यस्त देखा है और यह दिनचर्या एक-दो दिन की नहीं, बल्कि नित्य की है। काम करने की इतनी अथाह शक्ति का कारण उनकी लगन समाज, धर्म तथा देश के लिए कुछ कर गुज़रने की तीव्र इच्छा ही हो सकती है।

जैन-समाज अपने विपुल साहित्य तथा कला-प्रेम के लिए प्रसिद्ध है। पर मानना पड़ेगा कि गत दो-चार सौ वर्षों में इस प्रवृत्ति में कमी ही आई है। किन्तु आचार्य तुलसी ने राजस्थान के अपने गृहस्थ अनुयायियों तथा साधु-साध्वियों में साहित्य-पठन, साहित्य-सर्जन और कला की प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है। उनके कई शिष्य आशुकवि, अच्छे वक्ता, लेखक, विचारक तथा चिन्तक हैं। अवधान या स्मृति के धनी भी कई साधु हैं और ये सब काम या इन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने का कार्य वही व्यक्ति कर सकता है, जिसे इन बातों में स्वयं रुचि हो, जो स्वयं इन गुणों से विभूषित हो। और ये साधु इन प्रवृत्तियों से समाज, साहित्य तथा कलाओं के लिए प्रशंसनीय योगदान दे रहे हैं।

और अब अन्त में उनके महत्वपूर्ण आन्दोलन 'अणुव्रत-आन्दोलन' के संचालक के सम्बन्ध में लिखना चाहूँगा। अणुव्रतों की कल्पना पूर्णतया जैन कल्पना है और वह गृहस्थों के वास्ते है। छोटे रूप में अहिंसा सत्य, चोरी न करने, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य को पालन करना ही अणुव्रत है। वे विभाज्य नहीं हैं, सबको पालन करना पड़ता है। पर आज के युग में जब मानव व्रतों, बन्धनों तथा नियमों से दूर भागता है, तब उसे अणुव्रतों की बात कह कर उसे व्रतों में स्थिर करना है। इसलिए आचार्यश्री ने इनके बहुत से भेद-प्रभेद करके उन्हें आज की स्थिति के अनुकूल बनाकर देश की करोड़ों जनता तथा विदेशों के रहने वालों के सामने नैतिक उत्थान के लिए रखा है। अपने-आपको तथा अपने सैकड़ों शिष्य तथा शिष्याओं को उसकी सफलता के लिए आन्दोलन में लगा दिया है। इस आन्दोलन की तुलना आचार्य विनोबा के 'भूमिदान आन्दोलन' तथा अमरीका वालों के 'नैतिक पुनरुत्थान आन्दोलन' (Moral Re-armament Movement) से की जा सकती है। मुझे मालूम हुआ है कि भारत के बुद्धिवादी तथा पत्रकार और राजनीतिज्ञ इसे शंका की दृष्टि से देखते थे, कुछ को आज भी शंका है, पर यह आचार्यश्री के सतत प्रयत्न का फल है कि यह आन्दोलन आज लोकप्रिय बन गया है। इस आन्दोलन की सफलता समय लेगी और इससे देश का लाभ ही होगा। पर इस आन्दोलन को स्थायी बनाने के लिए इसके संचालकों को इसके संचालन-प्रबन्ध को किसी महान् संस्था के अधीन करना होगा, जैसे कि गांधीजी अपनी प्रवृत्तियों को संस्था-आधीन कर देते थे। पर यह दूसरी बात है कि इस आन्दोलन के संचालक के रूप में आपने अपने सक्रिय तथा रचनात्मक कल्पनाशील व्यक्ति होने का परिचय दिया है।

आचार्यजी अभी पचास के इधर ही हैं। और यह आशा या कामना करना ठीक ही है कि आगामी पचास वर्षों में उनसे समाज, देश तथा धर्म को अत्यधिक लाभ होगा।

अवतारी पुरुष

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

भारत संतों का देश है। हमारे यहाँ एक से एक बढ़कर संत पैदा हुए हैं। उन्हीं की कृपा तथा प्रसादी से यह देश नैतिक, सामाजिक, तथा धार्मिक दृष्टि से सब देशों से महान् है। यह गर्व की बात है। यह मिथ्या अहंकार नहीं है। मैंने दो बार संसार का भ्रमण किया है। मैं उसी आधार पर यह बात दावे के साथ लिख रहा हूँ। पुलिस तथा जेल के महकमे से मेरा घना सम्बन्ध है। मैं अपराध शास्त्र का विनम्र सेवक हूँ। इसी नाते मैं कह सकता हूँ कि धनी-से-धनी, उग्र समाजवादी तथा वर्गवादी, प्रजातन्त्रीय तथा पूँजीवादी देशों में आज जितनी अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार है, उतना भारत में नहीं है। किन्तु संसार के दूषित वातावरण से हम कब तक बचे रह सकते हैं। हमको भी उसी गर्त्त में जाने की आशंका है। हम अभी तक सम्हले हुए हैं इसलिए कि अब भी बड़े-बड़े साधु संत जन्म लेकर हमको उँगली पकड़ कर सही रास्ते पर चला देते हैं।

सुमन्तभद्राचार्य हमें एक बड़ी सीख दे गए थे। वह थी मानवता की। मानवता के सेवक साधु के चरणों मे सिर नवाते समय एक चीज ध्यान में रखते हैं। वह यह कि उनके चरण वहाँ नहीं हैं, जहाँ दिखाई पड़ते हैं, वहाँ नहीं हैं, जहाँ हमारा सिर टिकता है। उनके चरण उन दीन दुःखी आत्माओं की टोलियों और बस्तियों में हैं, पीड़ित तथा पतित कहे जाने वालों की गोद में हैं, अतएव बड़े-बड़े धनी मानी लोग जो संतों की सेवा को ही सब कुछ समझते हैं, वे एक बड़ी भारी भूल करते हैं। संतों के कथन का पालन करने से उनकी असली सेवा होती है।

मैं ऊपर लिख आया हूँ कि हमारे देश में बड़े-बड़े संत सदैव आते रहे हैं—अवतार लेते रहे हैं। ऐसे अवतारी, पुरुष आचार्यश्री तुलसी भी हैं। मैंने जब कभी इनसे भेंट की, इनसे बातें की, इनका उपदेश सुना, मुझे बड़ी प्रेरणा मिली। मुझे ऐसा लगा कि उनके उपदेशों का अनुकरण कर हम अपने देश तथा समाज को बहुत ऊँचा उठा सकते हैं।

आचार्यश्री तुलसी जैसे संत भाग्य से पैदा होते हैं। जितना हो सके हम इनसे ले लें—उपदेश और इनकी विकट तपस्या का वरदान और उसी के सहारे अपनी नैया चलाएं।

आचार्यश्री के शिष्य परिवार में आशुकवि

मुनिश्री मानमलजी

शताब्दी के इस पाद में सारा विश्व ही नव-नव उन्मेषमूलक रहा। सभ्यता, संस्कृति और समाज-व्यवस्था की दृष्टि से मौलिक उन्मेष इस अवधि में हुए। घटनाक्रम की इस द्रुत गति के साथ तेरापंथ साधु-संघ में आचार्यश्री तुलसी के शासनकाल के पच्चीस वर्ष भी अप्रत्याशित उन्मेषक बने। अनेकों अभिनव उन्मेषों में एक उन्मेष आशुकवित्व का बना। कविता यों ही कठिन होती है और संस्कृत भाषा का माध्यम पाकर तो वह नितान्त कठोरतम ही बन जाती है। प्राचीन काल में भी कुछ एक मेधावी लोग ही संस्कृत के आशुकवि हुआ करते थे। तेरापंथ के इतिहास में मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री बुद्धमल्लजी, मुनिश्री नगराजजी आद्य आशुकवि हैं। इस नवीन धारा के प्रवाहित होने में आशुकविरत्न पं० रघुनन्दन शर्मा प्रेरक स्रोत बने हैं। उनका सहज और मधुरिम आशुकवित्व मेधावी मुनिजनों के कर्ण कोटर पर गुन-गुनाता-सा ही रहता था। मुनिजनों की स्फटिकोपम मेधा में उसका प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक ही था। प्रकृतिलब्ध माने जाने वाली आशुकविता अनेक मुनियों की उपलब्धि हो गई। सर्वसाधारण और विद्वन्-समाज में इस अलौकिक देन का अद्भुत समादर होने लगा। आचार्यश्री तुलसी के शिष्यों की यह एक अनुपम ऋद्धि समझी जाने लगी। हर विशेष प्रसंग पर, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद की और आचार्यश्री के वार्तालाप पर, विनोबा भावे और आचार्यश्री के वार्तालाप प्रसंग पर मुनिश्री नथमलजी और मुनिश्री बुद्धमल्लजी की प्रभावोत्पादक आशु कविताएं हुई। पूना में संस्कृत वाग्वर्धिनी सभा की ओर से आचार्यश्री के अभिनन्दन में एक सभा हुई। मुनिश्री नथमलजी को आशु कविता के लिए विषय मिला—**स्रग्धरावृत्तमालम्ब्य घटी यन्त्रं विवर्ण्यताम्** अर्थात् स्रग्धरा छन्दों में घटी यन्त्र का वर्णन करें। मुनिश्री ने तत्काल प्रदत्त विषय पर चार स्रग्धरा छन्द बोले। सारी परिषद् मन्त्र-मुग्ध-सी हो गई।

आचार्यश्री पंजाब पधारे। अम्बाला छावनी के कॉलिज में आचार्यश्री के प्रवचन का कार्यक्रम रहा। मुनिश्री बुद्धमल्लजी ने आधुनिक शिक्षा विषय पर धारा प्रवाह आशु कविता की। श्रोताओं को ऐसा लगने लगा कि मुनिजी पूर्व रचित श्लोक ही तो नहीं बोल रहे हैं। चालू विषय के बीच में ही प्रिंसिपल महोदय ने एक जटिल से राजनैतिक पहलू पर भाषण दिया और कहा—इस भाषण को आप संस्कृत श्लोकों में कहें। मुनिश्री ने तत्काल उस क्लिष्टतर भाषण को संस्कृत में ज्यों का त्यों दुहराया और सारा भवन आश्चर्य-मग्न हो उठा।

मुनिश्री नगराजजी संस्कृत भाषा की राजधानी वाराणसी में पधारे। रात्रिकालीन प्रवचन में आशुकवित्व का आयोजन रहा। अनेकानेक संस्कृत के विद्वान् व प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे। प्रदत्त विषय पर आशुकवित्व हुआ। पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ने आशुकवित्व पर अपने विचारप्रकट करते हुए उपस्थितलोगों से कहा—संस्कृत पद्य रचना को कितना सहज रूप मिल सकता है, यह मैंने जीवन में पहली बार जाना।

बम्बई में बंगाल विधान परिषद् के अध्यक्ष और देश के शीर्षस्थ भाषाशास्त्री डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने मुनिश्री नगराजजी से भेंट की। आशुकवित्व का परिचय पाकर उन्होंने मुनिश्री से निवेदन किया, आप एक ही श्लोक में जैन-दर्शन का हार्द बतलाएं। मुनिश्री ने जीवन और मृत्यु आत्मा की पर्याय है, मोक्ष आत्म-स्वभाव का अन्तिम विकास है, अतः उसकी उपलब्धि के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए, इस भाव का एक सुन्दर श्लोक तत्काल उन्हें सुनाया। डा० सुनीतिकुमार गद्‌गद् हो उठे और बोले, इस श्लोक में अपूर्व भाव-गरिमा भरी है। संस्कृत में ऐसा ही एक श्लोक प्रचलित है, जिसमें सारे वेदान्त का सार आ गया है।

यह प्रसंग पाँच वर्ष से भी अधिक पुराना हो चला है। **विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्** की उक्ति इस प्रसंग पर एक अपूर्व ढंग से चरितार्थ हुई है। कलकत्ता से प्रकाशित 'जैन भारती' के ता० २७ अगस्त, १९६१ के एक अंक में एक संवाद प्रकाशित हुआ है, जिसमें बताया है—दिनांक १९ अगस्त, ६१ शनिवार को इण्डियन मिरर स्ट्रीट स्थित कुमारसिंह हॉल में श्रीपूर्णचन्दजी श्यामसुखा अभिनन्दन समिति की ओर से श्यामसुखाजी की अस्सीवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष में माननीय डा० सुनीतिकुमार चटर्जी की अध्यक्षता में एक अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया, जिसमें श्री श्यामसुखाजी को एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया। समिति के मन्त्री श्री विजयसिंह नाहर व अध्यक्ष श्री नरेन्द्रसिंहजी सिंघी प्रभृति सज्जनों ने श्यामसुखाजी के जीवन-प्रसंग प्रस्तुत किये। अध्यक्ष श्री चटर्जी ने श्री श्यामसुखाजी के बंगाल में जैनधर्म के प्रचार-कार्य की सराहना करते हुए कहा कि जैन दर्शन हमेशा संसार को एक नया आलोक देता ही है। गत कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में जैन मुनिश्री नगराजजी से मेरा साक्षात्कार हुआ, जो संस्कृत के आशुकवि थे। उनके द्वारा तत्काल रचित संस्कृत के दो पद्यों का उच्चारण करते हुए श्री चटर्जी ने कहा कि इन दो पद्यों में जैनधर्म क्या है? इसका एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। अन्त में जैनधर्म और जैन विद्वानों के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए अध्यक्ष महोदय ने श्री श्यामसुखाजी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर सम्मानित किया।

मुनिश्री का आशुकवित्व बहुत ही सरल और मार्मिक होता है। आचार्यश्री तुलसी जब राजगृही के वैभारगिरि की सप्तपर्णी गुहा के द्वार पर साधु-साध्वियों की परिषद् में विराजमान थे, उस प्रसंग पर मुनिश्री नगराजजी के आशुकवित्व रचित श्लोकों का एक श्लोक था :

आचार्याणामागमात् साधुवृन्दैः, साध्वीवृन्दैः सार्धमत्र प्रपूतैः।
विश्वख्याता सप्तपर्णी गुहेयम्, संजाताद्य श्वेतवर्णा गुहेयम्॥

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के भी आशुकवित्व सम्बन्धी रोचक संस्मरण बने हैं। कुछ वर्ष पूर्व उनका एक अवधान प्रयोग कान्स्टीट्यूशन क्लब, नई दिल्ली में हुआ। उसमें बहु संख्यक संसद सदस्य, राजर्षि टण्डन, लोकसभा के अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर आदि अनेकों गणमान्य व्यक्ति तथा गृहमंत्री पं० पन्त आदि अनेक केन्द्रीयमंत्री उपस्थित थे। संस्कृतज्ञ श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने आशुकविता का विषय दिया—**मसक गलरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम्** अर्थात् मच्छर के गले में हाथियों का झुण्ड चला गया। इस विचित्र विषय पर मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी ने बहुत सुन्दर श्लोक प्रस्तुत किए, जिसका सारांश था—आज बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने परमाणुओं की शोध में अपने-आपको इस तरह खपा दिया है कि मानो मच्छरों के गले में हाथियों का झुण्ड समा गया हो। सारी सभा बहुत ही चमत्कृत हुई। यह रोचक संस्मरण अगले दिन प्रायः सभी दैनिक पत्रों में प्रमुख रूप से प्रकाशित हुआ।

राष्ट्रपति भवन में जब उनका एक विशेष अवधान-प्रयोग हुआ तो प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने आशु कविता के लिए उन्हें विषय दिया—'स्पूतनिक' अर्थात् कृत्रिम चाँद। रूस ने उन्हीं दिनों अन्तरिक्ष कक्षा में स्पूतनिक छोड़ा था। मुनिश्री ने तत्काल कतिपय श्लोक इस अद्भुत विषय पर बोले, जिन्हें सुन कर सारे लोग विस्मित रहे।

आचार्यश्री के शिष्य परिवार में आज तो इने-गिने ही नहीं, किन्तु अनेकानेक आशुकवि हैं। आचार्यवर की पुनीत प्रेरणाओं ने अपने संघ को एक उर्वर क्षेत्र बना दिया है।
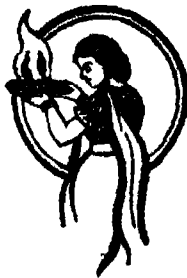
अमा में प्रकाश किरण

महासती श्री लाडांजी

आचार्यश्री तुलसी अमा के सघन निशीथ में प्रकाश किरण लेकर आये। तब जनता जड़ता की नींद में डूबी हुई थी। आपने तिमिर की गोद में सोये हुए एक-एक व्यक्ति को सहलाया, जागे हुए को पथ बतलाया। पथिक को प्रकाश दिखाया, प्रकाशित पथ वालों को मंजिल की निकटता का आभास दिया। इसीलिए जन-मानस आपको अमा में प्रकाश किरण मानता है। आपने आत्म-आलोक में स्वयं को पहचाना, तत्पश्चात् अपनी ही अनुभूतियों को जनता तक पहुँचाया, जिसे जनता अपनी ही अनुभूति मान लीन हो रही है। पथ-दर्शन पा रही है। आपका दिव्य आलोक अनेक रूपों में निखरा। अज्ञानियों के लिए ज्ञान का अक्षय कोष बन कर आया। संघीय विद्या-विकास आज आपको सरस्वती पुत्र के रूप में देख रहा है। अनैतिक जीवन जीने वालों को सुगम साधना का पथ दिखाया। साधना से कतराने वालों का साहस बढ़ाया। संयम को अनावश्यक समझने वालों की मान्यता का परिष्कार किया, दानवीय वृत्तियों से लोहा लिया। सदाचार और सहनीति की नई व्याख्या दी और एक ही वाक्य में कहें तो आपने दिग्मूढ़ मानव को राजपथ दिखलाया।

आज कृतज्ञ मानव समाज आपके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है। आपको पाकर जगत गौरवान्वित है। आप जैसे जगत बन्धु को बन्धु रूप में प्राप्त कर मैं विशेष रूप से गौरवान्वित हूँ।
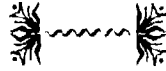
शत बार नमस्कार

श्री विद्यावती मिश्र

करता है आज युग तुम्हें शत बार नमस्कार !
शत बार नमस्कार ! !

भूले हुए पथी को तुमने राह दिखायी,
फिर ध्येय-प्राप्ति की पुनीत चाह जगायी,
ऐसा लगा कि लक्ष्य धाम ही रहा पुकार !
शत बार नमस्कार ! !

तुमने न बहुत ही बड़े आदर्श सजाये,
पारस से छू के लौह भी हैं स्वर्ण बनाये,
भय-शोक-ग्रस्त विश्व को तुमने लिया उबार !
शत बार नमस्कार ! !

चाहे जो आये इसमें कोई रोक नहीं है,
ऐसा सुरम्य अन्य कोई लोक नहीं है,
तम तोम कहाँ ज्योति राशि का हुआ प्रसार !
शत बार नमस्कार ! !

आधुनिक युग के ऋषि

श्री सुगनचन्द
सदस्य, उत्तरप्रदेश विधान परिषद्

आधुनिक युग के ऋषि आचार्य तुलसी आज वही कार्य कर रहे है जिसे प्राचीन ऋषियों ने उठाया था। **आत्मवत् सर्वभूतेषु** और **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना को स्वयं जीवन में उतार कर वे सारे समाज को उसी तरफ ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

भारतीय समाज ने राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर स्वामी, स्वामी दयानन्द, गांधी, विनोबा आदि महापुरुषों को पैदा कर जिस ऊँचाई का परिचय दिया है, आप उसी परम्परा को अक्षुण्ण कर रहे हैं। हमारा दर्शन सत्यं, शिवं, सुन्दरं और सत्य, प्रेम तथा करुणा की जिस सुदृढ़ नींव पर आधारित है, उस नींव को आपसे बल मिलेगा, ऐसी आशा है।

आप सादा जीवन और उच्च विचार तथा तप, त्याग, संयम की भारतीय परम्परा को समाज में उतारने के प्रयत्न में निरन्तर लगे हुए हैं।

अणुव्रत-आन्दोलन यह सिद्ध करता है कि जब तक व्यक्ति ऊँचा नहीं उठेगा, तब तक समाज ऊँचा नहीं उठ सकता और व्यक्ति का निर्माण छोटी-छोटी बातों को जीवन में उतारने से ही होता है। जिनको हम छोटी बात और छोटा काम कहते है, उन्हीं कामों ने संसार के महान् पुरुषों को महान् बनाया है। राम ने शबरी के बेर खाये, कृष्ण ने झूठी पत्तलें उठाईं, गांधीजी कातने और बुनने वाले बने, विनोबा ने भंगी का काम किया। इन्हीं छोटे कामों ने इन्हें महान् बनाया। यही नही, इस देश में जितने भी ऊँचे साधु-संत हुए है वे भी ऐसा ही छोटा-मोटा काम करते रहे। कबीरदास जुलाहे का काम करते थे। वे कपड़े का ही ताना-बाना नहीं बुनते रहे, बल्कि जीवन का ताना-बाना भी उसी के साथ बुनते रहे। उनका प्रसिद्ध भजन **झीनी झीनी बीनी चदरिया** मे पंच तत्त्व और शरीर-तत्त्व का कितना सुन्दर विश्लेषण किया गया है, जिसे कोई योगी ही कर सकता है। पर कबीर ने सीधी-सादी भाषा में बहुत ही सुन्दर ढंग से इसे व्यक्त किया है। इसी तरह रैदास ने मोची का काम किया, दादूदयाल ने धोबी का और नामदेव ने दर्जी का। ये सभी संत भारत के अमूल्य रत्नों में है।

साधु-संतों का आविर्भाव समाज-संचालन के लिए सदैव होता रहा है और आगे भी होता रहेगा। सरकारें समाज को अनुशासित कर सकती हैं, पर उसे बदल नहीं सकतीं। आज तक दुनिया की किसी सरकार ने समाज को या सामाजिक मूल्य को नहीं बदला, न उनमें बदलने की क्षमता ही है। यह काम तो साधु-संत ही कर सकते हैं और अब तक करते आए हैं तथा आगे भी करते रहेंगे। कानून द्वारा किसी को रोका नहीं जा सकता है, डराया जा सकता है; किसी का हृदय नही बदला जा सकता। आज के युग मे भी विज्ञान ने प्रकृति पर बहुत-कुछ विजय पा ली है, मनुष्य चन्द्रमा तक पहुँचने की तैयारी में है, पर विज्ञान स्वयं मनुष्य को बदलने में असफल रहा है। यही कारण है कि आज विज्ञान का उपयोग निर्माण के बजाय संहारक अस्त्रों में किया जा रहा है।

आज दुनिया के सामने दो ही मार्ग है, सर्वोदय या सर्वनाश। इनमें से ही किसी एक को चुनना होगा। यदि विज्ञान का सम्बन्ध अहिंसा से हुआ तो इस धरा पर ऐसा स्वर्गोपम सुख आयेगा जो आज तक कभी आया भी नहीं, पर अगर विज्ञान का सम्बन्ध हिंसा से हुआ तो जैसा कि आज हो रहा है, इतना बड़ा विनाश भी इसी पृथ्वी पर होगा, जितना कभी हुआ नहीं, बल्कि सृष्टि ही समाप्त न हो जाये, यह खतरा भी पैदा हो गया है।

विज्ञान अपने-आप में प्रशस्त है, पर प्रश्न है उसके प्रयोग का। प्रयोग करने वाला मनुष्य है, इसलिए सबसे आवश्यक अब यही है कि मनुष्य को कैसे बदला जाये और कौन बदले ? कैसे बदला जाये, इसका उत्तर है, मनुष्य के संस्कार बदले जायें; और कौन बदलेगा, इसका उत्तर है, ऋषि-महर्षि, साधु-संत। इसलिए आज विज्ञान के युग में, जहाँ सर्वनाश खड़ा है, साधु-संतों का मूल्य और भी बढ़ जाता है। आज मानव-सृष्टि का कल्याण इन्हीं के हाथों सुरक्षित है।

आज लोगों के मन में यह शंका होने लगी है कि नैतिकता का कोई मूल्य है भी या नहीं और समाज को उससे कुछ लाभ भी होगा या नहीं ? क्योंकि आज चारों ओर विकास के साथ-साथ भ्रष्टाचार और अनैतिकता का भी फैलाव होता जा रहा है। मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। जनता को यह सोचने को मजबूर कर दिया गया है कि नैतिकता हमारा संरक्षण और अनैतिकता का मुकाबला कर भी सकेगी या नहीं या समाज में जीने के लिए अनैतिकता का आश्रय ही लेना पड़ेगा। पर जरा गंभीरतापूर्वक सोचने पर लगता है कि नैतिकता के बिना एक क्षण भी समाज चल नहीं सकता। यही बन्धन समाज को एक तत्त्व में पिरोये हुए है। यदि यह बन्धन टूट गया तो न तो समाज रहेगा, न भ्रष्टाचार रहेगा।

नैतिकता का प्रभाव समाज में क्या है और कितना है, यह नापा नहीं जा सकता। बल्कि इसका प्रवाह लोगों के दिलों में निरन्तर बहता रहता है। कभी धारा वेगवती हो जाती है, कभी मन्द पड़ जाती है। साधु-संतों के, महापुरुषों के प्रभाव से यह बढ़ती-घटती रहती है। आज विनोबा के प्रभाव ने लोगों से कई हजार ग्रामदान दिलवा दिया, जो इतिहास की सर्वथा अभूतपूर्व घटना है। इसी तरह आचार्यश्री तुलसी जो कार्य कर रहे हैं, उसका प्रभाव समाज पर पड़ रहा है। हजारों लोगों का जीवन उन्होंने बदला है। पैदल ही नंगे पाँव सारे देश का भ्रमण कर रहे हैं।

वे हैं, पर नहीं हैं

मुनिश्री चम्पालालजी (सरदारशहर)

वे शासक हैं, उन्होंने अनुशासन किया है, पर तलवार से नहीं, प्यार से।
वे आलोचक हैं, उन्होंने कड़ी आलोचनाएं की हैं, पर धर्म की नहीं, धर्म के दम्भ की।
वे वैज्ञानिक हैं, उन्होंने अनेक आविष्कार किये हैं, पर हिंसक शस्त्रों के नहीं, शान्ति के शस्त्रों के।
वे क्रान्तिकारी हैं, उन्होंने बगावत की है, पर पापियों के विरुद्ध नहीं, पापों के विरुद्ध।
वे चिकित्सक हैं, उन्होंने सफल चिकित्सा की है, पर मानव के तन की नहीं, मन की।
वे द्रष्टा हैं, उन्होंने सब के सुख-दुःख को देखा है, पर तुला से तोलकर नहीं, स्वयं से तोलकर।
वे युगपुरुष हैं, उन्होंने युग को नई मोड़ दी है, पर औरों को मोड़कर नहीं, पहले स्वयं मुड़कर।

आचार्यश्री के जीवन-निर्माता

मुनिश्री श्रीचन्दजी 'कमल'

जो एक को जानता है, वह सबको जानता है और जो सबको जानता है, वही एक को जानता है। एक और सब में इतना सम्बन्ध है कि उन्हें सर्वथा पृथक् कर, जाना ही नहीं जा सकता। इस शाश्वत सत्य की भाषा में कहा जा सकता है, जो आचार्यश्री तुलसी को जानता है, वह पूज्य कालूगणी को जानता है और जो पूज्य कालूगणी को जानता है, वही आचार्यश्री तुलसी को जानता है। इन दोनों में इतना तारतम्य है कि उन्हें पृथक् कर, जाना ही नहीं जा सकता। आचार्यश्री तुलसी बाईस वर्ष में महान् संघ के सर्वाधिकार सम्पन्न आचार्य बने, यह उतना आश्चर्य नहीं, जितना आश्चर्य यह है कि उस अल्प अवस्था में इतना बड़ा दायित्व एक महान् आचार्य ने एक युवक को सौंपा। आचार्यश्री तुलसी पूज्य कालूगणी पर इतने निर्भर थे कि उनकी वाणी आपके लिए सर्वोपरि प्रमाण था। आज भी इतने निर्भर हैं कि अपनी सफलता का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को देते है। प्रमोद और विरोध दोनों स्थितियों में उन्हीं का आलम्बन लेकर चलते है। अपने कर्तृत्व पर विश्वास करते हुए भी उस नाम से महान् आलोक और अपूर्व श्रद्धा का संबल पाते हैं। कोई विचित्र ही परम्परा है। ऐसा तादात्म्य मैंने अपने जीवन में अन्यत्र नहीं देखा।

कालूगणी करुणा और वात्सल्य के पारावार थे। तेरापंथ के साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाएं आज भी उनके वात्सल्य की मधुर स्मृतियों से ओत-प्रोत हैं। उनका वात्सल्य सर्व सुलभ था। विद्या की अभिवृद्धि में उन्होंने अमित प्यार बिखेरा। इतने पुरस्कार बाँटे कि विद्या स्वयं पुरस्कृत हो गई। छोटे साधुओं की पढ़ने में रुचि कम होती। संस्कृत व्याकरण के अध्ययन को वे स्वयं 'अलूणी' शिला चाटना कहते थे। चटाने वाले कुशल हों तो चाटने वालों की कमी नहीं है। उन्होंने अपना अमृत सींच-सींच उसे इतना स्वादु बना दिया कि उसे चाटना प्रिय हो गया।

कठोर भी मृदु भी

आचार्य बनते-बनते उन्होंने एक स्वप्न देखा। उसमें सफेद चमकीले छोटे-छोटे बछड़े देखे। शिष्यों की बहुत वृद्धि हुई। केवल वृद्धि का महत्त्व नहीं होता। कसौटी संरक्षण में होती है। उनका हृदय मस्तिष्क पर सदा अधिकार किये रहा, इसलिए उनके सामने तर्क उठा ही नहीं। दर्पण में सबका प्रतिबिम्ब होता है, पर उसका प्रतिबिम्ब सबमें नहीं होता। वे कोई विचित्र ही थे। स्फटिक से कम उज्ज्वल और पारदर्शी नहीं थे, फिर भी उनका प्रतिबिम्ब उन सबने लिया, जो उनके सामने आये। उन्होंने चाहा तो किसी का प्रतिबिम्ब लिया, नहीं तो नहीं। उनकी आत्मा में सतत प्रतिबिम्बित थे मघवागणी, जो अपने दैहिक सौन्दर्य के लिए ही नहीं, किन्तु अपने आत्मिक सौन्दर्य के लिए भी विश्रुत थे। गंगाजल-सा निर्मल था उनका जीवन। स्फटिक-सा स्वच्छ था उनका मानस। वे नहीं जानते थे गाली क्या होती है और क्या होता है क्रोध ? विषयों से इतने विरत कि उन्हें इन्द्रिय-कामनाओं की पूरी जानकारी भी नहीं थी। जिन्हें आत्मलीन कहा जाता है, उन्हीं की पंक्ति के थे वे महान् योगी। उनका मानस प्रतिबिम्बित हुआ कालूगणी में। जब कभी उनके मुँह से मघवागणी का नाम निकल पड़ता तो उनकी आँखों में मघवागणी का चित्र भी दीखता। जिसे जीवन में एक बार भी वासना न छू पाए, जो केवल अपने अन्तर में ही रम जाए, वह कितना पवित्र होता है, इसकी कल्पना वे लोग नहीं कर सकते, जो वासना की दृष्टि से ही देखते है और वासना के मस्तिष्क से ही सोचते है। जितने पवित्र मघवागणी थे, उतने ही पवित्र कालूगणी थे और जितने मृदु मघवागणी थे, उतने ही मृदु कालूगणी थे। पर मघवागणी कहीं भी कठोर नहीं थे। उनके अनुशासन में

मृदुता बोलती और शासन मौन रहता। पर कालूगणी के व्यक्तित्व के एक कोने में कठोरता भी छिपी थी। उनका मानस मृदु था, पर अनुशासन मृदु नहीं था। वे तेरापंथ को व्यक्ति देना चाहते थे। व्यक्ति-निर्माण अनुशासन के बिना नहीं होता। इसलिए उनकी कठोरता मृदुता से अधिक फलवती थी। वे कोरे स्नेहिल ही होते तो दूसरों को केवल खींच पाते, बना नहीं पाते। वे कोरे कठोर होते तो न खींच पाते और न बना पाते। उनकी मृदुता कठोरता का चीवर पहने हुए थी और उनकी कठोरता मृदुता को समेटे हुए थी। इसीलिए वे बहुत रूखे होकर भी बहुत चिकने थे और बहुत चिकने होकर भी बहुत रूखे थे। जिन व्यक्तियों ने उनका स्निग्ध रूप देखा है, उन्होंने उनका रूखा रूप भी देखा है। ऐसे बिरले ही होंगे जिन्होंने उनका एक ही रूप देखा हो।

वे कर्तव्य को व्यक्ति से ऊँचा मानते थे। उनकी दृष्टि में व्यक्ति की ऊँचाई कर्तव्य के समाचरण से ही फलित होती थी। मन्त्री मुनि मगनलालजी स्वामी उनके अभिन्न हृदय थे। बचपन के साथी थे। सुख-दुःख के सहयोगी थे। फिर भी जहाँ कर्तव्य का प्रश्न था, वहाँ कर्तव्य ही प्रधान था, साथी नहीं। प्रतिक्रमण की वेला थी। मन्त्री मुनि गृहस्थों से बात करने लगे। कालूगणी ने उलाहने की भाषा में कहा—"अभी प्रतिक्रमण का समय है, बातों का नहीं।" जो व्यक्ति कर्तव्य के सामने अपने अभिन्न हृदय की अपेक्षा नहीं रखता, वह दूसरों के लिए कितना कठोर हो सकता है, यह स्वयं कल्पना-गम्य है। वे यदि धर्मप्राण नहीं होते तो उनकी कठोरता निर्ममता में बदल जाती। पर वे महान् धर्मी थे। विस्मृति का वरदान उन्हें लब्ध था। भूल परिमार्जन पर वे इतने मृदु थे कि उनके साथ शत्रु-भाव रखने वाला भी उनका अपूर्व प्यार पाता था। कठोरता और कोमलता का विचित्र संगम उस महान् व्यक्तित्व में था।

वट के बीज को देखकर उसके विस्तार की कल्पना नहीं की जा सकती है, पर वह बीज से बाह्य नहीं होता। तेरापथ के विद्या-विस्तार के बीज कालूगणी थे। विद्यार्जन के लिए काल की कोई मर्यादा नहीं होती। समूचा जीवन उसके लिए क्षेत्र है। कालूगणी ने इसे प्रमाणित कर दिखाया। आचार्य बने, तब आपकी अवस्था तेतीस वर्ष की थी। उस समय आपने ढाई महीनों में समग्र सिद्धान्त चन्द्रिका कण्ठस्थ की। आचार्य हेमचन्द्रकृत अभिधान चिन्तामणि शब्दकोष आप पहले ही कण्ठस्थ कर चुके थे। आपने संकल्प किया—मैं और मेरा साधु-साध्वीगण संस्कृत व प्राकृत के पारगामी बनें। आपने अपने जीवनकाल में ही उसे फलित होते देखा था। तेरापंथ की अधिकांश प्रतिभाएं उन्हीं के चरणों में पल्लवित हुई है।

उनमें स्पृहा और निस्पृहता का विचित्र योग था। विद्या के प्रति उनकी जितनी स्पृहा थी, उतनी ही बाह्य सम्बन्धों के प्रति उनकी निस्पृहता थी। दिए से दिया जलता है—इसमें बहुत बड़ी सच्चाई है। कालूगणी के आलोकित पथ से आचार्यश्री तुलसी अपना पथ आलोकित करते है। उन्हीं की भाषा में—"मैं जब सुनता हूं कि कुछ लोगों की श्रद्धा हिल उठी, तब मुझे वह वृत्त स्मरण हो आता है, जब कालूगणी ने कुछ संतों के सामने अपने भाव व्यक्त किये थे। उस समय थली (बीकानेर राज्य) में 'देशी विलायती' का संघर्ष चलता था। तब वहाँ दूसरी सम्प्रदाय के साधु आए। कुछ लोग उनके पास जाने लगे, उनकी ओर झुके। तब कुछ संतों ने कालूगणी के सामने निराशाजनक बातें की। उनके उत्तर में आचार्यवर ने कहा, 'कोई किधर ही चला जाये, मुझे इस बात की कोई चिन्ता नहीं। हमने दीक्षा किसी के ऊपर नहीं ली है, अपनी आत्मा का सुधार करने के लिए ली है। मेरे तो स्वप्न में भी यह नहीं आता कि अमुक श्रावक चला जायेगा तो हम क्या करेंगे? आखिर श्रावकों से हमें चद्दर के पैसे तो नहीं लेने है। श्रावक हमारे अनुयायी हैं, हम श्रावकों के नहीं। साधुओ! तुम्हें निश्चिन्त रहना चाहिए। मन में कोई भय नहीं लाना चाहिए।' न जाने कितनी बार ये बातें मुझे स्मरण हो आती हैं और इससे अपार आत्मबल बढ़ता है।"[1]

स्वावलम्बन उनके जीवन का व्रत था। वे आदि से ही अपनी धुन में रहे। न पद की लालसा थी और न कोई वस्तुओं के प्रति आकर्षण था। छठे आचार्य माणकगणी दिवंगत हो गए। वे अपना उत्तराधिकारी चुन नहीं पाये थे। तेरापंथ के सामने एक बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो गई। प्रत्येक साधु इस स्थिति से चिन्तित था। जयचन्दजी नामक एक

१. वि० सं० २००७ पौष सुदी ६

साधु ने कालूगणी से पूछा, "आचार्य कौन होगा ?" आपने उत्तर दिया, "तू और मैं तो नहीं होंगे। और कोई भी हो। उसमें अपने को क्या ?" उस समय आप बाईस वर्ष के थे। ढाई मास तक तेरापथ में आचार्य की अनुपस्थिति रही। उस समय सारा कार्य-संचालन पूज्य कालूगणी और मन्त्री मुनिश्री मगनलालजी स्वामी ने किया, फिर साधु-परिषद् ने डालगणी को अपना आचार्य चुना। उन्होंने इस युगल की कार्यकुशलता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

डालगणी मनुष्य के बहुत बड़े पारखी थे। उन्होंने मन्त्री मुनि से पूछा—'यदि मैं आचार्य पद का दायित्व नहीं सँभालता तो तुम लोग किसे सौंपते ?' मन्त्री मुनि ने कहा, 'यह कैसे हो सकता है ? जो दायित्व आये उससे कोई भी गण-हित चाहने वाला कैसे दूर भाग सकता है ?' डालगणी ने कहा, 'फिर भी कल्पना करो, यदि मैं इस दायित्व को लेना स्वीकार नहीं करता तो तुम लोग क्या करते ?' वे इस प्रश्न को दोहराते ही गए, तब मन्त्री मुनि ने कहा, 'कालूजी को सौंपते।' डालगणी आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने कहा, 'मैं सब ओर घूम गया, पर मगनजी ! यहाँ नहीं पहुँच पाया, जहाँ पहुँचना था, वहाँ नहीं पहुँच पाया।'

कालूगणी की आन्तरिक सम्पदा जितनी समृद्ध थी, उतनी बाह्य सम्पदा नहीं थी। उनकी आत्मा में जितना था उतना वाणी में नहीं था। वे जितने गण के थे उतने व्यक्ति के नहीं। उन्होंने एक प्रसंग मे डालगणी से कहा था, 'मैं कोहनी तक हाथ जोड़ना नहीं जानता। फिर भी गण और गणी के प्रति मेरा अन्तरंग उनसे कहीं अधिक निष्ठावान् है, जो कोहनी तक हाथ जोड़ते है।' उनका 'स्व' बड़ा प्रबल था। वह यदि अभिमानजनक होता तो परिणाम काल में निश्चित ही विकार उत्पन्न करता। किन्तु वह निरपेक्ष भाव से प्रसूत था। इसीलिए उसने दायित्व भाव को सजग रखा और कृत्रिम व्यवहार को सुषुप्त। आचार्यश्री ने ठीक ही कहा है, "जो आत्मभाव में जागृत होता है, वह व्यवहार से सुप्त होता है और जो व्यवहार में जागृत होता है, वह आत्मभाव में सुप्त होता है।" कालूगणी की सतर्कता इतनी थी कि डालगणी जैसे कठोर अनुशासन से कभी इन्हें उलाहना नहीं मिला। उनकी निरपेक्षता इतनी थी कि उन्हें कभी कोई विशेष अनुग्रह प्राप्त नहीं हुआ। डालगणी ने अपने उत्तराधिकारी का पत्र लिख दिया; फिर भी यह प्रश्न था कि आचार्य कौन होगा ? उनका स्वर्गवास हो गया। फिर भी लोग इससे अनजान थे कि हमारा भावी आचार्य कौन है ? कालू अब भी अपने स्वावलम्बन में थे। अपना काम, अपने हाथ-पैर, अपनी धुन और अपना जगत्। व्यक्तित्व छिपा नहीं था। कल्पना दौड़ती ही थी। कुछ व्यक्तियों ने कहा, 'गुरुदेव का स्वर्गवास हो गया है। अब आप पाट पर विराजें।' आपने निर-पेक्ष भाव से कहा, 'पहले देखो, आचार्यवर ने अपना उत्तराधिकारी किसे चुना है ? फिर बात करना।' मन्त्री मुनि ने डालगणी का पुठा खोला। पत्र निकाला। परिषद् के बीच उसे पढ़ा, तब जनता ने आश्चर्य के साथ सुना कि हमारे आचार्य श्री कालूगणी है। अब आप पाट पर बैठे। यह निरपेक्षता अन्तिम साँस तक बनी रही। रुचि का खाना वही था जो ग्रामीण लोग खाते है। ठाट-बाट का कोई आकर्षण नही था। बाहरी उपकरण उन्हें कभी नही लुभा पाये। एक ही धुन थी—गण का विकास, विकास और विकास। पहले ही वर्ष उन्होंने साधु-साध्वियों के मान सिंघाडे किये। अपने साथ सिर्फ सोलह साधु रखे। शेष साधुओं से कहा—जाओ, विचरो, उपकार करो। संकल्प अवश्य फल पाता है। चतुर्दिक् वृद्धि होने लगी। शिष्य-शिष्याएं बढ़ीं, विद्या बढ़ी, बल बढ़ा, गौरव बढ़ा, यश बढ़ा। जो इष्ट था, वह सब-कुछ बढ़ा। उनका प्रयत्न फल लाने लगा। 'भिक्षुशब्दानुशासन' नामक संस्कृत महाव्याकरण बना। संस्कृत काव्य रचे जाने लगे। रचना के अनेक क्षेत्र खुल गए। उन्हें डिंगल काव्य बड़े प्रिय थे। चारण लोग आते ही रहते। कविता-पाठ चलता ही रहता। स्वयं कवि थे। पर ऐसा ही कोई विश्वास बैठ गया, विशेष नहीं लिखते। शिष्यों को प्रेरित करते। उत्साह बढाते। उनकी वाणी मे कोई अपूर्व चमत्कार था। उनकी दृष्टि में कोई अथाह अमृत था। उनका स्पर्श पा एक बार तो मृत भी जी उठता।

विकास और विरोध दोनों साथ-साथ चलते हैं। तेरापंथ का यश बढ़ा, वैसे ही विरोध बढा। जैसे विरोध बढ़ा, वैसे उनका सौम्यभाव बढ़ा। आचार्यश्री तुलसी को विरोध को 'विनोद' मानने का मंत्र उन्ही से तो मिला था। आचार्य-श्री ने एक बार कहा था—बाधाओं और विरोध से मेरे दिल में घबराहट नहीं होती। मुझे याद आती है मालवा की बात। गुरुदेव रतलाम पधारे। मैं भी उनके साथ था। वहाँ लोगों ने तीव्र विरोध किया। आज से दस गुना, पर गुरुदेव तो

अपने में ही लीन थे। एक, दो, तीन दिन बीत गए। चौथा दिन आया। एक पंडितजी आये। गुरुदेव ने पूछा—'यहीं के रहने वाले है ?' पंडितजी ने कहा—'यहीं रहता हूं। यह सामने ही मेरा घर है।' गुरुदेव ने फिर पूछा—'आज ही आये हैं ?' पंडितजी ने कहा—'आया नहीं हूं आना पड़ा है।' 'तो कैसे ?' पंडितजी बोले—'आपका विरोध आपके आने से पहले ही शुरू हो चुका था। आप आये उस दिन से आज तक आपकी ओर से प्रतिविरोध नहीं हुआ। मैंने सोचा आज आये है, थके-मांदे होंगे, शायद कल करेंगे। दूसरा दिन बीता कोई विरोध नहीं किया गया। मैंने सोचा—तैयारी करते होंगे, विरोध करने के लिए। तीसरे दिन भी कुछ नहीं हुआ। मैंने सोचा—'जहाँ एक व्यक्ति को 'कै' करते देख दूसरे व्यक्ति को उबाक आने लगता है वहां आज चौथा दिन है फिर भी कुछ नहीं हुआ, अवश्य ही इनकी पाचन-शक्ति सुदृढ़ है। इनमें सारे विरोध को पचाने की क्षमता है। मैं इस इक तरफे विरोध से खिंचा-खिंचा आया हूं'।

बीकानेर का विरोध भी बड़ा प्रबल था। साधुओं को प्रतिदिन पचासों गालियाँ सुनने को मिलती थी। फिर भी मौन, सर्वथा मौन। वह दिन मुझे याद है जब गुरुदेव ने सब साधुओं को एकत्रित कर शिक्षा के स्वर में कहा था—'मैं जानता हूँ तुम्हें गालियां सुनने को मिल रही है। मैं जानता हूँ तुम्हारे पर आक्रोश किया जा रहा है, व्यंग कसे जा रहे है, फिर भी तुम साधु हो, इसलिए तुम्हें मौन ही रहना चाहिए। तुम्हारा धर्म है सब सुनो, वापस एक भी मत पूछो। यही मेरी आज्ञा है'।[1]

कालूगणी विरोध को सदा बोध-पाठ मानते रहे। आचार्यश्री तुलसी का मानस भी उसी से प्रतिबिम्बित है। कुछ लोग इस विरोध को ईश्वरीय कृपा बतलाते है। आचार्यश्री तुलसी बाड़मेर में थे। वहाँ एक रेलवे गार्ड आया। वह बोला—'कुछ लोग आपकी आलोचना करते है, किन्तु मैं समझता हूं उन्होंने अभी साधना का पथ नहीं पाया। गुरुजी ! आप पर ईश्वर की बड़ी कृपा है।' 'सो कैसे ?' 'आपके साथ कोई न कोई विरोध बना रहता है। बिना कृपा के ऐसा हो नहीं सकता।'[2] निर्मिति और निर्माता में जो अभेद होना चाहिए, वह बहुत ही प्रगाढ़ है। इसीलिए आचार्यश्री तुलसी को समझने के लिए पूज्य गुरुदेव को समझना आवश्यक है। मनुष्य की यह असमर्थता है कि वह जितना होता है, उतना जान नहीं पाता। जितना जान पाता है, उतना कह नहीं पाता। इसीलिए एक महान् को मैंने शब्दों की लघु सीमा में बांध दिया। इस असमर्थता का भागी केवल मैं ही नही हूं, स्वयं आचार्यश्री भी है। उन्होंने अपने निर्माता को स्वल्प रेखाओं में चित्रित किया है। मेरी असमर्थता को अवश्य ही थोड़ा आलम्बन मिलेगा। वे इस प्रकार है—"मै कई बार सोचता हूं, मेरे जीवन पर किन-किन का प्रभाव पड़ा। इस दिशा में सबसे पहले मुझे दीखते है पूज्य कालूगणी, उन्होने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया है। दीक्षा के पहले दिन जो पहला ग्राम मिला, उससे लेकर उनके अन्तिम श्वास तक उनका अविरल प्रभाव मुझ पर पड़ता रहा। उनके जीवन की अविरल विशेषताएं आज भी मुझे प्रेरित कर रही है। पूज्य गुरुदेव ब्रह्मचर्य के प्रतीक थे। उनका ललित ललाट तथा दिव्य आत्म-बल इसका साक्षी था। नारी मात्र के प्रति उनमें सदा 'मातृवत्' की भावना मैंने साक्षात् देखी।

वे इसलिए महामानव थे कि उन्होंने जिसके सिर पर अपना वरद हाथ रख दिया, वह तब तक नहीं हटा जब तक वह उचित पथ से नही हटा, फिर भले ही उसके पास धन रहा या नही। और कुछ रहा या नहीं रहा। पवित्रता रही तो उनका हाथ बना का बना ही रहा।

वे विचारों के स्वतन्त्र और महान् तटस्थ थे। मंत्री मुनि उनके अनन्य थे। पर कई विचार उनसे मेल नही खाते सो नहीं ही खाते। जिस पर भी कभी कोई मनोभेद नहीं हुआ। प्रेम अथाह ही रहा। सचमुच वे एक असाधारण व्यक्ति थे।

विद्यानुराग उनके जैसा बिरल ही मिलेगा। उन्होंने अथक प्रयास व विभिन्न उपायों से विद्या का जो स्रोत बहाया, उससे आज हमारा समूचा संघ निष्णात है। एक दिन उन्होंने कहा था—"शिष्यो ! तुम नही जानते, हम विद्यार्थी थे तब

१ प्रवचन डायरी १९५३, पृ० ११-१२

२ डायरी ४ पृ० ३४६

हमें विद्या प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती थी। कुछ अल्पचेता लोग 'देवानांप्रिया एते' कहकर हमारा तिरस्कार कर जाते, पर आज तुम्हारे सामने ऐसा करने का कोई साहस नहीं कर सकता। उन्हें अपने श्रम की फल-परिणति पर सन्तोष था। उनका जीवन कितना सादा था, यह तो प्रत्यक्षदर्शी ही जान सकता है। रात-भर दो चिलमिलियों पर लेटे रहते। महान् आचार्य होने पर खान-पान इतना साधारण कि देखने वाले पर वह प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। श्रम में बड़ी निष्ठा थी : वे बहुत बार कहते थे कि श्रम के अभाव में आज कल नए-नए रोग बढ़ रहे हैं। कोई साधु दुर्बल होता तो वे उसे कहते दूर जंगल से झोली भर रेत लाओ, परिश्रम करो। शरीर का पसीना निकल जायेगा। अधिक चिकना भोजन मत करो। इन दवाओं में क्या धरा है ? वे स्वयं बहुत श्रम-शील थे। उनका स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा था। औषध पर उनकी आस्था जैसे थी ही नहीं। वे साधारण काष्ठादि औषध से ही काम चला लेते। ज्वर होने पर लघन कराते। चाय से तो पटती ही नहीं थी। उनके सामने दूसरे साधु चाय का नाम लेते ही सकुचाते थे।

आचार्यवर की इन विशेषताओं से मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ। वे मेरे अणु-अणु में रम रही है। उन्होंने मुझे सदा अपनी करुणाभरी दृष्टि से सींचा। इतना सींचा कि उसका वर्णन करने के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं है। मैंने कुछ भूलें भी की होंगी, पर वे उनका परिमार्जन करते गए। मुझे कभी दूर नहीं किया। यह कहना कठिन है कि मैं उनकी कितनी विशेषताओं का आकलन कर पाया हूँ। उनकी अनेक विशेषताओं का मेरे मन पर अमिट प्रभाव है। उन्हीं के प्रसाद की खुराक पाकर मेरा जीवन बना है। यह कहते हुए मुझे सात्विक गर्व का अनुभव होता है।"

निर्माण लिये आये हो

मुनिश्री बच्छराजजी

कलाकार ! इस धरती पर निर्माण लिये आये हो।
गूढ़ कला जीवन की तुम पहिचान लिये आये हो।

लगता ऐसा बाहर से तुम, बांध रहे जीवन को,
पर झांका भीतर तो पाया, खोल रहे बन्धन को,
रश्मि-बन्ध से तुम जीवन के, स्थल को बाँध रहे हो,
नियम-बन्ध से जग मानस को, जल को बाँध रहे हो,
मुक्ति-दूत ! तुम बन्धन में परित्राण लिये आये हो।
कलाकार ! इस धरती पर निर्माण लिये आये हो।

निष्क्रिय सुन्दरता को कृति में, स्थान दिया कब तुमने,
सक्रिय-जीवन-तत्त्वों पर ही, ध्यान दिया बस तुमने,
आ जाता सौन्दर्य स्वयं जब, गौरव भर देते हो,
वन की कली-कली में मधुमय, सौरभ भर देते हो,
चित्रकार ! निज चित्रों में तुम प्राण लिये आये हो।
कलाकार ! इस धरती पर निर्माण लिये आये हो।

भौतिक युग में आज मनुज, मनुजत्व गमा बैठा है,
उठ पाये खुद कैसे जब निज सत्व गमा बैठा है,
शक्ति-पुञ्ज ! अब युग तेरा आलम्बन माँग रहा है,
धरणी का कण-कण तेरा पद-चुम्बन माँग रहा है,
विश्व-प्राण ! तुम संयम का आह्वान लिये आये हो।
कलाकार ! इस धरती पर निर्माण लिये आये हो।

मानवता का नया मसीहा

श्री एन० एम० भुनभुनवाला

आज मानवता संकट में है। भौतिक उत्थान की इस उपग्रह-बेला में भी व्यक्ति-व्यक्ति त्रस्त है। विज्ञान के प्रखर प्रकाश में भी संसार विपथ हो गया है। शीत-युद्ध के रंगमंच पर शस्त्रीकरण का उच्छृंखल अभिनय काफी विकराल हो उठा है। समर-देवता की भयानक जीभ विश्व को निगल जाने के लिए लपलपा रही है। तीन अरब कण्ठों की आर्त्त वाणी आज पल-पल चकित होती हुई-सी निकल रही है। मानवता संकटापन्न है। शान्ति को खतरा है।

यह वैज्ञानिक युग का उपग्रह-काल है। बौद्धिकता की पराकाष्ठा है, मनुष्य के चरम विकास की भी पराकाष्ठा है। मानव-निर्मित उपग्रहों ने ईश्वर-निर्मित ग्रहों को विजित करने की चेष्टा की है। अन्तरिक्ष का विराट रहस्य आज यन्त्रों द्वारा मनुष्य की आंखों में उतारा जा रहा है। शून्यता का महावास मनुष्य के ज्ञान से चिह्नित हो रहा है। विज्ञान की इस महाबेला में भी कहीं से भनभनाहट सुनाई पड़ रही है—मानवता मर रही है, शान्ति रो रही है।

मानवता और शान्ति की नीलामी

मनुष्य की सर्वतोमुखी भौतिक जागृति में सद्बुद्धि की रोशनी बुझती जा रही है। ज्ञान का मार्तण्ड भी अज्ञान से घिरा जा रहा है। प्रलय मचाने वाली शक्ति से लज्जित होकर भी मनुष्य को चैन नहीं। अपने अस्त्र-शस्त्र से अपना ही गला घोंटने को उद्धत विज्ञान-पुरुष मूढ़ता का महान् नाटक खेल रहा है। मनुष्य की दोनों मुट्ठियों में मानवता और शान्ति की मासूम बुलबुलें छटपटा रही हैं। हर ओर से आवाज आ रही है—मानवता को बचाओ! शान्ति को संभालो! और मानवता तथा शान्ति की रक्षा के लिए चेहरे पर नक़ाब डालकर अनेक खलनायक विश्व-मंच पर अभिनय कर गये हैं। शीत-युद्ध के दुपट्टे में अणु और उद्जन बम छिपाये प्राची और प्रतीची के दो अभिनेता मैत्री के लिए हाथ मिलाते हैं। शान्ति और मानवता की सहमी आँखों में थोड़ी खुशी झाँकती है; किन्तु अपने-अपने घर आकर फिर मानवता और शान्ति की नीलामी शुरू हो जाती है और दुबले-पतले मानवों का महासागर चिल्ला उठता है—मानवता को मत लूटो! शान्ति को मत मारो! बाण्डुग से लेकर बेलग्रेड तक बेचारे टूटे हुए लोग दौड़-धूप करते हैं। प्रस्ताव पर प्रस्ताव रखे जाते हैं। किन्तु अणु-परीक्षण का एक ही विस्फोट तटस्थता के अनुयायियों की धज्जी-धज्जी उड़ा डालता है।

प्राची और प्रतीची के ये दो सूत्रधार तीन अरब पुतलों के जीवन की सट्टेबाजी खुले आम खेलते हैं। कहीं इस द्यूत-क्रीड़ा का नक़ाब फाड़ न डाला जाये, इसलिए ये चिल्ला-चिल्लाकर बोलते हैं—शान्ति...सम्पूर्ण निरस्त्रीकरण...। किन्तु, कहाँ है वह प्रयास, जो सम्मान्य शान्ति का मार्ग प्रशस्त करे, जो सम्पूर्ण निरस्त्रीकरण की भावना को जगा सके! मानवता की इस दर्दसरी का मूल कहाँ है, कौन जाने?

नये चिकित्सक का अन्वेषण

राजनीति के खिलाड़ी, चिकित्सा के नाम पर, कूटनीतिक सूचिका-रस-भरण अवश्य कर सकते हैं, किन्तु सही रोग-निदान और तदनुकूल चिकित्सा तो कोई अनुभवी चिकित्सक ही कर सकता है। कृष्ण, बुद्ध, ईसा, गांधी और मार्क्स की चिकित्सा बीमार मानवता का रोग पहचान सकती है, किन्तु आज उसी पद्धति का नवीन रूप लेकर किसी नये मसीहा की आवश्यकता है। महामारी के रूप में रोग की परिणति होने से पहले चिकित्सक का अन्वेषण आवश्यक लगता है,

नये चिकित्सक का।

प्राची और प्रतीची के दो माँझियों के हाथों में मानवता की भाग्य तरी डगमगाती हुई तट की ओर नहीं, मँझधार की ओर जा रही है। इन कूटनीतिक माँझियों से, बीमार मानवता की तरी, तट की ओर नहीं जा सकती। मानवता की सुरक्षा भौतिक प्रगति नहीं कर सकती। तो, मानवता की आर्त्त पुकार पर प्राची और प्रतीची के गगन में दो नक्षत्र उदित हो ही गए आखिर। हाँ, मानवता की सही चिकित्सा के लिए दो मसीहा प्राची और प्रतीची में आविर्भूत हुए—आचार्य तुलसी और बुकमैन।

इन दोनों चिकित्सकों ने मानवता की दुखती हुई नसों पर उंगली रखी। इनका निदान यही हुआ—मानवता के विनाश का एक ही कारण है : अनैतिकता; और इसकी उपयुक्त चिकित्सा है नैतिक जागृति।

नैतिकता के ये दो उद्गाता अपने-अपने क्षितिज पर चमके, खूब चमके। प्रतीची का बुकमैन शारीरिक रूप से अभी-अभी अस्त हो चुका है; किन्तु, संसार की अरबों आत्माओं में उस महापुरुष का शंखनाद प्रतिध्वनित हो रहा है और अरबों मस्तक आज भी उसकी स्मृति में श्रद्धावनत हैं।

और आचार्यश्री तुलसी; प्राची नभ-तटी का यह सार्वभौम तरुण भास्कर आज भी उद्दीप्त है। मानवता का यह नया मसीहा उन्हीं नक्षत्रों में से एक है, जिनमे बुद्ध, महावीर, कबीर, सूर, तुलसी, नानक, चैतन्य, अरविन्द, गांधी, विवेकानन्द और रवीन्द्र का अक्षत प्रकाश आज भी विश्व को परमानन्द का लक्ष्य-बिन्दु बतला रहा है। इस नये मसीहा ने निदान किया—मानवता क्यों पीड़ित है, शान्ति क्यों भयभीत है ? क्यों व्यक्ति विनाश की ओर वेग से दौड़ा जा रहा है ? इन सबों का एक ही निदान बतलाया है इसने—अनैतिकता और इससे उत्पन्न अचारित्रिकता; भौतिकता की उच्छृंखल प्रगति और इससे उत्पन्न अनाध्यात्मिकता, असंयम और इससे उत्पन्न महत्त्वाकांक्षा का व्यामोह तथा उद्वेग।

चिकित्सा के लिए तीन औषधियाँ बतलाई, इस नैतिक भिषग् शिरोमणि ने; नैतिकता, अध्यात्म और संयम। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य का सरल और सुपाच्य पंचामृत 'अणुव्रत' के नाम से पीड़ित विश्व के गले में डालते हुए इस मानवता के जय-घोषक ने उद्घोषणा की—अणुव्रत-आन्दोलन एक नैतिक क्रान्ति है। इसका उद्देश्य है, मनुष्य का आध्यात्मिक सिंचन। आध्यात्मिक प्रगति मनुष्य की सर्वोच्च प्रगति ही नहीं, सर्वांगीण प्रगति है। इस प्रगति का मूल कार्य है—चरित्र की सुदृढ़ स्थापना तथा मैत्री द्वारा शान्ति की रक्षा। सभी प्रकार के स्वास्थ्य-लाभ के लिए संयम की अत्यधिक आवश्यकता है। इतना ही नहीं, संयम को उसने जीवन-साधना बतलाया और नैतिकता को जीवन कला।

उसने संयम से रंचमात्र भी विलगाव को जीवन के लिए अभिशाप कहा और आदर्श उद्घोषित किया—**संयम : खलु जीवनम्।**

युद्ध-देवता का तीसरा चरण

इस यान्त्रिक युग में मानवता और शान्ति का शत्रु युद्ध है। बीसवीं शताब्दी में दो दशाब्दियों का अन्तर देकर दो विश्व-युद्ध हो चुके हैं। भयंकर नर-संहार हुए हैं। सैनिक, असैनिक तथा अबोध शिशु भी युद्ध-देवता की विकराल भट्टी में झोंक दिये गए। हीरोशिमा और नागासाकी विश्व-युद्ध के द्वितीय परिच्छेद के वे अमर आकर्षण हैं, जहाँ मानवता की छाती एटम बम के प्रहारों से चाक-चाक करदी गई और जापान के ये दो सुनहले पंख पल-भर में जला कर खाक कर दिये गये।

आज भी वही स्थिति है, वही रंग। युद्ध-देवता का तीसरा चरण उठ चुका है। मानवता की गर्दन पूर्व-पश्चिम के दो 'क' की उंगलियों के बीच में दबी पड़ी है। अणु-परीक्षण, सामयिक चुनौतियाँ, अन्तरिक्ष-प्रतियोगिता, शस्त्रीकरण आदि शीत-युद्ध को पराकाष्ठा की ओर ले जा रहे हैं। राष्ट्र-संघ-जैसा संघटन भी शीत-युद्ध की उष्ण-परिणति को रोक रखने में असमर्थ सिद्ध हो रहा है। संसार के सारे राजनीतिज्ञ मिलते हैं, शिखर-सम्मेलन करते हैं, गरम-गरम भाषण दे जाते हैं; किन्तु, ये दो 'क' अपनी एक ही घुड़की से मानवता की रही-सही आशा को धूल में मिला देते हैं।

निष्कर्षतः, यही सिद्ध होता है कि वैज्ञानिक प्रगति से शस्त्रीकरण को बल मिलता है और सैद्धान्तिक नेतृत्व या क्षेत्र-विस्तार की भावना मनुष्य को रण-अर्चना के लिए उद्धत करती है। मानवता तथा शान्ति की रक्षा के लिए एक ही उपाय है—निरस्त्रीकरण और वह सम्भव है, व्यक्ति व्यक्ति के नैतिकीकरण से।

युद्ध का कारण

मानवता के इस नये मसीहा आचार्य तुलसी ने युद्ध का एक ही कारण बतलाया है—अनैतिकता के प्रमाद में अनियन्त्रित दुराचारिता की महत्त्वाकांक्षा, उन्माद और व्यामोह में पड़ कर, एक-दूसरे की सीमा से टकरा जाना चाहती है तथा संसार में ज्ञान के साथ-साथ मूढ़ता भी विकसित हुई है। यदि शान्ति की सुरक्षा करनी है, तो प्रत्येक व्यक्ति को पहले शान्ति की अन्तर्मुखी अर्चना करनी होगी। यदि मानवता की रक्षा करनी है तो सभी मानवों को सच्चे अर्थ में मानव बनना होगा, आसुरी प्रकृतियों का परित्याग करना होगा। निरस्त्रीकरण से भी सुन्दर समस्या का समाधान हृदय-परिवर्तन द्वारा, पारस्परिक सद्भावना तथा मैत्री से हो सकता है। निरस्त्रीकरण सामयिक भावुकता द्वारा भले ही युद्ध की आशंका को टाल दे; किन्तु युद्ध की भावना का परित्याग तो पारस्परिक मैत्री द्वारा ही हो सकता है। सद्भावना विहीन निरस्त्रीकरण हाथ-पैर से भी युद्ध करा सकता है, जबकि सद्भावना अणुशक्ति को पकड़े हुए हाथों को भी एक-दूसरे के उत्कर्ष में सहयोगी बना कर मानवता की रक्षा कर सकती है।

दूसरी ओर मानवता के इस प्रहरी ने मनुष्य-जीवन की सारी अनैतिक गतिविधियों का अध्ययन किया और मानवता की सही पीड़ा पहचानी। अप्रामाणिकता, मिलावट, अकारण हिंसा, सामान्य असत्य, चारित्रिक निर्बलता, संग्रह एवं काम-पिपासा आदि को बढ़ावा देने वाली छोटी-छोटी अनैतिकताओं को भी खोज निकाला। इतना ही नहीं, इस मसीहा ने तो मनुष्य को कौन कहे, जानवरों तक की पीड़ा का भी अनुमान किया। अणुव्रतों के छोटे-छोटे बम हमारे जीवन में अणु-परीक्षण करती हुई अनैतिकता को बड़े ही स्नेहपूर्ण ढंग से नैतिकता में परिवर्तन कर देते है। इस मसीहा के शब्द-कोष में कहीं भी 'विनाश' का शब्द नहीं है।

आधुनिक बुद्ध

यह तरुण तपस्वी समूची दुःखी मानवता को पुकार-पुकार कर एकत्र कर रहा है। इसकी पुकार पर मनुष्यों का विशाल समूह दौड़ रहा है और इस आधुनिक बुद्ध के चारों ओर ललचाई दृष्टि से खड़ा हो रहा है। इसकी पुकार सागर की प्रत्येक लहर पर छहर रही है, पर्वतों की बर्फीली चोटियों पर मचल रही है।

भौतिक प्रवाह से त्रस्त मनुष्यों के बीच उनका यह नया आराध्य बड़े ही प्यार से कहता है, "मुझे भीख दो, भाइयो! मुझे अपने एक-एक दोष की भीख दो!"

तुम व्यक्ति को मिटा नहीं सकते! तुम्हें समाज बन जाना है—एक बूंद और बूंदों के अगणित अस्तित्वों का संग्रह-सागर। वह एक बूंद भी अमर है, किन्तु सिन्धु बन कर।

अणु और विराट के मधुर सामंजस्य का यह महान् प्रणेता आज लोगों में आनन्द बांट रहा है।

अणु-परीक्षण का काल अभी भूत नहीं हो सका। सहारा की रेत के बाद अब उसके क्रूर चरण वायुमण्डल और भू-गर्भ में विचरण कर रहे है। मानवता का परोक्ष विनाश प्रारम्भ है; चाहे युद्ध द्वारा प्रत्यक्ष विनाश अभी दूर हो। किन्तु अणुव्रतों की आध्यात्मिक अणु-शक्तियों का परीक्षण अब समाप्त हो चुका है। वे जीवन के एक-एक दीप सिद्ध हो चुके हैं।

आज मानवता के इस मसीहा को प्रकाश फैलाते हुए पच्चीस वर्ष पूर्ण हुए। इसकी धवल-जयन्ती मनाई जा रही है। मैं साफ कह दूं—यह आचार्यश्री तुलसी की धवल-जयन्ती नहीं; मानवता के भविष्य का रजत-समारोह है। गगन-मण्डल के जय-घोष, आचार्य तुलसी के लिए नहीं, अहिंसा और सत्य की विजय का शंखनाद है। आचार्यश्री तुलसी को देख कर संसार को फिर एक बार विश्वास हो चला है—"मानवता अमर है, शान्ति अमिट है, सत्य की विजय होती है, अहिंसा परम धर्म है और मैत्री तथा सद्भावना का आधार ही सच्चा निरस्त्रीकरण है।"

युगधर्म-उन्नायक आचार्यश्री तुलसी

डा० ज्योतिप्रसाद जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०

श्रमण-परम्परा मे साधु और श्रावक का सयोग मणि-कंचण संयोग है। साधु की शोभा श्रावक से है और श्रावक की साधु से। बिना श्रावक हुए कोई साधु नहीं बन सकता। दूसरी ओर श्रावक को धर्म-साधन में, अपने नैतिक एवं आत्मिक विकास मे साधु से ही निरन्तर प्रेरणा एवं पथ-प्रदर्शन मिलता है। साधु को लेकर ही श्रावक का अधिकांश व्यवहार और धर्म-साधन चलता है। साधुओं के समीप धर्मोपदेश श्रवण करने से ही गृहस्थ की श्रावक संज्ञा सार्थक होती है। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं, एक-दूसरे के लिए अनिवार्य हैं तथा श्रमण-संघ के अविभाज्य अंग हैं। भगवान् महावीर ने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप जिस चतुर्विध श्रमण-सघ का संगठन किया था, उसके ये चारों ही अंग परस्पर में एक-दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र होते हुए भी एक दूसरे के पूरक एवं धर्म-साधन में सहयोगी होते हैं। गृहस्थ (श्रावक-श्राविका) जीवन में धर्म के साथ-साथ अर्थ और काम पुरुषार्थों के साधन की भी मुख्यता होती है, जबकि त्यागी (साधु-साध्वी) का जीवन धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ द्वय-साधन के लिए होता है। अस्तु, धर्म-पुरुषार्थ ही साधु और गृहस्थ के सम्बन्धों की प्रधान कड़ी है। साधुवर्ग की सेवा-भक्ति करना गृहस्थ का मुख्य दैनिक कर्तव्य है; तो गृहस्थों को धर्मोपदेश देना, उनका पथ-प्रदर्शन करना, उनमें धर्मभाव की वृद्धि करना और नैतिकता का सचार करना साधुवर्ग के धर्म का मुख्य अंग है।

यों तो श्रमण-परम्परा के सभी साधु उपर्युक्त प्रकार से प्रवर्तन करते हैं, किन्तु वर्तमान में श्वेताम्बर तेरापंथी साधु-सघ अपने नवम संघाचार्य श्री तुलसी गणी के नेतृत्व में जिस संगठन, व्यवस्था, उत्साह एवं लगन के साथ, श्रमण-आचार-विचारों की प्रभावना कर रहा है, वह श्लाघनीय है। भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति के दो वर्ष के भीतर ही जिस सूझ-बूझ के साथ आचार्यश्री तुलसीगणी ने देश में नैतिकता की वृद्धि के लिए अपना अणुव्रत-आन्दोलन चलाया, उसकी प्रत्येक देश-प्रेमी एवं मानवता-प्रेमी व्यक्ति प्रशंसा करेगा। गत बारह वर्षों में इस अणुव्रत-आन्दोलन ने कुछ-न-कुछ प्रगति की ही है; किन्तु अपने उद्देश्य में वह कितना क्या सफल हुआ, यह कहना अभी कठिन है। ऐसे नैतिक आन्दोलनों का प्रभाव धीरे-धीरे और देर से होता है। वह तो एक वातावरण का निर्माण-मात्र कर देते हैं और जीवन के मूल्यों को नैतिकता के सिद्धान्तों पर आधारित करने में प्रेरणा देते है। यही ऐसे आन्दोलनों की सार्थकता है। श्रमणाचार्य तुलसी के सघ के सैकड़ों साधु-साध्वियों द्वारा अपने-अपने सम्पर्क में आने वाले अनगिनत गृहस्थ स्त्री-पुरुषों का नैतिक स्तर उठाने के लिए किये जाने वाले सतत प्रयत्न अवश्य ही युग की एक बड़ी माँग की पूर्ति करने में सहायक होंगे। अब से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व आचार्य भीखणजी ने कुछ विवेकी श्रावकों की प्रेरणा से ही अपने सम्प्रदाय में एक सुधार-क्रान्ति की, जिसके फलस्वरूप प्रस्तुत श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। यह संघ तब से शनैः-शनैः विकसित होता एवं बल पकड़ता आ रहा है। किन्तु इस सम्प्रदाय की सीमित क्षमताओं का व्यापक एवं लोक-हितकारी उद्देश्यों की सिद्धि के लिए जितना भरपूर एवं सफल उपयोग इसके वर्तमान आचार्य ने किया है और कर रहे हैं, वैसा किसी पूर्ववर्ती आचार्य ने नहीं किया। देश की नैतिकता में वृद्धि और श्रमण-संस्कृति की प्रभावना के लिए किये गए सत्प्रयत्नों के लिए युगधर्म-उन्नायक आचार्य तुलसी गणी को उनके आचार्यत्व के धवल-समारोह के अवसर पर जितना भी साधुवाद दिया जाय, थोड़ा है।

●

संघीय प्रावारणा की दिशा में

मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन'

जिस प्रकार आजकल डायरी का स्थान साहित्य जगत् में महत्त्व पूर्ण बन गया है, उसी प्रकार पत्रों ने भी साहित्य क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। इसीलिए आजकल लोग बड़े साहित्यकारों व महापुरुषों के पत्र बड़े चाव से पढ़ते हैं।

पत्र स्वाभाविकता से भरा रहता है, अतः उसमें अपनी विशेषता होती है। वह दूर बैठे व्यक्ति को सौहार्द के धागे मे पिरोए रखता है। उसमें लेखक का निश्छल हृदय और उनके दूसरों के प्रति विचार बड़ी स्पष्टता से निकलते है, जिससे पाठक पर अनायास ही असर पड़े बिना नहीं रहता।

तेरापंथ के आचार्यों में भी पत्र देने की परम्परा रही है, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। क्योंकि जैन साधु गृहस्थों के साथ व डाक द्वारा पत्र व्यवहार नहीं करते। इस कारण पत्र बहुत कम दिये जाते हैं। जो अत्यावश्यक पत्र संघ के साधु-साध्वियों को दिये जाते हैं, वे उसी स्थिति में दिये जाते है जबकि कोई संघ का साधु-साध्वी वहाँ तक पहुँचा सके।

आचार्य भिक्षु ने अपने संघ की साध्वियों को, अनुशासन के प्रश्न को लेकर पत्र दिये हैं, जिसमें हमें उस समय के संघ की स्थिति का कुछ इतिहास मिलता है। तृतीय आचार्य श्रीमद् रायचन्दजी ने अपने भावी उत्तराधिकारी को पत्र दिया है जिसमें उनके (जयाचार्य के) प्रति बड़े मार्मिक उद्‌गार प्रगट हुए है। इस प्रकार आचार्यो ने अपने संघ के साधु-साध्वियों को विभिन्न परिस्थितियो में पत्र दिये है जो आज हमारे लिए इतिहास के अंग बन गये हैं।

तेरापंथ साधु समाज का विस्तार जितना आचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व में हुआ, उतना पिछले आचार्यों के समय नहीं हुआ। इसलिए उनके दायित्वों का विस्तार भी हो गया। अनेक आन्तरिक कार्य उनको पत्रों द्वारा करने पड़ते है। इसलिए अन्य आचार्यों की अपेक्षा आचार्यश्री के पत्रों की संख्या अधिक है। उनके पत्रों में तेरापंथ की आन्तरिक स्थिति का चित्रण पाठकों को मिलेगा। इसके अलावा साधु-साध्वियों के प्रति उनकी वत्सलता का सजीव भाव। इसमे भी महत्त्वपूर्ण बात है उनके हृदय की आवाज कि वे किस प्रकार आज के जमाने में संघ को फला-फूला देखना चाहते हैं। उनका अदम्य उत्साह, कार्य करने की अजस्र धुन, विरोधों को सहने की अटूट शक्ति, देशाटन करने की प्रबल भावना, कर्तव्य-परायणता आदि अनेक हृदय को छूने वाली घटनाएं हैं।

आचार्यश्री को पदारूढ़ हुए पच्चीस वर्ष सम्पन्न हो गये हैं। इस दीर्घ अवधि में उन्होंने साधु-साध्वियों को अनेक पत्र दिये हैं। उनमें सर्व प्रथम सती छोगांजी को दिया हुआ पत्र है, जो उन्होंने पदासीन होते हुए ही लिखा था।

सती छोगांजी अष्टम आचार्य कालूगणी की संसार पक्षीय माता थीं। उसने अपने पुत्र कालू के साथ ही दीक्षा ली थी। वृद्धावस्था के कारण उनसे चला नहीं जाता इसलिए वे कई वर्षों से बीदासर में स्थिरवास किये हुए थी। कालूगणी का स्वर्गवास सं० १९९३ भाद्रव शुक्ला ६ को हुआ। भाद्रव शुक्ला ९ को बाईस वर्ष की अवस्था में आचार्यश्री तुलसी पदासीन हुए। चातुर्मास के बाद साध्वियों के एक सिंघाड़े के साथ छोगांजी को आचार्यश्री ने एक पत्र लिखकर भेजा।[1]

ॐ नमः !

छोगांजी सूं घणी-घणी सुखसाता बंचै। थे चित्त में घणी-घणी समाधि राखज्यो और अठै सूं सत्यां चांनांजी आदी

---

[1] आचार्यश्री ने अधिकांश पत्र मारवाड़ में ही लिखे थे।

ठाणा ५ बठै भेज्या छै सो वह सुखसाता का समाचार सारा ही कहसी और बड़ा म्हाराज साहिब महा भाग्यवान प्रबल प्रतापी देवलोक पधार गया सो निजोरी बात है। काल आगै कोई को जोर चालै नहीं तीर्थंकर देव नै पिण काल तो छोड़ै नहीं इम विचार करी नै चित्त मैं समाधि विशेष राखणी चाही जै। बाकी जिम कालूगणीराज के आप माता छा तिम म्हाँरे पिण माता तुल्य छो जिण सूँ कोई बात को विचार करी ज्यो मती और म्हाँरा पिण दर्शन देवण रा भाव वेगा ही है। मेवाड़ देश मैं चोमासा दोय हुवा तो पिण गामाँ मैं विशेष विचरणो हुवो नहिं तिण सूँ अठै विचरवा की अबार जरूरत है तो पिण बठै दर्शन देणा जरूरी समझकर द्रव्य, क्षेत्र काल-भाव देखकर दर्शन वेगा ही देवारा भाव है। पिण दूर को काम है। आणो बैंत सूँ होसी। तिण सूँ पहली सत्याँनै मेल्या छै सो जाणीज्यो। और तपस्या शरीर की शक्ति देख-देख कर करीज्यो और चित्त समाधि में घणो राखज्यो। सं० १९९३ मृगशिर वदि २ सोमवार।

मेवाड़ मैं तथा मारवाड़ मैं विहरमाण साधु सतियाँ सूँ यथायोग बंचै। अबकी बार अठीनै नहीं बोलाया तिण सूँ साधु सत्याँ के दिल में खासी आइ हुवेला। थाँरी कांइ बात म्हारे भी दिल मैं आवे है। पर जियाँ अवसर हुवै वियाँ ही करणो पड़े। बाकी बठे रहकर भी शासन को काम करो हो आही म्हारी ही सेवा है। अबकी बार साधु-सत्याँ म्हारी दृष्टि देखकर सार्वजनिक प्रचार मैं केइ जग्याँ आछी मिहनत करी, इं बात की मनै प्रसन्नता है। साराँ ने ही चाहिजै कि आपणी हद मैं रहता हुवां धर्म को व्यापक प्रचार हुवै। धर्म एक जाति विशेष मैं बंध्यो नहीं रह सके है। मेवाड़ सार्वजनिक प्रचार को आछो क्षेत्र है सो पूरी मिहनत हुणी चाहिजै। श्रावका ने भी पूरी चेष्टा करनी चाहिजै। सारा ही संत सत्याँ आछी तरह सूँ आनन्द मैं रहीज्यो। अठे घणो आनन्द छै। शेष समाचार शिष्य मिठालाल केवेला। वि० संवत् २००८ फा० व० १० सरदारशहर।

तुलसी गणपति नवमाचार्य

सौराष्ट्र मैं विहरमाण चन्दनमुनि सूँ वंदना तथा सुखसाता बंचै। सौराष्ट्र मैं आप आछो उपकार कर रह्या हो, प्रसन्नता की बात है। इधर मैं आपको स्वास्थ्य कुछ कमजोर सुण्यो तथा रात मैं नींद कम आवै इसी सुणी तिण सूँ कुछ विचार हुयो। देशान्तर मैं विचरणे वाला साधुवाँ को शरीर ठीक रेणे सूँ म्हारे भी दिल मैं तसल्ली रेवे। काम भी आछो हुवै। बाकी आपके शरीर नैं वो देश नहीं मानें तो आप कहवा दीज्यो मैं विचार लेवाँगा। शिष्य पूनम, शिष्य उगम आदि सर्व संता सूँ भी सुखसाता बंचै। सारा ही संत घणी चित्त समाधि सूँ रहीज्यो। तन मन सूँ घणै राजी हेत सूँ काठियावाड़ में मिहनत करज्यो, उपकार हो तो लखावै है। सारा ही संता की मिहनत पर म्हारो चित्त प्रसन्न है। अठै सूँ कानमलजी स्वामी तथा रूँपाजी, गुलाबाँजी ने भेज्या है। अठै की सुखसाता का सारा ही समाचार कहसी। इधर मैं म्हारे त्रिवार्षिक देशाटन सैं शासन को अच्छो उद्योत हुयो है सो जाणसी। सं० २००८ पो० व० ८ भादरा।

तुलसी गणपति नवमाचार्य

जेष्ठ सहोदर चम्पालालजी स्वामी, वदनाँजी तथा लाडाँजी सूँ यथायोग्य वंदनाँ सुखसाता बंचै। अपरंच म्हे आज पौणी दस वज्याँ आसरै घणी सुखसाता सहीत फूलासर पहुँच्या सवारे अठै सूं विहार कर के आगै जावण रा भाव है और वदनाँजी के अबै ठीक ही हुवेला। तरतर कमजोरी मिटकर शक्ति आवेला। आप तीनाँ के इंयाँ लारै रेहणै को सायत पहिलो ही मोको है, घणो आछो संजोग मिल्यो है। माता नै संजम की स्हाज देवणो ओ एक पुत्र-पुत्री के वास्ते उऋण होने को मोको है। मनै पिण इं बात को घणो हर्ष है। अबै वदनाँजी के जल्दी ठीक हुणै सूँ विहार करके आइज्यो। घणी जल्दी करीज्यो मती, कारण रहणो तो हो ही गयो। घणी-घणी चित्त समाधि राखीज्यो। वदनाँजी के समाधि हुणै सूँ सघलाँ के चित्त मैं घणी समाधि हुवै। और सर्व संत सत्याँ सूँ यथायोग्य वंदनाँ सुखसाता बचै। सं० २००२ फा० वदि १२ फूलासर।

तुलसी गणपति

मंत्री मुनि तेरापंथ संघ के सर्व सम्मान्य व्यक्ति थे। उन्होंने पाँच आचार्यों का जीवनकाल देखा, वे सभी के कृपापात्र रहे। आचार्यश्री तुलसी ने इनको मंत्री की उपाधि से विभूषित किया। यह तेरापंथ संघ में पहला अवसर था कि किसी मुनि को मंत्री की उपाधि मिली हो। वे अपने जीवन में सदा ही आचार्यों के साथ रहे। पहली बार शारीरिक अस्वस्थता के कारण उनको बीदासर में रहना पड़ा। तब लाडनूं में आचार्यश्री ने उनको पहला पत्र संस्कृत में लिखकर दिया था, उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है:

मंत्री मुने ! पुनः-पुनः वंदना और बार-बार सुख पृच्छा। इन समाचारों को सुनकर मुझे बड़ा खेद हुआ कि आपका शरीर पहले की तरह अस्वस्थ ही है। खेद ! जिस प्रकार आपका शरीर जरा जीर्ण हो गया, क्या इस दुनिया की औषधियाँ भी जीर्ण हो गई ? क्या सभी प्रकार की चिकित्साएं संदिग्ध हो गई ? जिससे आपका शरीर अभी भी व्याधि-ग्रस्त हो रहा है। मैं मानता हूँ कि आपका शरीर जितना रोग से पीड़ित नहीं है उतना मुझसे दूर रहने के कारण है। ऐसा मैं विश्वास करता हूँ। यह मेरी कल्पना सही है। किन्तु यह शरीर तो समय आने पर मुझसे मिलने पर स्वयमेव स्वस्थ हो जायेगा, ऐसा लगता है।

आप इस अन्तराय काल में शान्त चित्त होकर रहें। क्योंकि यह मैं निश्चित मानता हूँ कि "आप मेरे से कोई दूर नहीं हैं और न मैं आपसे दूर हूँ।" इन मेरे वाक्यों को बार-बार स्मरण रखते हुए अपने अन्तःकरण को शान्त रखें। अपना मिलन शीघ्र ही होने की सम्भावना है।

यहाँ समस्त संघ पूर्णतया कुशल है वैसे ही वहाँ होगा। सं० २००५ पौष कृष्णा ५, लाडनूं।

तुलसी गणपति नवमाचार्य

तुम मानव !

मुनिश्री श्रीचन्दजी 'कमल'

तुम मानव हो
देवत्व तुम्हारे चरणों में लुटता है
लोग तुम्हारे में देवत्व की कल्पना कर रहे हैं
पर तुम मानव हो
और
मानव ही रहना चाहते हो
क्योंकि

देवत्व विलासिता का रूपक है और मानव पुरुषार्थ का। पुरुषार्थ में तुम्हारा विश्वास है, इसीलिए तुम मानव रहना चाहते हो।

इस युग के प्रथम व्यक्ति

श्री गिल्लूमल बजाज
अध्यक्ष, अणुव्रत समिति, कानपुर

यह कोई शाश्वत तथ्य नहीं कि भौतिकता अनैतिकता का आश्रय लेकर ही चले, किन्तु जब मानव दृष्टि-पथ में निःश्रेयस् हो ही नहीं और वह उसकी आवश्यकता भी स्वीकार न करना चाहे तो उस उपेक्षित आध्यात्मिकता में भौतिकता को अनैतिकता की भूमि पर खड़े होने से रोक देने की शक्ति ही कहां से आयेगी। यह एक नियम-सा है कि भौतिक उत्थान आध्यात्मिकता को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है और इसीलिए यह स्वीकार किया जाता है कि भौतिकता अनैतिकता की भूमि पर खड़ी होती है।

जब हम अपने राष्ट्र पर दृष्टि डालते हैं और यह देखते हैं कि हमें भयंकर अनैतिकता के वातावरण में से होकर चलना पड़ रहा है, तब हमें आश्चर्य होता है और हम यह सोचने के लिए बाध्य हो जाते है कि यह सम्भव कैसे हुआ; क्योंकि हमें स्वतन्त्र करने का श्रेय सत्य, अहिंसा और प्रेम पर आधारित हमारे नैतिक आन्दोलन को है। स्वतन्त्र हम हुए नैतिकता के बल पर और स्वतन्त्रता-जन्य सुखोपभोग के लिए हम आश्रय ले रहे हैं—अनैतिकता का; यह आश्चर्य ही तो है!

ऐसा विपरीत परिणाम क्यों? और इस विपरीतावस्था में होने वाले राष्ट्रोत्थान का प्रयास क्या हमारी वास्तविक सुख-समृद्धि की सृष्टि कर सकेगा; यह भी एक प्रश्न है और जिसे हम राष्ट्र-निर्माण की संज्ञा दे रहे है क्या सचमुच में इस प्रकार का राष्ट्र-निर्माण वस्तुतः हमारे लिए लाभप्रद है; इस पर भी हमें सोचना होगा।

राष्ट्र निर्माण और नैतिकता

राष्ट्र किसी विशेष स्थल के अन्योन्याश्रित निवासियों के उस समूह को कहते हैं जो अपने सदस्यों की सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक विचारधाराओं को एक साथ, एक ही दिशा में प्रवाहित करता है और जो सम्बन्धित सदस्यों के वैयक्तिक स्वार्थों को सामूहिक स्वार्थ का पूरक बना देता है। इसीलिए राष्ट्र-निर्माण का वास्तविक अर्थ है, राष्ट्र के नागरिकों के चरित्र को उस साँचे में ढालना, जो सम्बन्धित समुदाय के स्वार्थ की पूर्ति करने वाला हो। यदि ऐसा प्रयास नहीं हो रहा तो नामपट्ट चाहे जो लगा दिया जाये, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि उस प्रयास को राष्ट्र-निर्माण का नाम देना, राष्ट्र को धोका देना है।

निःसन्देह बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना हो रही है, बाँध और नहरें अस्तित्व में आ रहे हैं, बिजली का प्रसार हो रहा है; किन्तु क्या इसीसे राष्ट्र-निर्माण हो जायेगा? क्या इसीसे हमारे देश मे घी और दूध की नदियां बहने लगेंगी? सत्य तो यह है कि राष्ट्र-निर्माण की दिशा में सबसे पहले नागरिकों के चरित्र-निर्माण की आवश्यकता है।

प्राप्य एवं संग्रह में एक अन्तर है, यह नागरिकों को मालूम होना चाहिए। अधिकार का ही ज्ञान पर्याप्त नहीं है, नागरिक को कर्तव्य का ज्ञान भी होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो राष्ट्र की चाहे जो भी इमारत खड़ी की जाये, वह स्थायी नही होती। जिस राष्ट्र का नागरिक अपने कर्तव्य और अधिकार, अपने प्राप्य और देय के अन्तर को ईमानदारी से स्वीकार नहीं करता, वह राष्ट्र जियेगा कैसे?

राष्ट्रीयता का प्राण है, राष्ट्र के प्रति निष्ठा। राष्ट्र-निष्ठा का अर्थ है, उसके निवासियों के कल्याण की भावना।

राष्ट्रहित-साधन नागरिकों की सुख-समृद्धि के लिए किये जाने वाले प्रयास का नाम है। हम वर्तमान काल को राष्ट्र-निर्माणकाल की संज्ञा देते हैं; अतः हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम राष्ट्र-निर्माणात्मक अपने कार्यों पर एक दृष्टि डाल लें और यह देख लें कि हम कितने पानी में हैं। इस सम्बन्ध में हमें दो बातों की विवेचना करनी होगी। एक तो यह कि क्या हम सचमुच राष्ट्र-निर्माण कर रहे हैं और दूसरी यह कि क्या हमारा प्रयास स्थायी परिणाम का जनक होगा।

नैतिकता व अनैतिकता का सम्बन्ध

हमारी पंचवर्षीय योजनाएं निःसन्देह देश के आर्थिक स्तर को उठाने वाली हैं; किन्तु हम यह कैसे समझें कि योजनाओं द्वारा राष्ट्र का उच्चीकृत स्तर देश में सुख-शान्ति की सृष्टि करेगा और यदि सुख-शान्ति के हमें दर्शन भी हुए तो इसका क्या भरोसा कि हम उसे पकड़ कर रख सकेंगे।

समृद्ध नागरिक का नैतिक स्तर उच्च ही होगा, यह कहना स्वयं अपने को भ्रम में डालना है। वास्तविकता तो यह है कि नैतिकता-अनैतिकता का सम्बन्ध धन अथवा दरिद्रता से बिल्कुल नहीं। यदि अनैतिकता का प्रसार अवरुद्ध नहीं हुआ तो वह बढ़ेगी और उसका बढ़ना क्या होगा, कहाँ तक होगा, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। हीन चरित्र के नागरिक से राष्ट्रोत्थान की आशा करना बुद्धिमानी की बात नहीं; क्योंकि वह अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकता है। राष्ट्र को बेच सकता है, राष्ट्र की इज्जत को गिरवी रख सकता है।

राष्ट्र-निर्माणार्थ आवश्यक है कि उसमें नैतिक बल उत्पन्न किया जाये। राष्ट्रोत्थान तभी सम्भव होगा, जब नागरिक का नैतिक उत्थान होगा, जब नागरिक अपना कर्तव्य समझता होगा और उसका पालन करता होगा। जब नागरिक अपने कर्तव्यों और दूसरे के अधिकारों की रक्षा को अपना धर्म मानता है, तभी राष्ट्र का वास्तविक उत्थान होता है और वह उत्थान उत्कर्षोन्मुख रहता है।

गिरती हुई नैतिकता को रुकने की सुविधा मिलना कठिन हो जाता है। दूर न जाकर हमे अपने घर ही एक दृष्टि डालनी होगी। यह एक तथ्य है कि स्वतन्त्र होने के पश्चात् आर्थिक दृष्टि से देश कुछ ऊपर उठा है, किन्तु साथ ही यह एक विचित्र-सी बात हुई कि हमारा राष्ट्रीय चरित्र हीन ही होता चला गया है। आखिर ऐसा क्यों ?

हम ऊपर कह चुके हैं कि हम नैतिकतापूर्ण राजनैतिक आन्दोलन की सीढ़ी पर चढ़ कर स्वतन्त्रता के मन्दिर तक पहुँच सके है। तब हमारा चरित्र आज हीन क्यों है ? कारण केवल इतना है कि स्वतन्त्र होने के पश्चात् स्वतन्त्रता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उसको नैतिकता का सिंहासन देना हम आवश्यक नहीं मान सके। हमने सुख-समृद्धि के लिए तो वास्तविक प्रयास जारी रखा, किन्तु मार्ग-भ्रष्ट हो गये; अतः फल विपरीत हुआ। सुख-समृद्धि का युग तो चलता ही रहा, किन्तु नैतिकता का युग समाप्त हो गया। परिणाम यह हुआ कि सुख-समृद्धि में न्यूनता नहीं आई, किन्तु शक्ति नष्ट होना प्रारम्भ हो गई। हमको अपनी-अपनी पड़ गई। हमने कर्तव्य का पल्ला तो छोड़ दिया, किन्तु अधिकारों की माँग करने में एक-दूसरे को पीछे धकेल कर आगे बढ़ने के प्रयास में जुट गए। विवेक को चालाकी ने पराजित कर दिया। कर्तव्य-भावना को अवसरवादिता ने रौंद डाला।

इस वातावरण में हम राष्ट्र-निर्माण कर रहे हैं। यह हम जानते है कि राष्ट्र-निर्माताओं की कर्तव्य-भावना सन्देह से परे है; किन्तु जिन ईंटो से भवन खड़ा हो रहा है, वे कच्ची है, घटिया किस्म की हैं। तब पक्का और मजबूत भवन खड़ा कैसे होगा ?

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी नैतिकता की अपरिहार्यता को ठीक-ठीक समझते थे, अतः उसको उन्होंने अपने आन्दोलन का आधार बनाये रखा। महात्माजी के पश्चात् उनके सिद्धान्त को यथावत् समझने वाली और उनको कार्यान्वित करने वाली देश में केवल दो विभूतियाँ रह गई : एक तो आचार्य विनोबा भावे और दूसरे आचार्य तुलसी। आचार्य तुलसी की विशेषता यह है कि उन्होंने देश में नैतिकता की स्थापना को ही अपने जीवन का लक्ष्य घोषित किया और अपनी घोषणा को सत्य एवं फलवती सिद्ध करने के लिए उन्होंने अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन कया।

अणुव्रती के काम्य

अणुव्रत-आन्दोलन चरित्र-निर्माण का आन्दोलन है, राष्ट्र-निर्माण का आन्दोलन है, मानव-मात्र के कल्याण-साधन का आन्दोलन है। इस आन्दोलन को देश, काल और पात्र की सीमाओं से परिवेष्टित नहीं किया जा सकता। यह मनुष्यमात्र के कल्याण का मार्ग-निर्माण करने वाला प्रयास है और कहा तो यह भी जा सकता है कि प्राणी-मात्र के सुख और शान्ति अणुव्रती के काम्य है।

आचार्य तुलसी जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के निर्देशक, नियामक व नवम आचार्य हैं और उनका स्थान अपने अनुयायियों में इतना उच्च है कि शायद ही किसी अन्य सम्प्रदाय के आचार्य का आसन उसकी समता कर सके, किन्तु फिर भी अणुव्रत-आन्दोलन पर साम्प्रदायिकता की किसी प्रकार की छाप नहीं। अणुव्रत-आन्दोलन का क्षेत्र सभी मनुष्यों का स्वागत करता है। वे चाहे किसी भी देश, समाज, जाति, वर्ण अथवा सम्प्रदाय के हों। अणुव्रत-आन्दोलन साम्प्रदायिक मान्यताओं पर न तो आघात करता है और न उन्हें बढ़ावा देता है। किन्तु मानव-धर्म को प्रमुखता देने का प्रयास करता है और उसको मान्यता दिलवाने का प्रयत्न करना ही अणुव्रत-आन्दोलन का एकमात्र उद्देश्य है।

आचार्यश्री तुलसी तेरापंथ के नवम आचार्य हैं; अतः जो तेरापंथ की मान्यताओं से परिचित नहीं और जिसको आचार्यश्री के दर्शन नहीं मिले, वह यही समझेगा कि इतने सामान्य व्यक्ति का वैभव स्पृहणीय होगा, उनकी सुविधाएं असीम होंगी। किन्तु बात इसके सर्वथा विपरीत है। उनके परिवार नहीं, घर नहीं, सम्पत्ति नहीं, मठ नहीं, कोई स्थायी निवास नहीं, किसी सवारी पर चलते नहीं, किसी प्रकार की कोई सामग्री पास रखते नहीं; श्वेत परिधान, कुछ आवश्यक पुस्तकें और काष्ठपात्र को छोड़कर। भिक्षान्न पर जीवन-यापन और जीवन का लक्ष्य मनुष्यमात्र का कल्याण। आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करना उनकी परम्परा के विपरीत है। आचार्यत्व के अतिरिक्त किसी पद को स्वीकार करना उनकी धार्मिक मान्यताओं के अनुकूल नहीं। वे इतने निःस्पृह और इतने निष्काम हैं।

यदि ऐसे शुद्ध चरित्र का व्यक्ति हमसे शुद्ध चरित्र की आकांक्षा करता है, तो वह स्वाभाविक है और उसका प्रभाव पड़ना हमारे ऊपर अनिवार्य भी है। अणुव्रती से अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक न तो सम्मान चाहते हैं और न बदले में किसी कामना की पूर्ति की आकांक्षा ही रखते हैं। उनकी तो हमसे केवल इतनी ही माँग है कि हम अपने चरित्र को निष्कलंक रखें और वास्तविक मनुष्य बनने का प्रयास करें।

आचार्यश्री श्रमण-संस्कृति के वर्तमान तपोधन प्रतिनिधि है। उनकी प्रवृत्ति जन्मना वैराग्यमूलक है। आचार्यश्री का व्यक्तित्व इतना महान् सिद्ध हुआ कि वह तेरापंथ के घेरे में न समा सका और आज अणुव्रत-आन्दोलन-प्रवर्तक के रूप मे हम उन्हे युग-स्रष्टा मनीषियों में प्रमुख स्थान अधिकृत किये पा रहे हैं।

आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि ऐसे ही गृहत्यागी महात्माओं के द्वारा होती आई है। भगवान् बुद्ध, महावीर स्वामी, शंकराचार्य, ईसा इत्यादि जितने भी आध्यात्मिकता का सन्देश देने वाले विश्व में हुए है, सब इसी श्रेणी के थे। उनकी निःस्पृहता, उनकी अकिंचनता ही में वह शक्ति थी कि मनुष्य को उनकी बात सुनने के लिए बाध्य होना पड़ा है। आचार्य तुलसी उसी परम्परा के हैं। इसीलिए अणुव्रत-आन्दोलन की सफलता असंदिग्ध है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्य को आज इसी सन्देश की सबसे अधिक आवश्यकता है।

स्वर्ण तभी शुद्ध होता है, जब वह अग्नि में तपा लिया जाता है। जितना जल जाता है, वह विकार होता है और जो शेष रहता है, वही सोना है। गुणगान ही यथेष्ट नहीं होता, गुणों को कसौटी पर कसना भी जरूरी होता है। अणुव्रत-आन्दोलन पर हम जितना विश्वास करते है, कहीं ऐसा तो नही कि वह आवश्यकता से अधिक हो।

सबसे पहले तो हमें यह देख लेना आवश्यक है कि आन्दोलन-प्रवर्तक अपने आन्दोलन के द्वारा किस उद्देश्य-प्राप्ति के इच्छुक हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि अपने वैयक्तिक, पारिवारिक अथवा अन्य किसी संकुचित स्वार्थ सिद्धि के लिए आन्दोलन केवल सीढ़ी का काम दे रहा हो। यदि ऐसी परिस्थिति आन्दोलन को जन्म देने वाली होती है तो कर्णधार कर्णधार न सिद्ध होकर अपने अनुयायियों को बीच धार में डुबाने वाला होता है। वह अपने अनुयायियों की निष्ठा का

दुरुपयोग करता है और जब वह देखता है कि उसकी आन्तरिक लिप्सा-पूर्ति की क्षमता अनुयायियों की तपस्या ने उसमें उत्पन्न कर दी है तो वह उन्हें ठीक उसी तरह पीछे छोड़ जाता है, जिस तरह किसी भवन की सीढ़ियों को एक-एक कर छोड़ता हुआ कोई व्यक्ति ऊपर चढ़ता है।

आचार्यश्री की ओर जब हमारी दृष्टि जाती है तो हम उन्हें संसार-त्यागी के रूप में पाते हैं। जब वे अपना स्थायी निवास-स्थान नहीं बनाते, किसी पद को स्वीकार नहीं करते, धन को छूते भी नहीं, अपने पास कुछ भौतिक ऐश्वर्य रखते ही नहीं; तब उनकी कोई ऐसी भौतिक कामना हो ही कैसे सकती है जिसे वे आन्दोलन के बल पर पूरी करना चाहते हों। हाँ, उनकी कामना है और वह यही है कि मानव आध्यात्मिक बने। उसका चरित्र शुद्ध हो और उसका कल्याण हो। यह अवस्था ऐसी है जो हमें आश्वस्त करती है, विश्वास दिलाती है और भयमुक्त करती है।

इस युग में राष्ट्र के प्रत्येक अंग में अनैतिकता घर कर गई है जिसे सभी देखते हैं, अनुभव करते हैं; किन्तु आचार्यश्री तुलसी इस युग के प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने उन बुराइयों को दूर करने का निश्चय किया है और वह अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में क्रियान्वित हुआ।

यह आन्दोलन अपने ढंग का एकाकी है; क्योंकि इसमें न तो उपासना-पद्धति पर जोर दिया जाता है और न किसी प्रकार का कोई वचन ही लिया जाता है। वह तो केवल आत्म-शुद्धि की माँग करता है।

नारियों से, विद्यार्थियों से, सरकारी कर्मचारियों से, व्यापारियों से और सभी अन्य नागरिकों से आन्दोलन की माँग उनकी परिस्थितियों के अनुसार है। आचार्यश्री तुलसी चाहते हैं कि राष्ट्र का प्रत्येक वर्ग आदर्श हो, उच्च हो, कर्तव्यपालक हो। यदि यह हो गया तो देश का कल्याण होगा, इसमें सन्देह नहीं।
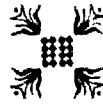
नहीं भक्त भी, किन्तु विभक्त भी

मुनिश्री मानमलजी (बीदासर)

जन-जागृति के अमर प्रणेता है तेरा शतशः अभिनन्दन,
नहीं भक्त भी, किन्तु विभक्त भी करते हैं तेरा अभिनन्दन।

झूम रहे थे जग के चेतन जिन भौतिक श्वासों को पाने,
उलझे थे सूने भावों में जग की चापों को अपनाने,
आ तुमने तब घोर अमा में जीवन की ज्योति दे डाली,
मानव डग भरता है अब तो पाने क्षितिज पार की लाली,
बीहड़ पथ सुषमा से पूरित, हुआ आज सब टूटे बन्धन,
जन-जागृति के अमर प्रणेता है तेरा शतशः अभिनन्दन।

अणु से हो आरम्भ पूर्ण तक है सबको ही बढ़ते जाना,
इसीलिए तो अणुव्रतों का सुना रहा तू गीत सुहाना,
पुलकित हो नैतिकता युग-युग मानवता की हो अगवानी,
जीवन मधुरिम घड़ियाँ ले, गढ़ जाये अपनी मधुर कहानी,
तुम तो स्थितप्रज्ञ तुम्हारे लिए एक है पावक-चन्दन,
जन-जागृति के अमर प्रणेता है तेरा शतशः अभिनन्दन।

व्यक्तित्व-दर्शन

श्री नथमल कठौतिया

उपमन्त्री, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता

मूर्तिकार की कलाकृति में सजीवता एवं लालित्य तभी आता है जबकि उसे उपयुक्त शिला-खण्ड प्राप्त हो। माली की कला-दक्षता का सही प्रस्फुटन तभी हो सकता है जबकि उसे उर्वर भूमि उपलब्ध हो, साहित्यकार की लेखनी में रस-संचार तभी हो पाता है, जब कि उसे भावनानुकूल विषय सुलभ हो। यद्यपि मूर्ति की सद्यःसजीवता एवं सौन्दर्य-सुघड़ता का श्रेय मूर्तिकार को, वाटिका की सुरम्य रमणीयता का श्रेय माली को एवं साहित्य की रस स्निग्ध आनन्दमयी कृति का श्रेय साहित्यकार को मिलता है; यह स्वाभाविक है। परन्तु कलाकृति के पृष्ठाधार को परिष्कृत व परिमार्जित करने वाले उस मूक सूत्रधार का एवं कलाकृति व कलाभिव्यक्ति के चरम-विकास में अन्य सभी सहयोगी माध्यमों का भी अपना विशेष महत्त्व है, किन्तु उनका मूल्यांकन व उनके प्रति वास्तविक आभार-प्रदर्शन तो वह कलाकार ही कर पाता है, जिसको इन सबके सहयोग एवं बल पर वांछित सफलता का श्रेय मिला हो।

सर्वसाधारण जन तो उन मूक व मुखर सभी उपादानों के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन का केवल प्रयास मात्र ही कर पाते हैं। प्रस्तुत लेख भी एक ऐसा ही प्रयास है। आचार्यश्री तुलसी वर्तमान युग की एक अनुपम कृति हैं और उसके कलाकार हैं महामानव अष्टमाचार्य श्री कालूगणीराज: जिनकी अनुपम व अनोखी सूझ-बूझ, कर्मठ कर्तव्य-निष्ठा व बहुमुखी विकास प्रतिभा के फलस्वरूप विश्व को एक अमूल्य रत्न, एक ज्वलन्त प्रतिभा प्राप्त हुई। जिसके पुनीत प्रकाश में भ्रमित विश्व अपना पथ-प्रदर्शन पाता है। गौरव एवं गरिमामयी इस भेंट के लिए विश्व इस मूर्धन्य कलाकार का चिर ऋणी रहेगा, इसमें सन्देह नहीं। वर्चस्वी कलाकार श्री कालूगणी के उपर्युक्त अप्रतिम कर्तृत्व में उनके सेवाभावी शिष्य मुनिश्री चम्पालालजी (भाईजी महाराज) का भी उल्लेखनीय योगदान हुआ। वस्तुतः ऐसा सौभाग्य किसी विरले जन को ही मिल पाता है। मुनिश्री आचार्यप्रवर के वरद हस्त हैं, इस हेतु आचार्यश्री के क्रम-विकास में उनका पूरा-पूरा योगदान रहा है, जो स्वाभाविक है।

मुनिश्री की दीक्षा स्वर्गीय आचार्यश्री कालूगणीराज के करकमलों द्वारा चूरू वि० सं० १९८१ में सम्पन्न हुई थी। उनकी अपनी दीक्षा हो जाने के लगभग डेढ़ वर्ष पश्चात् आपका ध्यान अपने अनुज आचार्यश्री तुलसी की विशेषताओं व विलक्षणताओं की ओर आकर्षित हुआ। अनुज के अंक-विशेषों में उन्हें महापुरुषोचित लक्षण दृष्टि-गोचर हुए। इस प्रकार आकृत-विशेष में प्रच्छन्न किसी महान् व्यक्तित्व का आभास पाकर मुनिश्री ने मन-ही-मन अनुज के लिए सर्वोत्तम आत्मार्थी मार्ग की कल्पना संयोजित की और इस हेतु प्रयासित हुए। समय-समय पर मुनिश्री उन्हें प्रेमपूर्वक सरल शब्दों में भिन्न-भिन्न बालकोचित उपायों एवं उपदेशात्मक चित्रों द्वारा जीवन की सही दिशा का निर्देशन करते तथा उन्हें सांसारिकता से विरक्त कर आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करते रहते। इस तरह कुछ तो मुनिश्री के अविरल प्रयास से एवं कुछ अपने संयोजित संस्कारों से बालक तुलसी की निर्मल आत्मा में ग्यारह वर्ष की आयु में ही एक दिन वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ एवं आज के आचार्यप्रवर बालक तुलसी अपने भविष्य की ओर आकर्षित हुए। प्रयासित फल-प्राप्ति की सफलता पर मुनिश्री के हर्ष का पारावार न रहा, पर साथ-ही-साथ उन्होंने अब उसके विकास प्रकाश की आवश्यकता भी अनुभव की और उन्होंने विनम्र निवेदन के साथ यह प्रश्न अपने परमगुरु स्वर्गीय आचार्यश्री कालूगणीराज के समक्ष रखा तथा इस सहज अर्जित सफलता को उनके चरणों में समर्पित कर अनुज के लिए शुभाशीर्वाद की कामना की।

आचार्यश्री तुलसी के जीवन-प्रसंग

मुनिश्री पुष्पराजजी

आचार्यश्री तुलसी के जीवन को जिस किसी कोण से देखा जाये उसमें विविधताओं का संगम मिलता है। उनका बचपन, उनका मुनिजीवन व उनका आचार्यकाल जन-जन को अनिर्वचनीय प्रेरणा देने वाला है। प्रस्तुत उपक्रम में उनके बाल्य-जीवन व कुछ आचार्यकाल की घटनाओं का संकलन किया गया है, जिससे उनके जीवन का थोड़े में ही सर्वांगीण अध्ययन किया जा सके। उनके बाल्य-जीवन की घटनाएं उनके अपने शब्दों में—संस्मरणों के रूप में दी गई है और आचार्यकाल की घटनाओं को एक दर्शक के शब्दों में।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात

प्रातःकाल भाभी ने हाथ पर पैसे रखते हुए आज्ञा के स्वर में कहा—मोती! लोहे के कीले ले आओ। उस समय मेरी आयु सात वर्ष के करीब होगी। मैंने नेमीचन्दजी कोठारी की दुकान से कीले ले लिए। उन्होंने पैसे नहीं लिए, चूंकि वे मेरे मामा होते थे। मैं घर की ओर चला आया। भाभी के हाथ में पैसे और कीले दोनों रख दिये। भाभी ने साश्चर्य कहा—यह कैसे? पैसे भी और कीले भी? मैंने सहज भाव से कहा, मामा जो ठहरे।

"तुलसी! पैसे यदि तू रख लेता, तो मुझे क्या पता लगता?" भाभी ने कहा।

"पता नहीं लगता, पर मेरी आत्मा तो मुझे कचोटती?" मैंने बीच में ही बात काटते हुए कहा।

"तुम्हारे हृदय में पैसे चुराने का चिन्तन तो हुआ होगा?" भाभी ने मुस्कराते हुए कहा।

"मुझे अप्रामाणिकता से अत्यन्त घृणा है भाभी!" मैंने स्वर को तेज करते हुए कहा।

भाभी के मुख से सहज निकल पड़ा, "यह कोई होनहार बालक प्रतीत होता है।" 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'।

इनके पीछे कौन?

मेरे बचपन की एक घटना है। उस समय मैं केवल सात वर्ष का था। माताजी मुझे नहला रही थी। मैंने उस समय प्रश्न किया—माँ! मुझे पूजीमहाराज बहुत प्यारे लगते हैं।

माँ—बेटा! वे बड़े पुण्यवान् पुरुष हैं।

बेटा—माँ! उनके चरण फूल जैसे बड़े ही कोमल हैं और वे पैदल चलते है, तब इनके पैरों में काँटे नहीं लगते क्या?

माँ—पुण्यवानों के पग-पग निधान होते हैं, बेटा!

बेटा—माँ! इनके पीछे पूजी महाराज कौन होंगे?

माँ—(लाल आँखें दिखाकर डाँटते हुए) मूर्ख कहीं का, हमारे पूजीमहाराज युग-युगान्तर तक अमर रहे।

माँ की लाल आँखों ने मेरे हृदय में उठते हुए प्रश्नों को मौन में परिणत कर दिया।

सजा तो माफ हो गई, पर…

एक बार की घटना है, मैं जंगल (पंचमी) से पुनः लौटते समय बालू के टीले से नीचे उतर रहा था कि इतने में

गुरुदेव ने फरमाया, तुलसी ! नीचे हरियाली है । मैंने सहसा उत्तर दे दिया, मैं ध्यान रख लूंगा । पर चला उसी मार्ग पर । धीरे-धीरे व सावधानीपूर्वक चलने पर भी धूली कण हरियाली पर आ गये । गुरुदेव ने मीठा उलाहना देते हुए कहा, "देख, रेत हरियाली पर आ गई न ? मैंने कहा था न ? 'दो परठण दण्ड' ।" मेरा मुँह छोटा-सा हो गया । स्थान पर आने के पश्चात् मैंने विनम्र शब्दों में त्रुटि की क्षमा चाही । समुद्र के समान गम्भीर गुरुदेव ने सजा माफ कर दी । सजा तो माफ हो गई, पर वह शिक्षा माफ नहीं हुई । आज भी स्मृति को सरस बना रही है ।

तारे गिन के आओ

रात्रि का समय था । तारे झिलमिल-झिलमिल कर धरती पर झाँक रहे थे । उस समय मेरी अवस्था सत्रह वर्ष की होगी । नींद अधिक आना स्वाभाविक ही था । कालूगणी शिवराजजी स्वामी को आदेश देते, जाओ तुलसी को उठा लाओ । वे मुझे उठा जाते । मैं कभी-कभी नींद में ही, हाँ आता हूँ, कहकर पुनः सो जाता । आप फिर कहते—तुलसी आया नहीं । जाओ, इस बार उसे साथ लेकर आओ । मैं साथ-साथ चला आता । फिर भी स्वाध्याय, चिन्तन करते-करते मुझे नींद आ ही जाती । आप उस समय बड़े ही मीठे शब्दों में मनोवैज्ञानिक ढंग से नींद उड़ाने के लिए कहते—तुलसी, जाओ आकाश के तारे गिन कर आओ, तारे कितने हैं ? सजग होने पर पुनः ज्ञानामृत पिलाते । इस प्रकार गुरुदेव ने प्रशिक्षण देकर मेरे जैसे बिन्दु को सिन्धु बना दिया । गुरु हों तो वस्तुतः ऐसे ही हों ।

टूटे हृदयों का मिलन

६ दिसम्बर, १९६१ को **अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः** पातंजल योग सूत्र के इस वाक्य को प्रत्यक्ष होते हुए देखा जब कि आचार्यश्री तुलसी के एक स्वल्प कालीन प्रयास से इक्कीस वर्ष से पिता और पुत्र के टूटे हृदय का मधुर मिलन हुआ । घटना इस प्रकार थी । कानोडवासी श्री देवीलालजी बाबेल और उनके पुत्र वकील श्री राजमलजी बाबेल में कुछ लेन-देन व बटवारे को लेकर इक्कीस वर्ष से बोल-चाल,खान-पान, मेल-जोल आदि पारस्परिक व्यवहार सर्वथा बन्द थे । इस बीच अनेकों अवांछनीय घटनाएं न चाहते हुए भी हो गई । सहसा संयोगवश आचार्य प्रवर का उनके घर पर पदार्पण हुआ । आचार्यश्री उस परिस्थिति से परिचित थे, अतः दोनों को परस्पर वैमनस्य का त्याग कर शान्ति से जीवन व्यतीत करने का सदुपदेश दिया । उस उपदेश से दोनों का हृदय बदल गया । एक-दूसरे ने परस्पर क्षमा याचना की । पुत्र ने पिता के चरण छुए और पिता ने पुत्र को हृदय से लगाया । जनता ने यह स्पष्ट देखा कि जिस समस्या को सुलझाने के लिए पंच, सरपंच, न्यायाधीश असफल रहे, वह समस्या क्षण में ही सुलझ गई ।

निश्चल मन और आत्म-दर्शन

पाँच नदियों के संगम स्थल पंजाब की भूमि को नापते हुए आचार्यश्री तुलसी ने एक दिन भाखड़ा-नांगल से निकलने वाली नहर पर विश्राम किया । शिष्य मंडली के साथ, जिसमें मैं भी उपस्थित था, आचार्यश्री तुलसी शान्त सुधारस की गीतिका का मधुर गायन करने में तल्लीन हो गए । नयन खुलते ही नहर के चलते हुए जल-प्रवाह की ओर ध्यान गया । चलते हुए जल में अपना प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देता था । तत्क्षण आत्म-दर्शन की गहन चर्चा में निमज्जन करते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—जिस प्रकार चलते हुए मैले जल-प्रवाह में अपने तन का प्रतिबिम्ब नहीं दीखता, ठीक उसी प्रकार ही चलित मैले मन में भी आत्म-दर्शन नहीं होता । स्वरूप-दर्शन तो निश्चल और निर्मल मन से ही होता है ।

न हमारे जेब है और न मठ

आदिवासियों के बीच आचार्यप्रवर प्रवचन कर चुके थे । प्रवचन के बाद एक पन्द्रह वर्षीय भील बालक आया और कहने लगा—दारू-मांस का परित्याग करवा दीजिए । आचार्यश्री ने परित्याग करवा दिये । उसने वन्दन किया और चुपचाप एक चवन्नी आचार्यश्री की पलथी पर रख कर एक कोने में बैठ गया । आचार्यश्री अपनी साहित्य-साधना में

तल्लीन थे। थोड़ी देर बाद जब उस चवन्नी की ओर ध्यान गया तो पूछा—यह किसने रख दी। पास मे बैठे भाइयों ने कहा—दर्शन करते समय किसी की जेब से गिर गई होगी।

आचार्यश्री—यह गिरी हुई तो नहीं लगती, किसी-न-किसी ने भेंट रूप में रखी है, ऐसा लगता है। तत्रस्थ लोगों से पूछा गया तो सकुचाता हुआ वह बालक जिसका, नाम था 'उदा' सामने आया और कहने लगा—महाराज ! यह तो इस सेवक की तुच्छ भेंट है।

आचार्यश्री अरे भाई ! हम इस भेंट को कहाँ रखेगे। (अपने वस्त्रों की ओर इंगित करते हुए) हमारे न तो कही जेब है और न कोई अलमारी और न मठ है।

बरगद में नया मोड़

सड़क के किनारे पर एक बरगद का पेड़ था। नीचे झुकी हुई जीर्ण जटाएं उसकी पुरानता की कथा स्पष्ट कह रही थीं, किन्तु उसके हरे-भरे और कोमल पत्ते इतने आकर्षक और नयनाभिराम थे कि आचार्यश्री के चरण वहीं पर रुक गये। ऊपर-नीचे देखा और पद यात्री मेवाड़ी भाइयों से कहने लगे—देखो आपने बरगद की चतुरता ? कितना समयज्ञ है यह ? वैशाख मास से पूर्व ही पुराने पत्तों को बिदाई दे दी और अब नया मोड लेकर नया वेष धारण किये पथिकों को मोह रहा है। इस बरगद से प्रेरणा प्राप्त कर आप भी अपने जीवन को देखिये। पुरानता के मोह में कहीं पिछड़ तो नही रहे है ?

सुदामा की भेंट

१५ जून, १९६० को आचार्यश्री अंटालिया से पुनः रिछेड पधार रहे थे। रास्ते में एक 'उदोजी' नामक वयोवृद्ध किसान नौजवान की तरह हृदय में खुशियां लिये आचार्यश्री के पैरों मे लोट गया। उसके हाथ में गुड़ की डली (डला) थी। उसने आचार्यश्री के चरणों में उस गुड़ को भेंट कर दिया। उस भेंट को अस्वीकार करते हुए आचार्यश्री ने गुड़ सम्बन्धी अनेक प्रश्न उससे पूछे। परन्तु उस वृद्ध पटेल का हृदय विशुद्ध प्रेम एवं भक्ति-विभोर था। आंखें आनन्द के आंसुओं से डबडबाई प्रतीत हो रही थीं। उस समय भगवान् महावीर और चन्दन बाला की घटना रह-रहकर हमें याद आ रही थी। उदोजी बोल नही सके। भक्ति ने कुछ करने के लिए बाध्य कर दिया। वृद्ध ने आचार्यश्री का जोर लगा कर हाथ पकड लिया। गुड मुट्ठी मे रखा और बन्द कर दिया। उधर से एक साथ में जयघोष सुनाई दिया 'आज के आनन्द की जय हो।' मैंने पीछे से जिज्ञासा भाव से पूछा—पटेल बासा ! यह क्या किया ? उसने हाजिर जवाबी को लज्जित करते हुए कहा—यह तो गरीब सुदामा के चावल की कृष्ण—तुलसीराम जी महाराज की भेंट थी।

हनुमान का मूल्य

आचार्यश्री प्रातः शौचार्थ गाँव बाहर जा रहे थे। पार्श्व स्थित मन्दिर पर लगे लाउड स्पीकर से आवाज आई—'भगवान् हनुमानजी री कीमत छब्बीस रुपया।' कुछ कदम आगे चले कि फिर सुनाई दिया—'भगवान् हनुमानजी री कीमत सत्ताईस रुपया, तीस रुपया, अड़तीस रुपया बधे सो पावै।'

आचार्यश्री ने अपने प्रवचन के बीच उक्त घटना का उल्लेख करते हुए कहा—कितना अन्धेर है। जिन देवता और भगवान् को सर्व शक्तिमान मानते हैं, उन्हे भी बोलियां बोल कर बेचा जाना है। विवाह और स्नान करवाया जाता है। क्या भगवान् भी मैले हो जाते हे ? भगवान् की कितनी विडम्बना कर रहे है, उनके ही भक्त। कबीर ने ठीक ही कहा है :

कबीर कुबुद्धि प्रनाद को घट-घट मांहि बड़ो।
किस-किस को समझाइये, कुए भांग पड़ी॥

♦

अनुपम व्यक्तित्व

श्री फतहचन्द शर्मा 'आराधक'
मंत्री, दिल्ली राज्य हिन्दी पत्रकार संघ

आचार्य तुलसी किसी सीमित क्षेत्र के आचार्य अथवा साधुमात्र नही हैं और न वे तेरापथ के केवल विशिष्ट मुनि ही रह गये है। अपने पच्चीस वर्षों की आचार्य काल की सतत साधना से उनका स्थान इतना व्यापक बन गया है कि अब उनके सामने किसी एक छोटी इकाई-मात्र का कल्याण करने की कामना ही बहुत पीछे रह गई है। उनकी साधना ने मानव मात्र का हित-चिन्तन करना अपने जीवन का पुनीत उद्देश्य बना लिया है। जीवन में अनेक वर्ग के साधु-महात्माओं को मुझे देखने का अवसर मिला है। किन्तु आचार्य तुलसी जैसा विलक्षण व्यक्तित्व मैं बहुत कम देख पाया। बहुत वर्ष पहले की बात है, जब आचार्य तुलसी पहली बार दिल्ली पधारे। दिल्ली के लिए आचार्यजी बिल्कुल नये थे, किन्तु उन्होंने दिल्ली की चकाचौंध के सामने अपना समर्पण न करके दिल्लीवासियों को कुछ सोचने और करने पर मजबूर किया। इसी भूमि पर उन्होंने अणुव्रत जैसे देशव्यापी आन्दोलन की सृष्टि की। अणुव्रत दिल्ली ही से अणु का रूप लेकर देश व्यापी बना। आचार्यजी भारत की राजधानी में कई बार अपने पदार्पण से इस क्षेत्र के नागरिकों को एक विशेष प्रेरणा समय-समय पर देते रहे है। कुछ उद्‌बोधों से समाज के सभी वर्गों में चैतन्य आया है। अनेक बार आचार्य-जी के दिल्ली और दूसरे स्थानों पर दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर चुका हूँ। जब हजारों लोगों की भीड़ में उन्हें घिरा देखता हूँ, यह भ्रम अपने आप हृदय से निकल जाता है कि वे किसी सम्प्रदाय विशेष के आचार्य है।

जिस देश में मेरी जन्म-भूमि है, उस प्रदेश में आचार्यजी का जब आगमन हुआ तब उन्हें अणुव्रत-आन्दोलन के संचालन में केवल उनके सम्प्रदाय का अथवा जैन समाज का ही सहयोग नही मिला, अपितु ईसाई और मुसलमानों का भी आन्दोलन को सक्रिय सहयोग मिला और उन सबने उससे प्रेरणा भी पाई। आचार्यजी ने उत्तरप्रदेश में ऐसा जादू कर डाला कि बहुत कम व्यक्ति ऐसे रहे हैं जिन्होंने अणुव्रत-आन्दोलन के प्रति अपना सौहार्द प्रदर्शित न किया हो। यह उनके प्रयत्न और प्रभाव का ही चमत्कार मानता हूँ कि उन्होंने उत्तरप्रदेश की नैतिक गतिविधियों को प्रोत्साहन देने वाली संस्थाओं में अणुव्रत समिति को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करा दिया। अभी तक बड़ी-से-बड़ी दूसरी संस्थाओं के नैतिक आन्दोलन उत्तरप्रदेश में चले और पनपे, किन्तु उन्हें जनता और सरकार दोनों का सहयोग समान रूप से नही मिला। अणुव्रत समिति के सम्बन्ध में यह बात बिल्कुल अपवाद मात्र है। इतना गहरा प्रभाव दूसरे व्यक्ति कम कर पाये हैं। इस सारी सफलता के पीछे जहाँ उनके सहयोगी कर्मठ कार्यकर्ताओं का योग है, वहाँ आचार्यजी की साधना, उनके द्वारा किया गया निर्णय और उसे क्रियान्वित करने की तीक्ष्ण बुद्धि है। इन सबका योग मिलाकर आचार्य तुलसी ने अपनी शान्तिप्रिय साधना से केवल राजस्थान ही में नहीं, सारे देश को बांध लिया है।

समान शुभ चिन्तक

अनेक विशिष्ट व्यक्ति जब अपने पास बड़ी-से-बड़ी शक्तियों को आते देखते है, तब उनके द्वार जनसाधारण के लिए बन्द हो जाते हैं। किन्तु आचार्यश्री तुलसी के सम्बन्ध में ऐसा नही कहा जा सकता। उनके यहाँ सभी को आने का अवसर मिलता है। राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री से अणुव्रत-आन्दोलन की बात करने के बाद आचार्यजी का क्षेत्र वहीं नहीं समाप्त हो जाता। जिस तरह की चर्चा आचार्यजी इस आन्दोलन को लोकोपयोगी बनाने के लिए राष्ट्र नायकों से करते हैं, उसी प्रकार अपने आन्दोलन के संचालन और संवर्धन करने के लिए वे सर्वसाधारण कार्यकर्ताओं से भी बातचीत करते

हैं। उनकी यह उदार वृत्ति अपने निकट दूसरे धर्मों के लोगों को भी खींच लाने में विशेष सहायक सिद्ध हुई है। उनके आन्दोलन में जहाँ जैन धर्म के उपासक जुटे हैं, वहाँ सनातन धर्मी और अन्य मतावलम्बी बड़े स्नेह से इस आन्दोलन को अपना आन्दोलन मानते हैं। बड़े-से-बड़े कट्टर आर्यसमाजी जिन्होंने बहुत समय तक स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के आधार पर जैन धर्म के सेवकों से अलग मार्ग रखा, वे भी बड़े चाव के साथ आचार्यजी के अणुव्रत-आन्दोलन के विशेष कार्यकर्ता बने हुए हैं। उनका यह सब प्रभाव देख कर आश्चर्य होता है कि राजस्थान के एक सामान्य परिवार में जन्म लेने वाला यह मनुष्य कितने विलक्षण व्यक्तित्व का स्वामी है जिसने वामन की तरह से अपने चरणों से भारत के कई राज्यों की भूमि नापी है। इस समय देश में एक-दो व्यक्तियों को छोड़ कर आचार्य तुलसी पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने आचार्य विनोबा से भी अधिक पदयात्रा करके देश की स्थिति को जाना है और उसकी नब्ज देख कर यह चेष्टा की है कि किस प्रकार के प्रयत्न करने पर शान्ति प्राप्ति की जा सकती है। उनके जीवन-दर्शन में कभी विराम और विश्राम देखने का अवसर नहीं मिला। जब कभी भी उन्हें किसी अवसर पर अपना उपदेश करते देखा, तब उन्हें ऐसा देख पाया कि वे उस समारोह में बैठे हुए उन हजारों व्यक्तियों की भावना को पढ़ रहे हैं। उन सबका एक व्यक्ति किस प्रकार समाधान कर सकता है, यह उनकी विलक्षणता है। समारोहों में सभी लोग पूरी तरह से सुलझे हुए नहीं होते। उनमें संकीर्ण विचारधारा के व्यक्ति भी होते है। उनमें कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो अपने सम्प्रदाय विशेष को अन्य सभी मान्यताओं से विशेष मानते है। उन सब व्यक्तियों का इस प्रकार समाधान करना किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। ग्रामो और कस्बों की अज्ञान परिधि में रहने वाले लोगों को, जिन्हें पगडंडी पर चलने का ही अभ्यास है, एक प्रशस्त राजमार्ग से उन्हें किसी विशेष लक्ष्य पर पहुँचा देना आचार्य तुलसी जैसे ही सामर्थ्यवान् व्यक्तियों के वश की बात है।

विरोधियों से नम्र व्यवहार

उनके जीवन की विलक्षणता इस बात से प्रगट होती है कि वे अपने विरोधियों की शंकाओं का समाधान भी बड़े आदर और प्रेमपूर्ण व्यवहार से करते है। कई बार उनके उग्र और प्रचण्ड आलोचकों को मैंने देखा है कि आचार्यजी से मिलने के बाद उनका विरोध पानी की तरह से ढुलक गया है।

आचार्यजी के दिल्ली आने पर मै यही समझता था कि वे जो कुछ कार्य कर रहे हैं, वह और साधु-महात्माओं की तरह से विशेष प्रभाव का कार्य नहीं होगा। जिस तरह से सभा समाप्त होने पर, उस सभा की सभी कार्यवाही प्रायः सभा-स्थल पर ही समाप्त-सी हो जाती है, उसी तरह की धारणा मेरे मन में आचार्यजी के इस आन्दोलन के प्रति थी।

कैसे निभाएंगे ?

आजकल जहाँ नगर-निगम का कार्यालय है, उसके बिलकुल ठीक सामने आचार्यजी की उपस्थिति में हजारों लोगो ने मर्यादित जीवन बनाने के लिए तरह-तरह की प्रेरणा व प्रतिज्ञाएं ली थीं। उस समय यह मुझे नाटक-सा लगता था। मुझे ऐसी अनुभूति होती थी कि जैसे कोई कुशल अभिनेता इन मानवमात्र के लोगों को कठपुतली की तरह से नचा रहा है। मेरे मन में बराबर शंका बनी रही। इसका कारण प्रमुख रूप से यह था कि भारत की राजधानी दिल्ली में हर वर्ष इस तरह की बहुत-सी संस्थाओं के निकट आने का मुझे अवसर मिला है। उन संस्थाओं में बहुत-सी संस्थाएं असमय में ही काल-कवलित हो गई। जो कुछ बचीं, वे आपसी दलबन्दी के कारण स्थिर नहीं रह सकीं। इसलिए मैं यह सोचता था कि आज जो कुछ चल रहा है, वह सब टिकाऊ नहीं है। यह आन्दोलन आगे नहीं पनप पायेगा। तब से बराबर अब तक मैं इस आन्दोलन को केवल दिल्ली ही में नहीं, सारे देश में गतिशील देखता हूं। मैं यह नहीं कह सकता कि यह आन्दोलन अब किसी एक व्यक्ति का रह गया है। दिल्ली के देहातों तक में और यहां तक कि झुग्गी-झोंपड़ियां तक इस आन्दोलन ने अपनी जड़ें जमा ली हैं। अब ऐसा कोई कारण नहीं दीखता कि जब यह मालूम दे कि यह आन्दोलन किसी एक व्यक्ति पर सीमित रह जाये। इस आन्दोलन ने सारे समाज में एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया है कि सभी वर्गों के लोग एक बार यह विचारने के लिए विवश हो उठते हैं कि आखिर इस समाज में रहने के लिए हर समय उन

बातों की ओर जाना ठीक नहीं होगा, जिनका कि मार्ग पतन की ओर जाता है। अन्ततोगत्वा सभी लोग यह विचार करने पर मजबूर दिखाई देते हैं कि सबको मिल-जुलकर एक ऐसा रास्ता जरूर खोजना चाहिए, जिससे सभी का हित हो सके। समाज में इस तरह की चेतनना प्रदान करने का श्रेय आचार्य तुलसी ही को दिया जा सकता है। उन्होंने बड़े स्नेह के साथ उन हजारों लोगों के हृदयों पर बरबस विजय प्राप्त कर ली है। जीवन को यही विशेष रूप से सफलता है, जिसे आचार्य तुलसी अपनी सतत साधना से प्राप्त कर सके हैं। अणुव्रत-आन्दोलन अब मनुष्य के जीवन की इतनी निकटता प्राप्त कर चुका है कि वह कुछ मामलों में एक सच्चे मित्र की तरह से समाज का मार्ग-दर्शन करता है। नही तो उसे दिल्ली और देश के दूसरे स्थानों में कैसे बढ़ावा मिलता और क्यों विद्यार्थी, महिलाएं और दूसरे श्रमिक एवं धनिक वर्ग उसे अपनाते ? इस से यह प्रकट होता है कि आन्दोलन में कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य है। बिना प्रभाव के यह आन्दोलन देशव्यापी नहीं बन सकता।

सतत साधना

अनेक बार आचार्यजी के पास बैठने पर ऐसा जान पड़ा कि वे जीवन दर्शन के कितने बड़े पण्डित है, जो केवल किसी भी आन्दोलन को अपने तक ही सीमित रहने देना नहीं चाहते। अभी पिछले दिनों की बात है कि उन्होंने सुझाव दिया कि अणुव्रत-आन्दोलन के वार्षिक अधिवेशन क। मेरी उपस्थिति में होना या न होना कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है। इस तरह से समाज के लोगों को अपने जीवन सुधारने की दिशा में आचार्य जी ने बहुत बार प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में उनका यह कहना कितना स्पष्ट है कि भविष्य में कोई व्यक्ति यह नहीं कहे कि यह कार्य आचार्य जी की प्रेरणा अथवा प्रभाव के कारण ही हो रहा है। वे चाहते है कि व्यक्तियों को किसी के साथ बँधकर आत्म-अभ्युदय का मार्ग नही खोजना चाहिए। जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति से प्रेरणा लेनी चाहिए। जीवन जिस ओर उन्हें प्रेरणा दे, वह काम उन्हें करना चाहिए। यह सब देख कर आचार्यजी को समझने में सहायता मिल सकती है। वे उन हजारों साधुओं की तरह अपने सिद्धान्तों को ही पालन कराने के लिए दुराग्रही नही है, जैसा कि बहुत से लोगों को देखा गया है, जो अपने अनुयायियों को अपने निर्दिष्ट मार्ग पर चलने के लिए ही विवश किया करते हैं। आचार्यजी के अनुयायियों में कांग्रेस, जनसंघ, कम्यु-निस्ट, समाजवादी और यहाँ तक कि जो ईश्वरीय सत्ता में विश्वास नहीं करते, ऐसे भी व्यक्ति है। आचार्यजी मानते है कि जो लोग अपने को नास्तिक कहते है, वे वास्तव में नास्तिक नहीं हैं। इसलिए आचार्यजी के निकट जाने में सभी वर्गों के व्यक्तियों को पूरी छूट रहती है। यह मैं अपने अनुभव की बात कर रहा हूं।

प्रेरक व्यक्तित्व

उन्होंने आत्म-साधना से अपने जीवन को इतना प्रेरणामय बना लिया है कि उनके पास जाने से यह नहीं लगता कि यहां आकर समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ। जितनी देर कोई भी व्यक्ति उनके निकट बैठता है, उसे विशेष प्रेरणा मिलती है। उनकी यह एक और बड़ी विशेषता है जिसे कि मैं और कम व्यक्तियों में देख पाया हूँ। वे जिस किसी व्यक्ति को भी एक बार मिल चुके हैं, दूसरी बार मिलने पर उन्हें कभी यह कहते हुए नहीं सुना गया कि आप कौन हैं ? अपने समय में से कुछ-न-कुछ समय निकाल कर वे उन सभी व्यक्तियों को अपना शुभ परामर्श दिया करते हैं, जो उनके निकट किसी जिज्ञासा अथवा मार्ग-दर्शन की प्रेरणा लेने के लिए जाते है। अनेक ऐसे व्यक्ति भी देखे है कि जो उनके आन्दोलन में उनके साथ दिखाई दिये और बाद में वे नहीं दीख पाये। तब भी आचार्यजी उनके सम्बन्ध में उनकी जीवन गतिविधि का किसी-न-किसी प्रकार से स्मरण रखते है। यह उनका विराट व्यक्तित्व है, जिसकी परिधि में बहुत कम लोग आ पाते हैं। ऐसा जीवन बनाने वाले व्यक्ति भी कम होते हैं, जो संसार में विरक्त रह कर भी प्राणी-मात्र के हित-चिन्तन के लिए कुछ-न-कुछ समय इस काम पर लगाते है और यह सोचते है कि उनके प्रति स्नेह रखने वाले व्यक्ति अपने मार्ग से बिछुड़ तो नहीं गये है ?

विशेषता

कभी-कभी उनके कार्य को देख कर बडा आश्चर्य होता है कि यह सब आचार्यजी किस तरह कर पाते है। कई वर्ष पहले की बात है कि दिल्ली के एक सार्वजनिक समारोह में जो आचार्यजी के सान्निध्य में सम्पन्न हो रहा था, देश के एक प्रसिद्ध धनिक ने भाषण दिया। उन्होंने जीवन और धन के प्रति अपनी निस्सारता दिखाई। एक युवक उस धनिक की उस बात से प्रभावित नहीं हुआ। उसने भरी सभा में उस धनिक का विरोध किया। उस समय पास में बैठा हुआ मैं यह सोच रहा था कि यह युवक जिस तरह से उस धनिक के विरोध में भाषण कर रहा है, इसका क्या परिणाम निकलेगा, जब कि उस धनिक के ही निवास स्थान पर आचार्यजी उन दिनों ठहरे हुए थे और उस धनिक की ओर से ही आयोजित सभा की अध्यक्षता आचार्यजी कर रहे थे। पहले तो मुझे यह लगा कि आचार्यजी इस व्यक्ति को आगे नहीं बोलने देंगे; क्योंकि सभा में कुछ ऐसा वातावरण उस धनिक के विशेष कर्मचारियों ने उत्पन्न कर दिया था, जिससे ऐसा लगता था कि आचार्यजी को सभा की कार्यवाही स्थगित कर देनी पड़ेगी। किन्तु जब आचार्यजी ने उस व्यक्ति को सभा में विरोध होने पर भी बोलने का अवसर दिया तो मुझे यह आशंका बनी रही कि सभा जिस गति से जिस ओर जा रही है, उससे यह कम आशा थी कि तनाव दूर होगा। अपने मालिक का एक भरी सभा में निरादर देख कर कई जिम्मेदार कर्मचारियों के नथुने फूलने लगे थे। किन्तु आचार्यजी ने बड़ी युक्ति के साथ उस स्थिति को सम्भाला और जो सबसे बड़ी विशेषता मुझे उस समय दिखाई दी, वह यह थी कि उन्होंने उस नवयुवक को हतोत्साह नही किया, बल्कि उसका समर्थन कर उस नवयुवक की बात के औचित्य का सभा पर प्रदर्शन किया। यदि कही उस नवयुवक की इतनी कटु आलोचना होती तो वह समाप्त हो गया होता और राजनैतिक जीवन में कभी आगे बढ़ने का नाम ही नही लेता। किन्तु आचार्यजी की कुशलता से वह व्यक्ति भी आचार्यजी के सेवकों में बना रहा और उस धनिक का भी सहयोग आचार्यजी के आन्दोलन को किसी-न-किसी रूप में प्राप्त होता रहा। ऐसे बहुत-से अवसर उनके पास बैठ कर देखने का मुझे अवसर मिला है, जब उन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा बडे से बड़े संघर्ष को चुटकी बजा कर टाल दिया। आजकल आचार्यजी जिस सुधारक पग को उठा कर समाज में नव जागृति का सन्देश देना चाह रहे है, वह भी विरोध के बावजूद भी उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण संकीर्णता की सीमा को छिन्न-भिन्न करके आगे बढ़ रहा है। आचार्यजी की साधना के ये पच्चीस वर्ष कम महत्त्व के नहीं हैं। राजस्थान की मरुभूमि मे आचार्यजी ने ज्ञान और निर्माण की अन्तःसलिला सरस्वती का नये सिरे से अवतरण कराया है, जिससे वह ज्ञान राजस्थान की सीमा को छू कर निकट के तीर्थों में भी अपना विशेष उपकार कर रहा है।

विशेष आवश्यकता

उत्तरप्रदेश के एक गाँव में जन्म लेने वाला मुझ-जैसा व्यक्ति आज यह अवश्य विचार करता है कि आचार्य तुलसी-जैसे अनुपम व्यक्तित्व की हजारों वर्ष तक के लिए देश को आवश्यकता है। देश के जागरण में उनके प्रयत्न से जो प्रेरणा मिलेगी, उससे देश का बहुत-कुछ हित होगा। यह केवल मेरी अपनी ही धारणा नही है, हजारों व्यक्तियों का मुझ जैसा ही विश्वास आचार्यश्री तुलसी के प्रति है। समाज के लिए यदि भगवान् महावीर की आवश्यकता थी तो बुद्ध के अवतरण से भी देश ने प्रेरणा पाई थी। उसी प्रकार समय-समय पर इस पुण्य भू पर अवतरित होने वाले महापुरुषो ने अपने प्रेरणास्पद कार्य से इस देश का हित-चिन्तन किया। उस हित-चिन्तन की आशा और सम्भावना से आचार्यश्री तुलसी हमारे समाज की उस सीमा के प्रहरी सिद्ध हुए हैं, जिससे समाज का बहुत हित हो सकता है। मेरी दृष्टि में उनके आचार्य-काल के ये पच्चीस वर्ष कई कल्प के बराबर हैं। हजारों व्यक्ति इस भूमि पर जन्म लेते और मरते है। जीवन के सुख-दुःख और स्वार्थ में रह कर कोई यह भी नही जानता था कि उन्होंने स्वप्न मे भी समाज पर कोई हित किया। इस प्रकार के क्षुद्र जीवन से आगे बढ़ कर जो हमारे देश में महामनस्वी बन कर प्रेरणा प्रदान कर सके हैं, ऐसे व्यक्तियों में आचार्य तुलसी हैं। इनकी देश को युगों तक आवश्यकता है।

प्रमुख शिष्य

आचार्य तुलसी के जितने भी शिष्य हैं; वे सब यथाशक्ति इस बात में लगे रहते हैं कि आचार्यजी ने जो मार्ग संसार के हित के लिए खोजा है, उसे घर-घर तक पहुँचाया जाये। इस कल्पना को साकार बनाने के लिए मुनिश्री नगराजजी, मुनिश्री बुद्धमल्लजी, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी आदि अनेक उनके प्रमुख शिष्यों ने विशेष यत्न किया है। ऐसा लगता है कि जो दीप आचार्यजी ने जला दिया है, वह जीवन को संयमी बनाने की प्रक्रिया में सदैव सफल सिद्ध होगा। यही मेरी इस अवसर पर हार्दिक कामना है कि आचार्य तुलसी का अनुपम व्यक्तित्व सारे देश का मार्ग-दर्शन करता हुआ चिर स्थायी शान्ति की स्थापना मे सफल हो।

भगवान् नया आया

श्री उमाशंकर पाण्डेय 'उमेश'

उर में हुलास
अन्तर प्रकाश ले
कौन! यहाँ आया?
मन मे उमंग, ये नया रंग,
मेहमान नया आया!
यह गगन मगन,
मृदु मंद पवन
मधुतान सुनाते है—
हे, कीर्ति धवल!
तव स्वागत में—
हम नयन बिछाते हैं,
अनुभूति जगाती जाग-जाग,
भगवान् यहाँ आया, मेहमान नया आया।
... ...
लहरें मचलें,
सरिता बदले,
सागर न बदलता है,
आदर्श धवल,
सम्मान प्रबल,
पर्वत न मचलता है।
शुभ कर्म, अहिंसा मृदुता का,
वरदान नया लाया, भगवान् यहाँ आया।

एक रूप में अनेक दर्शन

मुनिश्री शुभकरणजी

गति की भिन्नता कोई भिन्नत्व पैदा नहीं करती। उसमें अपना चुनाव होता है। आखिर चलने वाले नियत चौराहे पर मिल जाते हैं। उनका जीवन आदर्शमय होता है। वे झुकना जानते भी हैं और नहीं भी। झुकाना उनका कोई साध्य नहीं होता। लोक आदर्शों पर झुक जाते हैं। वे बन्धनों से परे होते हैं और बँधे हुए भी। उनका दर्शन बन्धन-विहीन है, लेकिन फिर भी वे दूसरों को बाँध देते हैं। वे बँधे हुए भी मुक्ति का अनुभव करते है। बन्धन में यह मुक्ति का दर्शन अवश्य कुछ अटपटा-सा है। अटपटा इसलिए है कि हम उसके तल में नहीं बैठ सकते हैं। किनारे पर रहने से यह बन्धन बन जाता है और तल में जाने पर बन्धन-विहीन। यहाँ आगम बोलता है—**कुशले पुण नो बद्धे नो मुक्के** कुशल न बद्ध है और न मुक्त, वह मुक्त भी है और बद्ध भी।

यह सब प्रतिस्रोत का दर्शन है। अनुस्रोतगामी का दर्शन भिन्न होता है। उसे मुक्ति प्रिय नहीं लगती। वह खुला हुआ भी बँधा रहता है। प्रतिस्रोत का घोष है 'अपने आपको कसो'। जबकि अनुस्रोत का इससे उलटा। वह दूसरों को कसने की बात कहता है। यहीं से आस्तिक, नास्तिक, आध्यात्मिक, भौतिक, लौकिक या पारलौकिक जैसे प्रतिपक्षी शब्द जन्म लेते हैं। दोनों की दो दिशाएं हो जाती हैं।

आचार्यश्री तुलसी का दर्शन प्रतिस्रोत का है। वे अनुस्रोत से प्रतिस्रोत में आये और उसी ने उन्हें महान् बनाया। महानता प्रतिस्रोत के बिना नहीं जन्मती। वे जन्म से महान् थे, फिर भी उनकी महानता पुरुषार्थ से चमकी। भाग्य लँगड़ा होता है पुरुषार्थ के बिना और पुरुषार्थ उसके बिना अन्धा। अन्धे और लँगड़े दोनों का संगम ही एक नई सृष्टि को जन्म देता है। महानता के क्रमिक विकास से वे विश्वव्यापी बने।

वसुधैव कुटुम्बकम् में संकीर्णता कैसे रहे। उनका जीवन सूत्र यही है। आत्म तुला के वे प्रतीक हैं। एक दिन उन्होंने कहा—"जब मैं प्रत्येक वर्ग और कौम के व्यक्तियों को अपने सामने देखता हूँ, तब मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।" यह उदार और आत्मस्पर्शी वाणी किसके अन्तःकरण को नहीं छूती।

महान् पुरुष अकृत्रिम होते हैं। वह सहजता में ही आनन्द मानते हैं। **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** से परे उन्हें कुछ दृष्टिगत नहीं होता। वे सहज करते है, सहज चलते हैं और सहज ही बोलते है। उनकी सहज वाणी स्वतः जनता को अपनी ओर खींच लेती है। इसका कारण है उसमें उनकी आत्मा है। आत्मशून्य विचार सजे हुए और सरल भी, जनता के अन्तःकरण को छू नहीं सकते। वे अगर छू भी जायें, तो अपना स्थायित्व प्रतिष्ठापित नहीं कर सकते। आत्मानुस्यूत विचार भाषा से अलंकृत न होने पर भी जनता के हृत्पट पर छा जाते हैं।

आचार्यश्री को जिस ओर से देखा जाये वे महान् ही नजर आते हैं। एक रूप में अनेक रूप का दर्शन है। व्यष्टिवाद की रेखा समष्टिवाद में विलीन हो गई है। वे क्या हैं? और क्या नहीं? शब्दों का प्रवेश यहाँ असम्भव है। वे कुछ है भी और नहीं भी। हैं इसलिए कि दृश्यमान हैं और नहीं इसलिए कि उनका अपना कुछ भी नहीं है। सब कुछ परार्पण है। परार्पण में ही उनका साध्य स्वयं सध जाता है। कुछ व्यक्ति पहले अपना साधते हैं और फिर दूसरों का। कुछ दूसरों को ही साधते हैं, अपना नहीं। कुछ अपना और दूसरों दोनों का साधते हैं। आचार्यश्री अपना और दूसरों दोनों का साधने वाले हैं, लेकिन विशेषता यह है कि वे दूसरों में से अपना साधते हैं। यह देखने में विचित्र-सा लगता है, लेकिन साधन के प्रकर्ष में नहीं। ऐसा भी कहा जाये कि दूसरों के बनाने में वे खुद बने हैं तो कोई बड़ी बात नहीं। रस की अनुभूति से गंध कभी

परे नहीं रहता है ? बनाने का यह क्रम बचपन से ही उनके साथ चिपटा हुआ है। वे इससे मुक्त नहीं हुए, कितने उन्होंने बनाये, बनाते हैं और बनाते रहेंगे यह आकलन से परे है।

व्यक्ति विचार और आचार दो प्रकार से बनता है। आचार आत्म-सापेक्ष है। विचार मन और विद्या से अपेक्षित है। सामान्यतया विचार मानव का धर्म है। वह आचार के साथ भी रहता है और स्वतन्त्र भी। आचारवान् आत्मवान् होता है। इसमें कोई दो मत नहीं। विचारवान् आचारवान् ही हों, ऐसा नियम नहीं। आचार में आत्मा बोलती है और विचारों में मन। मन और आत्मा का योग हो तो विचारक भी आचारक हो सकता है। विद्या विचारों को विकसित और जनभोग्य बनाती है। विकसित विचार मनुष्य की आत्मा को आन्दोलित कर देते हैं। वह स्फूर्तिवान् हो उठता है।

आचार्यश्री को प्रिय है आचारवान्। विचारक उन्हें प्रिय नहीं है, ऐसी बात नहीं। लेकिन वह आचारवान् होना चाहिए। आचार-शून्य व्यक्ति की प्रियता अस्थिर होती है। वह स्वयं एक दिन लड़खड़ा उठती है। उसमें स्वार्थ रहता है, पवित्रता नहीं। वे आचारवान् को विचारक और विचारक को आचारवान् बनाते हैं। सभी विचारक बनें, यह असम्भव होता है। क्योंकि वह विशिष्ट क्षयोपशम सापेक्ष है, लेकिन आचारशील तो होना ही चाहिए। **आचारः प्रथमो धर्मः** यह पहली सीढ़ी है।

क्षयोपशम का बीज अनुकूल स्थिति में स्वतः पल्लवित हो जाता है और कहीं-कहीं उसके लिए भूमि तैयार करनी पड़ती है। स्वतः पल्लवन होने वालों के लिए कम श्रम की अपेक्षा है और दूसरों के लिए अधिक।

भूमि का बीज वपन के योग्य बनाना असाध्य है, उतना फल पाना नहीं। आचार्यश्री इस कार्य में योग साधना की तरह अविरल जुटे रहे और है भी।

उनके बनाने का अपना तरीका है। वे ताड़न और तर्जन में विश्वास नहीं रखते। उनका तर्जन, गर्जन, वर्षण और अमृत सब आँखों में रहता है। आँखों में जहाँ समता और ममता रहती है, वहाँ विषमता भी। वे कोमल हैं, कठोर भी, मीठे भी हैं, कड़वे भी, विनम्र और स्तब्ध भी हैं। ऐसा होना उनके लिए अनावश्यक नहीं है। इनके बिना दूसरों की प्रगति नहीं सधती। ये सब परस्पर विरोधी लगने वाले धर्म अविरोध के उपासक है। वे आगम वाणी की तरह थोड़े से विद्यार्थियों को सब कुछ दे देते हैं। उनके विवेक-जागरण की अपनी पद्धति है। वे कहते हैं—"देखो, यह समय तुम्हारे समूचे जीवन निर्माण का है। अभी का दुःख भविष्य के लिए अक्षय सुख का स्थान बनेगा। समय का प्रमाद मत करो। पढ़ने के बाद में फिर खूब बातें करना। मै तुम्हे कुछ भी नहीं कहूँगा।" इन शब्दों मे कितनी आत्मीयता है और है बनाने की तड़फ।

काटना सहज है, पर जोड़ना नहीं

बनना सहज है, पर बनाना नहीं। काटने और जोड़ने की क्रिया में कितना अन्तर रहता है। अंकुर की उत्पत्ति इतनी दुरूह नहीं, जितनी कि उसकी वृक्ष के रूप में परिणति है।

बच्चे को बचपन से जवानी में लाना जितना कठिन है, उससे भी अधिक कठिन शिष्यों को अपने पैरों पर खड़ा करना है। साधना का जीवन एक रूप से पुनर्जन्म है। साधक द्विजन्मा है। शिष्य को चलने, बैठने, खाने, पीने, रहने, सोने आदि का सारा प्रशिक्षण उन्हें देना होता है। इन क्रियाओं में कमी का अर्थ है—साधना में कमी। साधना का पहला चरण है :

कहं चरे कहं चिठे, कहं मासे, कहं सए।
कहं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधइ।

मैं कैसे चलूं, कैसे ठहरूँ, कैसे सोऊँ, कैसे भोजन करूँ और कैसे बोलूं जिससे कि पाप-कर्म का बन्धन न हो। साधना की कुशलता इन्हीं में है।

आचार्यश्री शिष्यों का सर्वस्व लेते हैं और वे सब देते हैं। देने की उनकी क्रिया इतने में परिसमाप्त नहीं होती। वह तो अजस्र जीवन की समाप्ति तक चलती ही रहती है। वे सर्वस्व लेकर भी हलके रहते हैं और शिष्य सब कुछ देकर भी भारी रहता है। पहले चरण को परिपुष्ट करने के लिए आचार्य शिष्यों को ज्ञान-विज्ञान की ओर मोड़ते हैं। ज्ञान का क्षेत्र

कितना अगाध है ? इसे समझने वाले ही समझ सकते हैं। पहले-पहले उसमें कोई रस नहीं टपकता है। वह नमक बिना के भोजन जैसा है। उसका आनन्द परिपक्व अवस्था में आता है। शिक्षण के अन्त तक धैर्य को टिकाये रखना बहुत भारी पड़ता है। कुछ व्यक्ति शैशव में हताश हो जाते हैं और कुछ मध्य में। जिनकी धृति अचल होती है, वही उसके अन्तिम चरण तक पहुँच कर इसकी अनुभूति कर सकता है।

दुर्बलता मानव का स्वभाव नहीं, विभाव है। मनुष्य उसे स्वभाव मान लेता है, यह भ्रान्ति है। इसका कारण है मोह और अज्ञान। आचार्य मोह और अज्ञान को मिटाने के लिए सतत जागृत रहते हैं। वे मनोवैज्ञानिक ढंग से शिष्य की अभिरुचि का अध्ययन करते हैं और उसके धैर्य को टिकाये रखने का आयास भी।

सबके सब इसमें उत्तीर्ण हों, यह असम्भव है, लेकिन कुछ हताश व्यक्ति फिर से प्रोत्साहित हो जाते हैं। जो न होते हैं उनके लिए शेष अनुताप रहता है।

आचार और विचार दोनों गतिमान रहें, अतः विविध प्रयोग नई चेतना को जागृत करते रहते हैं। विचार और आचार का अपना क्षेत्र अलग है। ये अभिन्न भी हो सकते हैं। आचार्यश्री दोनों का प्रकर्ष चाहते हैं। आचार स्वयं के लिए है जबकि विचार दोनों के लिए। जनता पर विचारों का प्रभाव होता है। उसके लिए विचारवान् और विद्वान् होना भी आवश्यक है। दोनों की सह-प्रगति एक चामत्कारिक योग है।

आचार्यश्री का उत्तरदायित्व और तपस्या दोनों सफल है। वे इससे संतुष्ट भी है और नहीं भी। संतुष्टि का कारण है—जिन सफलताओं के दर्शन पहले नहीं हुए, उनके दर्शन आपके शासनकाल में हुए, होते हैं और होते रहेंगे। असंतोष अपूर्णता का है। पूर्णता के बिना संतुष्टि कैसे आये ? उनकी आन्तरिक अभिलाषा पूर्णता के शिखर पर पहुँचने की है। प्रगति का द्वार पूर्णता के अभाव में सदा खुला रहता है। अपूर्ण को पूर्ण मानने का अर्थ है, प्रगति के पथ को रोक देना। 'प्रगति शिखर पर चढ़ती जाये' यह जिन का उद्घोष है। संघ और संघपति पूर्णता के लिए कटिबद्ध है। दोनों का तादात्म्य सम्बन्ध है। वे उसमें प्राण फूंकते है और संघ विकास के पथ में प्रतिक्षण अग्रसर होता रहता है। शासक की कुशलता संघ को सकुशल बनाने में है। उसकी सक्रियता और निष्क्रियता उन पर अवलम्बित रहती है। आचार्यश्री का संघ आचार और विचार के क्षेत्र में आज प्रमुख है। यह आपकी कुशल शासकता का सुफल है। हम चाहते हैं कि आचार्यप्रवर अपनी अमाप्य शक्ति के द्वारा आचार और विचार की कड़ी को सर्वदा अक्षुण्ण बनाते रहें।
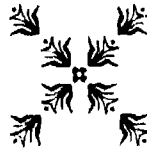
अमरों का संसार

मुनिश्री गुलाबचन्दजी

देव ! सृष्टि के व्याधि-हलाहल की घूँटे पी।
दूर क्षितिज तक अमरों का संसार बसादो।

छलना की संसृति व्यवहृति में पलती प्रतिदिन,
स्वप्निल कलना स्पष्ट नहीं विश्लिष्ट कहीं है,
पग-पग पर है भ्रान्ति भीरुता व्यवहित मानस,
इतरेतर आकृष्ट किन्तु संश्लिष्ट नहीं है।
अब व्यवधान समाहित हो सब सहज वृत्ति से,
ऐसा शुभ सौहार्द भरा संसार बसा दो।

यशस्वी परम्परा के यशस्वी आचार्य

मुनिश्री राकेशकुमारजी

तेजसां हि न वयःसमीक्ष्यते तेज-सम्पन्न महापुरुषों का अंकन गणित-प्रयोगों के आधार पर नहीं होता। उनका तेज-प्रधान जीवन विश्व के सामान्य नियमों का अपवाद होता है। उनका अभ्युदय स्थिति-सापेक्ष नहीं होता। उनका गतिशील व्यक्तित्व बाहर की सीमाओं से मुक्त रहता है।

केवल बाईस वर्ष की अवस्था, यौवन की उदय बेला में आचार्यपद का यह गुरुतर दायित्व इतिहास के पृष्ठों की एक महान् आश्चर्यकारी घटना है। श्री कालूगणी के स्वर्गवास के समय अनेकों वृद्ध साधु विद्यमान थे, किन्तु उनके भावी उत्तराधिकारी के रूप में नाम घोषित हुआ एक नौजवान साधु का, जिसे हम आज आचार्यश्री तुलसी के रूप मे पहचानते हैं।

प्रवहमान निर्झर

गगन में चमकते हुए चाँद और सितारे अपनी गति से सदा बढ़ते रहते हैं। पवन की गतिशीलता किसी से छिपी हुई नहीं है। विभिन्न रूपों में बहती हुई जलधारा संसार के लिए वरदान है। निरलस प्रकृति के अणु-अणु में समाया हुआ गति और कर्म का सन्देश संसार के महापुरुषों का जीवन मंत्र होता है। गति जीवन है और स्थिति मृत्यु; इसी अन्तःप्रेरणा के साथ उनके चरण आगे से आगे बढ़ते जाते हैं। जब हम आचार्यश्री के व्यक्तित्व पर विचार करते हैं तो वह प्रवहमान निर्झर के रूप में हमारे सामने आता है। उनका लक्ष्य सदा विकासोन्मुख रहता है। बड़ी-से-बड़ी बाधाएं उन्हें रोक नही सकतीं। **बढ़े चलें हम रुके न क्षण भी हो यह दृढ़ संकल्प हमारा** इस स्वर लहरी में उनकी आत्मा का संगीत मुखरित हो रहा है। उनके पारिपार्श्विक वातावरण में अभिनव आलोक की रश्मियां छाई हुई दिखाई देती हैं। निराशा के कुहरे मे दिग्मूढ़ बना मानव वहाँ सहज रूप से नया जीवन पाता है।

अभिनव प्रयोगों के आविष्कर्ता

संघ के सर्वतोमुखी विकास के लिए आचार्यश्री के उर्वर मस्तिष्क से विभिन्न प्रयोगों का आविष्कार होता रहता है। उन्होंने समयानुकूल नया-नया कार्यक्रम दिया, प्रगति की नई-नई दिशाएं दीं। **प्रतिक्षणं यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः** इस परिभाषा के अनुसार साधना, शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बल में होने वाले उनके प्रयोग बहुत प्रेरणादायी हैं। तेरापंथ की वर्तमान प्रगति के पीछे छिपी हुई आचार्यश्री की विभिन्न दृष्टियाँ इतिहास के पृष्ठों मे ओझिल नहीं हो सकती।

सारे संघ मे संस्कृत भाषा का विकास आज बहुत ही सुव्यवस्थित और सुदृढ़ रूप से देखा जाता है। जहां एक युग में इस सुरभारती का सितारा बिल्कुल मंद-मंद-सा दिखाई दे रहा था, लोग मृत भाषा कह कर उसकी घोर उपेक्षा कर रहे थे, प्रगति के कोई नये आसार सामने नहीं थे, वहाँ तेरापंथ साधु समाज में इसका स्रोत अजस्र गति से प्रवाहित होता दिखाई दिया। जिसके निकट परिचय से बड़े-बड़े विद्वानों का मानस भोज युग की स्मृतियों में डूबने लगा। इसका श्रेय आचार्यश्री द्वारा अपनाये गये नये-नये प्रयोगों और प्रणालियों को है।

साधना की दिशा में होने वाली प्रेरणाओं में खाद्य-संयम, स्वाध्याय व ध्यान के प्रयोग विशेष महत्त्व रखते हैं।

किसी भी प्रयोग का प्रारम्भ वे अपने-आप से करना चाहते हैं। उनका विश्वास है, अपने को अपवाद मानकर किया जाने वाला प्रयोग कभी सफल नहीं हो सकता। आगे की बिन्दयों का महत्त्व पहले के अंक के पीछे होता है।

सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के संगम

सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की उपसाना का त्रिवेणी संगम आचार्यश्री के जीवन का एक विलक्षण पहलू है। वे जितने तत्त्वद्रष्टा हैं, उससे अधिक एक साधक और कलाकार भी। उनके विचारों के अनुसार इन तीनों के समन्वय के बिना पूर्णता के दर्शन नहीं हो सकते। जीवन का समग्र रूप निखार नहीं पा सकता।

सामान्यतया साधना और कला में अन्तर समझा जाता है। पूर्व और पश्चिम की तरह दोनों का समन्वय सम्भव नहीं माना जाता। किन्तु आचार्यश्री ने कला के लक्ष्य को बहुत ऊँचा प्रतिष्ठित कर उसे साधना में बाधक नहीं, प्रत्युत महान् साधक के रूप में स्वीकार किया है। उनका मस्तिष्क चिन्तन की उर्वरस्थली है, उनके हृदय में साधना की पवित्र गंगा बहती है और उनके हाथ और पैर कला के विविध रूपों की उपासना में निरन्तर संलग्न रहते हैं।

प्राचीनता और नवीनता के मध्य

आज के संक्रमण काल में गुजरते हुए प्राचीनता और नवीनता का प्रश्न भी आचार्यश्री के जीवन का एक विषय बन गया। यद्यपि उन्होंने इसको महत्त्व नहीं दिया। किन्तु एक संघ-विशेष का नेतृत्व करने के कारण लोगों की दृष्टि में वह महत्त्वपूर्ण अवश्य बन गया। इस सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—"सत्य के प्रकाश में नवीनता और प्राचीनता की रेखाएं बिल्कुल गौण हैं। पुराना होने से कोई श्रेष्ठ नहीं नया होने से कोई त्याज्य नहीं। सत्य की व्यावहारिक अभिव्यक्तियां समय-सापेक्ष होती हैं। उसका अन्तरात्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता। परम्पराएं बनती हैं और मिटती है। व्यक्ति का व्यक्तित्व उनसे ऊँचा होता है। किन्तु जीवन की शाश्वत रेखाएं कभी नहीं बदलतीं। उनको आधार मानकर ही व्यक्ति अपने मार्ग पर आगे बढ़ सकता है।" इस चिन्तन को वृक्ष की कल्पना के आधार पर आचार्यश्री ने बड़े सुन्दर ढंग से रखा—'जो वृक्ष अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखना चाहता है, संसार में अपने सौन्दर्य का विकास करना चाहता है उसे मौसम के अनुसार सर्दी और गर्मी दोनों की हवाओं को समान रूप से स्वीकार करना होगा। उसका एक तरफ का आग्रह चल नहीं सकता। किन्तु उसका मूल सुदृढ़ चाहिए। मूल के हिल जाने पर बाहर की हवाओं से कोई पोषण नहीं मिल सकता।'

साम्य योग की राह में

प्रगति की धारा समर्थन और विरोध इन दोनों तटों के बीच से गुजरती है। प्रगतिशील व्यक्तित्व इन दोनों को अपना सहचारी सूत्र मानकर चलते हैं। संसार गतिशील है, वह प्रगति का अभिनन्दन किए बिना नहीं रह सकता। ज्यों-ज्यों पथिक के चरण आगे बढ़ते हैं, जनता उन पर स्वागत के फूल चढ़ाती है। किन्तु साथ ही लक्ष्य की रेखाओं को सुस्पष्ट बनाने के लिए छोटे-मोटे विरोधों के प्रवाह भी विश्व के व्यापक नियम में बिल्कुल स्वाभाविक माने गए हैं।

आचार्यश्री तुलसी को बहुत बड़ा समर्थन मिला, साथ में विरोध और समालोचनाएं भी। किन्तु उनका समता-परायण जीवन इन दोनों स्थितियों में काफी ऊँचा रहा है। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार की स्थितियों में साम्ययोग का निर्वाह करना, उनकी क्रियाशील साधना को सबसे अधिक प्रिय है।

महान् धर्माचार्य

आचार्यश्री की जीवनधारा ऊपर-ऊपर से विभिन्न रूपों में बहती हुई हमारे सामने आती है। इससे किसी अपरिचित व्यक्ति को कभी-कभी विरोधाभास का अनुभव हो सकता है। किन्तु गहराई में पैठने से वस्तुस्थिति का दर्शन अपने-आप हो जाता है। अध्यात्म की सुदृढ़ साधना के साथ-साथ शिक्षा, साहित्य, संस्कृति के सम्बन्ध में भी उनकी अपनी

अनूठी देन है। नैतिक आन्दोलन के व्यापक प्रसार के लिए जन-सम्पर्क भी उनकी दैनिक चर्या का मुख्य अंग रहता है। इन विविधमुखी धाराओं को एक रस बनाने में व इनमें संगति बिठाने में एकमात्र कारण उनका सन्तुलित व्यक्तित्व है।

यशस्वी परम्परा के यशस्वी आचार्य

तेरापंथ की आचार्य-परम्परा बहुत यशस्वी रही है। आचार्यश्री ने उसमें अनेकों महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ जोड़ी हैं। गत दो दशकों में धर्म का क्षेत्र अनेकों संक्रान्तियों से भरा हुआ रहा है। एक ओर जहाँ विज्ञान, मनोविज्ञान व पाश्चात्य नीतिशास्त्र ने धर्म की दार्शनिक व नैतिक पूर्वमान्यताओं पर प्रभाव डाला, वहाँ दूसरी ओर धर्म के क्षेत्र में छाई हुई अनेकों विकृत परिस्थितियों ने उसके तेज को धूमिल बना डाला। धर्म के मौलिक आधारों पर जहाँ आचार्यश्री के संस्कार बड़े दृढ़ रहे हैं, वहाँ उससे सम्बन्धित विकृतियों पर उनका प्रहार भी बड़ा कठोर रहा है। उनके स्वरों में होने वाले धर्म के विश्लेषण ने बड़े-से-बड़े नास्तिकों को भी बहुत प्रभावित किया है। अपने सुव्यवस्थित साधु-समाज को देश के नैतिक पुनरुत्थान में संलग्न कर धर्माचार्यों के सम्मुख एक बहुत बड़ा उदाहरण प्रस्तुत किया है। हमें विश्वास है कि आचार्यश्री के मार्ग-दर्शन में यह धर्म-संघ अपनी अभीष्ट प्रगति की दिशा में अधिक-से-अधिक पल्लवित और पुष्पित होगा।

सभी विरोधों से अजेय है

मुनिश्री मनोहरलालजी

तुम अविचल बन
अपनी धुन में ही चलते हो
चाहे कोई उसको आँके
या अनदेखा उसे छोड़ दे
फिर भी अपने निश्चित पथ से
नहीं तनिक भी डिगते हो तुम
बाधाओं से सम्बल लेकर
आगे बढ़ने का साहस यह
सभी विरोधों से अजेय है
सभी दृष्टियों से अजेय है
और तुम्हारा सत्य चिरन्तन
जिसके इन पावन चरणों में
सिर असत्य का
युग युगान्त से
हार-हार कर
बार-बार झुकता आया है।

तो क्यों ?

श्री अक्षयकुमार जैन
सम्पादक, नवभारत टाइम्स, दिल्ली

बड़े-बड़े आकर्षक नेत्र, उन्नत ललाट, श्वेत चादर से लिपटे एक स्वस्थ और पवित्र मूर्ति के रूप में जिस साधु के दर्शन दिल्ली में ही दस-बारह वर्ष पहले मुझे हुए, उन्हें भूलना सहज नहीं है। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा तेज और प्राचीन साधुता है। भारत में साधु संन्यासी सदा से समादृत रहे हैं; बिना इस भेदभाव के कि कौन साधु किस धर्म अथवा सम्प्रदाय का है। हमारे देश में त्यागियों के प्रति एक विशेष श्रद्धा रही है। ऐसे बहुत कम भारतीय होंगे जो इस भाव से बचे हुए हों।

श्रद्धानन्द बाजार में आचार्य तुलसी के प्रथम दर्शन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। उस समय मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि उम्र में बहुत अधिक बड़े न होकर भी आचार्य पद प्राप्त करने वाले तुलसीगणी जहां जा रहे हैं, वहां पर एक विशेष जागृति उत्पन्न होती है तो क्यों ?

भक्तों की बड़ी भारी भीड़ थी। फिर भी मुझे आचार्यश्री के पास जाकर कुछ मिनट बातचीत करने का सुअवसर मिला। जो सुना था कि आचार्य तुलसी अन्य साधुओं से कुछ भिन्न हैं, वह बात सच दिखाई दी। तेरापंथ सम्प्रदाय के छोटे-बड़े सभी लोग उनके भक्त हैं, उनसे बंधे हैं, किन्तु मेरी धारणा है कि आचार्य तुलसी सम्प्रदाय से ऊपर हैं। सच्चे साधु की तरह वे किसी धर्म विशेष से बँधे नहीं हैं। उनका अणुव्रत आन्दोलन शायद इसीलिए तेरापंथ अथवा जैन समाज में सीमित न रहकर भारतीय समाज तक पहुँच रहा है।

गत कुछ वर्षों में आचार्यश्री तुलसी के विचार और उनका आशीर्वाद-प्राप्त समाजोत्थान का आन्दोलन धीरे-धीरे राष्ट्रपति भवन से लेकर छोटे-छोटे गाँव तक चलता जा रहा है।

अभी कुछ समय पहले जब वे पूर्व भारत के दौरे से दिल्ली लौटे थे, तब दिल्ली में सभी वर्गों की ओर से एक अभिनन्दन समारोह हुआ था। तब मैं सोच रहा था कि अपने आपको आस्तिक समझते हुए भी धर्म निरपेक्ष देश में मुझे अपने ही समाज के एक साधु के अभिनन्दन में मंच पर सम्मिलित होना चाहिए या अधिक-से-अधिक मैं श्रोताओं में बैठने का अधिकारी हूँ। किन्तु तभी मेरे मन को समाधान प्राप्त हुआ कि साधु किसी समाज विशेष के नहीं होते। विशेष कर आचार्य तुलसी बाह्यरूप से भले ही तेरापंथ के साधु लगते हों, पर उनके उपदेश और उनकी प्रेरणा से चलाये जा रहे आन्दोलन में सम्प्रदाय की गन्ध नहीं है। इसलिए मैं अभिनन्दन के समय वक्ताओं में शामिल हो गया।

आचार्यश्री भारतीय साधुओं की भाँति यात्रा पैदल ही करते हैं। इसलिए छोटे-छोटे गाँवों तक वे जाते हैं। उन गाँवों में नयी चेतना शुरू हो जाती है। यदि इस स्थिति का लाभ बाद में कार्यकर्ता लोग उठाएँ तो बहुत बड़ा काम हो सकता है।

तीर्थंकरों के समय का वर्तन

डा० हीरालाल चोपड़ा, एम० ए०, डी० लिट्
लेक्चरार, कलकत्ताविश्वविद्यालय

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व से, भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध के समय से अहिंसा के सिद्धान्त का निरन्तर प्रचार किया जा रहा है, किन्तु आचार्यश्री तुलसी ने अहिंसा की भावना को जिस रूप में हमारे सामने रखा है, वह अभूत-पूर्व ही है। अहिंसा का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि हम मनुष्यों अथवा पशुओं की भावना को आघात न पहुँचाएं, अपितु जीवन का वह एक विधायक मूल्य है। वह मन, वचन व कर्म में सब प्रकार की हिंसा का निषेध करता है और समस्त चेतन और अचेतन प्राणियों पर लागू होता है। आचार्यश्री तुलसी ने अपने आचार्यत्व काल में अहिंसा की सच्ची भावना को, केवल उसके शब्द को ही नहीं, अपितु क्रियात्मक रूप से अपनाने पर बल दिया है।

अहिंसा जीवन का नकारात्मक मूल्य नहीं है। गांधीजी और आचार्यश्री तुलसी ने बीसवीं शताब्दी में उसको विधायक और नियमित रूप दिया है और उसमें गहरा दर्शन भर दिया है। यह आज की दुनिया की सभी बुराइयों की रामबाण औषधि है।

दुनिया आज विज्ञान के क्षेत्र में तीव्र प्रगति कर रही है और सभ्यता की कसौटी यह है कि मनुष्य आकाश में अथवा ब्रह्माण्ड में उड़ सके, चन्द्रमा तक पहुँच सके अथवा समुद्र के नीचे यात्रा कर सके, किन्तु दयनीय बात यह है कि मनुष्य ने अपने वास्तविक जीवन का आशय भुला दिया। उसे इस पृथ्वी तल पर रहना है और अपने सहवासी मानवों के साथ मिल-जुलकर और समरस होकर रहना है। गांधीजी ने जीवन का यही ठोस गुण सिखाया था और आचार्यश्री तुलसी ने भी जीवन के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण से इसी प्रकार क्रान्ति ला दी है। पुरातन जैन परम्परा में लालन होने पर भी उन्होंने जैन धर्म को आधुनिक, उदार और क्रान्तिकारी रूप दिया है जिससे कि हमारी आज की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके अथवा यों कह सकते हैं कि उन्होंने जैन धर्म के असली स्वर्ण से सब मैल हटा दिया है और उसे अपने उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत किया है जैसा कि वह तीर्थंकरों के समय में था।

प्रेम, सत्य और अहिंसा में हमको उस समय विरोधाभास दिखाई देता है, जब हम उनके एक साथ अस्तित्व की कल्पना करते हैं; किन्तु वे वास्तविक जीवन में विद्यमान हैं और जीवन के उस दर्शन में भी हैं, जिसका प्रतिपादन आचार्यश्री तुलसी ने किया है। यद्यपि यह असंगत प्रतीत होगा, किन्तु यह एक तथ्य है कि विज्ञान और सभ्यता के जो भी दावे हों, मनुष्य तभी प्रगति कर सकता है, जब वह आध्यात्मिकता को अपनायेगा और अपने जीवन को प्रेम, सत्य और अहिंसा की त्रिवेणी में प्लावित करेगा।

जब इस प्रकार के जीवन को बदल डालने वाले व्यावहारिक दर्शन का न केवल प्रतिपादन किया जाता है, प्रत्युत उसे दैनिक जीवन में कार्यान्वित किया जाता है तो बाहर और भीतर से विरोध होगा ही। अणुव्रत ऐसा ही दर्शन है, किन्तु उसके सिद्धान्तों में दृढ़ निष्ठा इस पथ पर चलने वाले व्यक्ति को बदल देगी।

अणुव्रत आत्म-शुद्धि और आत्म-उन्नति की प्रक्रिया है। उसके द्वारा व्यक्ति की समस्त विसंगतियाँ लुप्त हो जाती हैं और वह उस पार्थिव उथल-पुथल में से अधिक शुद्ध, श्रेष्ठ और शान्त बन कर निकलता है और जीवन के पथ का सच्चा यात्री बनता है।

आचार्यश्री तुलसी अपने उद्देश्य में सफल हों जिन्होंने अणुव्रत के रूप में व्यवहारिक जीवन का मार्ग बतलाया है। उनकी धवल जयन्तियाँ बार-बार आयें, यही मेरी कामना है।

इस युग के महान् अशोक

श्री के० एस० धरणेन्द्रय्या
निर्देशक, साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्थान, मैसूर राज्य

आचार्यश्री तुलसी एक महान् पंडित तथा बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति हैं। लौकिक बुद्धि के साथ-साथ उनमें महान् आध्यात्मिक गुणों का समावेश है। आध्यात्मिक शक्ति से वे सम्पन्न हैं, जिसका न केवल आत्म-शुद्धि के लिए, बल्कि मानव जाति की सेवा के लिए भी वह पूरा उपयोग करते है।

मानव जाति की आवश्यकताओं का उन्हें भान है। लोगों के अज्ञान और उनकी शिक्षा-हीनता को दूर करने में वे विश्वास करते हैं। अपने अनुयायियों में, जिनमें साधु और साध्वियाँ दोनों हैं, शिक्षा-प्रचार को वे खूब प्रोत्साहन देते रहे हैं। वे एक जन्मजात शिक्षक है और ज्ञान की खोज में आने वाले सभी की शिक्षा में वे बहुत रुचि लेते हैं।

उनका दृष्टिकोण आधुनिक है। पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों ही दर्शनों का उन्होंने अध्ययन किया है। यही नहीं बल्कि आधुनिक विज्ञान, राजनीति तथा समाजशास्त्र में भी उनकी बड़ी दिलचस्पी है।

लोगों में व्यापक नैतिक अधःपतन को देख कर उन्होंने सारे राष्ट्र में पुनीत अणुव्रत-आन्दोलन शुरू किया है। जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों के प्रतिपादन में उनका उत्साह सराहनीय है। महान् अशोक से उनकी तुलना की जा सकती है, जिसने अहिंसा के सिद्धान्त की शिक्षा और उसके प्रसार के लिए अपने दूतों को सुदूर देशों में भेजा था। सर्वोदय नेता के रूप में महात्मा गांधी से भी उनकी तुलना की जा सकती है।

उनका व्यक्तित्व आकर्षक है और उससे आध्यात्मिक प्रकाश तथा अन्तर्ज्ञान का तेज प्रस्फुटित होता है। लोग उन्हें पसन्द करते हैं और उन्हें शान्ति प्राप्त करने के लिए उसी तरह उनके पास आते हैं जैसे ईसामसीह के पास जाते थे।

भगवान् बुद्ध की तरह उन्होंने ऐसे निःस्वार्थ और उत्साही अनुयायियों का दल तैयार किया है जो मनुष्य जाति की सेवा के लिए अपने जीवन अर्पित करने के लिए कटिबद्ध हैं। वे सभी विशिष्ट विद्वान् और निष्कलंक चरित्र वाले व्यक्ति है।

आचार्यश्री तुलसी अभी सैंतालीस वर्ष के ही हैं, किन्तु उन्होंने सेवा और आत्म-त्याग के द्वारा त्याग और बलिदान का अनुपम उदाहरण उपस्थित कर दिया है।

आचार्यश्री तुलसी के प्रति मैं बड़ी विनम्रता से अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

सूझ-बूझ और शक्ति के धनी

पं० कृष्णचन्द्राचार्य
अधिष्ठाता, श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आचार्य तुलसी में सूझ-बूझ, शक्ति और सामर्थ्य कितना है, यह किसी से छिपा नहीं रहा। आज से पच्चीस वर्ष पहले साधु-शिक्षण का कार्य प्रारम्भ करना और बाद में अणुव्रत-आन्दोलन उठाना, उनकी समय को पहचानने की शक्ति तथा समाज को अपने विचारों के साँचे में ढालने के सामर्थ्य की परिचायक हैं। तेरापंथ सम्प्रदाय के दो सौ वर्षों के इतिहास में इनका अपना विशिष्ट स्थान है। इन्होंने एक ऐसे रूढ़िचुस्त सम्प्रदाय एवं समाज को समय की गति पहचानने की दृष्टि दी है, जो दूसरों के लिए सहज नहीं। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से सर्वथा पिछड़े हुए अपने साधु-साध्वी संघ को युगानुरूप शिक्षित करने में इन्हें स्वयं कितना परिश्रम करना पड़ा, अध्यवसाय से काम लेना पड़ा, यह सब बड़ा कष्ट साध्य था। वर्षों पहले यदि वे अपने साधु-साध्वी संघ को शिक्षित करने में न जुटते तो बाद में अणुव्रत-आन्दोलन को भी नहीं उठा सकते थे और न युगानुरूप दूसरी प्रवृत्तियों को ही शुरू कर सकते थे। निःसन्देह उनका शिक्षित त्यागी संघ ही आज स्वयं उनको आगे बढ़ने में बल दे रहा है और प्रेरक बना हुआ है। आचार्य तुलसी की विलक्षण कर्तृत्व शक्ति पर दूसरे जैन सम्प्रदाय वाले भी चकित हैं।

आचार्यश्री तुलसी की शक्ति और प्रभाव इन सबको देख-सुनकर अच्छे-अच्छे विचारशीलों के मन में अब ये भाव आने लगे हैं कि आचार्यश्री तुलसी कुछ और आगे बढ़ें, तो कितना अच्छा हो। वे अपने प्रभाव और कार्यशीलता का कुछ और विस्तार कर सकें, तो इससे समूचे जैन समाज को आगे लाने व बढ़ाने में विशेष सहायता मिल सकेगी। समग्र जैन समाज की क्रियाशीलता और संगठन भी बढ़ सकेंगे। जो चीज अभी केवल तेरापंथ सम्प्रदाय तक सीमित है, वह सारे जैन समाज में जा सकेगी। उनका यह भी विचार है कि आचार्य तुलसीजी जैसे युगदर्शी और प्रभावशाली व्यक्तित्व के लिए अब यह काम विशेष दुरूह या दुःसाध्य नहीं है। प्रश्न है, विचारों को और भी उदात्त एवं विशाल बनाने का। आचार्य तुलसी सारे जैन समाज को एक मंच पर लाने का कोई विशिष्ट कार्यक्रम रख सकेंगे, तो उनकी क्रान्तिकारिता सूर्य के प्रकाश की तरह चमक उठेगी। अब हम उनसे एक यह अपेक्षा भी रख रहे हैं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते

रायसाहब गिरधारीलाल

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने मानव को निष्काम कर्म करने का आदेश दिया है। फल की इच्छा कर्म को पंगु बना देती है। भौतिक सुखों की लालसा मनुष्य को मृगतृष्णा के अन्धकूप में ढकेल देती है। विधि की कैसी विडम्बना है कि आज का वैज्ञानिक ग्रह-नक्षत्रों की थाह लेने के लिए तो उतावला हो रहा है, परन्तु जिस जन्म भू की रज में लोट-लोटकर बड़ा हुआ है, जिसकी गोद में घुटनों के बल रेंग-रेंग कर उसने खड़ा होना सीखा है, उसके प्रति उसका कर्तव्य क्या है और कितना है; इस पर सम्भवतः वह शान्त चित्त से सोचने का प्रयास ही नहीं करना चाहता। नित नये आविष्कारों के इस धूमिल वातावरण में भी विश्व-हित-चिन्तन करने वाले, वसुधा-भर को परिवार की संज्ञा देने वाले, अपने को अणु-अणु गलाकर भी पर-हित-चिन्तन करने वाले जीव मात्र में प्रभु की मूर्ति के दर्शन करने वाले, सत्य, अहिंसा के समर्थक, मानवता के पूजक भारतीय महात्माओं के पुण्य-प्रताप का डंका आज भी पृथ्वी पर बज रहा है। अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक महामहिम आचार्यश्री तुलसी ऐसे ही गण्यमान्य महापुरुषों में से हैं, जिन्होंने साधु-संघ को समयानुकूल राष्ट्रीय चरित्र के पुनरुत्थान में लगाकर मानव जगत् के समक्ष एक नवीन दिशा को जन्म दिया है। आपने चारों दिशाओं में जन-मानस में जो एक नैतिक-जागरण की पताका फहराई है, वह अनुकरणीय है। सहस्रों मीलों की पदयात्रा करके राष्ट्रीय जागृति का आपने जनगण मन में दिव्य सन्देश पहुँचाया है।

हमारी सरकार जहाँ पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश को समृद्धिशाली बनाने के लिए प्रयत्नशील है, वहाँ आचार्यश्री तुलसी का ध्यान देश के नैतिक पुनरुत्थान की ओर जाना और तुरन्त उस ओर कदम बढ़ाना, देश के आबाल वृद्ध के हृदयाकाश में नैतिकता की चन्द्रिका का प्रकाश भरना, मानव धर्म की व्याख्या करना आदि सत्कार्य ऐसे हैं जिनके कारण आचार्यजी के चरणों में हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। आपने भारतीय संस्कृति और दर्शन के सत्य, अहिंसा आदि सिद्धान्तों के आधार पर नैतिक व्रतों की एक सर्वमान्य आचार-संहिता प्रस्तुत करके जनता की अपरिष्कृत मनोवृत्ति का परिष्कार करने के लिए स्तुत्य प्रयत्न किया है।

काल की सहस्रों परतों के नीचे दबे हुए नैतिकता के रत्न को जनता जनार्दन के समक्ष सही रूप में प्रस्तुत करके उसके माहात्म्य को समझाया है। आपके अणुव्रत अनुष्ठान में संलग्न लाखों छात्र और नागरिक अपने जीवन को धन्य बना रहे हैं।

आचार्य तुलसी की विद्वत्ता सर्वविदित है। आप प्रथम आचार्य हैं जो अपने अनुगामी साधु-संघ के साथ सर्व जन हिताय अणुव्रत का प्रचार करने के लिए व्यापक क्षेत्र में उतरे है। २६ सितम्बर, १९३६ को आप बाईस वर्ष की अवस्था मे ही आचार्य बने। प्रथम द्वादश वर्षों में आप तेरापंथ साधु सम्प्रदाय में शैक्षणिक और साहित्यिक क्षेत्र में प्रयत्नशील रहे। संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी भाषाओं की श्रीवृद्धि में आपका व्यापक योग रहा है। आपके परिश्रम के फलस्वरूप ही संघ में हिन्दी का अधिकाधिक प्रचार हुआ।

कर्मवीर, स्वनामधन्य आचार्यश्री तुलसी का अभिनन्दन निःसन्देह सत्य, अहिंसा और अणुव्रत का अभिनन्दन है। आपके प्रभावशाली आचार्य काल के पच्चीस वर्ष पूरे हो रहे हैं। इसी उपलक्ष में मैं भी कुछ श्रद्धा-सुमन आपकी सेवा में समर्पित करना चाहता हूँ। आप जैसे पथ-प्रदर्शकों की देश को महती आवश्यकता है। परम पिता परमात्मा आपको दीर्घायु करे, जिससे देश में फैली अनैतिकता का समूलोन्मूलन होकर भारत रामराज्य का आनन्द ले सके।

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते

श्री ए० बी० आचार्य
मंत्री, पूना कन्नड़ संघ

आज के स्पूतनिक युग में मनुष्य ने निसर्ग पर अपने अखण्ड परिश्रम द्वारा विजय प्राप्त कर ली है। मनुष्य प्रगतिशील तो है ही, लेकिन वह आज निराशा और भय के अन्धकार में पूरा फँस गया है। उन्नति का मार्ग टटोलते हुए वह अधोगति के गढ़े में क्यों गिर रहा है? इसका कारण है—उसकी राक्षसी महत्त्वाकांक्षा। वह चाहता है कि वह इतना बलवान् बन जाये कि दुनिया की सारी शक्ति का निर्मूलन वह अकेला कर सके। लेकिन वह भूल जाता है कि इस संसार में एक से दूसरा अधिक बनने का प्रयत्न हमेशा ही करता रहता है और परिणाम निकलता है—सब का ही सर्वनाश।

आज मनुष्य मनुष्य का विरोधी बनने में व्यस्त हो रहा है। जाति, धर्म, भाषा, पंथ, रंग, राज्य, प्रान्त, देश आदि जो केवल भौगोलिक और व्यावसायिक उपयुक्तता पर निर्भर रहे हैं, वे ही आज एक-दूसरे को शत्रुत्व पैदा करने के साधन बन कर नानाशाही को निमंत्रण दे रहे हैं। इस अराजक स्थिति में (Chos) मनुष्य जाति, मैत्री का विकास करने में कभी सफलता नहीं पायेगी, अपितु नष्ट जरूर हो जायेगी।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।

भगवान् श्रीकृष्ण ने उपर्युक्त शब्दावली में यही बताया है कि जब भारत में ऐसी ग्लानि, ऐसा घनघोर अंधकार, ऐसी जटिल समस्या पैदा हो जायेगी, तब उस ग्लानि को हटाने के लिए, उस अंधकारमय जीवन को उजाला देने के लिए और उस जटिल समस्या को हल करने के लिए इस महान् देश में कोई-न-कोई श्रेष्ठ विभूति जरूर पैदा हो जायेगी और वह महान् विभूति है—आचार्यश्री तुलसी।

मनुष्य जाति का विकास और उन्नति उसके सत्-चरित्र, उसकी एकता आदि पर निर्भर है। इन महान् तत्त्वों की उपासना के लिए आचार्यश्री ने जन्म लिया है। आचार्यश्री जो उपदेश देते हैं, वह होता है अणुव्रतों का और पद-यात्रा करके इस देश के कोने-कोने में सर्दी और गर्मी से संघर्ष करते हुए पालन करते हैं—महाव्रतों का। मराठी भाषा में एक मुहावरा है जिसके शब्द हैं :

किये वीण वाचालता व्यर्थ आहे!

स्वतः बिना कुछ किये दूसरों को कोरा उपदेश करना विफल है। आचरणहीन उपदेश वास्तव में आत्मवंचना है।

श्रम आचार्यश्री के जीवन का क्रम है। भाग्यवाद का समर्थन करने वालों की अकर्मण्यता पर आचार्यश्री हँसते है और अत्यन्त कठोर कष्ट उठाने वालों को आशा भरी दृष्टि से देखते हैं। उनकी दृष्टि से पुरुष का काम है सतत सदुद्योग।

कोटि-कोटि जनता को ज्ञानामृत देने के लिए जो वाणी का वैभव होना चाहिए, वह आपकी वाणी में है। इसलिए आप विद्वत्-सभा में तथा साधारण जनता में अपना प्रभाव डालने में सदा सफल हुए हैं। राजा की महानता होती है उसके राज्य में, परन्तु विद्वान् की सारे विश्व में। इसीलिए कहा गया है—**स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।**

शतायु हों

सेठ नेमचन्द गधेया

उत्तरोत्तर वर्धमान एवं विकासशील तेरापंथ संघ के नव आचार्यों में से उत्तरवर्ती पांच आचार्य एवं मन्त्री मुनि आदि तपोनिष्ठ चरित्रात्माओं के घनिष्ठ सम्पर्क में आने का, यतकिंचित् सेवा करने का एवं उनके शुद्ध, सात्विक स्नेह प्राप्त करने का जिस परिवार को अविछिन्न आनन्ददायक अवसर प्राप्त होता आ रहा है, उस परिवार का एक सदस्य नवम अधिशास्ता के धवल समारोह के अवसर पर उनके प्रति श्रद्धा सुमन भेंट करे, यह उसके लिए परम आल्हाद का विषय है। इस पच्चीस वर्ष की अवधि में तेरापंथ संघ की जो सर्वतोमुखी वृद्धि हुई है, ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप का जो विकास हुआ है, वह किसी से अविदित नहीं। आज राजस्थान में ही नहीं, भारत के प्रत्येक प्रान्त में 'तेरापंथ' का नाम सर्वविदित हो रहा है। इसके मूल में आचार्यश्री तुलसी है जिनकी शुद्ध सनातन सिद्धान्तों पर दृढ़ निष्ठा है और जो आत्म प्रत्यय के मूर्तिमान अवतार हैं। यह आप ही की दूरदर्शिता का फल है कि आपने धर्म को सम्प्रदाय के घेरे से ऊँचा उठाकर उसे व्यापक और बहुजन हिताय बनाया है; उसे जाति, वर्ण, लिंग निरपेक्ष बनाया है।

आज न केवल तेरापंथ समाज अपितु समग्र जैन समाज धन्य है कि आप जैसा एक महान् आचार्य उसे मिला है। धर्म सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने के लिए आपके सफल प्रयास चिर स्मरणीय रहेंगे। जो इसे अफीम समझते थे, वे ही अब धर्म की आवश्यकता और उपादेयता समझने लगे है। यह आप ही के कठिन प्रयास का फल है। धर्म को आप पुनः समाज व राष्ट्र के शिखर स्थान में स्थापित करने में समर्थ हुए हैं, यह कितने हर्ष का विषय है।

आप शतायु हों, मानव को सच्चे अर्थ में मानव बनाने का आपका अभियान सफल हो, अणुव्रत का विस्तार कोने-कोने में हो, देश का नैतिक धरातल शुद्ध बनाने में आप सफल हों, अहिंसा और संयम को साधारण व्यक्ति भी आपके मार्ग-दर्शन से जीवन में उतार पायें, यही हमारी कामना है।

गुरुता पाकर तुलसी न लसे
गुरुता लसी पा तुलसी की कृपा

—गोपालप्रसाद व्यास

अर्चना

श्री जबरमल भण्डारी

अध्यक्ष, श्री जै० श्वे० ते० महासभा, कलकत्ता

श्रद्धा व्यक्ति के कार्यों के प्रति होती है और भक्ति उसके व्यक्तित्व के प्रति। जिस व्यक्ति में दोनों का समावेश होता हो, वह उसका आराध्य बन जाता है। कोई भी अपने आराध्य के प्रति अपने भावों को शब्दों में बाँधना चाहे तो वह महान् दुष्कर कार्य होगा। जैसे कहा भी गया है :

भाषा क्या है भावों का लंगड़ाता सा अनुवाद

बिल्कुल सत्य है। परन्तु यह भी सत्य है कि भाषा के माध्यम से ही भाव व्यक्त किये जा सकते हैं।

"तेरा चित्र (व्यक्तित्व) और तेरे आदेश व विचार (कार्य) सदा मेरे हृदय में रहते हैं, जिन्हें देख अक्सर लोग पूछ बैठते हैं मैं तेरा कौन ?"

"मैं यह जानते हुए भी, मैं तेरा कौन हूँ, लोगों के समक्ष स्पष्टीकरण नही कर पाता।"

"तब क्या इस रहस्य का उद्घाटन तू ही न कर सकेगा।"

उपरोक्त पंक्तियाँ मैंने आचार्यश्री तुलसी के प्रति कुछ वर्षों पूर्व लिखी थीं, परन्तु मैंने सोचा, गंभीरता पूर्वक सोचा, और इस नतीजे पर पहुँचा कि आदेशों और विचारों को हृदय में केवल रखने से ही काम नही चलेगा, उन्हें तो जीवन में लक्ष्य बना कर उतारना होगा।

तूने तेरे शक्ति-स्रोत से थोड़ी-सी सुधा पिलाई, जिसके बल से मैं निर्भय होकर अबाध गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगा।

तेरे आदेशानुसार सम्प्रदायवाद का रंगीन चश्मा हटाकर दृष्टि का शोधन किया तो यथार्थता के दर्शन होने लगे।

दूसरों के दोष देखने की आदत जो मेरे में थी, तेरी प्रेरणा से छूटने लगी; अपने दोषों को देखने में प्रवृत्त होने लगा। सम्यग् दृष्टि बना।

जब मैंने मेरे प्रति व्यंग्य सुने, घबराया, लड़खड़ाया, तेरे चरणों में आ पड़ा, बात रखी, तुझसे जीवन का सम्बल मिला। तूने मुझे अक्षरों को सूत्र में बाँधने के लिए प्रेरित किया। जीवन में नवीन प्रकाश दिया कि पत्थर के बदले कभी ईट न फेंको। लक्ष्य-च्युत होने के अवसर भी मेरे जीवन में आये, पर तूने शिक्षा द्वारा ऊँचा उठाया।

इस पावन बेला में मेरी श्रद्धा-कुसुमाञ्जलि जो मेरे अन्तर हृदय मे उमड़ रही है, स्वीकार करो। यही मेरी अर्चना है।

तुम दीर्घ-जीवी बनो, मेरा व तेरापंथी समाज का ही नहीं, सारे ससार का पथ प्रदर्शन करते रहो।

का विध करहु तव रूप बखानी

श्री शुभकरण बसाणी

गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।
काविध करहु तव रूप बखानी ।।

श्री राम के अनन्य भक्त कवि श्रेष्ठ तुलसीदासजी का यह पद आज पुनः-पुनः मुझे स्मरण हो रहा है, अतः अनेक अनिर्वचनीय अनुभूतियों के साथ-साथ मानवता के उज्ज्वल प्रतीक आचार्यश्री तुलसी के प्रति इस शुभ अवसर पर अपने हृदय की समस्त मंगल कामनाएं, विनम्र अभिनन्दन और अटूट श्रद्धा की अञ्जलि समर्पित करता हूँ।

युग प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी

डा० रघुवीरसहाय माथुर, एम० एस-सी, पी-एच० डी० (यू० एस० ए०)
वनस्पति निदान शास्त्री, उत्तरप्रदेश सरकार, कानपुर

हमारे देश में समय-समय पर ऋषि, मुनि और संतों ने चरित्र-निर्माण और आध्यात्मिक विकास को प्रबल बनाने का प्रयास किया है। इस प्रयास में जितनी सफलता भारत को मिली है, उतनी सम्भवतः अन्य किसी देश को नहीं मिली। इसीलिए हमारे देश की कुछ विभूतियाँ अमर हैं—जैसे राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि, जिनको हम अवतार मानते हैं। इनके गुणगान से मनुष्य जाति के हजारों दुःख शताब्दियों से मिटते रहे हैं और धर्म-पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती रही है। भगवद्गीता में स्वयं भगवान् कृष्ण की अमर वाणी है :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

साक्षात् भगवान् के प्रतीक इन अवतारों के अतिरिक्त संत, महात्मा तथा आचार्यों की भी हमारे देश में कोई कमी नहीं रही। जब-जब हमारी जनता चरित्र भ्रष्ट हुई, तब-तब कोई-न-कोई महान् संत हमारे सामने अपने विमल चरित्र का दिग्दर्शन कराता रहा। परन्तु धर्म-अधर्म तथा सात्विक एवं तामस भावनाओं का समागम सदा से रहा है और रहेगा। केवल हम में यह शक्ति होनी चाहिए कि हम अधोगति के मार्ग में गिरने से बच सकें और काम, क्रोध, मद, लोभ के माया-जाल में उतना ही उलझें, जिससे आधुनिक औद्योगिक काल के सुखों से वंचित न होकर भी आध्यात्मिक पथ से विपथ न हो सकें। इस प्रकार के भौतिक सुख-प्रधान युग में रहते हुए आध्यात्मिक सुख को पूर्णतः प्राप्त करने का उदाहरण हमारे समक्ष राजा जनक का है; परन्तु आज के प्रजातान्त्रिक युग में राजा जनक जैसे लोगों का होना तो सम्भव नहीं है, अतः भौतिकवाद के सुखों को भोगते हुए भी कम-से-कम आचार्यश्री तुलसी के बताये हुए अणुव्रतों का पालन तो अवश्य ही कुछ कर सकते हैं।

समाज के प्रति तथा सभी धर्मानुयायियों के प्रति आचार्यश्री का कठोर तपःपूत जीवन एक जीता-जागता उदाहरण है। स्वतन्त्रता के बाद जो चरित्रहीनता आज देश में देखी जा रही है, उसके अन्धकार को मिटाने के लिए आचार्यश्री देदीप्यमान सूर्य के सदृश हैं। हम शत-शत कामना करें कि वे चिरायु हों और समाज में वह साहस भरें कि बताये हुए सदाचार के पथ पर वह चल सके।

विशिष्ट व्यक्तियों में अग्रणी

श्री कन्हैयालाल दूगड़
संस्थापक, गांधी विद्यामन्दिर, सरदारशहर

आचार्यश्री तुलसीरामजी महाराज जैन समाज के उन इने-गिने विशिष्टि व्यक्तियों में अग्रणी हैं, जिन्होंने समाज को उन्नत करने में अथक परिश्रम किया है। अणुव्रत और नई मोड़ के नाम से जो साधना की नई दिशा मानव समाज को दी है, उसका सारा श्रेय आचार्यश्री को ही है। धवल समारोह के उपलक्ष पर मंगल कामना के रूप में मेरी प्रभु से यही प्रार्थना है कि वह इनसे भविष्य में भी इसी प्रकार की आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक अनेक सेवाएं ले।

उज्ज्वल सन्त

श्री चिरंजीलाल बड़जाते

महापुरुषों का जीवन अनेक विशेषताएं लिए हुए रहता है। उनके जीवन में अलौकिक प्रतिभा और सहनशीलता की भावना पूर्णरूपेण समाई हुई रहती है।

आचार्य तुलसीजी ऐसे ही महापुरुषों में अनोखे हैं। उनकी तेजोमय मुखमुद्रा से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ।

आज पन्द्रह वर्षों से मैं उनके सान्निध्य का लाभ उठा रहा हूँ। सबसे पहले मैंने उनके दर्शन जयपुर में किये। नाम वैसे सुन रखा था। देखने की लालसा थी। आखिर संयोग मिल ही गया। जब देखा, तब उनके तेज और प्रभावकारी मुखमण्डल ने मुझे उनकी ओर खिचने को बाध्य कर दिया और मैं निरन्तर उनकी ओर खिचता गया। उनसे प्रभावित होता रहा। उनके उपदेशों को अपने जीवन में उतारने की भरसक कोशिश करता रहा। फिर तो जोधपुर, कानपुर, सरदारशहर, बम्बई आदि कई स्थानों पर उनके दर्शन करने गया। उनके पास जाकर अमृतवाणी सुनकर एक अनिर्वचनीय शान्ति का आभास होता है।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा ऐसी ही शान्ति की इच्छुक रही है और इसी में उसके जीवन का रूप मिलता रहा है और तुलसीजी जैसे त्याग और संयमधन संतों के सान्निध्य का लाभ जिसे मिल जाये, उस मनुष्य के तो अहोभाग्य ही समझिये।

उन्हीं की वजह से मैंने अणुव्रत पालन किया। उनके पास जाकर मैंने परिग्रह परिमाण व्रत लिया। सच कहूं तो ऐसा मार्ग उनके पास से मुझे मिला है कि जिसके कारण मेरा जीवन धन्य हो गया है, सफल हो गया है। एक बड़े संघ के आचार्य होते हुए भी अभिमान एवं मोह की भावना का लेश मात्र भी उस मानव देहधारी आचार्य में नहीं और यही कारण है कि तुलसीजी विरोधियों द्वारा भी पूजित होते रहे हैं। वे भी जब उनका स्मरण करते हैं तो इस निष्कलंक व्यक्तित्व के समक्ष अपना सिर झुका लेते हैं।

आज यह अभिनन्दन उनका नहीं, उनके तपःशील जीवन का है। आचार्यत्व का है और संस्कृति के उत्थापक एवं जलकमलवत् निरपेक्षी स्वयं प्रभु संत का है जिसने जीवन ज्योति जगा कर पीड़ित मानवता को प्रकाश दिया, उसे चलने का मार्ग बताया। जीवन के जीने का मन्त्र सिखाया।

उनके इस अभिनन्दन के अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं स्वीकार करें।

●

तुमने क्या नहीं किया ?

श्री मोहनलाल कठौतिया

अपनी विशाल विचारधारा द्वारा इस धर्म-परायण भारत में अनेकों साम्प्रदायिक भेद मिटाये।

अपने असीम आत्म-बल के प्रयोग से इस स्वतन्त्र राष्ट्र की जनता का हृदय-परिवर्तित कर जाति-पाँति व ऊँच-नीच के बन्धन तोड़े।

अपने अद्वितीय व्यक्तित्व की प्रभा से सामाजिक अन्ध-विश्वासों व कुरूढ़ियों की जड़ें उखाड़ीं।

अपनी अनवरत पद-यात्रा द्वारा भारत के गिरते हुए जनमानस में नैतिक और आध्यात्मिक चेतना जागृत की।

अपने गुरुओं के अटल अनुगामी रहते हुए मान व अपमान पर समदृष्टि रखकर संघर्षों का सफल सामना किया; विरोध को विनोद मानकर उसे अहिंसा से जीता।

सच्चे धर्माचार्य के रूप में तथाकथित धर्म के प्रति फैलती हुई ग्लानि को मिटा, जन-जन को सत्य और अहिंसा का सच्चा मार्ग दिखाया, अनेकों अभिमानी व विलासी जीवन बदले।

अपने स्वाभाविक वात्सल्यपूर्ण हृदयोद्गारों से संसार को विश्व मैत्री का पाठ पढ़ाया।

तेरापंथ के चलते-फिरते आध्यात्मिक विश्वविद्यालय को विस्तृत बनाकर ज्ञान-वृद्धि का सर्वोत्तम साधन बनाया।

मानव कल्याण के लिए तुमने क्या नहीं किया ?

अहिंसा व प्रेम का व्यवहार

रा० सा० गुरुप्रसाद कपूर

हमारे देश की धार्मिक व सांस्कृतिक परम्पराएं विश्व में सब से प्राचीन है। समय के साथ-साथ अनेक उतार-चढ़ाव आये और भारतवर्ष पर भी उनका प्रभाव पड़ा। परन्तु फिर भी हमारा मूल धर्म और हमारी संस्कृति इन तूफानों को सहन करती हुई आगे बढ़ती गई और समय-समय पर हमारे समाज में ऐसे संत, महात्मा, ऋषि आते रहे, जिन्होंने हमें प्रेरणा दी और भटकने से बचाया। जब कभी भी हमारे देश का नैतिक पतन हुआ है, अथवा धर्म की ग्लानि हुई है; तब-तब ईश्वर की प्रेरणा से आचार्य तुलसी जैसे महापुरुष और संतों ने जन्म लेकर हमें मार्ग दिखाया है। आज हमारे देश की जो हालत है, समाज में जो अनैतिकता, व्यभिचार, भ्रष्टाचार का बोलबाला हो रहा है, वह हमें कहाँ ले जायेगा और हमारा जिस कदर नैतिक पतन हो रहा है, इसका क्या परिणाम होगा, इसकी कल्पना भी भयावह है। ऐसे समय में आचार्यश्री तुलसी ने देश के कोने-कोने में भ्रमण करके अपने उपदेश के द्वारा जो जन जागृति की है, वह हमारा सही मार्ग प्रदर्शन करती है। आचार्यजी ने जो रास्ता दिखाया है, उससे मानव जाति का कल्याण होगा, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। मैं उनके महान् व्यक्तित्व और उपदेशों से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ और मुझे आशा है कि उनके उपदेशों के फलस्वरूप जनता सत्य, अहिंसा व प्रेम के व्यवहार को अधिकाधिक अपनायेगी तथा समाज का नैतिक स्तर ऊँचा उठगा। मैं आचार्यजी के चरण कमलों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

धरा के हे चिर गौरव

साध्वीश्री जयश्रीजी

जिश्रो हजारों साल धरा के हे महामानव !
श्रागत श्रौर श्रनागत की संकुल रेखा में
तुम कब सिमटे धरती के हे नित नव उज्ज्वल !
तुमने अपनी अमर सूझ से वर्तमान को समझा
पर कब समझ सका युग तुमको परिमल।
जिश्रो हजारों साल धरा के हे चिर वैभव।
तुमने ही प्राणों के मिष था स्वर उँडेला
पीड़ित सांसों से आहत जीवन-सरगम में
श्रंकुर बनकर तुम श्राये; इस नभ-धरती
के उच्छ्वासों-निःश्वासों के झिलमिल संगम में
जिश्रो हजारों साल धरा के हे चिर गौरव।

लघु महान् की खाई

साध्वीश्री कनकप्रभाजी

सत्य साधना के बल से आलोक अनोखा पाया
तमः पुञ्ज परिव्याप्त पंथ में उसको है फैलाया
चाह तुम्हारी यह वसुधा अब स्वर्ग तुल्य बन जाये
नैतिकता के गान धरा का कण-कण फिर से गाये
पाट चुके तुम साम्य भाव से लघु महान् की खाई।

तपःपूत

मुनिश्री मणिलालजी

तपःपूत !
तुमने ही युग को
नव प्रकाश दे
अन्धकार में
भूले भटके
पड़ते-गिरते
हर राही को
मंजिल का विश्वास दिखाया
खोई-सोई मानवता को
आशा का आलोक दिखाया।

पाप सब हरते रहेंगे

मुनिश्री मोहनलालजी

विश्व के इतिहास में तेरा अमर अभिधान होगा,
विश्व के हर श्वास में तेरा चिरन्तन ज्ञान होगा।
विशद तेरी साधना ही विश्व को सन्देश देगी,
समन्वय की भावना शक्ति-युत आदेश देगी।
सत्यशोधक दार्शनिकता उच्च पद आसीन होगी,
आग्रहहीन अभिव्यक्तियाँ कभी नहीं प्राचीन होंगी।
पदचिह्न तेरे पंथ बन दर्शन सदा करते रहेंगे,
प्रस्फुटित वे शब्द तेरे पाप सब हरते रहेंगे।

शुभ अर्चना

मुनिश्री बसन्तीलालजी

क्षितिज के इस थाल विशाल में
उदित स्वर्णिम-सूर्य सुदीप ले
प्रवर-पांशु पसारित अक्ष से
प्रकृति यों करती तव अर्चना।
ललित घोलित लाल गुलाल से
विहग-कूजित सुन्दर गीत गा
पवन डोलित चामर चारु से
प्रकृति यों करती शुभ अर्चना।

तुम कौन ?

साध्वीश्री मंजुलाजी

तुम कौन ? गगन के हसित चाँद !
अथवा धरती की चिनगारी !
पीकर नित विष की कड़ी घूँट
प्राणों का अंकुर अकुलाया
साँसों का पंछी नीड़ छोड़
है तड़प रहा वह घबराया
है हर मुरझा-सा प्राण तुम्हारे सुधा-सेक का आभारी।

गीत

साध्वीश्री सुमनश्रीजी

नयन गवाक्षों से मानस क्यों धीमे-धीमे झाँक रहा है ?
शुभ्र प्रात की मधुर-मधुर
स्मृतियों के आँचल में छिप-छिप कर,
चिर परिचित से इस अतीत औ'
भावी में अनुराग बिछाकर,
वर्तमान के नील गगन में, आशा के रथ हाँक रहा है।
नयन गवाक्षों से मानस क्यों धीमे-धीमे झाँक रहा है ?

असाधारण नेतृत्व

श्री कृष्णदत्त, सदस्य राज्यसभा

मैं आचार्यश्री तुलसी के महान् व्यक्तित्व के आगे नतमस्तक होता हूँ। बचपन से और उसके बाद का उनका असाधारण जीवन यह सिद्ध करता है कि विधाता ने उनको मानवता के एक सच्चे नेता के रूप में गढ़ा है।

उनकी शिक्षाओं का सौन्दर्य और प्रभाव इस बात में निहित है कि वे जो कहते हैं, उस पर स्वयं आचरण करते हैं। अपने अनुयायियों और दूसरों पर उनके असाधारण प्रभाव का यही रहस्य है। मानव जाति के इतिहास में यह नाजुक समय है और इस समय केवल भारत को ही नहीं, समस्त संसार को ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता है।

आज की परिस्थितियों में आचार्यश्री द्वारा संचालित अणुव्रत-आन्दोलन बहुत ही उपयुक्त है। व्यक्तियों के जीवन को सुधारने के लिए भी वह आवश्यक है और तीसरा विश्व-युद्ध छिड़ने पर आणविक अस्त्रों के कारण सम्पूर्ण विनाश के खतरे से मानव जाति को बचाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नैतिक आधार देने के लिए भी वह आवश्यक है।

मानव-जाति की कल्याण की कामना करने वाले सभी व्यक्तियों को आचार्यश्री के इस आन्दोलन का समर्थन करना चाहिए।

पूज्य आचार्य तुलसीजी

श्री तनसुखराय जैन

मंत्री, भारत वेजीटेरियन सोसाइटी

आचार्यश्री तुलसी जी महाराज के मुझे पहले पहल सरदार शहर में दर्शन हुए थे। उनका तेज व विशाल व्यक्तित्व देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। कुछ देर बातें करने के बाद उनकी योग्यता की गहरी छाप पड़ी। मैं वहाँ दो दिन ठहरा और तमाम व्यवस्था देखकर बहुत सन्तोष हुआ। साधुओं के इतने बड़े समूह पर एक आचार्य का नियन्त्रण बड़े कमाल की बात है जोकि और सम्प्रदायों में बहुत कम देखने में आता है। साधुओं के काम करने की शैली और उनके कार्यों की रिपोर्ट आचार्यजी तक पहुँचाना और नियन्त्रण में रहना यह एक अति उत्तम व्यवस्था है। आचार्यजी महाराज जहाँ भी विराजते हैं, वहाँ की व्यवस्था भी ठीक ढंग से होती है।

उसके बाद आचार्य तुलसी जी महाराज तथा अन्य तेरापंथी साधु-मुनियों से मेरा बहुत सम्पर्क रहा और अभी भी समय-समय पर उनके दर्शन करता रहता हूँ। इस समय अणुव्रत-आन्दोलन जोकि पूज्य आचार्यजी ने आरम्भ किया है समय की चीज है। देश में घूसखोरी, बेईमानी, ब्लैक मार्केट तथा अन्य व्यसन बहुत ज्यादा जोर पकड़ गये हैं। मुझे पूरी आशा है कि अणुव्रत-आन्दोलन द्वारा बहुत सुधार होगा।

पूज्य आचार्य तुलसीजी महाराज ने अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन कर जैन समाज का सिर ऊँचा किया है।

आचार्यश्री तुलसी की जन्म कुण्डली पर एक निर्णायक प्रयोग

मुनिश्री नगराजजी

व्यक्ति जन्म से महान् नहीं, अपने कर्तृत्व से महान् बनता है। आचार्यश्री तुलसी के सम्बन्ध में भी यही बात है। जिस दिन आपका जन्म हुआ, वह परिवार के लोगों के लिए कोई अनहोनी बात नहीं थी। अपने भाइयों में आपका क्रम पाँचवाँ था। उस समय किसने पहचाना था कि कोई महान् व्यक्तित्व हमारे घर में आया है। स्यात् यही कारण हो कि घरवालों ने आपके जन्म ग्रहों का भी अंकन नहीं करवाया। आज आपका कर्तृत्व देश के कण-कण में व्याप्त हो रहा है। देश के अनेकानेक ज्योतिर्विद आपके जन्म ग्रहों की निश्चितता करने में लगे हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने किसी प्रसंग पर निम्न श्लोक कहा था :

भ्रातृषुपंचमो जन्मग्रहाः केनाऽपि नांकिताः
अद्य ज्योतिर्विदो भूयो यतन्ते लग्नशोधने।

आचार्यश्री तुलसी का जन्म विक्रम सं० १९७१ कार्तिक शुक्ला द्वितीया मंगलवार की रात का है। मातृश्री वदनांजी को इतना और याद है कि आपका जन्म पिछली रात का हुआ था। क्योंकि उस समय आटा पीसने की चक्कियाँ चल पड़ी थीं। इससे आपकी जन्म कुण्डली का कोई निश्चित लग्न नहीं पकड़ा जा सकता। अनेकानेक ज्योतिषियों ने कर्क लग्न से लेकर तुला लग्न तक आपकी विभिन्न कुण्डलियाँ निर्धारित की हैं। कुछेक ज्योतिषियों ने आपका जन्म लग्न कर्क माना है तो किसी ने सिंह, किसी ने कन्या, तो किसी ने तुला। भृगु संहिताओं से भी लग्न-शुद्धि पर विचार किया गया, परन्तु स्थिति एक निर्णायकता पर नहीं पहुँची।

आचार्यवर की कलकत्ता यात्रा में किसी एक भाई ने मुझे बताया कि यहाँ पर एक ऐसे रेखा शास्त्री हैं जो केवल हाथ की रेखाओं से यथार्थ जन्म कुण्डली बना देते हैं। उन्हीं दिनों और भी लोग मिले जो इस बात की पुष्टि करते थे। उन्होंने बताया हमारी जन्म कुण्डलियाँ जन्मकाल से ही हमारे घरों में बनी हुई थीं। प्रयोग मात्र के लिए हमने रेखानुगत कुण्डलियाँ भी बनवाई थीं। मिलाने पर वे दोनों प्रकार की कुण्डलियाँ एक प्रकार की निकलीं।

मैं बहुत दिनों से सोचता था, आचार्यवर के जन्म लग्न को पकड़ने में हस्तरेखा का सिद्धान्त एकमात्र आधार बन सकता है। ज्योतिष और हस्तरेखा इन दो विषयों में गति रखने वाले यह भली-भाँति जानते हैं कि हस्त-रेखाओं और जन्म ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध क्या हैं? मेरे सामने इससे पूर्व ही कुछ ऐसे प्रयोग आ चुके थे। मन में आया आचार्यवर के जन्म लग्न पर भी हमें यह प्रयोग अपनाना चाहिए।

अगले दिन आचार्यवर से आज्ञा लेकर हम देवज्ञभूषण पं० लक्ष्मणप्रसाद त्रिपाठी रेखाशास्त्री के घर पहुँचे। उनसे इस सम्बन्ध में बातें कीं। मन में सन्तोष हुआ। उन्होंने कहा—आप आचार्यवर के दोनों हाथों के छापे तैयार कर लीजिये। जिन्हें सामने रखकर मैं उनके संवत् व तिथि से लेकर लग्न तक विचार कर सकूँ। इसमे आचार्यवर को अधिक समय इस प्रयोजन के लिए नहीं देना होगा।

अगले दिन त्रिपाठीजी ने भी आचार्यवर के दर्शन किये। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने उनके कथनानुसार मुद्रणमसि से आचार्यवर के दोनों हाथों के छापे उतारे। उन्हें लेकर हम लोग मध्याह्न में फिर उनके यहाँ गये। छापा उनके सामने रखा। उन्होंने उसका अध्ययन किया और हमें कुण्डली लिखने को कहा। हमें सन्तोष हुआ। यह सोचकर कि इन्होंने रेखा के आधार से संवत्, तिथि बार, आदि ठीक बतलायें हैं तो लग्न के ठीक न होने का कोई कारण नहीं रह

जाता । दूसरी बात लग्न भी उन्होंने वही बतलाया है जो आचार्यश्री के प्रचलित लग्नों में मध्य का है। आचार्यवर की कन्या लग्न की कुण्डली विशेष रूप से प्रचलित थी। उससे केवल सत्रह मिनट पूर्व का लग्न इन्होंने पकड़ा है। वह लग्न मनः-कल्पित था और यह रेखाओं से प्रमाणित।

वे यथाक्रम संवत्, मास, तिथि, बार, नक्षत्र आदि बोल गये। एक-एक कर भावानुगत ग्रह भी बोल दिये। लग्न के विषय में कहा—इस जातक का जन्म असंदिग्ध रूप से सिंह लग्न में हुआ है।

कुछ दिनों बाद एक अन्य रेखाशास्त्री सम्पर्क में आये। उनके भी सामने आचार्यश्री के हाथों के वही छापे रखे गये। उन्होंने भी अपनी गगना से जो लग्न निकाला वह ठीक वही था जो दैवज्ञभूषण पं० लक्ष्मणप्रसाद त्रिपाठी ने निकाला था। इस प्रकार **द्विबद्धं सुबद्धं भवति** की उक्ति चरितार्थ हुई। आचार्यवर ने यह सब सुनकर कहा—आगे ज्योतिषियों को यही लग्न बताना चाहिए। यह है आचार्यश्री के जन्म ग्रहों के निर्णय का संक्षिप्त विवरण।

आचार्यवर की निर्धारित जन्म कुण्डली समग्र रूप में इस प्रकार है—विक्रम संवत् १९७१ मंगलवार कार्तिक शुक्ला द्वितीय इष्ट-५२/५१ लग्न सिंह ४/२४
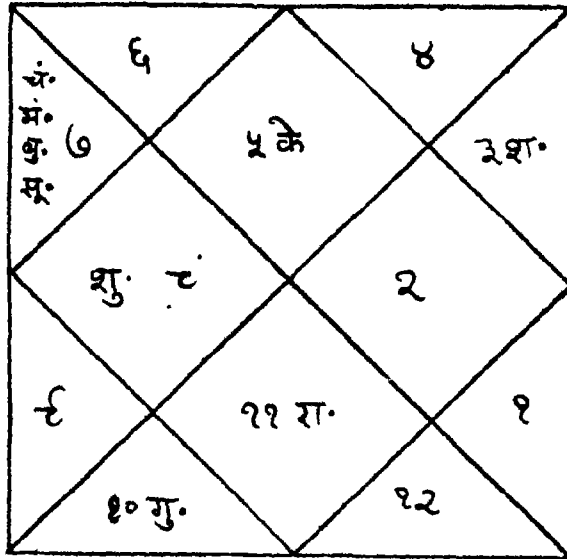
पदमभूषण श्री सूर्यनारायण व्यास ने भी उक्त कुंडली की मान्यता देकर आचार्यवर के ग्रहों पर अपने लेख में विचार किया है।

श्री तुलसीजी की जन्म कुण्डली का विहंगावलोकन

पद्मभूषण पं० सूर्यनारायण व्यास

श्रीयुत् तुलसीजी की जन्म कुण्डली का विवरण इस प्रकार है :—

श्री संवत् १९७१ श० श० ३६ कार्तिक शुक्ल १ भौमे, परं द्वितीयायाम्।

विशाखा २ चरणे इष्टं ५२।५१। तदा जन्म। ल० ४।२४

सू०	चं०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०	रा०
६	६	६	६	९	७	२	१०
३	२५	२१	२५	२१	१०	१०	१०

जन्म चक्रम्

चलितम्

नवांशम्
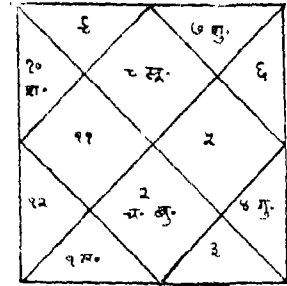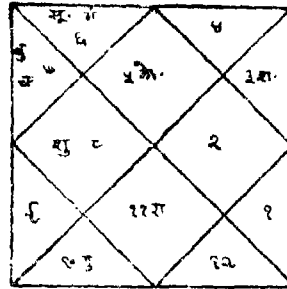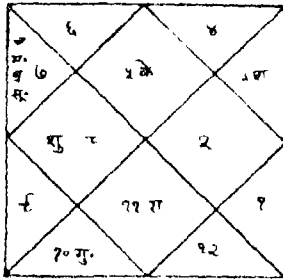
श्री तुलसीजी के जन्म समय के ग्रह योगों पर से विचार करते हुए विदित होता है कि जिन परिस्थितियों और विशिष्ट ग्रह-प्रभाव काल में उन्होंने जन्म लिया, वह वास्तव में महत्त्वपूर्ण था। आरम्भ ही से तुलसीजी ने विशिष्ट एवं परस्पर-विरोधी वातावरण में उत्पन्न होकर, जीवन के प्रस्तुत काल पर्यन्त ऐसे ही वातावरण में कार्य किया है। एक साधारण-सुखी व्यवस्थित परिवार में जन्म लेकर अपने परिवार की परम्परा और कार्य के विरुद्ध वैराग्य मार्ग का वरण किया है। इतना ही नहीं, अपने मार्ग की ओर परिवार को भी प्रेरित और प्रभावित करने में वे सफल हुए हैं। असाधारण शिक्षा-दीक्षा लेकर वे अपने पथ में सफलतापूर्वक अग्रसर हुए और जीवन के अल्पावधि काल में ही वे नेतृत्व का पद प्राप्त करने में सफल हुए हैं। इसमें भी उन्हें स्पर्धा का प्रसंग आया है, किन्तु यह स्पर्धा उन के पथ में एवं उत्थान में सहायक हुई है। नीच राशि का होकर षष्ठ स्थान में अष्टमेश एवं पंचमेश गुरु है। इसलिए संघर्ष और वह भी उच्च स्थानीय बना रहे, इसमें विस्मय का कारण नहीं रहता। इस पर भी लग्नेश सूर्य भिन्न क्षेत्र में नीच राशि का होकर स्थित है। इसलिए मित्रों, स्वजनों, सहकारियों एवं अनुयायियों से भी सतत संघर्ष सजग रहता है। किन्तु उसी भिन्न क्षेत्र में भौम और एकादश में शनि इतना सबल है कि संघर्षों में भी इनका बल बढ़ता और बना रहता है। एक प्रकार से इनके अधिनायकत्व को पोषित करता रहता है।

गुरु और सूर्य की नीच राशि के कारण सहसा इनका भावना-प्रधान मन विचलित हो जाये और विचारों में भी विकृति का अवसर प्रदान करे, किन्तु गुरु और सूर्य नीच राशि के होकर भी नीचांश में नहीं हैं। इस कारण वे विकृतियों

को नियन्त्रित करने में समर्थ बन जाते हैं और अपना गौरव स्थिर रख सकते हैं। विकारी-विचारों पर उनके कोमल मन की तात्कालिक प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है तथापि नीच राशि के गुरु के उच्चांश में नवम स्थान में स्थित होने के कारण उनकी व्यावहारिक बुद्धि उस पर प्रभुत्व पा लेती है। यही गुरु, जो सहज विरोध जागृत करता है, वही उनके व्यक्तित्व में प्रभाव प्रेरित करने वाला अंश बली होकर बन गया है। उनका ज्ञान यद्यपि शिक्षा-क्षेत्र में सीमित रहे, परन्तु उच्चांश में गए हुए नवमस्थ गुरु की पंचम पूर्ण दृष्टि होने के कारण उनकी अन्तः प्रज्ञा का प्रेरक बन गया है और व्यापक योग्यता के साथ उनमें मौलिकता को विकसित करने में सहायक बन जाता है। इसी नीच राशि (एवं उच्चांश) के गुरु ने तथा शनि ने इन्हें परिवार से विरक्त बनाया, किन्तु विरक्ति में भी परिवार की निकटता प्रदान की है। बुध-चन्द्र युति परस्पर विरोधी मिलन है। किन्तु यह मिलन जन्म में ही नहीं, ठेठ नवांश तक अपना सह-अस्तित्व रखती है। इसलिए अपनों से, सहवर्गियों से और अन्यजनों से भी जीवन-भर परस्पर-विरोध की स्थिति में से गुजरना होगा और सतत जागरूक रहने को बाध्य बनना पड़ता है। किन्तु चन्द्र भी अपने उच्चांश में स्थित है। इसलिए जितना उच्च विरोध हो, उतना ही उच्च वर्ग मित्र भी बनता है। बुध-चन्द्र की आंशिक युति भी पारस्परिक विरोध के सहअस्तित्व की जनक बन गई है। साथ ही विरोध में प्रभावोत्पादक बन रही है।

शुक्र बुध-चन्द्र की स्थिति जहाँ संयमित, गम्भीर और प्रभावशाली व्यक्तित्व की निर्मात्री है, वहाँ रस-विलास, साहित्य, कला, काव्य रस में प्रावीण्य प्रदान करती है। कला और सौन्दर्य में अभिरुचि बढ़ाती है।

नवांश में बुध-चन्द्र योग सप्तम स्थान में हो जाने तथा सूर्य-इष्ट-प्रभावित होने के कारण गार्हस्थ्यहीन होना साहजिक होता है। परन्तु बुध-चन्द्र संयोग में उच्चांश स्थित चन्द्र क्लीब बुध के सहवास के कारण विलासी प्रवृत्ति को विकसित नहीं होने देता, संयमित, सीमित, मर्यादित बना देता है। शुक्र के कारण व्यवहार नैपुण्य, योग्य शिष्यों का व्यवस्थित सहयोग प्राप्त होता है तथा कठिन स्थितियों में से भी ऊपर उठने में सहायता मिलती है, अवश्य ही कुछ निकटवर्तियों के व्यवहार और कार्यों से वातावरण में निष्कारण शंका का प्रसार होता हो, पतनोन्मुख परिस्थितियों में गुरु के द्वारा गौरव-रक्षा होती है। गुरु के कारण ही आध्यात्मिक नेतृत्व उपलब्ध होता है।

इस समय सं० २०१६ से तुलसीजी को केतु-दशा आरम्भ हुई है। केतु लग्न में है। यह दशा संवत् २०२३ तक रहेगी। इसमें आरम्भिक काल संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता। २०१७ से २०१८ का शुक्रान्तर-काल प्रतिष्ठा, यश, ख्याति और उत्थान में सहायक बनता है। १४ जनवरी, ६२ से ७ मास का काल कला-रस-विलास और साहित्य-प्रवृत्तियों के साथ प्रतिष्ठा का रहेगा। संवत् २०१९ के भाद्रपद से एक वर्ष शारीरिक चिन्ता और मानसिक चिन्ता का कारण हो सकता है तथा संवत् २०२० के माघ से ११ मास का समय संघर्ष एवं कसौटी का रहेगा, अपने ही जनों में असंतोष व अशान्ति का अवसर आयेगा। आगे २०२३ तक की यह दशा उपयोगी रहेगी।

१८ फरवरी, ६२ से प्रायः उदर-विकार, प्रवास में श्रम और आत्म-परिजनों के व्यवहारों से मनस्ताप एवं स्पर्धा की परिस्थिति रहेगी।

यह स्पष्ट है कि इस कुण्डली के जिन ग्रहों के तत्त्वों से पोषित होकर तुलसी का जन्म हुआ है, वह उनके व्यक्ति-विकास में बहुत सहायक हुआ है। सीमित क्षेत्र से उन्हें व्यापक बनाने में उनके उच्चांश भोगी—नीच राशि गत—गुरु ने बहुत सहायता की है। यह गुरु नवांश में इतना सबल न बना होता तो सम्भव है कि उनका विरोधी वातावरण चिन्तनीय बन जाता, किन्तु गुरु के सबल हो जाने से ही उनका विरोध भी उन्हें ऊपर उठाने में सहायक बनता रहा है और उन्हें गौरव प्रदान करता रहा है।

हस्तरेखा-अध्ययन

रेखाशास्त्री श्री प्रतापसिंह चौहान

महामाननीय आचार्यश्री तुलसी का हाथ कुछ चमसाकार मिश्रित समकोण आकार का है। समकोण हाथ वाला दूरदर्शी, आदर्शवादी और शासक होता है। चमसाकार मिश्रित होने की अवस्था में आदर्शवादी होने के साथ-साथ व्यक्ति क्रान्तिकारी, नई धारणाओं और प्रवृत्तियों का संस्थापक होता है।

आचार्यश्री के हाथ में बुध की अंगुलि टेढ़ी है और उसका नाखून छोटा है। यह वक्तृत्व शक्ति और परख शक्ति का द्योतक है।

सूर्य रेखा जीवन रेखा से आरम्भ हुई है। जिससे आप प्रसिद्ध और प्रतिभा के धनी होंगे और जन-जीवन का कल्याण करते हुए आदरणीयता और ख्याति प्राप्त करते रहेंगे।

जीवन रेखा को मंगल के स्थान से आने वाली रेखाएं काटती हुई मस्तिष्क रेखा तक पहुँच रही हैं, इसलिए कभी-कभी अपने ही व्यक्तियों से मानसिक खिन्नता प्राप्त होती रहेगी। स्व-धर्मावलम्बी व इतर-धर्मावलम्बियों से विरोध उपस्थित होता रहेगा।

दाहिने हाथ में अपूर्ण मंगल रेखा होने से व्यवहार कुछ कठोर रहेगा, किन्तु विरोधियों के प्रति सहिष्णुता रहेगी। विरोधी कालान्तर से नतमस्तक होते रहेंगे। अनुभव सिद्ध बात है, मंगल रेखा विरोधियों पर विजय दिलाती है, किन्तु समकोण और चमसाकार मिश्रित हाथ होने की वजह से हृदय में शत्रुता के भाव शत्रुओं के प्रति भी नहीं रहेंगे।

हृदय रेखा बृहस्पति की उँगली को छू रही है, इसलिए प्रतिभा व जन-कल्याण की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती रहेगी; आदर्शवादी चरित्र रहेगा।

दोनों हाथों में छोटी-छोटी रेखाएं हैं, इसलिए मानसिक चिन्ताएं अधिक रहेंगी। बाएं हाथ में सूर्य, शनि और बृहस्पति के स्थान पर भाग्य रेखा जा रही है। यह उद्यमशील व ख्यातिशील होने की सूचक है। यही रेखा संघ-संचालक और अनुसंधान कर्त्ता होने का भी संकेत करती है। प्रारम्भ में अन्तरंग विरोधों का निश्चित ही मुकाबला करना पड़ेगा। वृद्धावस्था में पूर्ण शान्ति का अनुभव करेंगे।

चन्द्र स्थान पर रेखाएं गहरी होकर शनि स्थान की ओर झुकती हैं। यात्राएं विशेष होंगी। चन्द्र विशेष यात्रा का भी कारण होगा। अँगूठे के नीचे से मंगल स्थान से गहरी रेखा टूटती हुई मंगल तक आई है। पदयात्रा जीवन-भर होती रहेगी।

मस्तिष्क रेखा शनि के नीचे झुकी हुई है। साथ-ही-साथ शनि के पर्वत पर छोटी रेखाएं अधिक हैं। ये वायु विकार की सूचक हैं।

सूर्य के नीचे हृदय रेखा में बड़ा द्वीप है, इसलिए एक आँख विशेष निर्बल होगी।

जीवन रेखा दोनों हाथों में विशेष घुमावदार है और कटी हुई है। संघर्षमय जीवन और लक्ष्य सिद्धि की सूचक है।

बाएं हाथ में मस्तिष्क रेखा मंगल के पहाड़ पर गई है और दाएं हाथ में सूर्य के पहाड़ के नीचे पूर्ण हुई है। इससे विषय को समझाने की सूक्ष्म शक्ति और प्रत्युत्पन्नमति मिली है।

सूर्य रेखा सूर्य के स्थान से गहरी होकर नीचे की ओर चली है। वक्षस्थल में यदाकदा पीड़ा करेगी।

अंगूठा बृहस्पति की उंगली से अधिक दूरी पर खुलता है। दृढ़ निश्चय और आत्मविश्वास का प्रेरक है। हृदय-रेखा और मस्तिष्क रेखा दोनों समानान्तर होकर कम दूरी पर हैं। ऐसा व्यक्ति तब तक दृढ़ रहता है। जब तक अपने निश्चय पर नहीं पहुँच जाता है। कितना ही समय लगे, अपने लक्ष्य पर पहुँचकर ही विश्राम लेता है।

हृदय रेखा में द्वीप है और वह सूर्य के पहाड़ तक मोटी है। वायु विकार हृदय को भी प्रभावित करेगा। यह स्थिति विशेषतया वृद्धावस्था में होगी।
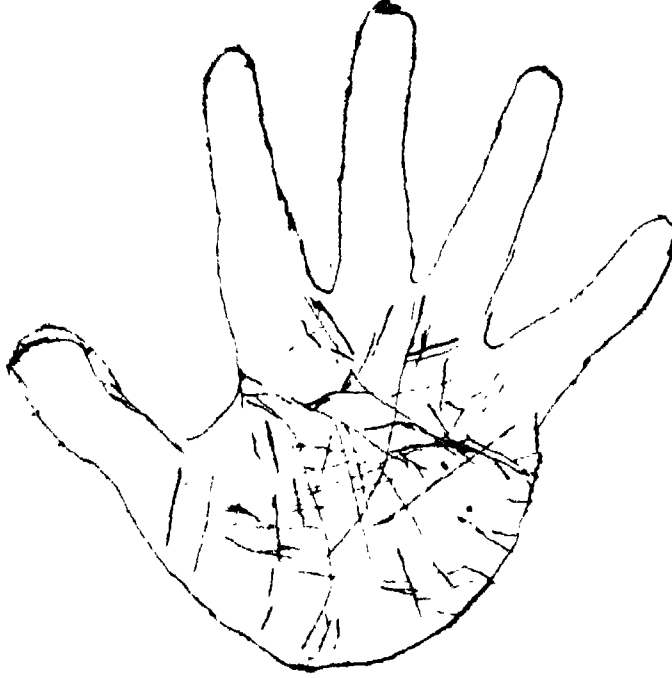
हृदय रेखा से ३६, ३७, ४३, ४४, ५५ और ५६वें वर्ष में शाखाएं निकल कर मस्तिष्क रेखा पर आई है। ये तीनों रेखाएं संघर्ष सूचक हैं। उक्त अवधि में संघ-सम्बन्धी या स्वास्थ्य-सम्बन्धी चिन्ताओं का योग है।

बृहस्पति के स्थान पर × का निशान है। यह प्रतिष्ठासूचक होने के साथ मस्तिष्क में भारीपन रखने वाला भी है।

मस्तिष्क रेखा बृहस्पति के स्थान से निकल कर शाखान्वित होती हुई मंगल के स्थान की ओर चली है। जीवन रेखा से अलग होते हुए भी कुछ सटी हुई है। साहित्य में चतुर्मुखी प्रतिभा देगी, सूक्ष्मातिसूक्ष्म कार्य के सम्पादन की क्षमता व निर्णायक बुद्धि होगी।

हृदय रेखा और मस्तिष्क रेखा समानान्तर हैं। सूर्य, शनि और बृहस्पति पर भाग्य रेखा का होना इस बात को प्रमाणित करता है कि किसी नई शैली से अहिंसक क्रान्ति करेंगे। कुछ एक लोग अपनी संकीर्ण भावनाओं के कारण आपका विरोध करेंगे। किन्तु अन्त में वे ही लोग आपके उद्बोधन को स्वीकार करेंगे। पहले-पहल वे लोग आप पर आडम्बर-प्रियता, निरंकुशता आदि के आरोप भी लगाएंगे। यह सब होते हुए भी आप पूर्ण निष्ठा के साथ अपने गन्तव्य की ओर बढ़ते रहेंगे।

भाग्य रेखा और सूर्य रेखा का विशेष उदय २२वें वर्ष से होता है। उसी समय से आपका जीवन लोक-सेवा के दायित्व को उठा कर चल रहा है।

मस्तिष्क रेखा के आरम्भ में द्वीप है और वह मोटा है। जब भी शारीरिक कष्ट होगा जोर से होगा।

बृहस्पति मुद्रिका बाएं हाथ में है। साधु संघ पर आपकी विशेष अनुकम्पा रहेगी।

आपका हाथ समकोण है। चन्द्रमा से भाग्य रेखा उदय होकर मस्तिष्क रेखा पर रुकी है। आपके द्वारा प्रचारित धर्म इतर लोग भी स्वीकार करेंगे; सामाजिक वृद्धि होगी।

जीवन रेखा घुमावदार है। मस्तिष्क रेखा साफ और सीधी है। हृदय रेखा बृहस्पति तक जा रही है। निश्चित ही आप दीर्घ आयु होंगे।

सूर्य रेखा जीवन रेखा से उदित हुई है। उसी स्थान से बुध रेखा निकल कर बुध के स्थान पर गई है। भिन्न-भिन्न विषयों का साहित्य आप और आपके शिष्यों द्वारा सम्पादित होगा। शोध कार्य की तरफ विशेष ध्यान रहेगा। अहिंसा स्वरूप को सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रूप में प्रतिपादित कर लोकहित करेंगे। आप अपनी संघीय व्यवस्था में विकास भी करेंगे। विभिन्न विभाग विभिन्न उत्तरदायित्व युक्त करेंगे। यह व्यवस्था विषय से सम्बन्धित होगी। इसका श्रीगणेश ४६वें वर्ष से और उसकी पूर्णता ५१, ५२, ५३ तक होती रहेगी।

एक सामुद्रिक अध्ययन

श्री जयसिंह मुणोत, एडवोकेट

विश्व के प्रांगण में कई सभ्यताएं आईं, सिर ऊँचा किया और नष्ट हो गईं। कितने ही राष्ट्र आगे आये, किन्तु टिके नहीं। कई संस्कृतियाँ चमकीं, लेकिन विस्मृति के अंचल में सिमिट गईं। उन सभ्यताओं राष्ट्रों एवं संस्कृतियों के विकास एवं विनाश का जो इतिहास है. वह सामने है। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं बौद्धिक तथा अन्य आघातों ने उनके भव्य प्रासादों को चकनाचूर किया और उनके खँडहरों पर धूल बिछाई, किन्तु उन प्रहारों की सबल चोटें खाकर भी हमारी भारतीय संस्कृति अभी तक जीवित है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है—इसकी आध्यात्मिकता। सहस्रांशु की वह तेजोमयी किरण अपना पूर्ण प्रभाव इस भू-भाग पर रखती है और विशेष रखती है। आध्यात्मिकता की यह अमर बेल समय-समय पर आर्ष पुरुषों द्वारा सिंचित हुई, उनसे संरक्षण प्राप्त किया और जिसे संवर्द्धन एवं संवरण उनकी छत्र-छाया में मिला। आध्यात्मिकता से उत्पन्न मानवता जहाँ यत्र-तत्र-सर्वत्र दीखने में आती रही। इस रत्न-प्रसूता वसुन्धरा ने ऐसे महामनस्वी नर पुंगवों को जन्म दिया कि जिनकी वैखरी वाणी एवं अपूर्व कार्य-कलापों ने अल्पकाल ही में वह कार्य कर दिखाया जो साधारण जनों द्वारा सम्भवतः सदियों तक अथक प्रयत्न करने पर भी सम्पन्न नहीं किया जा सकता था। जिन्होंने अपनी मानवता की चिनगारियों से इस देश की प्रसुप्त आत्मा के अन्तराल में क्रान्ति के वे स्फुलिंग जगा दिए कि जिनके प्रकाश में अखिल जगत की बड़ी-से-बड़ी सत्ता भी शान्ति का पथ ढूंढने को आतुर रही और है। धर्म और दर्शन की जननी भारत भूमि मानवता का मुख उजागर करने वाले पहुँचे हुए महापुरुषों से कभी भी खाली नहीं रही है। उसी आर्ष परम्परा की पुनीत माला के मनके हैं—आचार्यश्री तुलसी। इनके जीवन में निखार पाने वाले गुण अगणित हैं और उनका दिव्य चरित्र का पृष्ठ हम सबके सामने खुला है, जिसका समर्थन उनके हाथ से होता है। कितना सुन्दर साम्य है।

यह हाथ नहीं है पुस्तक है जिसमें जीवन का सार भरा।
है उसका पूर्ण प्रतिबिम्ब यही जो वास्तव में है सही, खरा।

Noel Jaquin का कथन है कि, "The hand is the symbolic of the whole". और 'हस्त-संजीवन' में लिखा है :

नास्ति हस्तात्परं ज्ञानं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यद् ब्राह्मं पुस्तकं हस्ते धृतं बोधाय जन्मिनाम्॥

आचार्यश्री तुलसी का हाथ चौकोर, लाल-गुलाबी रंग की मुलायम समुन्नत हथेली नीचे स्थित अंगुस्त कटिवाला लम्बा एक निराला कोण बनाता हुआ है, दूसरा पेरवा लम्बा, प्रथम पेरवा दूसरे की लम्बाई से दो तिहाई से कम नहीं और दूसरे पेरवे में एक तारे का निशान है। तर्जनी अवश्य कुछ छोटी है और उसका दूसरा पेरवा लम्बा है। मध्यमा लम्बी है, दूसरा पेरवा लम्बा व तीन खड़ी रेखा वाला है। अनामिका लम्बी है और उसका प्रथम पेरवा (नख वाला) लम्बा है। अनामिका से दूरी पर स्थित कनिष्ठा है जो लम्बी है, जिसका प्रथम पेरवा लम्बा है। तर्जनी के नीचे जो गुरु का स्थान है, वह समान रूप से उभरा हुआ है और उस पर क्रास तारे में परिणत होता दिखाई देता है। मध्यमा के नीचे जो शनि का स्थान है, उस पर खड़ी रेखा है और V का चिह्न है। स्थान समान रूप से उभरा हुआ है। अनामिका के नीचे जो सूर्यस्थान है, वह भी उभरा हुआ है। कनिष्ठा के नीचे जो बुध स्थान है, समुन्नत है और उस पर तीन-चार खड़ी रेखाएं हैं। इस स्थान के नीचे जो मंगल स्थान है, अच्छा उभरा हुआ है। चन्द्र स्थान जो इस मंगल स्थान

से नीचे है, समुन्नत है और शुक्र स्थान भी खासा उभरा हुआ है। हथेली में खड्डा नहीं है।

मस्तिष्क रेखा त्रिशूलाकार से प्रारम्भ होकर गुरु स्थान के नीचे जीवन-शक्ति रेखा से ऊपर, किन्तु अलग प्रथम कुछ दूर सीधी और फिर झुकती हुई है जिसकी एक शाखा चन्द्रस्थान की ओर दूसरी मंगल स्थान की ओर गई है, जहाँ आखिरी सिरा ऊपर बुध की ओर मुड़ा है। हृदय-रेखा शनि एवं गुरु स्थान के बीच से प्रारम्भ होती है और बुध स्थान के नीचे हथेली की छोर तक चली गई है। प्रारम्भ में इसकी एक शाखा गुरु-स्थान की ओर बढ़ती है। भाग्य रेखा चन्द्र स्थान के ऊपर से चल कर मस्तिष्क रेखा तक गई है, दूसरी कुछ ऊपर गई है। सूर्य-रेखा बड़ी सुन्दर है और भाग्य रेखा से मंगल के मैदान में निकल कर करीब हृदय रेखा के नीचे तक गई है और दूसरी सूर्य रेखा मस्तिष्क-रेखा से कुछ नीचे से उठ कर प्रथम सूर्य रेखा के पास चलती हुई सूर्य स्थान तक गई है और जहाँ एक शाखा बुध स्थान की ओर भेजती है। दोनों मंगल स्थान से एक-एक रेखा सूर्य स्थान को आई है जिनमें हथेली के छोर वाले मंगल स्थान वाली रेखा बहुत तीखी एवं स्पष्ट है। सूर्य स्थान के नीचे हृदय रेखा से एक रेखा बुध स्थान की ओर बढ़ी है। मस्तिष्क रेखा से एक रेखा गुरु स्थान की ओर बढ़ी है। जीवन-शक्ति-रेखा पुणचे तक गई है और स्थान-स्थान पर इससे भाग्य रेखाएं निकली हैं, जिनमें एक रेखा ठीक गुरु स्थान में गई है। जीवन शक्ति रेखा के बराबर सी अन्दर की ओर एक रेखा है। जीवन शक्ति रेखा से एक रेखा शनि की उँगुली (मध्यमा) के पास गई है जो विरक्ति रेखा है। दोनों हाथ की उँगुलियों में लगभग छः शुभ चक्र हैं, चार में सीप का आकार है। मध्यमा में सीप का आकार है। उँगलियाँ हथेली से छोटी नहीं हैं। हथेली की लम्बाई एवं चौड़ाई प्रायःसमान-सी है। प्रारम्भ में सूर्य रेखा ने कुछ ऊपर उठ कर एक शाखा बुध की ओर छोड़ी है और भाग्य-रेखा की एक
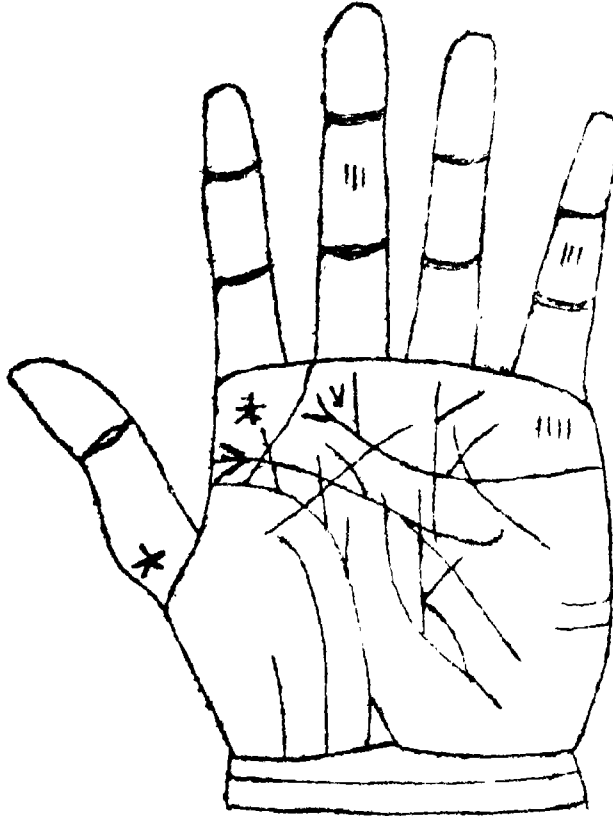
(ऊपर खींचा गया हाथ उसी हस्त-दर्शन के आधार पर है)

शाखा भी कहीं-कहीं आकर मिली दीखती है। यह ऊपर लिखा वर्णन अल्प समय में किये गये हस्त-दर्शन के आधार पर है।

चौकोर हाथ एवं मुलायम समुन्नत लाल गुलाबी रंग की हथेली जिसकी लम्बाई एवं चौड़ाई समान-सी है और अंगुलियाँ भी हथेली के बराबर हैं, इस बात की द्योतक हैं कि इनमें अपूर्व चरित्र-बल, बहस करने की प्रबल शक्ति है, सन्तुलित स्वभाव है, परिवर्तनशील हैं और निरन्तर कार्य में संलग्न रह कर विजयश्री प्राप्त करने के लक्षण है। छोटी तर्जनी निरभिमान की सूचक है। मध्यमा प्रबुद्धता, चिन्तनशील, उद्योगी एवं धार्मिक पुरुष की परिचायक है। अनामिका से कलाकार, कवि एवं सामाजिक चेतनावान् मानव का परिचय मिलता है। प्रथम पेरवा लम्बा होना कवि होने की पुष्टि करता है। कनिष्ठा रचयिता एवं व्याख्यता की प्रतीक है और इसकी दूरी अनामिका से जो स्थित है, वह यह बतलाती है कि यह मानव अपने कर्म में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र है। उपरोक्त अंगुस्त विभिन्न विचारों का समावेश, प्रखर बुद्धि, समन्वय शक्ति एवं उदारमना का द्योतक है। प्रथम पेरवा जहाँ सम्पूर्ण आत्म-बल को बतलाता है, वहाँ दूसरा पेरवा सुदृढ़ साधारण ज्ञान (Common sense) एवं प्रबल कर्म शक्ति एवं तर्क शक्ति का परिचायक है। कटि वाला अंगुस्त कुशल राजनीतिज्ञ एवं नेता होने का संकेत करता है। गुरु स्थान पर तारा का चिह्न गुरु पद एवं विश्व-विश्रुत विभूति का द्योतक है। शनि स्थान पर जो रेखा खड़ी है एवं V का चिह्न है, वह माता से विशेष स्नेह होने का परिचय देता है। जीवन शक्ति रेखा से मध्यमा के पास रेखा गई है, वह विरक्ति (Renunciation) रेखा है जो संसार से उदासीन कर विरक्त बनाने में सहायक होती है। शनि का समुन्नत स्थान दार्शनिक, कुछ एकान्त प्रेमी एवं संगीत की अभिरुचि का होना प्रकट करता है। ऐसा सूर्य स्थान बहुश्रुत, यशस्वी एवं विवेकी होना जाहिर करता है। सूर्य रेखा से बुध की ओर जाने वाली रेखा रचयिता एवं व्याख्याता की द्योतक है। बुध स्थान एवं उस पर खड़ी रेखाएं कुशल मनोवैज्ञानिक, विज्ञानवेत्ता, विलक्षण बुद्धि वाला एवं सुन्दर वक्ता होने का परिचायक है। मंगल स्थान एवं उनसे सूर्य की ओर जाने वाली रेखाए महा पराक्रमी, उत्कृष्ट साहसी, हिमालय-सा अडिग, शत्रु पर अहिंसक वृत्ति से सदा विजय पाने वाला एवं परम सहिष्णु होने की द्योतक है। उपरोक्त चन्द्र स्थान तीव्र कल्पना-शक्ति वाला एवं सिरजनहार का सूचक है। शुक्र स्थान सद्भावनाओं का सम्मान करने वाला एवं संगीतज्ञ के गुण बतलाता है। जीवन-शक्ति रेखा से गुरु स्थान में जाने वाली रेखा प्रतिभा प्रदान करने वाली है। अंगुस्त के दूसरे पेरवे में जो तारा का चिह्न है, वह आनन्दयोग का सूचक है।

अधिक महत्त्वपूर्ण रेखा मस्तिष्क की है जो प्रबल आत्म-विश्वास, कल्पना एवं यथार्थता के सामंजस्य, न्यायी, सुनीतिवान्, गुत्थियों को सहज सुलझाने की शक्ति की सूचक है। त्रिशूलाकार सुयश, सौभाग्य, अन्तिम सिरा गुरुता उसका ऊपर उठना अद्भुत वाक्-शक्ति का द्योतक है। साथ-ही-साथ स्थिर बुद्धि एवं प्रवाह में नहीं बहने वाले मस्तिष्क की कल्पना कराता है। हृदय-रेखा कुशाग्र बुद्धि, यश एवं आदर्शवादी की सूचक है। भाग्य-रेखा पूर्वजों की सम्पदा प्राप्त होने की सूचना देती है और गुप्त स्थान निहित है, ऐसा बतलाती है और मस्तिष्क के विशाल एवं व्यापक होने की परिचायक है। सबसे महत्त्वशाली सूर्य रेखा है जो सर्वांगीण सफलता, बहुश्रुत, अनेक ज्ञान, परम यश, प्रबल वाक्-शक्ति तथा विश्व-विभूति की द्योतक है। यह इक्कीस, बाईस वर्ष की आयु के पास भाग्य रेखा से निकलती है जो भाग्योदय का समय बतलाती है। फिर चौबीस वर्ष की आयु के पास इससे निकलने वाली एक रेखा जो बुध की ओर बढ़ना चाहती है, वह ज्ञानवृद्धि, राजनीति एवं विद्या विकास होना प्रकट करती है। तेतीस वर्ष की आयु के पास एक सूर्य रेखा और निकलती है जो सीधी सूर्य स्थान को गई है। नवीन जन-क्रान्ति द्वारा विमल यश व सफलता की सूचक है। इससे मानवता से देवत्व की ओर प्रगति होगी, ऐसी सूचना मिलती है। लम्बा अंगुस्त, जो नीचे स्थित है और निराला कोण लिये हुए है, निगूढ़तम दार्शनिक, सिद्धान्तवादी, नीतिवान्, उच्च कोटि का न्यायी होना प्रकट होता है। जीवन-शक्ति की पूरी रेखा है, दोष रहित है जिसमें सुस्वास्थ्य की कल्पना है और इसके साथ दूसरी जीवन रेखा चली है जिससे जीवन को बल मिलता है। स्थान-स्थान पर जीवन-शक्ति रेखा से सिट्टे की नाई जो भाग्य रेखाएं निकली है, वे उस समय की उन्नति एवं प्रतिभा की सूचक हैं। मस्तिष्क रेखा से बृहस्पति की ओर रेखा का बढ़ना सुयश की वृद्धि बतलाती है और हृदय रेखा से बुध की ओर रेखा का जाना ज्ञान-विकास की सूचक है। पेरवों में जो खड़ी रेखाएं है, वे व्यवहार-कुशल होने की प्रतीक है और इनसे बुद्धि एवं चतुराई को बल मिलना कहा जाता है।

आचार्यश्री तुलसी के दो प्रबन्ध काव्य

डा० विजयेन्द्र स्नातक एम०ए०, पी-एच०डी०
रीडर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

नैतिक उत्थान का दिव्य सन्देश

आचार्यश्री तुलसी अपने अभिनव अणुव्रत-आन्दोलन के कारण आज भारतवर्ष में एक तपस्वी साधक, मर्यादा-पालक वीतराग जैनाचार्य के रूप में विख्यात हैं। ध्वंस और विनाश के जिस उद्वेगमय वातावरण में आज संसार सांस ले रहा है, उसमें नैतिक मूल्यों द्वारा शान्ति और समभाव की स्थापना का प्रयत्न करने वाले महापुरुषों में आचार्य तुलसी का स्थान अन्यतम है। नैतिक एवं चारित्रिक ह्रास के कारण वर्तमान युग में जीवन के शाश्वत मूल्य का जिस द्रुत गति से लोप हुआ है, वह समस्त संसार के लिए चिन्ता का विषय बन गया है। एक ओर देश, जाति, धर्म और सम्प्रदाय की संकीर्ण दीवारें खड़ी करके मानवता खंडाशों में टूट-टूट कर विभक्त हो गई है तो दूसरी ओर दुर्धर्ष ध्वंसायुधों के आविष्कार के सन्देह—शंका का भयावह वातावरण विश्व में व्याप्त हो गया है। ऐसे संकट के समय समूची मानवता के लिए सौहार्द, समता, सौख्य और शान्ति का सन्देश देने वाली महान् आत्माओं और शाश्वत मूल्यों की स्थापना करने वाले उपायों की आवश्यकता स्पष्ट है। आचार्यश्री तुलसी एक ऐसे ही महान् व्यक्ति हैं जिनके पास मानव के नैतिक उत्थान का दिव्य सन्देश है जो अणुव्रत चर्या के रूप में धीरे-धीरे इस देश में फैल रहा है। कहना होगा कि इस शान्त, स्वस्थ एवं निरुपद्रवी आन्दोलन को यदि विश्व के सभी देश स्वीकार कर लें तो व्यक्ति-निर्माण के मार्ग से राष्ट्र का निर्माण और अन्त में समग्र मानवता के विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

आचार्यश्री तुलसी की काव्य साधना के प्रसंग में अणुव्रत विषयक दो-चार शब्द मैंने जान-बूझकर लिखे है। अणुव्रत का सन्देश आचार्यश्री तुलसी के प्रबन्ध काव्यों में भी निहित है, किन्तु कवि ने उसे किसी आन्दोलन की भूमि पर प्रतिष्ठित न कर भावना की उर्वर धरा पर उसका वपन किया है। अणुव्रत की अनाविल नैतिकता का बीज स्वाभाविक रूप से उनके काव्यों में अंकुरित हुआ है और उसके द्वारा पाठक की परिष्कृत चेतना दीप्त होती है, ऐसी मेरी धारणा बनी है। अणुव्रत-आन्दोलन देश, जाति, धर्म—सम्प्रदाय-निरपेक्ष एकान्त व्यक्ति-साधना होने के कारण सभी विचारशील व्यक्तियों द्वारा समादृत हुआ है, फलतः उसके प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी के विषय में साधारण जनता का परिचय इसी के माध्यम से हुआ है। आचार्यश्री की नैसर्गिक काव्य प्रतिभा से बहुत कम व्यक्तियों का परिचय है, अतः मैं काव्य-प्रतिभा के सम्बन्ध में संक्षेप में परिचय प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा।

ज्ञान-क्रिया की समवेत शक्ति

आचार्यश्री तुलसी के काफी काव्य-ग्रन्थों को पढ़ कर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इन ग्रन्थों के निर्माण में जिस प्रेरक शक्ति का सबल हाथ रहा है, वह इच्छा, ज्ञान-क्रिया की समवेत शक्ति है। इन ग्रन्थों की रचना का उद्देश्य 'यशसे' और 'अर्थकृते' न होकर 'दिव्योपदेश' और 'शिवेतर क्षति' ही है। लौकिक एवं पारलौकिक विषयों का व्यवहार ज्ञान भी उपदेश की प्रक्रिया में समाया हुआ है। जिस सरल अभिव्यंजना और सहज अनुभूति से वर्ण्य का विस्तार इन काव्य ग्रन्थों में हुआ है, वह इस तथ्य का निदर्शन है कि भोग्य जगत् के प्रति अनासक्त भाव रखने वाले संत की वाणी में वस्तु-

सत्य के प्रति उतना आग्रह नहीं रहता, जितना भाव-सत्य के प्रति होता है। भाव-सत्य को केन्द्र बिन्दु बनाकर वस्तु-सत्य (घटना) का चित्रण करते समय संत कवि की वाणी जितनी तत्त्वाभिनिवेशी बनी रहती है, कदाचित् पदार्थ के प्रति आग्रह रखने वाले सामान्य कवि की वाणी नहीं रहती। 'शिवेतर क्षति' जिस काव्य का मूल स्वर हो उसमें यश और अर्थ की लिप्सा को स्थान नहीं रहता। आचार्यश्री तुलसी का निसर्ग कवि स्वयं तटस्थ भाव से इन सबको ग्रहण करके काव्य रचना में प्रवृत्त हुआ है, यह सभी काव्य ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है।

आचार्यश्री की लेखनी से अद्यावधि तीन हिन्दी काव्य-ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके हैं। यों तो संस्कृत और मारवाड़ी में भी आपने काव्य-रचना की है, किन्तु इस लेख में मैं उनके दो प्रमुख हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की ही चर्चा करूँगा। स्थानाभाव से हिन्दी के सभी ग्रन्थों की समीक्षा करना भी मेरे लिए सम्भव नहीं है। प्रमुख कृतियों में 'आषाढ़भूति' और 'अग्नि-परीक्षा' हैं।

आषाढ़भूति

'आषाढ़भूति' एक प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्ध काव्य की पुरातन शास्त्रीय मर्यादा को कवि ने रूढ़ि के रूप में स्वीकार न कर स्वतन्त्र रूप से कथा को विस्तार दिया है। सर्ग या अध्याय आदि का परम्परागत विभाजन भी इसमें नहीं है। वर्णन की दृष्टि से भी इस काव्य में शास्त्र का अनुगमन प्रायः नहीं हुआ है। वस्तुतः कवि की दृष्टि वर्ण्य वस्तु को जन-मानस तक पहुँचाने की ओर ही अधिक रही है। कवि का अभिप्रेत है 'जनकाव्य' की शैली पर गेय रागों में कथा को श्रुति मधुर बना कर व्यापकता प्रदान करना। शास्त्र-मर्यादा के कठोर पाश में आबद्ध होकर उसे विद्वन्मण्डली तक सीमित बनाने की कवि की तनिक भी इच्छा नहीं है। जैन-साहित्य परम्परा में यह शैली सुदीर्घ काल से विकसित होती रही है। आचार्यश्री ने उसी को प्रमाण माना है और उसके विकास में नई कड़ी जोड़ी है।

यह काव्य आस्तिक भावना का प्रतिष्ठापक होने के साथ जीवन की दुर्दम प्रवृत्तियों का यथार्थ बोध कराने में भी सहायक है। मानव की दुर्ललित वासना वृत्ति किस प्रकार मानव को पाप-पंक में धकेल देती है और किस प्रकार वह इन्द्रियासक्ति के जाल में पड़ कर सन्मार्ग से च्युत हो जाता है, यह बड़ी रोचक शैली से व्यक्त किया गया है। 'आषाढ़भूति' का कथा-प्रसंग निशीथ सूत्र की चूर्णि व उत्तराध्ययन की अर्थ कथाओं से लिया गया है। आचार्य तुलसी ने अपनी उपज्ञात प्रतिभा और कल्पना के योग से सामान्य कथा को दीप्त कर दिया है। कथा के विवरण केवल घटनाश्रित न होकर दर्शन, अध्यात्म, लोक-व्यवहाराश्रित अनेक उपयोगी प्रसंगों से गुंथे हुए हैं। कथा के नायक आचार्य आषाढ़भूति को प्रारम्भ में दृढ़ आस्तिक के रूप में चित्रित किया गया है, किन्तु अपने सौ शिष्यों को महामारी द्वारा अकाल कवलित देख कर और देवयोनि से वापस आकर गुरु से न मिलने पर गुरु के मन का दृढ़ आस्तिक भाव संशय के अंधड़ भाव से हिल उठा। शिष्यों ने वचन दिया था कि देवयोनि से आकर गुरु की खैर-खबर लेंगे, किन्तु एक भी शिष्य वापस न आया। उन्हें लगा कि शास्त्र मिथ्या हैं, परलोक मिथ्या है, तत्त्वज्ञान की चिन्ता व्यर्थ है। इहलोक के सुख को तिलांजलि देना मूर्खता है। भोग की सामग्री की अवहेलना करके मैंने क्या पाया। भोग्य वस्तुओं से परिपूर्ण इस संसार में रमना ही मानव का इष्ट है, ऐसी भ्रम बुद्धि उत्पन्न होने पर आचार्य आषाढ़भूति पथभ्रष्ट होकर लोभ के पंक-जाल में फँस गये। उन्होंने छः अबोध बालकों की हत्या की, उनके आभूषण छीने, चोरी की और पतन का मार्ग पकड़ा। ऐसी दशा मे वचनबद्ध उनका प्रिय शिष्य विनोद देवयोनि से आया और उसने आषाढ़भूति का इस पाप-योनि से उद्धार किया। आषाढ़भूति पुनः आस्तिक मुमुक्षु बनकर सत्पथ पर आरूढ़ हुए। यही संक्षिप्त-सी कथा है।

आचार्यश्री तुलसी ने अपने काव्य को जनकाव्य बनाने के लिए लोक प्रचलित विभिन्न गेय रागों का आश्रय लिया है। राधेश्याम कथावाचक की रामायणी शैली का ग्रहण इस बात का प्रमाण है कि कवि इस काव्य का उसी शैली से प्रचार चाहता है। जैन दर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल और सुबोध शैली से बीच-बीच में गुम्फित कर आचार्यश्री ने इसे प्रारम्भ में चिन्तनप्रधान काव्य का लय दिया है, किन्तु बाद में घटनाओं के वर्णन के कारण चिन्तन की गूढ़ता कम होती जाती है। दार्शनिक चिन्तन की झलक नीचे के पदों में स्पष्ट देखी जा सकती है :

यदि भूतवाद ही सब कुछ है, चेतन का पृथगस्तित्व नहीं ?
चेतनता धर्म, कहो किसका, गुण अननुरूप होता न कहीं ?
चेतना शून्य क्यों मृत शरीर, धर्मी से धर्म भिन्न कैसे ?
यह जीव स्वतन्त्र द्रव्य इसकी, सत्ता है स्वयं सिद्ध ऐसे ?
चार्वाक नहीं चिन्तन देता, साम्प्रतिक सुखों का यह केवल ।
आश्वासन मात्र प्रलोभन है, इसमें न दार्शनिक, तात्विक बल ।
सैद्धान्तिक सबल प्रमाणों से जाती है जड़ जिसकी खिसकी ।
औदार्य भारती संस्कृति का, दर्शन में गणना की इसकी ।

देवयोनि से शिष्यों के वापस लौट कर न आने पर आचार्य आषाढ़भूति की आस्था डिग गई । उनके मन में सन्देह-शंका के बादल मँडराने लगे । उन्हें लगा कि यह जप-तप, धर्म-पुण्य, सब मिथ्या हैं । स्वर्ग सुनिश्चित नहीं है, साम्प्रतिक दृष्टि ही सत्य है ।

लोकस्थिति सारी कल्पित, क्या यह षट् द्रव्याश्रित,
कोई भी आस्था का आधार है नहीं ।
झूठी धर्माधर्मास्ति, क्या पद्गल आकाशास्ति,
इस उलझन का कोई भी प्रतिकार है नहीं ।

इस प्रकार एक बार घोर पतनगामी होकर आषाढ़भूति की जीवनयात्रा गहनाधंकार में भटक जाती है । किन्तु सौभाग्य से उनका शिष्य विनोद आता है और उनके उद्धार का आयोजन करता है । शिष्य के लिए गुरु के ऋण का शोध केवल यही है कि वह अपने अर्जित ज्ञान को गुरु-प्रबोध के लिए काम में लेने का अधिकारी बने । संयोग की बात, विनोद के सौभाग्य से वह दिन उसे देखने को मिला और उसने गुरु को प्रबोध देकर सत्पथ पर पुनः आरूढ़ किया । विनोद ने गुरु को प्रबोध दिया :

अवितथ हैं सारे आगम, संयम का सफल है परिश्रम,
तत्क्षण ही आत्म-शक्ति यह फल साकार है ।
आश्रव है बन्ध निबन्धन, संवर से कर्म निरुन्धन,
तप संचित कर्मों का सीधा प्रतिकार है ।
देता आकाश आश्रय, पुद्गल है गलन-मिलनमय,
पुद्गल के सिवा न कोई का आकार है ।

आषाढ़भूति काव्य का अन्त जैन दर्शन के सिद्धान्तों को सरल भाषा में प्रतिपादन करने में हुआ है । कुछ पारि-भाषिक शब्दावलि इन पृष्ठों में प्रयुक्त हुई है जिसको सम्पादक महोदय ने परिशिष्ट में स्पष्ट कर पाठकों का कल्याण किया है ।

काव्य सौष्ठव के धरातल पर इस प्रबन्ध काव्य में एक ही उल्लेख्य तत्त्व मैं पा सका; वह है—मनोरंजक शैली से गूढ़ार्थ-प्रतिपादन । अभिव्यंजना का मार्दव या व्यंजना का चमत्कार इसमें नहीं है । मूलतः यह अभिधा काव्य है, जिसे साधारण पाठक के लिए सुबोध शैली में लिखा गया है । कहीं-कहीं गेय रागों के साधारण या अति प्रचलित रूपों ने इसमें हल्कापन भी ला दिया है, किन्तु लेखक का उद्देश्य भिन्न होने से वह दुर्बलता आक्षेप योग्य नहीं रहती । प्रचार की दृष्टि से मैं इस काव्य को सफल समझता हूँ । इसका धरातल भी व्यापक बनाया गया है ताकि सभी वर्गों या सम्प्रदायों के धार्मिक वृत्ति के पाठक इसमें रस ग्रहण कर सकें ।

अग्नि-परीक्षा

'अग्नि-परीक्षा' आचार्यश्री तुलसी की प्रौढ़ काव्य कृति है । इस कृति का सम्बन्ध रामायण की सुविश्रुत कथा

से है। रामकथा का क्षेत्र देश, काल, जाति, धर्म और भाषा की दृष्टि से जितना व्यापक है, उतना सम्भवतः संसार की किसी अन्य कथा का नहीं है। राम और सीता को भारतवर्ष के विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय ही नहीं, बाहर के देश भी अपना उपास्य देव मान कर ग्रहण करते हैं। रामकथा का विस्तार होने से इसमें रूपान्तर होना तो स्वाभाविक है ही, किन्तु कहीं-कहीं आद्यन्त परिवर्तन भी दृष्टिगत होता है। जैन ग्रंथों में रामकथा का प्रारम्भ सातवीं शती से देखा जा सकता है। 'अग्नि-परीक्षा' की रचना आचार्यश्री तुलसी ने रामकथा के विभिन्न रूपों को पढ़ कर अपनी नूतन शैली से की है। किन्तु इसका कथा-प्रसंग मूलतः विमल सूरि कृत 'पउम चरिउ' की परम्परा से जुड़ा हुआ है। इस कथा में कुछ नवीन पात्र अवश्य हैं जो वाल्मीकि और तुलसी की रामायण के पाठकों को नये प्रतीत होंगे, किन्तु समग्र कथा-प्रवाह में उनको बिना जाने भी पाठक अव्यवधान से रसानुभूति कर सकता है।

'अग्नि-परीक्षा' आठ सर्गों में विभक्त प्रबन्ध काव्य है। इस काव्य की कथा रावण-वध के उपरान्त लंका में जुड़ी राम की विराट सभा से प्रारम्भ होती है। दशकंधर के दिव्य प्रासाद में राम-लक्ष्मण सिंहासन पर विराजमान हैं और सुग्रीव, विभीषण, हनुमान आदि उनके चारों तरफ मंडलाकार बैठे हैं। नारद उस समय सभा में आते हैं और वे साकेत नगरी में दुःखी होती हुई वृद्धा माताओं का वात्सल्य भरा करुण सन्देश राम-लक्ष्मण को देते हैं। इस प्रसंग में कवि की वाणी माता की ममता और उसके अतुल उपकारों का वर्णन करने में लीन हुई है और बड़ी भावनाओं के साथ मातृत्व का प्यार इन पंक्तियों में उल्लसित हुआ है। अग्नि-परीक्षा का दूसरा अध्याय 'षड्यन्त्र' शीर्षक प्रसिद्ध रामचरित कथा से कुछ नया है। सम्भवतः यह प्रसग जैन कथाओं में हो, किन्तु वाल्मीकि और तुलसी में यह कथा-प्रसंग नहीं है। रामराज्य के सुख और आनन्दपूर्ण वातावरण के चित्रण करने के ठीक बाद ही यह दिखाया गया है कि राम की अन्य रमणियां सीता के प्रति ईर्ष्यालु और वैमनस्य की भावना से सीता के विषय में मिथ्या प्रवाद प्रसारित करने का षड्यन्त्र करती है। राम की ये रमणियां कौन हैं और इनको राम के प्रति किस प्रकार का ममत्व है, यह इस कथा-प्रसंग में अघटित-सा प्रतीत होता है :

रमणियां राम की सब मिल सोच रही हैं,
सीता रहते किंचित सुख हमें नहीं है।
उससे ही रंजित नाथ! रात दिन रहते,
हमसे हँसकर दो बात कभी ना कहते।

जलता रहता मन भीतर ही भीतर में।
यह कैसा घोर अंधेर राम के घर में।
आलोक जहां से फैला भारत भर में।
यह कैसा घोर अंधेर राम के घर में।

राम की रमणियों ने षड्यन्त्र कर सीता से रावण के पैरों का चित्र बनवा कर उसे लांछित किया और राम को विवश कर दिया कि वह सीता को विसर्जित करें।

सुन अकल्पित कल्पना यह, राम दुःखित हो गये,
खिन्न मन विश्राम गृह में, क्लान्त होकर सो गये।
ज्वार विविध विचार के हृदयाब्धि में आने लगे,
लहर बन कर ओष्ठ तट से शब्द टकराने लगे।

राम का अन्तस्तल नगर में व्याप्त किंवदन्तियों और प्रवादों से खिन्न हो गया। वे निर्णय न कर सके कि सीता के उज्ज्वल धवल चरित्र पर यह कलंक-कालिमा क्यों थोपी जा रही है। किन्तु लोकापवाद को बलवान् मानकर सीता-परित्याग का कठोर निर्णय कर ही लिया। कवि ने राम के उद्भ्रान्त मन को बड़े सशक्त शब्दों में वर्णन किया है :

अभ्र, अवनी, सर, सरोरुह, भ्रान्त-श्रान्त नितान्त थे,
सरित्, सागर-शब्द रह-रह हो रहे उद्भ्रान्त थे।

विहग, पन्नग, द्रुम-चतुष्पद, सर्वतः निस्तब्ध थे,
हुई परिणति गति स्थिति में, शब्द भी निःशब्द थे।

सीता-परित्याग का यह सारा वर्णन बहुत ही प्रवाह पूर्ण शैली में लिखा गया है। सहृदय पाठक का इस प्रसंग में अनेक प्रकार की कोमल अनुभूतियों से आप्लावित हो जाना स्वभाविक है। लक्ष्मण की दशा का यथार्थ अंकन करने में कवि की वाणी इतनी संवेद्य हो गई है कि उसके साथ तादात्म्य करने में कोई बाधा नहीं आती। राम के कठोर आदेश का पालन करने की विवशता और महासती के प्रति अगाध श्रद्धा से भरा कृतान्तमुख सेनापति का मन द्विवधा में डूब जाता है। उसे सीता को छोड़ने वन में जाना ही होगा—कैसी परवशता है।

स्खलित चरण, कम्पित वदन, आकृति अधिक उदास।
पहुँचा सेनानी सपदि महासती के पास।

परित्यक्त होकर सीता वन में चली आई, किन्तु उसका मन घोर अनुताप से भर गया। सती-साध्वी निर्दोष नारी को इतना भीषण कष्ट उठाना पड़ा, यह नारी जीवन का अभिशाप नहीं तो क्या है? नारी के अभिशप्त जीवन का वर्णन कवि के शब्दों में सुनने योग्य है:

अपमानों से भरा हुआ है नारी-जीवन,
अरमानों से भरा हुआ है नारी-जीवन,
अभिमानों से डरा हुआ है नारी-जीवन,
बलिदानों से घिरा हुआ है नारी-जीवन।

... ...

पुरुष-हृदय पाषाण भले ही हो सकता है,
नारी-हृदय न कोमलता को खो सकता है।
पिघल-पिघल उसके अन्तर को धो सकता है,
रो सकता है, किन्तु नहीं वह सो सकता है।

अनुताप की भट्टी में जलकर सीता ने अपनी विचारधारा को कंचन बनाया। उसे साहस का सम्बल मिला अपने ही अन्तर के भीतर। आसन्न प्रसवा होकर वह वन में आई थी। उसने दो पुत्रों को जन्म देकर अनुभव किया कि वह पति परित्यक्ता होकर भी पुत्रवती है। उसके पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम की सन्तान हैं। सीता के उदर में पल कर उन्होंने सत्य, धर्म और व्रत-पालन की दीक्षा ली है, क्या वे मातृ-अपमान का बोध होने पर शान्त रह सकते थे। सीता के पुत्रों की वाणी में प्रतिशोध की अग्नि भभक उठी और वीरोचित दर्प से वे हुंकार उठे:

जिस माँ का हमने दूध पिया
उसका अपमान न देखेंगे,
चम-चमती इन तलवारों से
हम जाकर के बदला लेंगे,
रे! दूर कौन-सा कौशल है
वीरत्व स्वयं का तुम तोलो,
यदि थोड़ी-सी भी क्षमता है
करके दिखलाओ, कम बोलो।

सीता के पुत्र युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर मैदान में उतरते हैं और लक्ष्मण के साथ आई हुई सेना से पूरी तरह मोर्चा लेने में जुट जाते हैं। इनकी वीरता से एक बार-लक्ष्मण व राम भी अभिभूत हुए बिना नहीं रहते। राम और लक्ष्मण दोनों की समवेत शक्ति भी इन्हें परास्त करने में सफल नहीं होती। राम व लक्ष्मण ने अनेक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया, किन्तु सभी बेकार गये।

एक एक कर यों सभी अस्त्र गये बेकार।
श्रद्धा, ज्ञान बिना यथा क्रिया न हरती भार।
यों लक्ष्मण के भी सभी हैं निरर्थ हथियार।
दया-दान, संयम बिना ज्यों होते निस्सार।

युद्ध के वर्णन में आचार्यश्री तुलसी ने एक परम्परा—मर्यादा रखी है। उसे विकराल बनाने के लोभ से शब्दों का आडम्बर खड़ा नहीं किया। सहज शैली से युद्ध की भूमिका में मानव-मन के प्रतिद्वन्द्वों को ही प्रमुख स्थान दिया है। इस प्रसंग के बाद इस प्रबन्ध काव्य का उत्कर्ष स्थल और उपसंहार एक साथ आता है। फलागम की दृष्टि से यह अध्याय अन्त में है, किन्तु इस पर उत्कर्ष जिस रूप में चित्रित किया गया है, वह लोक विख्यात कथा से कुछ भिन्न है। लोक-कथाओं में राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा लंका से आने पर साकेत नगरी में प्रवेश से पहले ली थी, किन्तु आचार्यश्री तुलसी के काव्य में जैन-परम्परा का ग्रहण हुआ है और सीता की अग्नि-परीक्षा राम ने अपनी आत्म-ग्लानि के उपरान्त अपने अन्तर की प्रबल प्रेरणा से ली है। राम की अन्तरात्मा सीता को सर्वथा शुद्ध, सती-साध्वी मान रही है, अतः यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि जनापवाद के निरसन के लिए बाह्य परीक्षा भी की जाये।

नहीं, नहीं मेरे मन में तो शंका जैसा कोई तत्व,
दयिते! अप्रतिहत आस्था है मानों ज्यों क्षायक सम्यक्त्व।
जड़जन का उन्माद मिटाने सचमुच यही अचूक दवा,
सफल परीक्षण हो जाने से हो जायेगी शुद्ध हवा।

सीता अग्नि-कुण्ड में प्रविष्ट होने के लिए उद्यत हुई। उसके मन में अटूट विश्वास का तेज था। वह निर्भय भाव से प्रसन्न मुद्रा में अग्नि में प्रविष्ट हुई :

चीर क्षितिज की छाती भास्कर नभ प्रांगण में चढ़ता है,
मुनि ज्यों बन्धन-मुक्त साधना-पथ पर आगे बढ़ता है।
अरुण अरुण है, अरुण व्योम है, अरुण सलिल है, अरुण धरा,
तरुण अरुणता लिये ज्योतिमय रूप मैथिली का निखरा।

... ...

बिना हुताशन-स्नान किये होता सोने का तोल नहीं,
नहीं शाण पर चढ़ता तब तक हीरे का कुछ मोल नहीं,
कड़ी कसौटी पर कस अपनी अभिनव ज्योति जगाएगी,
सूर्य वंश की विजय पताका भूतल पर लहराएगी।

सीता के दिव्य एवं पवित्र चरित्र का प्रभाव ऐसा हुआ कि प्रज्वलित हुताशन की लपटें क्षण-भर में शीतल सलिल की तरंगें बन गईं और सती सीता उसके ऊपर शान्त सुस्थिर भाव से विराजमान दृष्टिगत हुई। किसी अज्ञात शक्ति के प्रभाव से वह अग्नि-कुण्ड मणि-मंडित सिंहासन बन गया। उस पर बैठी सीता ऐसी लगी जैसे हंस वाहन पर साक्षात् सरस्वती सुशोभित हो रही हो :

मणि-मंडित स्वर्णिम सिंहासन
कर रहा सूर्य-सा उद्भासन,
है समासीन उस पर सीता
सुख पूर्वक साधे पद्मासन,
मानो मराल पर सरस्वती
उत्पल पर कमला कलावती।

सद्ज्ञानोपरि सम्यक् श्रद्धा,
त्यों हुई सुशोभित महासती।

संक्षेप में, अग्नि-परीक्षा भी एक अभिधा प्रधान सरस प्रबन्ध काव्य है जिसे आचार्यश्री तुलसी ने लय और स्वरों में बाँध कर गेय बनाने का प्रयास किया है। यदि इस काव्य को प्रचलित गीन स्वरों में न बाँध कर विषयानुकूल प्रवाह में बहने दिया जाता तो निश्चय ही इसका काव्य सौष्ठव अधिक उत्कृष्ट होता। ग्रंथ-सम्पादक मुनिश्री महेन्द्रकुमार ने अपनी सम्पादकीय भूमिका में ग्रंथ की तुलनात्मक समीक्षा करते समय मैथिलीशरण गुप्त रचित साकेत का संकेत किया है। कुछ स्थल उद्धृत करके साम्य-वैषम्य दिखाने की भी उन्होंने चेष्टा की है, किन्तु उनका ध्यान इस तथ्य की ओर शायद नहीं गया कि साकेत के प्रणेता गार्हस्थ्य जीवन की मोहक झाँकियाँ प्रस्तुत करने में बेजोड़ हैं। सद्गृहस्थ होने के कारण उनके काव्य में गार्हस्थिक जीवन की मर्म छवियों के अनुभूत चित्र जिस रूप में उभर कर आते हैं, वैसे एक वीतराग साधु की लेखनी से कैसे सम्भव हो सकते हैं। वियोग और करुण भाव की योजना के लिए भी जिस प्रकार की अनुभूति चाहिए, वैसी एक संत के पास नहीं हो सकती। यह दूसरी बात है कि धार्मिकता—नैतिकता का जीवन चित्र उनके काव्य में आ जाये, किन्तु गृहस्थी की भावना को साकार कैसे कर सकेंगे! यही कारण है कि 'अग्नि-परीक्षा' में पवित्रता और धार्मिकता का वातावरण अधिक है, गृहस्थ जीवन का नहीं। रामायण के जिस प्रसंग का आचार्यश्री तुलसी ने चयन किया है उसके लिए उपसंहार में नैतिक और धार्मिक उपदेशों के लिए अवकाश होने पर भी प्रारम्भ और मध्य में व्यावहारिक जीवन की कड़वी-मीठी सामान्य अनुभूतियाँ ही अधिक उभर कर आनी चाहिए थीं।

'अग्नि-परीक्षा' का सबसे बड़ा गुण है, उसकी सुबोध शैली और रोचक कथा-प्रसंगों की अन्विति। कवि की वाग्धारा सरस-स्निग्ध होकर जिस रूप में प्रवाहित हुई है, वह सर्वत्र कथा के अनुकूल है। रोचकता की दृष्टि से यह काव्य व्यापक यश का भागी होगा। कहीं-कहीं गेय रागों का प्रबल आग्रह पद-योजना तथा अर्थ-तत्त्व को इतनी साधारण कोटि तक उतार लाया है, जो ग्रंथ के विषय-गांभीर्य की दृष्टि से घातक है। किन्तु प्रचारात्मक दृष्टिकोण के कारण शायद आचार्यश्री को यह माध्यम अत्युपयुक्त प्रतीत होता है।

मैंने दोनों काव्य ग्रन्थों का प्रबन्धात्मक दृष्टि से ही विश्लेषण किया है। रस, ध्वनि, अलंकार आदि के गुणदोष-विवेचन में जान-बूझकर नहीं गया हूँ। मैंने इन दोनों काव्यों में प्रबन्धात्मकता का गुण पूरी तरह पाया है और एक तटस्थ पाठक की भाँति इन्हें पढ़ कर पर्याप्त आनन्द प्राप्त किया है। इन दोनों प्रबन्ध काव्यों की एक उल्लेख्य विशेषता यह भी है कि इनका ध्येय नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना होने पर भी कवि ने प्रतिपाद्य को इस प्रकार गठित किया है कि उसमें लोक-व्यवहार-ज्ञान की अत्यधिक सामग्री एकत्र हो गई है। इन दोनों प्रबन्ध काव्यों के अनुशीलन से प्रत्येक पाठक की लोक-दृष्टि व्यापक बनेगी और उसके दैनन्दिन जीवन में होने वाली घटनाओं से इन काव्यों की घटनाओं का तादात्म्य हो सकेगा। आचार्यश्री तुलसी का जीवन धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों का साकार रूप है। उन्हीं आदर्शों को लोकभाषा में निबद्ध करना उनका ध्येय था। कथा-प्रसंग तो व्याज-मात्र है, किन्तु उनका निर्वाह जितनी सावधानी से होना चाहिए था, उतनी ही सावधानी से किया गया है। आचार्यश्री तुलसी वीतराग आचार्य होने पर भी लोक चेतना से सम्पृक्त रहते हैं और उसके उन्नयन और उत्थान के लिए किये गये उनके अनेक प्रयोगों में इन काव्य ग्रन्थों का भी अमिट योग है।

अग्नि-परीक्षा : एक अध्ययन

प्रो० मूलचन्द सेठिया
बिड़ला आर्टस् कॉलेज, पिलानी

प्रायः ढाई हजार वर्षों से रामचरित भारतीय साहित्य का प्रमुख उपजीव्य रहा है। रामायण की कथा भारत की सीमाओं का अतिक्रमण कर बृहत्तर भारत में भी लोकप्रिय रही है, परन्तु डॉ० कामिल बुल्के की यह धारणा तो निर्विवाद है कि "विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं का प्रथम महाकाव्य या सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रंथ प्रायः कोई 'रामायण' है।" राम-भक्ति का धार्मिक क्षेत्र में अवतरण भी साहित्य के माध्यम से ही हुआ है। डॉ० गोपीनाथ कविराज राम-भक्ति का विशेष विकास आठवीं शताब्दी ई० के पश्चात् मानते हैं, परन्तु प्राचीनतम उपलब्ध रामकाव्य वाल्मीकि रामायण का रचनाकाल ईसा के छह सौ से चार सौ वर्ष पूर्व के अन्तर्गत माना जाता है। वाल्मीकि के पूर्व भी स्फुट या प्रबन्ध रूप में राम-काव्य की रचना होती रही होगी, लेकिन साहित्य-शोधकों के लिए अब तक वह अप्राप्य है। यह निश्चित है कि राम के अवतार रूप की प्रतिष्ठा और राम-भक्ति के शास्त्रीय प्रतिपादन की अपेक्षा राम-चरित की काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्राचीनतर है। भारतीय लोक-मानस की सम्पूर्ण आदर्श-परिकल्पनाएं राम के चरित्र में कुछ इस परिपूर्णता के साथ मूर्तिमन्त हुई है कि 'लोकेश लीलाधाम' राम का पावन चरित्र कवियों के लिए चिरन्तन आकर्षण का केन्द्र रहा है। हो भी क्यों नहीं :

राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

—गुप्तजी

'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' के अनुसार विभिन्न कवियों को राम के व्यापक चरित्र में अपने मनोनुकूल मन्तव्य प्राप्त हो गया है। राम के नाम में ही कुछ ऐसा दुर्निवार आकर्षण था कि सम्पूर्ण नाम-रूप के परे अन्तर्ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले निर्गुणिया कबीर 'राम नाम का मरम है आना' कह कर भी अपने को 'राम की बहुरिया' घोषित करने का लोभ संवरण नहीं कर सके। वाल्मीकि और स्वयंभू, तुलसी और केशव, कम्बन और कृत्तिवास, हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त द्वारा राम के पवित्र चरित्र का पूर्ण प्रशस्त अभिव्यंजन हो चुकने पर भी उसके प्रति नये कृतिकारों का आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

राम का चरित्र एक ऐसे प्रभा-पुञ्ज की तरह है, जिसके प्रतिफलन के कारण उसके पार्श्ववर्ती ग्रह-उपग्रहों के रूप में सीता, लक्ष्मण, भरत, कौशल्या, कैकयी, हनुमान आदि के चरित्र भी अलौकिक आभा से अभिमण्डित प्रतीत होते हैं। आधुनिक कवियों में दिवंगत निरालाजी ने 'राम की शक्ति पूजा' और 'पंचवटी-प्रसंग' में राम के तपःपूत जीवन के कुछ पावन प्रसंगों को चित्रित किया है। श्री बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'साकेत सन्त' में भरत और माण्डवी, श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने कैकयी और दिवंगत पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने ऊर्मिला के चरित्र को अपने काव्य का केन्द्र-बिन्दु बनाया है। परन्तु राम-कथा के चाहे किसी भी पार्श्व को क्यों न स्पर्श किया जाये, राम की वर्चस्विता तो उसमें बनी ही रहती है। 'साकेत' में कविवर मैथिलीशरण गुप्त ऊर्मिला को नायिका बना कर भी लक्ष्मण को अपने महाकाव्य का नायक नहीं बना सके। वस्तुतः, राम भारतीय जीवनादर्श के एक पावन प्रतीक बन गये हैं और उनके सर्वांगपूर्ण जीवन में प्रत्येक कवि को अपने अभिप्रेत की प्राप्ति हो जाती है। राम-काव्य की बृहत् शृङ्खला में नवीनतम कड़ी है—आचार्यश्री

तुलसी की अग्नि-परीक्षा, जो सन् १९६१ में प्रकाशित हुई है। राम-कथा के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने 'प्रशस्ति' में स्पष्ट कहा है :

रामायण के हैं विविध रूप
अनुरूप कथानक ग्रहण किया,
निश्छल मन से कलना द्वारा
समुचित भावों को वहन किया,
वास्तव में भारत की संस्कृति
है रामायण में बोल रही,
अपने युग के संवादों से
वह ज्ञान-ग्रंथियाँ खोल रही।

आचार्यश्री तुलसी तेरापंथ के नवमाचार्य, अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक एवं जैन-दर्शन के एक महान् व्याख्याता के रूप में राष्ट्र-व्यापी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, परन्तु उनके कवित्व का परिचय आषाढ़भूति के प्रकाशन के साथ ही प्राप्त होता है। जन्मना राजस्थानी होने के कारण राजस्थानी भाषा में आचार्यश्री तुलसी द्वारा विरचित विपुल काव्य-सामग्री विद्यमान है, जिसमें पूर्वाचार्य श्रीकालूगणी के जीवन से सम्बद्ध चरित-काव्य 'श्री कालू यशोविलास' प्रमुख रूप से उल्लेख्य है। विगत वर्षों में उत्तरी एवं मध्य भारत में विचरण करने के पश्चात् हिन्दी काव्य-सृजन की ओर आपके आकर्षण का सूत्र-पात होता है। 'अग्नि-परीक्षा' में रामायण के उत्तरार्द्ध की कथा है, जो राम के लंका-प्रस्थान से प्रारम्भ होकर अग्नि-परीक्षिता महासती सीता के जयनाद के साथ समाप्त होती है। स्पष्टतः आचार्यश्री तुलसी का आलोच्य काव्य राम-काव्य की जैन-परम्परा के अन्तर्गत ही परिगणित किया जा सकता है। आचार्यश्री तुलसी के राम गोस्वामी तुलसीदास के राम की भाँति "व्यापक, अकल, अनीह, अज निर्गुन नाम न रूप। भगत हेतु नाना विध करत चरित्र अनूप।" वाले मर्यादावतार नहीं है। वे आठवें बलदेव हैं और उनकी गणना लक्ष्मण एवं रावण के साथ त्रिषष्टि महापुरुषों में की जाती है। जैन मता-नुसार राम ने अपने जीवन के संध्या-काल में साधु-जीवन अंगीकार किया था और कर्मक्षय कर सिद्ध पुरुष बन गए थे। जैनों के राम मोक्ष-प्रदाता नहीं है, उन्होंने स्वयं अपनी जीवन-मुक्ति के लिए साधना की थी। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि आज राम एक जीवन-मुक्त महापुरुष सिद्ध हैं। 'अग्नि-परीक्षा' के दशरथ भी राम-वनवास के बाद जैन-दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। भरत राम से कहते है 'ली पूज्य पिताजी ने दीक्षा।' राम के अयोध्या प्रत्यागमन के बाद भरत भी जैन साधुत्व स्वीकार करने में विलम्ब नहीं करते हैं :

भरत त्वरित मुनि बन चले, कर जागृत सुविवेक।
वासुदेव-बलदेव का हुआ राज्य-अभिषेक।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'अग्नि-परीक्षा' का प्रणयन वाल्मीकीय रामायण की परम्परा में न होकर, 'पउम चरिय' के प्रणेता विमलसूरि की जैन रामायण-परम्परा में हुआ है। जैनों में भी रामायण की दो परम्पराएं मिलती हैं, परन्तु गुणभद्र और पुष्पदन्त के 'उत्तर पुराण' में, जो दिगम्बर सम्प्रदाय में ही अधिक प्रचलित रहे हैं; सीता के परित्याग और अग्नि-परीक्षा की घटना का कहीं उल्लेख तक नहीं किया गया है। अतः आचार्यश्री तुलसी की 'अग्नि-परीक्षा' का सम्बन्ध विमलसूरि के 'पउम चरिय' की परम्परा से ही स्थापित किया जा सकता है। आलोच्य काव्य के कथात्मक विकास पर भी 'पउम चरिय' का सुस्पष्ट प्रभाव है। राम के द्वारा सीता का परित्याग, वज्रजंघ द्वारा सीता का संरक्षण, नारद द्वारा लवणांकुश को माता के अपमान की कथा सुनाया जाना, राम-लक्ष्मण के साथ लवणांकुश का युद्ध और अन्ततः सीता की अग्नि-परीक्षा आदि घटनाओं का विधान 'पउम चरिय' की परम्पानुसार ही किया गया है।

'अग्नि-परीक्षा' में अग्नि स्नाता सीता का अत्युज्ज्वल चरित्र ही प्रमुख रूप से उपस्थित किया गया है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में "वैदिक साहित्य में 'सीता' शब्द का प्रयोग अधिकतर हल से जोतने पर बनी हुई रेखा के लिए हुआ है। किन्तु एक सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी भी है। एक अन्य सीता सूर्य की पुत्री है। विदेहतनया सीता वैदिक

साहित्य में नहीं है।" वैदिक साहित्य में सीता का उल्लेख केवल 'रामोत्तर तापनीयोपनिषद्' में मिलता है, जो साहित्य-शोधकों द्वारा काल-क्रम की दृष्टि से अर्वाचीन ठहराया गया है। डॉ० कामिल बुल्के के मतानुसार "वैदिक सीता का व्यक्तित्व ऐतिहासिक न होकर लांगल पद्धति के मानवीकरण का परिणाम है।" प्रचलित वाल्मीकि रामायण में सीता को भूमिजा भी कहा गया है। "एक दिन राजा जनक यज्ञ-भूमि को तैयार करने के लिए हल चला रहे थे कि एक छोटी-सी कन्या मिट्टी से निकली। उन्होंने उसे पुत्री-स्वरूप ग्रहण किया तथा उसका नाम सीता रखा। सम्भव है कि भूमिजा सीता की अलौकिक जन्म-कथा सीता नामक कृषि की अधिष्ठात्री देवी के प्रभाव से उत्पन्न हुई हो।" गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' के अनुसार सीता रावण की पुत्री थी और मन्दोदरी के गर्भ से उसका जन्म हुआ था। इसी प्रकार पद्मजा सीता, रक्तजा सीता और अग्निजा सीता की कल्पनाएं भी अनेक पौराणिक कथा-काव्यों में मिलती हैं।

विष्णु के अवतार राम की पत्नी सीता को भी विष्णु की पत्नी लक्ष्मी का अवतार माना गया है। भक्तप्रवर तुलसीदास ने सीता को प्रभु की शक्ति-योग माया के रूप में प्रस्तुत किया है, जो केवल विष्णु की पत्नी का अवतार मात्र नहीं, प्रत्युत स्वयं सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करने में समर्थ सर्वशक्तिमती है :

जासु अंश उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।

'अग्नि-परीक्षा' में आचार्यश्री तुलसी ने सीता को महामानव राम की महीयसी महिषी के रूप में चित्रित किया है और यह चरित्र आँसुओं से धुल कर और आग मे जल कर तप्त कुन्दन की तरह सर्वथा निष्कलुष हो गया है। पत्नी के रूप में राम की अर्द्धाङ्गिनी बन कर भी वह अभागिनी ही रही :

जबसे इस घर में आई इसने दुःख ही दुःख देखा,
पता नहीं बेचारी के कैसी कर्मों की रेखा ?

पृथ्वी की पुत्री को भी अगर अपनी सर्वसहा माता की भाँति सबका पदाघात सहन करना पड़ा हो तो इसमे आश्चर्य ही क्या ? 'अग्नि-परीक्षा' में आचार्यश्री तुलसी ने उसी अश्रुमती सीता को नायिका के पद पर प्रतिष्ठित किया है जिसकी पलकों में आँसुओं की आर्द्रता के साथ सतीत्व का ज्वलन्त तेज भी है। उसमें नारीत्व के आत्म-गौरव की भावना सदैव प्रगाढ़ रूप में परिलक्षित होती है। वह राम के माध्यम से पुरुष जाति के अत्याचार को सहर्ष सहन करती हुई भी अपने अन्तर में विद्रोहिणी है। वाल्मीकि और तुलसी की सीता उसके सामने नतनयना और मूकवचना निरीहा नारी प्रतीत होती है। युग के प्रभाव से आधुनिक युग की प्रबद्ध नारी-चेतना से आचार्यश्री तुलसी भी अप्रभावित नहीं रह सके हैं। 'साकेत' की सीता और ऊर्मिला की आत्यन्तिक कोमलता और कातरता का प्रायश्चित्त श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'विष्णुप्रिया' में किया है। 'अग्नि-परीक्षा' की सीता राम से उपालम्भ के रूप में जो कुछ कहती है, उसमें युग-युग से पदमर्दित और प्रवंचित नारी जाति की वह मर्म-वेदना भी मिली हुई है, जो विद्रोह की सीमा-रेखा को स्पर्श करने लगी है :

हाय राम ! क्या नारी का कोई भी मूल्य नहीं है ?
क्या उसका औदार्य, शौर्य पुरुषों के तुल्य नहीं है ?

आचार्यश्री तुलसी एक धर्म-सम्प्रदाय—तेरापंथ के आचार्य हैं। बचपन से ही परम्परा और मर्यादा के पालन करने और कराने का उनका चिराचरित अभ्यास रहा है। इसलिए उनसे यह आशा करना तो दुराशा ही होगी कि वे किसी भाव-प्रतिक्रिया के आवेश में आकर नारी के विद्रोह का शंखनाद करने लगेंगे, परन्तु 'अग्नि-परीक्षा' की कुछ ज्वलन्त पंक्तियाँ नारी के निपीड़न और पुरुषों की स्वेच्छाचारिता और स्वार्थपरायणता को इतनी प्रखरता के साथ उपस्थित करती हैं कि समाज का यह मूलभूत वैषम्य—जो और कुछ भी हो, सत्य और न्याय के आधार पर प्रतिष्ठित नहीं है—अपनी नग्न वास्तविकता के साथ हमारे सामने आ जाता है।

नारी का अस्तित्व रहा नर के हाथों में,
नारी का व्यक्तित्व रहा नर के हाथों में,
... ...

है पुरुषों के लिए खुली यह वसुधा सारी,
पर नारी के लिए सदन की चार दीवारी।
... ...

क्या पैरों की जूती नारी ?
जो सहे आपदाएं सारी।

सिंहनाद-वन में (जिसका नाम ही रोंगटे खड़े करने वाला है) घोर निराशा के क्षणों में भी सीता एक सन्नारी के रूप में अपने आत्म-बल को जागृत करती है और इस प्राणान्तक संकट के हलाहल को अमृत बना कर पी जाती है। तभी तो लक्ष्मण कहते हैं :

सहज सुकोमल सरल, गरल को अमृत करती सीता
विषम परिस्थितियों में जो कभी नहीं भय भीता

सीता ने अपने अखण्ड सतीत्व के बदले क्या नहीं पाया—निर्वासन, निर्यातन, निन्दा, लांछना और अन्ततः पुरुष का विश्वासघात ! परन्तु विधि की ये विडम्बनाएं उसके प्राणों के सत्व का शोषण नहीं कर सकीं। सीता ने जहर के घूंट पर घूंट पीकर ही नारी के लिए जीवन का यह तत्त्व-दर्शन प्राप्त किया था :

अपने बल पर नारी तुझे जागना होगा,
कृत्रिम आवरणों को तुझे त्यागना होगा।
खो सन्तुलन भीत हो नहीं भागना होगा,
सत्य क्रान्ति का अभिनव अस्त्र दागना होगा।

'अग्नि-परीक्षा' में सीता एक परित्यक्ता पत्नी के रूप में ही नहीं, एक महिमामयी माता के रूप में भी हमारे सम्मुख उपस्थित होती है। उसका पत्नीत्व चाहे आहत हो, लेकिन उसका मातृत्व लवणांकुश जैसे पुत्र-रत्न पाकर सफल-सार्थक है। वे जब माता के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए राम और लक्ष्मण जैसे विश्व-विश्रुत वीरों से लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं तो उन्हें इन नवल किशोरों से लड़ने में एक प्रकार का सहज संकोच हो आता है। इस अवसर पर सीता के सपूतों की ओजस्विनी वाणी गूंज उठती है :

करुणा किसी दीन पर करना,
झोली किसी हीन की भरना,
क्या पात्र हम नहीं तुम्हारे, क्यों फैलायें हाथ ?

लवणांकुश जैसे पुत्रों को पाकर सीता कुछ क्षणों के लिए पति की प्रवंचना के अन्तर्दाह को भी भूल गई होगी। माता के रूप में ही नारी पुरुष की प्रवंचना और प्रताड़ना के ऊपर उठ पाती है। सम्भवतः नारी अपने पुत्र के रूप में ही पुरुष को अपने सर्वान्तःकरण से क्षमा कर जाती है। माता के अपमान का शोध सत्पुत्रों के द्वारा ही होना है :

सत्पुत्र कभी यों माता का
अपमान नहीं सह सकते हैं,
पाते ही सचमुच शुभ अवसर
वे मौन नहीं रह सकते हैं।

आचार्यश्री तुलसी ने कौशल्या और सीता के रूप में मातृ-हृदय की नवनीत कोमलता और मर्म-मधुरता को सजीव रूप में उपस्थित कर दिया है। लक्ष्मण के वन से लौट आने पर माता सुमित्रा पूछती है, "तुम्हारे घाव कहां लगा था ? जरा मुझे वह जगह तो दिखलाओ।" कौतुक प्रिय नारदजी भी माता की महिमा गाते हुए सुनाई पड़ते हैं :

वात्सल्य भरा मां के मन में,
माधुर्य भरा मां के तन में,
उस स्नेह-सुधा की सरिता का रस तुम्हें पिलाने आया हूं।

सुनती जब सुत का किञ्चित् दुःख,
पीला पड़ जाता उस का मुख,
उसकी उद्वेलित आत्मा को मैं तुम्हें दिखाने आया हूँ।

'अग्नि-परीक्षा' के अनेक पृष्ठ परित्यक्ता सीता के आँसुओं से गीले है। सीता के विरह-वर्णन में केवल पति-वियोग जन्य वेदना की ही अभिव्यंजना नहीं है, अपने सतीत्व पर किए गए सन्देह की चुभन, नारीत्व के अपमान की कसक और पति के द्वारा दी गई प्रवंचना की प्राणान्तक पीड़ा का भी समावेश है। गर्भवती अवस्था मे सिंहनाद-वन मे नितान्त निराश्रय छोड़े जाने पर उसके सम्मुख सबसे पहले तो कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? की समस्या आ उपस्थित हुई होगी :

अम्बर से मैं गिरी हाय ! अब नहीं झेलती धरती,
टुकड़े-टुकड़े हृदय हो रहा, रो-रो आहें भरती।

सीता के करुण क्रन्दन में जीवन के कुछ ऐसे करुण और कठोर सत्य प्रकट हुए हैं, जो मर्यादा पुरुषोत्तम के इस कर्म को अमर्यादित सिद्ध करते हुए प्रतीत होते हैं :

यदि कुछ ममत्व मन में होता
करते न कभी विश्वासघात,
क्यों हाथ पकड़ कर लाए थे,
जो निभा न सकते नाथ ! साथ।

सीता के वेदनामय उद्‌गारों में एक प्रकार की विदग्धता है, जो केवल हमे भावोद्वेलित ही नहीं करती, विचारोत्तेजित भी करती है। राम की संकटापन्न एवं द्विधाग्रस्त मनःस्थिति को भी कवि ने लक्ष्य किया है। बड़े गम्भीर अन्तर्द्वन्द्व और विचार-मन्थन के पश्चात् (यद्यपि 'अग्नि-परीक्षा' में उसका साङ्केतिक वर्णन ही हुआ है) राम सीता का परित्याग करने के लिए प्रस्तुत होते हैं।

किन्तु राघव का हृदय आन्दोलनों से था भरा,
घूमता आकाश ऊपर, घूमती नीचे धरा।

सीता अगर सिंहनाद-वन को अपने कुहरी के से करुण क्रन्दन से विह्वल कर रही थी, तो राम के लिए भी अयोध्या का सुख-शयनागार कण्टक-वन बन गया था। तुलसी के राम अपहृता सीता का पता खग, मृग और मधुकर-श्रेणी से पूछ सकते थे, परन्तु अपनी ही आज्ञा से सीता को निष्कासित करने वाले राम उसका पता किससे पूछते ? राम सीता को अयोध्या के राजमहलों से निकाल कर भी उसे अपने हृदय मे नहीं निकाल सके। सीता के वियोग में राम को :

लगते फीके सरस स्वादु पकवान भी,
कुसुम सुकोमल शय्या तीखे तीर-सी,
नहीं सुहाते सुखकर मृदु परिधान भी,
मलयानिल भी दुःखद प्रलय-समीर-सी।

अन्ततः राम और सीता का मिलन होता है—उनके अंगजात लवणांकुश के प्रबल पराक्रम से ! सीता माता के ये पुत्र अपने बाहु-बल के दीप्त प्रकाश में राम के संशयाच्छन्न नेत्रों को निमीलित करते हैं। राम और लक्ष्मण की सेना के रक्त-प्रवाह द्वारा वे अपनी माता पर अकारण लगाई गई कलंक-कालिमा को धो डालते हैं। नारद के मुख से अपनी माता के अपमान की कथा के श्रवण मात्र से उनका खून खौलने लगता है। है कहाँ अयोध्या ? राम कहाँ ? माता के द्वारा बार-बार समझाए जाने पर भी उनके आक्रोश का उत्ताल वेग शान्त नहीं होता। अपनी माता के अपमान का प्रतिकार करने के लिए वे अयोध्या पर आक्रमण कर ही देते हैं। प्रारम्भ में राम और लक्ष्मण इस युद्ध को बाल-लीला समझ कर गम्भीरता से नहीं लेते। परन्तु लवणांकुश की भयंकर मार-काट को देख कर उनको भी लड़ने के लिए प्रस्तुत होना पड़ता है। युद्ध-वर्णन में भी आचार्यश्री तुलसी ने अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रशस्त परिचय दिया है। रणोद्यत राम का रौद्र रूप द्रष्टव्य है :

अरुण नेत्र निष्करुण हृदय, त्यों निष्प्रकम्प निःस्नेह,
थर-थर अधर दशन से डसते, शस्त्र-सुसज्जित देह,
सोच रहे जन अरे ! हो गया है किसका विधु वाम !
भृकुटि चढ़ी है, बढ़ी व्यग्रता, फड़क रहे भुज-दण्ड,
कड़क रहे बिजली ज्यों रिपु को कर देंगे शत-खण्ड,
है प्रचण्ड कोदण्ड हाथ में मूर्त रूप ज्यों श्याम।

परन्तु रोषारुण होने से ही युद्ध नहीं होता। राम-लक्ष्मण भले ही लवणांकुश को नहीं पहचानते हों, पर रक्त तो रक्त को पहचानता था। उनके अस्त्र ही जैसे आज उनको छल रहे थे, वे फेंके किधर ही जाते थे और जाकर लगते किधर ही थे। रथ जर्जर हो गए, अश्व आहत हो गए, सेना शिथिल हो गई। नारदजी फिर रहस्योद्घाटन करने पहुँच जाते हैं। लवणांकुश का परिचय पाकर राम-लक्ष्मण अस्त्रों को छोड़ कर और रथ से उतर कर उनसे मिलने के लिए दौड़ पड़ते हैं :

पुत्र पिता से, पिता पुत्र से, परम मुदित मन मिलते हैं।
शशि को देख सिन्धु, रवि-दर्शन से पंकज ज्यों खिलते हैं।
विनय और वात्सल्य बरसता है भीगी पलकों के द्वारा।
स्नेह-सुधा से सिञ्चित कण-कण आज अयोध्या का सारा।

युद्ध के आँगन में जहाँ पहले तलवारों से तलवारें मिल रही थीं, वहाँ बाहु से बाहु और वक्ष से वक्ष मिलते हैं। आचार्यश्री तुलसी ने इस आकस्मिक भाव-परिवर्तन का बड़ा हृदयग्राही वर्णन किया है :

पल भर में ही वीर रौद्र रस बदल गया हर्षोत्सव में,
शीघ्र उग्र प्रतिशोध-भावना परिवर्तित प्रेमोद्भव में।
क्षण भर पहले जो लड़ते थे वे आपस में गले मिले,
पलट गया पासा ही सारा, फूल और के और खिले।

युद्ध-प्रकरण के पश्चात् सीता की अग्नि-परीक्षा का प्रसंग उपस्थित होता है। कपिपति सुग्रीव पुण्डरीकपुर में सीता की सेवा में उपस्थित होते हैं और उनका अभिनन्दन करते हुए कहते हैं :

कुलकमले ! कमनीय कले ! अमले ! अचले ! सन्नारी,
सहज सुव्रते ! सौम्य सुशीले ! अननुमेय अविकारी।

सुग्रीव के द्वारा राम की ओर से आमन्त्रण की बात सुनकर सीता का दबा हुआ विक्षोभ फूट पड़ता है। सीता के भावोद्गारों में नारी की वेदना ही नहीं, उसका विद्रोह भी मुखरित हो उठा है :

कपिपति ! मैं भूली नहीं वह भीषण कान्तार,
नहीं और अब चाहिए स्वामी का सत्कार।

सीता कहती है—"राम की धरोहर लवणांकुश—मैं उन्हें सौंप चुकी हूँ। राम इस कुलटा को अयोध्या जैसी पुण्य नगरी में बुलाकर उस नगरी को कलंकित क्यों करना चाहते हैं ? हाँ, अगर वे मेरी परीक्षा लेकर मेरा कलंक उतारना चाहें, तो मैं सहर्ष अयोध्या जाने के लिए प्रस्तुत हूं।" राम सीता के दृढ़ सतीत्व के प्रति अपने मन में अप्रतिहत आस्था होते हुए भी जड़ जनता को शिक्षा देने के लिए सीता की अग्नि-परीक्षा करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। महेन्द्रोद्यान के निभृत क्षणों में जब राम सीता के सामने अपनी सफाई का बयान देने लगते हैं तो उन्हें सीता दो टूक जवाब देती है :

जीवन भर में साथ रही,
फिर भी पाये पहिचान नहीं,
कहलाते हो अन्तर्यामी,
किस भ्रम में भूले हो स्वामी!

"सीता अपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिए अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करती है, इस पर अग्नि-कुण्ड तालाब में बदल जाता है और उसका जल चारों ओर बढ़ने लगता है। जब पानी लोगों के कानों तक पहुँचता है, वे सीता से प्रार्थना करने लगते हैं और पानी कम हो जाता है।" इन चरम क्षणों में सती सीता के जय-जयकार के साथ आचार्यश्री तुलसी ने अपने काव्य का चरम समापन किया है। एक भव्य, प्रशस्त और उदात्त वातावरण में काव्य की परिसमाप्ति होती है। सीता हेम की तरह शुद्ध होने पर भी इस अग्नि-परीक्षा में से और भी उज्ज्वलतर होकर निकलती है :

बिना हुताशन-स्नान किये होता सोने का तोल नहीं,
नहीं शाण पर चढ़ता तब तक हीरे का कुछ मोल नहीं।

प्रत्येक प्रबन्धकार को अपने आधारभूत कथानक में से प्रबन्धौचित्य के अनुरूप ग्रहण और त्याग करने का अधिकार होता है। आचार्यप्रवर ने अधिकांशतः जैन-परम्परा में प्रचलित कथानक को ही स्वीकार किया है, परन्तु कतिपय प्रसंगों में नवोद्भावना का चमत्कार भी देखने को मिलता है। जब राम अयोध्या में लौट कर आते हैं तो भरत का यह उपालम्भ कितनी अभिन्न आत्मीयता से भरा हुआ प्रतीत होता है :

हरण हुआ भाभी का फिर भी मुझे स्मरण तक नहीं किया,
और कुशल सन्देश हमें लक्ष्मणजी का भी नहीं दिया,
रण में सबको बुला लिया, पर मेरी याद नहीं आई
उसी पिता का पुत्र कहो, क्या था न आपका ही भाई ?

राम का उत्तर केवल भरत का निरुत्तर ही नहीं करता, उसे गुरुतर गौरव-गरिमा से भूषित भी कर देता है :

कर प्रजाजनों का संरक्षण
तू ने भारी गौरव पाया,
मैं एक सिया को पूर्णतया
वन में न सुरक्षित रख पाया।

इसी प्रकार-सीता त्याग के प्रसंग में राम केवल सुनी-सुनाई बातों पर ही निर्भर न रह कर, स्वयं छद्मवेश बना कर अयोध्या के जन-समाज में घूमते हैं। सीता-त्याग के मूल में स्थित लोकापवाद के आतंक को घटनात्मक आधार देने के लिए विभिन्न कृतिकारों ने धोबी के वृत्तान्त, रावण के चित्र, भृगु-शाप, शुक-शाप आदि की कल्पनाएं कर डाली है। धोबी के वृत्तान्त का प्राचीनतम उल्लेख सोमदेवकृत 'कथा सरित्सागर' में मिलता है और सम्भवतः मूल ग्रन्थ गुणाढ्य की 'बड्ढ कहा' में भी रहा होगा। सीता के पास रावण का चित्र मिलने की घटना का वर्णन सर्वप्रथम हेमचन्द्राचार्य के 'जैन रामायण' में मिलता है। आचार्यश्री तुलसी ने प्रसंगतः रावण के चित्र और धोबी के वृत्तान्त का भी उल्लेख किया है। वास्तविकता तो यह है कि सीता-त्याग का मूल कारण लोकापवाद का आतंक ही रहा है, जिसे प्रसिद्ध राजनीतिशास्त्री जॉन स्टुअर्ट मिल ने जन-मत का अत्याचार (Tyranny of the Public opinion) कहा है। आचार्यश्री तुलसी ने जड़जनता की मूढ़ मतवादिता का मर्मग्राही चित्रण इन पंक्तियों में किया है :

है प्रवाह गडरी जनता का,
अस्थिर ज्यों शिखरस्थ पताका।
क्षण में इधर-उधर हो जाती,
नहीं सही चिन्तन कर पाती।

'अग्नि-परीक्षा' के कला-पक्ष का मूल्यांकन करते हुए हमें यह स्मरण रखना होगा कि एक धर्माचार्य होने के नाते आचार्यश्री तुलसी कला-पक्ष को ऐकान्तिक महत्त्व नहीं दे सकते थे। इसमें जो कलात्मक उत्कर्ष है, वह तो सहज सिद्ध है। आचार्यप्रवर की दृष्टि से काव्य का आनन्द चाहे गौण न हो, परन्तु उसका नैतिक मूल्य सर्वोपरि है। परन्तु काव्य धार्मिक होने पर भी काव्य ही रहता है, उसमें नैतिक प्रबोधन भी होता है तो कलात्मकता के माध्यम से ही होता है। 'अग्नि-परीक्षा' की सफलता इसीमें है कि इसमें एक धर्म-भावना से अनुप्राणित कथा का निर्वाह भी विशुद्ध मानवीय भाव-भूमिका

पर हुआ है। धर्म-भावना काव्य के नीर में ही क्षीर की तरह सम्मिश्रित हो गई है। वह ऊपर से आरोपित अनुभव नहीं होती। हाँ, अलंकार-विधान के अन्तर्गत जैन धर्म के सिद्धान्तों एवं दार्शनिक तथ्यों का स्थान-स्थान पर उल्लेख हुआ है। महाकवि तुलसीदास ने भी नैतिक एवं दार्शनिक तथ्यों का निरूपण इसी प्रकार उपमानों के रूप में यथाप्रसङ्ग किया है। यथा—"बूंद अघात सहे गिरि कैसे, खल के वचन सन्त सह जैसे।" 'अग्नि-परीक्षा' में आचार्यश्री तुलसी ने परम्परागत एवं रूढ़ उपमानों का परित्याग कर अपने अलंकार-विधान को कहीं-कहीं जैन-दर्शन की तात्त्विक मान्यताओं पर आधारित किया है। इससे जहाँ अलंकार-विधान में एक प्रकार की नवीनता और विलक्षणता का समावेश हुआ है, वहाँ एकाध स्थान पर दुर्बोधता भी आ गई है। कुछ पंक्तियाँ तो वास्तव में बड़ी ही चामत्कारिक एवं अनुरञ्जनकारी बन पड़ी हैं। लक्ष्मण राम से कहते हैं :

अभवी मुक्त बने, अलोक में चाहे पुद्‌गल दौड़े।
तो भी कभी न जँचता भाभी अटल पतिव्रत तोड़े।

... ...

शोभित माँ की गोद में दोनों पुण्य-निधान।
होते ज्यों चारित्र्य में सम्यग् दर्शन-ज्ञान।

कहीं-कहीं गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण उपमान दुर्बोध हो गए हैं, परन्तु जैन-दर्शन की सामान्य मान्यताओं से परिचित पाठकों के लिए ये रसपूर्ण ही सिद्ध होंगे। यथा :

स्वल्प-सी भी वृष्टि होती, सिद्ध अत्युपयोगिनी,
सजग मुनि की क्रिया, संवर-निर्जरा संयोगिनी।

भारतीय साहित्य में तो वैद्यक, गणित और ज्योतिष-शास्त्र से भी उपमानों का चयन करने की प्रवृत्ति रही है, अतः आचार्यश्री तुलसी का यह अलंकार-विधान कुछ नवीनता और विलक्षणता लिए हुए होने पर भी अप्रतीत्व दोष का द्योतक नहीं है।

लोक-जीवन के निकट सम्पर्क में रहने के कारण आचार्यश्री तुलसी ने अग्नि-परीक्षा में मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है। मुहावरेदानी की दृष्टि से 'अग्नि-परीक्षा' खड़ी बोली के किसी भी काव्य से टक्कर ले सकती है। 'कामायनी' में तो जैसे मुहावरों का अकाल ही है। कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ सहज ही हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं :

१. पूर्ण भर कर घड़ा जैसे फूटता है पाप का।
२. चढ़े और पैदल दोनों की लोक मजाक उड़ाते।
३. एक गुफा में दो-दो मृगपति, एक म्यान में दो तलवार।
४. भर बूंद-बूंद से घड़ा, बड़ा वह देश-राष्ट्र निर्माता है।

कहीं-कहीं भाषा का सहज सरल प्रवाह ही बड़ा प्रभावकारी बन गया है। यथा :

सेना है या लाए हो, भाड़े के पकड़-पकड़ रँगरूट,
केवल भगना ही सीखे, ये मानो रेगिस्तानी ऊँट।

प्रकृति-वर्णन को 'अग्नि-परीक्षा' में प्रमुखता तो प्राप्त नहीं हो सकी है, परन्तु जहाँ कहीं आचार्यश्री तुलसी ने प्रकृति की ओर दृष्टिपात किया है, उन्होंने कुछ बिम्बग्राही चित्र उपस्थित करने में सफलता प्राप्त की है। कुछ स्थल तो निराला की 'राम की शक्ति पूजा' के 'उगलता गगन घन अन्धकार' का स्मरण कराते हैं। प्रकृति वर्णन प्रायः सर्वत्र कथा-प्रवाह को पूर्व-पीठिका देने के लिए ही उपयुक्त हुआ है। परन्तु मजी हुई कलम से दो-चार रेखाओं में ही जो चित्र अंकित किए गए हैं, वे हमारे सम्मुख पूर्ण बिम्ब उपस्थित करने में समर्थ हैं :

अभ्र, अवनी, सर-सरोरुह, श्रान्त-शान्त नितान्त थे,
सरित्, सागर-शब्द रह-रह हो रहे उद्‌भ्रान्त थे।

विहग, पन्नग, द्विप-चतुष्पद, सर्वतः निस्तब्ध थे,
हुई परिणत गति स्थिति में, शब्द भी निःशब्द थे।

अन्तिम पंक्ति में शब्द भी निःशब्द थे कह कर नीरवता की पराकाष्ठा को सूचित किया गया है। प्रकृति-वर्णन अधिकतर पात्रगत भावनाओं के अनुरूप ही हुआ है। सिंहनाद-वन की दुर्गमता, निर्जनता और भयंकरता का प्रस्तुत वर्णन वातावरण के भयकारी प्रभाव को और भी गहरा कर देता है :

वन-विडाल, शृगाल शूकर हैं परस्पर लड़ रहे,
द्विरद मद झरते कहीं दन्तूशलों से भिड़ रहे।
प्रबल पुच्छाछोट करते कहीं मृगपति घूमते,
भेड़िये, भाल, भयंकर, घोर श्वापद झूमते।

'पुच्छाछोट' आदि व्यंजक शब्दों का चयन भी ऐसा किया गया है कि जो एक भयकारी वातावरण का बोलता हुआ चित्र उपस्थित कर देता है। अग्नि-परीक्षा के प्रसंग में अग्नि-कुण्ड के वर्णन मे भी लेखनी मे तूलिका और शब्दों से रेखाओं का काम लिया गया है :

अम्बर से अम्बर मणि की, नव किरणें भू पर उतर रहीं,
अग्नि-कुण्ड की ज्वालायें, अम्बर छूने को उभर रहीं।

आलोच्य काव्य में सर्ग बद्धता तो अवश्य है, परन्तु परम्परागत शास्त्रीय विधान के अनुसार एक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग नहीं किया गया है। छन्दोभेद सर्गान्त में न होकर स्थान-स्थान पर स्वच्छन्दतापूर्वक होता गया है। हाँ, छन्दोभेद के पीछे भाव-भेद की प्रकृत प्रेरणा अवश्य विद्यमान है। सम्भवतः 'अग्नि-परीक्षा' के सुधी सम्पादक ने इसमे गीतों का बाहुल्य देखकर ही इसे प्रगीत काव्य कहा है। अन्यथा, यह प्रगीत काव्य न होकर एक कथा-काव्य ही है, जिसमें यथास्थान भाव-प्रकाशन के लिए लोक-लयाश्रित गीतों का आश्रय लिया गया है। अन्यथा, वास्तविकता यह है कि 'अग्नि-परीक्षा' को उस रूप में प्रगीत-काव्य (Lyrical Poetry) नहीं कहा जा सकता, जिस अर्थ में कालिदास के मेघदूत, प्रसाद के आँसू और साकेत के नवम सर्ग को कहा जा सकता है। इसमें भावना की प्रगीतात्मक तरलता, सूक्ष्मता एवं कोमलता के स्थान पर घटनाश्रित कथात्मकता का प्राधान्य है। कथानुबन्ध की दृष्टि से भी यह प्रगीतात्मक (Lyrical) की अपेक्षा महाकाव्यात्मक (Epic) ही अधिक है।

'अग्नि-परीक्षा' हिन्दी की राम-काव्य-परम्परा में एक अद्यतन कृति के रूप में साहित्य-समीक्षकों का ध्यान अवश्य ही आकृष्ट करेगी। संभवतः आधुनिक भारतीय भाषाओं में जैन परम्परानुवर्ती राम-काव्य का यह प्रथम प्रयोग है। परन्तु यह सर्वथा परम्परानुवर्तिनी कृति नहीं है, इसमें आधुनिक युग की प्रबुद्ध नारी-चेतना का साक्षात्कार होता है और जीवन के बदलते हुए मूल्यों का इस पर स्पष्ट प्रभाव है। एक धर्माचार्य की कृति होने के नाते इसके साहित्यिक एवं कलात्मक मूल्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता। हिन्दी-संसार अब आचार्यश्री तुलसी को एक प्रबन्धकार के रूप में पहचानने लगा है और उनकी आगामी कृतियों की भी उत्साहपूर्वक प्रतीक्षा की जाएगी। हिन्दी के अद्यतन काव्य-रूपों एवं काव्य-प्रवृत्तियों के निकट सम्पर्क में आने के लिए यथेष्ट समय का अभाव रहते हुए भी आचार्यप्रवर ने साहित्य-साधना को अपने जीवन में एक प्रमुख स्थान प्रदान किया है। उनके तेरापंथ सम्प्रदाय के साधुओं एवं साध्वियों में काव्याराधना की प्रवृत्ति बहुत दिनों से चल रही है।

'अग्नि-परीक्षा' में सती सीता के अमल धवल चरित्र को उसकी अग्नि-स्नात पवित्रता में प्रस्तुत किया गया है। उसमें नारीत्व की चिरन्तन महिमा और उसके ज्वलन्त तेज का आख्यान है। इस पाषाणमय संसार में निरन्तर प्रहार सहन करते हुए भी नारी ने अपने हृदय की नवनीत कोमलता को अक्षुण्ण बनाये रखा है।

पुरुष-हृदय पाषाण भले ही हो सकता है,
नारी-हृदय न कोमलता को खो सकता है।

पिघल-पिघल उनके अन्तर को धो सकता है,
रो सकता है, किन्तु नहीं वह सो सकता है।

परन्तु नारी के लिए उसकी ममता और मधुरिमा, उसकी सेवा और समर्पण युग-युग में अभिशाप ही सिद्ध हुए हैं। स्वयं शक्ति की प्रतीक होते हुए भी जैसे वह अपने आत्म-बल को भूली हुई है। इस जागृत आत्म-चेतना के अभाव में ही उसका बलिदान आज बकरी का बलिदान बनता जा रहा है। स्वयं बलि होने में नारी का गौरव रहा होगा, परन्तु पुरुष के द्वारा बलि किए जाने में तो उसके भाग्य की विडम्बना ही है। 'अग्नि-परीक्षा' की सीता अपने प्रकृत धर्म का पालन करते हुए अपने आपको मिटाने में कहीं पीछे नहीं हटती है, परन्तु वह बकरी की तरह मिमियाती नहीं है, उसकी वाणी में वज्र का गर्जन है और अग्नि-कुण्ड की लपलपाती हुई लपटों के सामने वह नारी-जीवन के एक महान सत्य का प्रत्यक्षीकरण करती है :

जागृत महिला का महत्त्व, इस महि-मंडल पर अमल रहा,
जिसने प्राण-प्रहारी संकट, प्रण को रखने सदा सहा,
उसके यश का उज्ज्वल अविरल अविकल अविचल स्रोत बहा,
दिखलाया है हृदय खोलकर, समय-समय वीरत्व अहा,
कड़ी जुड़ेगी उसमें मेरे इस उन्नत अभियान की।
बलिदानों से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

आत्म-बलिदान के द्वारा आत्म-सम्मान की रक्षा करने वाली जागृत महिला सती सीता के उज्ज्वल यश का यह काव्य-स्रोत प्रवाहित करने के लिए हिन्दी-जगत् आचार्यश्री तुलसी का चिर आभारी रहेगा। आशा है, जीवन के शाश्वत सत्यों के प्रकाश में सम-सामयिक समस्याओं के समाधान की ओर इङ्गित करने वाले और कई महाकाव्य आपकी पुण्य-प्रसू लेखनी से प्रसून होंगे।

श्रीकालू यशोविलास

डा० दशरथ शर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०
रीडर, दिल्ली विश्वविद्यालय

चरित-लेखन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भारत ने जिस किसी वस्तु या व्यक्ति को आदर्श रूप में देखा, उसे जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। एक आदर्श वीर, एक आदर्श राजा, एक आदर्श पुरुष विशेष का चरित चित्रित करने के लिए महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की। जैन सम्प्रदाय ने भी उसी परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए केवल तीर्थंकरो के ही नहीं, अनेक शलाका-पुरुषों के चरित भी हमारे सामने प्रस्तुत किये। चाहे तो हम यह भी कह सकते हैं कि हमारा इतिवृत्त लिखने का ढंग प्रायशः आदर्शानुप्राणित रहा है। प्राचीन काल में अनेक अन्य शूरवीर, योद्धा और राजा भी हुए हैं। किन्तु भारत ने उन्हें भुला दिया है। उसके लिए यही पर्याप्त नहीं है कि किसी व्यक्ति ने जन्म लिया, राज्य किया या युद्ध किया हो, वह उसमें कुछ और विशिष्टता ढूंढ़ता है उसमें वह विशिष्टता न हो तो उसके लिए ऐसे व्यक्तियों का होना या न होना एक बराबर है।

ख्याति-प्रिय राजाओं ने इस प्रवृत्ति के परिहार-रूप में अनेक प्रशस्तियों, ताम्रपत्रों और दरबारी कवियों के काव्यों द्वारा अपने को अमर करने का प्रयत्न किया है। हर्षचरित, नव साहसांक चरित, विक्रमांक देव चरित, द्वया-श्रय-काव्य, पृथ्वीराज विजय काव्य आदि कुछ ऐसे ग्रन्थ है, जिनमें राजाओं का यशोगान पर्याप्त मात्रा में वर्तमान है। किन्तु ये ग्रन्थ भी वर्णित राजाओं की महत्ता से नहीं, अपितु बाण, बिल्हणादि कवियों के कवित्व के कारण जीवित है। आदर्शानुप्राणित भारत के जीवन में अमरत्व उसी कृति को मिलता है, जो हमारे सामने किसी आदर्श को उपस्थित करे। विशेषतः जैन सम्प्रदाय में तो देवाधिदेव वही है जो अज्ञान, क्रोध, मद, मान, लोभादि अठारह दोषों से मुक्त हो। उसी के गुणगान मे आनन्द है। उसमे ही जरामरणादि दुःखों से सन्तप्त लोगों को कुछ लाभ हो सकता है, उसी के प्रभाव से प्रभावित होकर जनता कैवल्य मार्ग की ओर उन्मुख हो सकती है। सम्भवतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए आचार्यश्री तुलसी ने अपने दिवंगत गुरु आचार्यप्रवर श्री कालूरामजी का चरित 'श्रीकालू यशोविलास' में प्रस्तुत किया है। भाषा भी मुख्यतः राजस्थानी ही रखी गई है, जिससे संस्कृत और प्राकृत से अनभिज्ञ व्यक्ति भी आचार्यवर के उपदेश और जीवन से पूर्ण लाभ उठा सकें। शास्त्रों के अवतरण मूल अर्धमागधी आदि में है। किन्तु उनके साथ ही उनका राजस्थानी अनुवाद भी प्रस्तुत है।

काव्य का संक्षिप्त वृत्त

काव्य छः उल्लासों में विभक्त है। पहले उल्लास का प्रारम्भ तीर्थंकर नाभेय, शान्तिनाथ और महावीर एवं स्वगुरु श्री कालूगणी को नमस्कार करके किया गया है। इसके बाद मरुस्थल, मरुस्थल के नागरिक और श्री कालूगणी की जन्मभूमि छापर (बीकानेर, राजस्थान) का वर्णन है। इसी नगर में ओसवंशीय चोपड़ा जाति के बुधसिंह कोठारी थे। उनके द्वितीय पुत्र मूलचन्द और कोटासर के नरसिंहदास लूणिया की पुत्री छोगा बाई के सुपुत्र हमारे चरित नायक श्री कालूगणी ने वि० सं० १९३३ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया गुरुवार के दिन अत्यन्त शुभग्रहादि युक्त समय में जन्म लिया। इनका जन्म नाम शोभाचन्द था, किन्तु माता-पिता प्रेम से इन्हें कालू कहते। १९३४ में मूलचन्दजी के दिवंगत होने पर माँ इन्हें अपने पीहर ले गई। वहीं बाल्यकाल से ही उनमें वैराग्य की भावना बढ़ने लगी।

इसी समय तेरापंथ के पंचम आचार्यश्री मघवागणी का सरदार शहर में चातुर्मास हुआ और माँ, मासी आदि के साथ जाकर कालूगणी ने उनके दर्शन किये। श्री कालूगणी की आकृति आदि से श्री मघवागणी इतने प्रभावित हुए कि वे तदनन्तर उन्हें न भूले। संवत् १६४४ की आश्विन शुक्ल तृतीया के दिन स्वाति नक्षत्र में खूब बाजे गाजे के साथ बीदासर में उनकी दीक्षा हुई। गुरु के साथ उन्होंने अनेक स्थानों में विहार किया। संवत् १६४६ में मघवागणी का शरीर अस्वस्थ हुआ। कालूरामजी की आयु उस समय छोटी थी। इसलिएं मघवागणी ने चैत्र कृष्ण द्वितीया के दिन श्री माणिकगणी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। पंचमी के दिन श्री मघवागणी का स्वर्गवास हुआ। श्री कालूगणी को इससे महान् दुःख हुआ।

संवत् १६४६ की चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन माणिकगणी पट्टाधिकारी बने। श्री कालूगणी ने उनकी समुचित सेवा की। संवत् १६५३ के आश्विन मास में श्री माणिकगणी का शरीर रुग्ण हुआ, किन्तु कर्तव्यनिष्ठ गणीजी ने इस पर कुछ ध्यान न दिया और कार्तिक कृष्णा तृतीया के दिन असार संसार का त्याग कर दिया। चतुर्विध संघ ने मिलजुल कर श्री डालिमगणी को संघपति बनाया।

श्री डालिमगणीजी की सेवा में रहते हुए श्री कालूगणी ने अनेक स्थानों पर अपने प्रभावी व्याख्यानों से लोगों को रंजित किया। इस समय इन्होंने बगड़ के पं० घनश्यामजी से संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया और हेम कोष—अभिधान चिन्तामणि, उत्तराध्ययन एवं नन्दी (सूत्र) आदि को कण्ठस्थ किया। बारह वर्ष तक कालूगणी ने श्री डालगणी की सेवा की। १९६८ में डालगणी चन्देरी पहुँचे। वहीं वे अस्वस्थ हो गये। सं० १९६६ की भाद्रपद शुक्ला द्वादशी के दिन स्वर्गत हुए। संघ ने श्री कालूगणी को सिंहासन पर बैठाया। श्री डालगणी के सम्वत् १९६६ प्रथम श्रावण वदी १ के पत्र मे भी उन्हें यही सम्मति मिली।

भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा के दिन कालूगणी जी का पाटोत्सव चन्देरी नगर में हुआ। इन्होंने प्रथम याम मे उत्तराध्ययन का और रात्रि के समय रामचरित का व्याख्यान किया। चन्देरी के बाद अनेक स्थानों में विहार कर कालूजी ने लोगों को उपदेश दिया और दीक्षित किया।

द्वितीय उल्लास का आरम्भ श्री महावीर स्वामी के स्मरण से है। सम्वत् १९६८ में कालूगणी ने बीदासर में चातुर्मास किया और अनेक योग्य साधु और साध्वियों को दीक्षित किया। १९६९ का चातुर्मास चूरू में और १९७० का चन्देरीमें हुआ। यहीं से ये बीकानेर में धर्म की प्रभावना के लिए पहुँचे। राज्य के बड़े-बड़े सरदारों और उच्च राज्य कर्मचारियों ने इनके दर्शन किये और अनेक दीक्षाएं हुई।

इन्हीं दिनों जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान्, जैन शास्त्र के महान् पण्डित और अनेक जैन धर्म-ग्रन्थों के अनुवादक डा० हर्मन याकोबी भारत पहुँचे और लाडनूं में श्री कालूगणी के दर्शनार्थ आये। श्री कालूगणी ने याकोबी महोदय के अनेक सन्देह स्थलों की इतनी विशद व्याख्या की कि उस विद्वान् का हृदय कृतज्ञता से पूर्ण हो गया और उसे यह भी निश्चय हो गया कि तेरापंथ ही जैन धर्म का सच्चा स्वरूप है। जूनागढ़ में जाकर भरी सभा में याकोबी महोदय ने यह भी घोषित किया कि आचारांग के अन्तर्गत मत्स्य और मांस का अर्थ उसने सम्यक् रूप से कालूगणीजी से ही समझा है।

इसी अवसर पर जोधपुर राज्य ने नाबालिगों की दीक्षा पर प्रतिबन्ध लगाया और २१ मार्च सन् १९१४ के गजट में ऐसी दीक्षा के विरुद्ध अपनी आज्ञा प्रसारित की। तेरापंथ के युक्ति युक्त विरोध के कारण यह आज्ञा कैन्सिल (रद्द) की गई। यू० पी० काउंसिल ने भी नाबालिगों की दीक्षा को रोकने के लिए प्रस्ताव पास किया और कानून तैयार करने के लिए आठ सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त की। श्री कालूगणी से आशीर्वाद प्राप्त कर तेरापंथ के गणमान्य सज्जन इलाहाबाद पहुँचे और अपनी युक्तियाँ दीं। इतने में यूरोप का प्रथम महायुद्ध छिड़ गया और प्रस्ताव बीच में ही लटक गया। यू० पी० में कानून के प्रस्तावक ला० सुखबीरसिंह जब दिल्ली काउंसिल के मेम्बर बने तो वहाँ भी यह प्रश्न उठा। तेरापंथी धर्मवीरों के प्रयास से यह बिल पास न हुआ।

चित्तौड़ में श्री कालूगणी ने अमल के काँटे के अफसर को प्रबोधित किया। भगवती सूत्र के आधार पर वहां यह भी सिद्ध किया कि जीव के नाम तेईस हैं। इसी प्रकार रायपुर में आचारांग से उद्धरण देकर उन्होंने दया का ठीक स्वरूप

समझाया। जिसने भिक्षुक वेष धारण किया है उसे किसी के सुख और दुःख से कोई लगाव नहीं है। कहीं लड़ाई हो या आग लगे—ये दोनों ही उसके लिए उपेक्षा के विषय हैं।

उदयपुर में विपक्षियों ने तेरापंथ के विषय में अनेक अफवाहें फैलाई, किन्तु वास्तविक सत्य के सामने वे ठहर न सकीं। वहाँ से विहार कर श्री कालूगणी ने एक सौ अड़तीस गाँवों को अपनी चरण-रज से पवित्र किया। आउवे में सूत्रकृतांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध छठे अध्ययन के निर्दिष्ट पाठ को पढ़ कर उन्होंने सिद्ध किया कि उसमें कहीं प्रतिमा का उल्लेख नहीं है।

सं० १९७३ में चातुर्मास जोधपुर में और १९७४ में सरदारशहर में हुआ। यहीं इटली के विद्वान् डा० टेसीटरी ने आपके दर्शन किये। अगला चातुर्मास चूरू में हुआ। यहीं आयुर्वेदाचार्य आशुकविरत्न पं० रघुनन्दन जी आपकी सेवा में आये। रतनगढ़ में गणेश्वर ने पंडित हरिदेव के व्याकरण-ज्ञान का मद दूर किया। १९७६ में बीदासर में चातुर्मास हुआ। इसके बाद सरदार शहर, चूरू आदि शहरों में होते हुए आपने हरियाणे के अनेक नगरों और ग्रामों में विहार किया। १९७७ के भिवानी के चातुर्मास में कार्तिक कृष्णाष्टमी के दिन कई दीक्षाओं का मुहूर्त निश्चित हुआ। विरोधियों ने दीक्षाओं के विरोध में सभा की, किन्तु दैववश उसी समय आकाश से एक गोला गिरा। लोगों में भगदड़ पड़ गई। दीक्षाएं नियत समय पर हुई। १९७८ का चातुर्मास रतनगढ़ में हुआ। दूसरे स्थानों की तरह यहाँ भी अनेक दीक्षाएं हुई। इसके बाद बीदासर, डूंगरगढ़, गंगाशहर आदि में इन्होंने संवत् १९७९ में विहार किया। भीनासर में स्थानकवासी कनीरामजी बाँठियाँ से चर्चा हुई। फिर चौमासे के लिए बीकानेर पहुँचे।

तीसरे उल्लास का आरम्भ जिनेन्द्र की मुखभारती को प्रणाम कर हुआ है। बीकानेर में विरोधियों ने यत्र तत्र उनके विरुद्ध खूब पत्र बँटवाए और चिपकाए। फिर भी दीक्षामहोत्सव बड़े आनन्द से सम्पन्न हुआ। ज्येष्ठ मे जयपुर वाटी में आपने विहार किया। चातुर्मास जयपुर मे हुआ और माघोत्सव सुजानगढ़ में। इक्यासी की साल में फिर चूरू में चातुर्मास हुआ। जब आप राजगढ़ पहुँचे तो अमेरिकन प्रोफेसर गिल्की ने आपके दर्शन किये और तेरापंथ के बारे में जानकारी प्राप्त की। माघ मास मे गुरुवर सरदारशहर पहुँचे।

मार्गशीर्ष में श्री कालूगणी लाडनूं पहुँचे और धन लग्न में काव्य-कर्ता तुलसी और उनकी बहन एक साथ दीक्षित हुए। इसके बाद के विहार में तुलसी सदा गुरु सेवा मे रहे। इन्हीं दिनों थली देश में एक महान् द्वंद्व मच गया। गुरुवर ने एक मास तक लगातार प्रयास किया। जिससे श्राद्ध समाज में अच्छी जागृति हुई। माघ-महोत्सव चूरू में हुआ। स्थानकवासी साधु-साध्वी संभोग सम्बन्धी शास्त्रार्थ में परास्त हुए। इस चर्चा में भगवानदास मध्यस्थ थे। चूरू से श्रीकालूगणी रतनगढ़ और राजलदेसर पहुँचे। अगला चातुर्मास छापर में हुआ। १९८९ का चातुर्मास सरदारशहर में हुआ।

चतुर्थ उल्लास का आरम्भ मूलसूत्र श्री कालूगणी के नमस्कार से है। १९९० में सुजानगढ़ में चातुर्मास करने के बाद आचार्यजी ने जोधपुर राज्य में विहार किया। छापर, बीदासर, लाडनूं, सुजानगढ़, डीडवाणा, खाटू, डेगाणा, बलून्दा पीपांड़, पचपदरादि होते हुए अपने वैदुष्य और संयमपूर्ण साधु परिवार के साथ गणिवर आगे बढ़े और टलोकरों द्वारा विस्तारित मिथ्या प्रचार का उद्भेदन कर जोधपुर पहुँचे। १९९१ का चातुर्मास वहीं हुआ। चारों ओर से लोग दर्शनार्थ एकत्रित हुए। बाईस दीक्षाओं का निश्चय हुआ। इसके विरुद्ध प्रतिपक्षियों ने खूब आन्दोलन किया। गणीजी ने जैन सिद्धान्त के अनुसार ऐसी दीक्षाओं का समर्थन किया और लोगों को बताया कि आठ वर्ष से अधिक बालक-बालिकाओं की दीक्षा सर्वथा विहित है। स्मृतियों में भी ऐसी दीक्षाओं का विधान है। नव वार्षिक बालक कच्चे भाण्ड की तरह हैं जिसे उचित रूप से संस्कृत किया जा सकता है। वह काली कम्बल नहीं है जिसे रंगा न जा सके। बड़ी आयु में दीक्षित होने पर मार्गभ्रष्ट होने की सम्भावना अत्यधिक है। महावीर स्वामी से दीक्षित होने पर भी उनका जामाता जमाली मार्गभ्रष्ट हो गया। लोग इन युक्तियों से प्रभावित हुए बिना न रह सके। कार्तिक कृष्णा अष्टमी के दिन ये बाईस दीक्षाएं सोत्सव सम्पन्न हुई। फिर काण्ठा देश के सुधरीपुर में मर्यादोत्सव पूर्ण कर और दुरारोह मेवाड़ की पर्वतमाला को पार कर सब भिक्षुगण सहित श्री कालूगणी संवत् १९९१ के चातुर्मास के लिए उदयपुर पहुँचे। महाराणा भूपालसिंह अपने लवाजमे सहित आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी के दिन आपके दर्शनार्थ आये और आपका उपदेश सुन कर कृतार्थ हुए।

पाँचवाँ उल्लास भी धर्माचार्य कालूजी को नमस्कार करके आरम्भ किया गया है। कार्तिक कृष्णा पंचमी के दिन महोत्सवपूर्वक पन्द्रह दीक्षाएं सम्पन्न हुईं। इनमें तीन पुरुष और बारह स्त्रियां थीं। उदयपुर से विहार कर श्री कालूगणी मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में राजनगर पहुँचे और साधु-साध्वियों के वार्षिक व्यतिकर के बारे में पूछकर उनके उत्साह की वृद्धि की। इसके बाद मालव संघ की अभ्यर्थना से गणीजी ने मालव देश में प्रवेश किया। सादड़ी, नीमच छावनी, महू छावनी, मन्दसौर आदि होते हुए आप माघ कृष्णा चतुर्थी के दिन जावर पहुँचे। वहाँ सबके सामने आपने तेरापंथ के सिद्धान्तों का सयुक्तिक व्याख्यान किया। इससे बिना उत्तर और प्रत्युत्तर के लोगों का संशय दूर हुआ। वहाँ से माघ शुक्ला सप्तमी के दिन आप रतलाम पहुँचे। विद्वेषियों ने बहुसंख्यक लेख आपके विरुद्ध निकाले। प्रश्नकारियों का उचित समाधान कर गणेश्वर बड़नगर पहुँचे। यहाँ महान् मर्यादामहोत्सव सम्पन्न हुआ। माघ पूर्णिमा के दिन आपने उज्जैन के लिए विहार किया। फिर इन्दौर आदि नगरों में देशना देते हुए १२१ गाँवों का चक्कर लगाकर आप फिर रतलाम पहुँचे। वहाँ रतलाम के दीवान आदि आपके दर्शनार्थ आये। चार मास तक इस प्रकार आपने मालव भूमि को अपने उपदेशामृत का पान करवाया। वैशाख शुक्ला षष्ठी के दिन आपने मेवाड़ की ओर विहार किया। संवत् १९९३ का चातुर्मास गंगापुर के लिए निश्चित हुआ।

इसी समय गणीजी के बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली में फुन्सी होकर पीड़ा हो गई। यह पीड़ा बढ़ती गई। आपरेशन करना आवश्यक हो गया। किन्तु इसी कार्य के लिए लाए हुए औजारों को प्रयुक्त करना विधानानुकूल न था। अतः कलम बनाने के चाकू से मगन मुनिजी ने डाक्टर के कथनानुसार चीरा दिया। गुरुजी भीलवाड़ पहुँचे। अनेक डाक्टर और श्रद्धालु भी वहाँ आए। डाक्टर अश्विनीकुमार ने मधुमेह का निदानकर व्रणविरोपण के लिए एक औषधि विशेष का विधान किया। किन्तु जैन व्रतव्रती कालूजी ने उसका सेवन स्वीकार न किया। न वे उस स्थान पर ठहरे। गंगापुर में चातुर्मास करना उन्होंने स्वीकृत किया था। इसलिए वहीं जाना उन्होंने निश्चित किया।

छठे उल्लास का आरम्भ गुरुवन्दना से है। गुरु कष्टमय मार्ग को पार कर गंगापुर पहुँचे। संवत् १९९३ का चातुर्मास वहीं हुआ। वर्षाकाल में व्रण का और विस्तार हुआ और अस्वास्थ्य बढ़ने लगा। किन्तु इतना होने पर भी उपदेश का कार्य सततरूप से चलता रहा। ग्रन्थकर्त्ता तुलसीजी ने भी उनके आदेश से श्रावण शुक्ला दशमी के दिन रामचरित का व्याख्यान आरम्भ किया। इसी समय आशु कविरत्न आयुर्वेदाचार्य पं० रघुनन्दनजी वहाँ आये। नाड़ी परीक्षा के बाद उन्होंने तीव्र औषधों के प्रयोग से चिकित्सा आरम्भ की। फिर उन्होंने जयपुर निवासी दादूपंथी लक्ष्मीरामजी राजवैद्य को सम्मति के लिए इक्कीस श्लोकों में एक पत्र लिखा। इसका उत्तर लक्ष्मीरामजी ने छः श्लोकों में दिया। औषध की अदल-बदल से कुछ लाभ हुआ। किन्तु फिर औषध कार्यकर न होने लगी। डाक्टर अश्विनीकुमार भी कलकत्ते से आये। उन्होंने और पं० रघुनन्दनजी ने भी रोग की असाध्यता का अनुभव किया। भाद्रपद की अमावस्या के दिन श्री कालूगणी ने तुलसीजी को भिक्षुगण का भार सँभालने की आज्ञा दी। फिर गुरुवर ने श्रमण वर्ग को अन्तिम शिक्षा दी। एकान्त में काव्यकार को भी बहुत तरह से उपदेश दिया। तृतीया के प्रातःकाल में गणेश्वर ने अपने हाथ से युवराज पद-पत्र में तुलसी राम को अपना पट्टाधिकारी लिखकर युवराज बनाया। इस पत्र की पूरी नकल ग्रन्थ में वर्तमान है। मगन मुनि ने यह लेख सबको सुनाया। देह-त्याग से पूर्व गणरक्षा के विषय में श्री कालूगणी ने तुलसीजी को फिर शिक्षा दी। नाड़ी डगमगा रही थी तो भी गणाधिप ने यह सब व्यवस्था की।

सब प्रदेशों के लोग अब गंगापुर में आकर एकत्रित हो गए थे। सभी उनकी दृढ़ता देखकर चकित थे। तीज की रात्रि में सांवत्सरिक उपवास को धारण कर छठ की प्रातःकाल में आपने पारण किया। सायंकाल के समय भगवान् अरिहन्त की शरण ग्रहण कर सचेत अवस्था में श्री कालूगणीजी ने शरीर-त्याग किया। अन्त्येष्टि के समय लगभग ३६ हजार व्यक्ति उपस्थित थे।

ढाल १६वीं और १७वीं में फिर कालूगणी का संक्षिप्त जीवनवृत और उनके समय की तपश्चर्यादि का वर्णन है।

समालोचनात्मक कुछ शब्द

पिछली पंक्तियों में हमने संक्षिप्त रूप में 'श्री कालूयशोविलास' का वृत्त दिया है। इसके समालोचन के लिए उपर्युक्त व्यक्ति तेरापंथ दर्शन का कोई अच्छा ज्ञाता ही हो सकता है। किन्तु मध्यस्थ भाव से अपनी शक्ति के अनुरूप मैं भी कुछ शब्द कहना उचित समझता हूँ और कुछ नहीं तो उसमे आदेश का पालन तो हो सकेगा।

कोई काव्य अच्छा बना है या नहीं इसे देखने के लिए हमें उसके प्रयोजन के विषय में विचार करना चाहिए। सभी काव्यों के लिए एक मापदण्ड नहीं होता है। यह अवश्य है कि काव्य जितना अधिक विश्वजनीन हो, उतनी ही उसकी महत्ता अधिक बढ़ती है। उसमें वह विश्वहित की दृष्टि रहती है जो स्वतः उसे उच्चासन पर स्थापित करती है। इसके अतिरिक्त काव्य-शब्दाभिधेय कृतियों में सच्चा काव्यत्व भी होना चाहिए। केवल पद्यों में ग्रन्थित होने से कोई कृति काव्य नहीं बनती।

कई कवि यश के लिए काव्य-रचना करते हैं, कई धन के लिए, कई अमंगल की हानि के लिए, कई कान्ता-सम्मत-शब्दों में उपदेश प्रदान के लिए और कोई स्वान्तः सुख के लिए। श्रीकालू यशोविलास के रचयिता न यशः प्रार्थी हैं और न धनाभिलाषी। किन्तु चतुर्थोल्लास के अन्त में आपने यह श्लोक दिया है—

> सौभाग्याय शिवाय विघ्न वितत भेदाय पङ्काच्छिदे।
> आनन्दाय हिताय विभ्रमशत ध्वंसाय सौख्याय च॥
> श्री श्रीकालू यशोविलास विमलोल्लास स्तुरीयोयकं।
> सम्पन्नः सततं सतां गुण भृतां भूयाच्चिरं भूतये॥१॥

इससे प्रतीत होता है कि काव्य के अन्य लक्ष्य भी उनकी दृष्टि से दूर नहीं रहे हैं। इनके कवि हृदय ने स्वान्तः सुख की अनुभूति तो की ही होगी, किन्तु गणनायक के रूप में सैकड़ों भ्रान्तियों का उन्मूलन भी उनका अभीष्ट रहा है। गुरुयशोगान और गुरूपदेश को जनता के समक्ष सुस्पष्ट एवं सुग्राह्य शब्दों में रखना इसका एकमात्र ही नहीं तो कम-से-कम बहुत सुन्दर उपाय तो है। सुललित एवं रसात्मक शब्दों में इनको प्रस्तुत करना मानों सोने में सुगन्ध भरना है। हमें निश्चय है कि 'श्रीकालू यशोविलास' का समाधान पारायण किसी भी व्यक्ति को तेरापंथ के मुख्य सिद्धान्त समझाने के लिए पर्याप्त है। इसके मूलग्रन्थों और टीकाओं के उदाहरण विद्वानों के लिए भी पठनीय और मननीय हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में जिस प्रकार रामायण और महाभारत काव्य होते हुए भी धर्मग्रन्थ हैं, उसी तरह 'श्रीकालू यशोविलास' काव्य के रूप में ही नहीं, तेरापंथी समाज के धर्मग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। इसमें युक्तियुक्त रूप से जैन धर्म के तत्त्वों का निरूपण और अपने सिद्धान्तों का मण्डन है। मोक्षमार्ग में स्त्री का अधिकार, साधु के लिए दया का सच्चा स्वरूप, सुविहित दान, अल्पवय में भी दीक्षाधिकार और उसकी युक्तियुक्तता आदि स्थल तेरापंथी समाज को सदैव उसके सिद्धान्त समझने और विरोधी युक्तियों का शास्त्र और तर्क-सम्मत उत्तर देने का सामर्थ्य प्रदान कर उसकी रक्षा करेंगे। समाज के लिए उससे बढ़कर 'सौभाग्य, शिव (मंगल) आनन्द और हित' का विषय क्या हो सकता है?

शुद्ध काव्य के रूप में भी 'श्रीकालू यशोविलास' सहृदय जनों के हृदय में स्थान प्राप्त करेगा। इसमें अनेक उत्कृष्ट छन्दों और बन्धों का प्रयोग है। भाषा गभीरार्थमयी होते हुए भी प्रसादगुणयुक्त है। सुन्दर राग और रागनियों से विभूषित, यह धर्म प्राण जनता का सुमधुर गेय काव्य है। अनेक कण्ठों की स्वरलहरी से नभो मार्ग को प्रतिध्वनित करती हुई इसकी पवित्र ध्वनि एक विचित्र स्फूर्ति उत्पन्न करती होगी।

काव्य अधिकतर अतिशयोक्ति-प्रधान होते हैं, किन्तु यह काव्य अनेक अलंकारों और काव्य-वृत्तियों का समुचित प्रयोग करता हुआ भी असत्य से दूर रहा है। मरुस्थल के लिए कवि ने लिखा है:

> रयणीयें रेणु कणा शशि किरणां, चलके आणक चान्दो रे।

रात्री के समय धूलि के कण चांदनी में ऐसे चमकते हैं, मानो चांदी हो। किन्तु साथ ही में कवि ने यह भी कहा है:

> मनहरणी धरणी यदि न हुवें, अति आतप अरु आंधी रे।

यह पृथ्वी अत्यन्त मनोहारी होती, यदि यहाँ बहुत जोर की धूप और आंधी न होती। कोई अन्य कवि होता तो कवित्व के बहाव में बह कर मरुस्थल की प्रशंसा ही प्रशंसा कर बैठता।

स्वाति नक्षत्र में दीक्षित श्रीकालूगणी के गुरुदेव के कर की शुक्ति से और स्वयं श्रीकालूगणी की इस स्वाति नक्षत्र में उत्पन्न उस मोती से उपमा दी है जो लाखों मनुष्यों के सिर पर चढ़ेगा और जिसकी चमक दिन-दिन बढ़ेगी। ऐसी ही दूसरी उपमा में कवि ने श्रीकालूगणी की माता के उदर को खान से, गुरु के हाथ को साण, जैन शासन को मुकट और श्रीकालूगणी को हीरे से उपमित किया है। गुरु के प्रति तुलसीजी का इतना अनुराग है कि काव्य में एक के बाद अनेक उपमाओं की झड़ी-सी लग गई है।

पहले उल्लास की सातवीं ढाल में विपक्षियों के मनोमोदकों का भी अच्छा वर्णन है। दूसरे उल्लास की बारहवीं ढाल में आजकल की स्थिति का निदर्शन कवि ने गुरुमुख से इन शब्दों में किया है—

कोई चवदै आना काण टाण तोहि रुपियो दरसावै।
घर में खांचा ताण बाहर जई मूंछ्या बल खावै॥
कोई है कंगाल हाल तोहि मगरूरी में नहिं मावै।
सन्धि अरु चट लिंग लिंग अनजाने कवि थावै॥
कोई झूठमूठ इक सूंठ ग्रहि जू पसारी बन जावै।
देखै सुनै अनेक छेक कोई विरलो ही पावै॥

भिवानी में गोले की वर्षा का वर्णन आँखों के सामने पूरा दृश्य खड़ा कर देता है। सोलहवीं ढाल का आत्मशुद्धि विषयक उपदेश भी अपनी निजी छटा रखता है। तृतीय उल्लास में आचार्य तुलसी ने अपनी दीक्षा से पूर्व का हास्याद्भुत रसधार युक्त अच्छा वर्णन दिया है। गुरु-विषयक ये उपमाएं भी अपनी उक्ति विशेष के कारण हृदयहारिणी हैं—

सभा सभ्यजन संभृता, यथा चित्र आलेख।
सयल श्रोतुगण श्रवण हित, अरवण प्रवण विशेष॥
सुधा झरे मुख निर्झरे, चवि चकोर अनिमेष।
वासर में हिमकर रमै, वा द्योगांगज एष॥
निरख विपक्षी नयन में, प्रमिला तणों प्रवेश।
वासर में हिमकर रमै, वा द्योगांगज एष।
आस्य कमल मुकुलित समल, असहन जनां अशेष।
वासर में हिमकर रमै, वा द्योगांगज एष॥
उच्चैस्वर गणिवर यदा, पाठ पढ्यो मुख जोर।
भविक मोर प्रमुदित भया, लखि सावन घन घोर॥

चतुर्थ उल्लास में १६६१ को जोधपुर के चातुर्मास का निम्नलिखित वर्णन भी पठनीय है—

गत विरहा मरुधरधरा, पूज्य पदार्पण पेख।
नवनवांकुरोग्दम विषम, रोमोग्दम सम लेख॥
पुहु पतती करती नतो, माली भई प्रतीव।
मधुकर गुंजारव मिषै, मंगल गीत व तीव॥

इसके अतिरिक्त काव्य अनेक मार्मिक स्थलों से परिपूर्ण है। श्रीकालूगणी की बीमारी, अस्वास्थ्य में भी उनका धैर्य और जैन धर्मानुसार कार्य-कलाप एवं अन्तिम शिक्षादि का वर्णन काव्य और धर्म कथा दोनों ही के रूप में प्रशस्य और श्रध्येय है। समय के अभाव से इतना ही लिखकर विराम करना पड़ रहा है। सहृदय पाठकगण 'श्रीकालू यशोविलास' रूपी रत्नाकर से अनेक अन्य अनर्घ काव्य मुक्ताओं और मणियों की प्राप्ति कर सकते हैं।

'श्रीकालू यशोविलास' को इतिहास-ग्रन्थ रूप में प्रस्तुत किया है। आचार्य तुलसी ने गुरु के गुणों का अवश्य

गान किया है, किन्तु ये गुण भी महापुरुषोचित सीमा से बहिर्भूत नहीं हैं। श्रीकालूगणी के सभी कार्य एक महान् पुरुष के हैं। अपनी तपश्चर्या, अपने ज्ञान, अपनी धर्म-श्रद्धा और अपने चारित्र्य द्वारा उन्होंने वह स्थान प्राप्त किया है, जिनका अनुसरण सबके लिए श्रेयस्कर है। आचार्य तुलसी ने उनका यशोवर्णन कर द्वितीय उल्लास के अन्त में निर्दिष्ट अपने लक्ष्य की सुचारू रूप से सिद्धि की है। तेरापंथ समाज के विषय में जो अनेक भ्रान्तियाँ जनमानस में रूढ़ हो चुकी हैं, उनके समूल उच्छेद के लिए कुठारवत् और भव्यजनों के हृदय कमलों को विकसित करने के लिए सदा चराचर स्फूर्तिदायी सविता के रूप में वर्तमान रहते हुए यह काव्य यशोनिःस्पृह आचार्य तुलसी के यश का भी स्वभावतः सर्वत्र प्रसार करेगा।
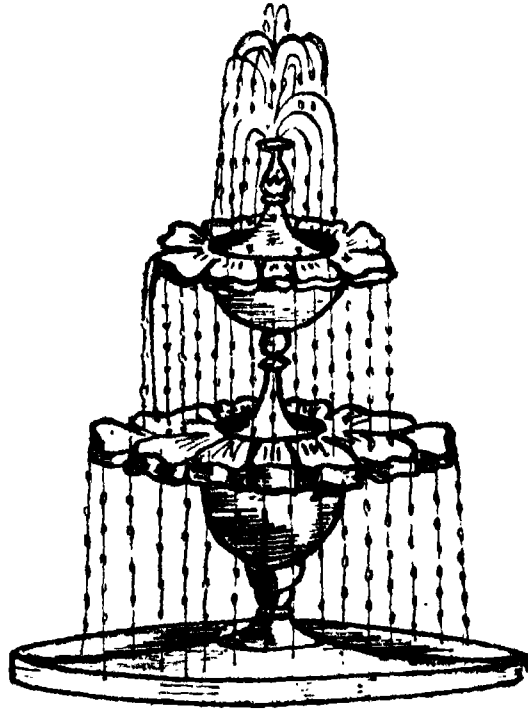
भरत-मुक्ति-समीक्षा

डा० विमलकुमार जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक, दिल्ली कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

महामान्य आचार्यप्रवर तुलसीजी कृत 'भरत-मुक्ति' एक **महाकाव्य** है, जिसमें आदीश्वर भगवान् ऋषभदेव की दीक्षा, तपस्या एवं केवलज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर भरत चक्रवर्ती की दिग्विजय का उत्सव, उनके अट्ठानवें भाइयों का संसार-त्याग, तत्पश्चात् बाहुबली से युद्ध और पुनः देवों द्वारा प्रतिबोधित होकर बाहुबली का संन्यास-ग्रहण और अन्त में भरत का राज्य-व्यवस्था के उपरान्त इन घटनाओं से विषण्ण होकर प्रव्रज्या ग्रहण करके घोर तपश्चरण के पश्चात् मुक्ति का वरण करना वर्णित है।

इसमें महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण उपलब्ध हैं। भरत इसके नायक हैं, जो धीरोदात्त एवं इक्ष्वाकु क्षत्रिय-कुलोत्पन्न हैं। यह काव्य अष्टाधिक सर्गों में समाप्त हुआ है तथा भरत के दीर्घकालिक जीवन की अनेक घटनाओं से व्याप्त है। इसमें नायिका का चित्रण नहीं है। केवल एक स्थान पर उनकी अनेक पत्नियाँ होने का उल्लेख है।[1] इसमें अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है तथा अंगीरस शान्त के अतिरिक्त वीरादि अंगभूत रसों का भी चित्रण है। इसमें प्रकृति-चित्रण भी है तथा युद्धादि का वर्णन भी है। इसका अन्त इसकी संज्ञानुसार आदर्शपूर्ण उद्देश्य से युक्त है।

इस प्रकार लक्षण-निकष पर कसा हुआ यह एक बृहत्काय काव्य है, जो अपने सौष्ठव से ओत-प्रोत होकर जीवन के बाह्य और अन्तः सौन्दर्य पर प्रकाश डालता हुआ उसके वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित करता है।

इसमें काव्य के दोनों ही पक्ष **भाव** एवं **कला** अपने चरमोत्कर्ष पर हैं। भारतीय संस्कृति एवं विचार-परम्परा के अनुसार जीवन का लक्ष्य जगज्जंजाल से मुक्त होना है। संसार में सदसत् सभी प्रकार के कर्म प्राणी को सुख-दुःखात्मक स्थितियों में डालते हुए उसके जन्म-मरण के निमित्त बनते हैं। देही काम, क्रोध, मद, लोभादि के वशीभूत हुआ कर्म करता है। कभी वह पाप करता है तो कभी पुण्य परन्तु ये सभी सन्ताप के कारण होते हैं, क्योंकि क्रियानुसार फल-मुक्ति अनिवार्य है। यथा शूल के बदले फूल नहीं मिलते उसी प्रकार पाप करके शुभ परिणाम की कामना निष्फल है। अतः शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए कर्म-बन्धन से विमुक्ति आवश्यक है और वह साधना एवं तपस्या से ही सम्भव है।[2]

भगवान् आदीश्वर के इस तात्विक चिन्तन पर, जो आध्यात्मिक दृष्टि से एक ध्रुव सत्य है, इस काव्य की आधार-शिला स्थापित है इसीलिए प्रारम्भ से अन्त तक ऋषभदेव, उनके अट्ठानवें पुत्रों तदनन्तर उनके पुत्र बाहुबली और अन्त में भरत का संसार-त्याग वर्णित है, जिसका पर्यवसान निर्वाण में हुआ है, जो मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। सभी महानुभावों की दीक्षा एवं प्रव्रज्या के प्रेरक कारण उपर्युक्त कषाय ही हैं, जो कर्म-प्रवृत्ति का मूल हेतु हैं। भगवान् ऋषभदेव के इन शब्दों में संसार की निस्सारता स्पष्ट ही प्रत्यक्ष हो जाती है—

आकर के कितने चले गये,
यह धरती किसके साथ रही,

---

१ **'सभी भाभियाँ तेरी देंगी भाई ! मुझे उलाहने'—भरत-मुक्ति, पृष्ठ १६१**

२ **भरत-मुक्ति, पृष्ठ १५**

मेरी मेरी कर मरे सभी,
कोई भी अपना सका नहीं।
वैभव-साम्राज्य अखाड़े में,
सोचो तो कितने ही उतरे,
जो हारे वे तो हारे ही,
जीते उनकी भी हार अरे![1]

इस प्रकार संसार एक निस्सार स्थान है जहाँ निवास करना तथा जिसमें संलग्न मन होना बुद्धिमत्ता नहीं है, इसीलिए ऋषियों ने संसार को हेय बता कर कम-से-कम जीवन की अन्तिम स्थिति में संन्यास लेना परमावश्यक कहा है।

घोर युद्ध के पश्चात् देवों द्वारा प्रतिबोधित होकर स्वयं बाहुबली भी संसार की निस्सारता को इस प्रकार उद्घोषित करते हैं—

कोई सार नहीं संसार में,
पग-पग पर दुविधा की है तलवार दुधारी रे।
क्षण में सरस-विरस होता,
यहाँ नश्वर घन-छाया सी सत्ता विभुता सारी रे।[2]

इसी प्रकार अन्त में भरत ने भी संसार की नश्वरता को जाना, जिसके परिणामस्वरूप वे संसार से विरक्त होकर मुक्ति के अधिकारी बने—

प्रत्येक वस्तु में नश्वरता की
झलक प्रतिक्षण झांक रहे,
इस जीवन की क्षण-भंगुरता
अंजलि-जल सी वे आंक रहे।[3]

× × ×

यों चिन्तन करते विविध, जागृत हुआ विराग।
जीत लिया नश्वर जगत, ज्यों पानी के झाग॥[4]

इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर इस काव्य का निर्माण हुआ है। इस तथ्य के ज्ञान-प्रकाश में हृदय जिस भाव-भूमि पर अवस्थित होता है, उसी का चित्रण अन्ततोगत्वा इस काव्य में हुआ है। अतः इसका भावपक्ष बड़ा ही समुज्ज्वल है। यदि यों कहें कि इसमें मानव के मन-मानस में विद्यमान विविध भावावली में से केवल सद्भाव-मुक्ताओं का ही प्राधान्य है तो अत्युक्ति न होगी।

इसमें कलापक्ष भी प्रायः मनोहारी है। रस काव्य की आत्मा होती है। इसके अनुसार यह काव्य भी रसाप्लुत है। इसमें शान्त रस ही अंगीरस है, क्योंकि संसार विरक्ति ही इसका उद्देश्य है। अतएव भगवान् ऋषभदेव तथा उनके पुत्र इस संसार को असार समझ कर इससे विमुख हो गये। उपर्युक्त अवतरण इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। शान्त का चित्रण करते हुए सभी पद्यों में तदपेक्षित माधुर्य गुण का अंकन भी दर्शनीय है। तदनुकूल वर्ण-चयन एवं शब्द-योजना मणि-काञ्चन के तुल्य ही मनोरम है। शान्त के अतिरिक्त वीर रस का चित्रण भी भरत एवं बाहुबली के युद्ध में पर्याप्त मात्रा में हुआ है। निम्न पंक्तियों में वीरता का सजीव चित्रण कितना ओजपूर्ण है—

---

१ भरत-मुक्ति, पृष्ठ ४७
२ वही, पृष्ठ १५८
३ वही, पृष्ठ १६०
४ वही, पृष्ठ १६२

रणभेरी गूंज उठी नभ में,
वीरों के मानस फड़क उठे,
वे कड़क उठे हैं लड़ने को,
कायर जन के मन धड़क उठे।[1]

× ×

म्यानों से निकली तलवारें,
मानो घन में बिजली दमकी,
बरछियाँ, कटारें, तेज शूल,
वे भालों की अणियाँ चमकीं।[2]

× × ×

अश्व-सूत समेत स्यन्दन खण्ड से शतखण्ड थे,
मत्त गज-कुम्भस्थलों पर गदा-घात प्रचण्ड थे,
पारधी-भय से यथा मृग-यूथ त्रस्त-व्यस्त हो,
ओट में छुपने लगे सब भयाकुल संत्रस्त हो।[3]

पं० श्यामनारायण पांडे द्वारा रचित 'हल्दीघाटी' काव्य में जो ओजपूर्ण वर्णन हमें दृष्टिगोचर होता है, वैसा ही प्रखर प्रवाह हमें यहाँ भी लक्षित होता है। यहाँ हमें रणभेरी की गूंज, वीर-हृदय की कड़क और कायर-जन की धड़क स्पष्ट सुनाई देती है तथा विद्युत्तुल्य तलवारों की दमक और बरछी, कटार एवं भालों की चमक प्रत्यक्ष-सी दिखाई देती है। काव्य को पढ़ते-पढ़ते समरांगण की ठेल-पेल एवं त्रस्त-व्यस्तता, मार-काट एवं हाहाकार तथा घर्षण-कर्षण सभी कुछ चलचित्र की भांति अनुभूत होता है। इस वर्णन में वीर के अनुकूल ओजगुण से व्यंजक वर्णों की योजना दर्शनीय है। यह कुशल कलाकार की सफल एवं सबल लेखनी का ही परिचायक है।

युद्ध का चित्रण करते हुए **बीभत्स रस** का अंकन भी प्रसंगवश आ ही गया है, यथा—

अर्ध क्षत-विक्षत सभी शव दूर फेंके जा रहे,
मांस-लोलुप श्वान, जम्बुक, गीध उनको खा रहे।[4]

× ×

जिस हृदय-स्थल में कितनों का स्नेह भाव था रहता।
आज खा रहे कौए, कुत्ते, रह-रह शोणित बहता॥
जिन आँखों में तेज तरुण था, अरुण ओज की रेखा।
चोंचें मार रही हैं चीलें दारुण वह दृश्य न जाता देखा॥
हृष्ट-पुष्ट सुन्दर वपु जिस पर थे मन स्वतः लुभाते।
काट-काट पैने दाँतों से उसको जम्बुक खाते॥[5]

इस चित्रण में भी ओज अपनी पराकाष्ठा पर है। इसके अतिरिक्त **रौद्र** का आभास हमें भरत-दूत एवं बाहुबली के वार्तालाप आदि में उपलब्ध होता है। भयानक का चित्रण भी अल्प मात्रा में हुआ है यथा बाहुबली के वन में जाते

१ भरत-मुक्ति, पृष्ठ ८४
२ वही, पृष्ठ ९३
३ वही, पृष्ठ ९६
४ वही, पृष्ठ १००
५ वही, पृष्ठ १००-१०१

समय अरण्य की भयानकता इस प्रकार अंकित हुई है—

गहरी गहरी पड़ी दरारें, चारों ओर झाड़-झंखाड़,
द्विरद यूथ चिंघाड़ रहे हैं, शेर रहे हैं कहीं दहाड़,
चीते, व्याघ्र, भेड़िये भालू, वनबिलाव, सूअर खूंखार,
घूम रहे हैं गेंडे, रोझे, अरण्य-महिष, सारंग, सियार।[1]

इस प्रकार रसों का चित्रण तदनुकूल गुणों के साथ बड़ी ही उपयुक्तता के साथ हुआ है।

इस काव्य में अलंकार योजना भी स्तुत्य है। शब्दालंकारों में अनुप्रास का व्यवहार तो पर्याप्त मात्रा में हुआ है, परन्तु यमकादि का प्रयोग बहुत ही कम है। इसी प्रकार अर्थालंकारों में विशेषतः उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा का प्रयोग अत्यधिक है। नीचे कुछ सुन्दर उदाहरण दिये जाते हैं—

अनुप्रास—

अमल, अविकल, अतुल, अविरल प्राप्त कर तुलसी उजारा।
... ...
आँखें लाल कराल काल-सा बढ़ने लगा सरोष।

यमक—

सम समय परीषह मुनि को अधिक नहीं है।

पुनरुक्तिवदाभास—

मधु मधु बरसाकर सबको मुदित बनाता।

उपमा—

उषा समय प्राची यथा उभय कोष से लाल।
... ...
विकसित बसन्त ज्यों सन्त हृदय सरसाता।

रूपक—

आज हमारे मन उपवन की फूली क्यारी क्यारी,
चित चातक है उत्फुल्ल देखकर श्यामल मेघ-वितान रे।

उत्प्रेक्षा—

स्वर्णिम सूर्य उदित है प्रमुदित नयनाम्बुज विकसाने,
मानो क्षीर सिन्धु लहराता आया प्यास बुझाने।
... ...
जल-सीकर जिन पर चमक रहे,
मानो मुक्ताफल दमक रहे।

इसी प्रकार और भी अनेक अलंकारों की छटा यत्र-तत्र छिटकी हुई है, जिसने काव्य के सौन्दर्य पर चार चाँद लगा दिये हैं।

छन्द योजना भी दृष्टव्य है। इसमें गीतक, दोहा, सोरठा, मुक्तक एवं हरिगीतिका आदि छन्दों का चारु प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं कुछ दोष भी दृष्टिगोचर होते हैं, यथा—

और महामाता विराजित हस्ती पर सानन्द हैं।

यह गीतक छन्द का अंश है, जिसमें २६ मात्राएं होनी चाहिएं, परन्तु इसमें २८ मात्राएं हैं अतः अधिक पदत्व दोष

---

१ भरत-मुक्ति, पृष्ठ १६३

है। इसी प्रकार—

लड़ने का एक बहाना है,
दिखलाना चाहता हूँ भुजबल।

इसकी दूसरी पंक्ति में भी अधिक पदत्व दोष है। परन्तु इस प्रकार के दोष यत्र-यत्र अल्पमात्रा में ही हैं, जो सम्भवतः शीघ्रता में प्रकाशित कराने के कारण पुनरावृत्ति न होने से छूट गये हैं।

इसमें भाषा शुद्ध खड़ी बोली है, परन्तु कुछ उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी कहीं-कहीं पर उपलब्ध होता है, जैसे—

उर्दू शब्द—मौक़ा, हज़ारों, आजिजी, सजोश, खामोश और फरमाते आदि।

अंग्रेजी शब्द—सीन, फिट और नम्बर आदि।

इस काव्य में लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग बड़ा ही रुचिकर एवं अधिकता से हुआ है। इस विषय में निम्न पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

जैसी करनी वैसी भरणी यह पुरानी है प्रथा।
उच्च राज-प्रासाद शिखर जो नभ से करते थे बातें।
लगता ऐसा मुझे अभी तक दीये तले अँधेरा है।
नहीं नहीं कहते जो मंत्री सोलह आना बात सही।
बाहुबली को शासित करना सचमुच ही है टेढ़ी खीर।
है दिन दूना रात चौगुना जिससे वृद्धिगत उद्योग।
कितनों को उसने नृशंस बन दिए मौत के घाट उतार।

इसी प्रकार लोहा लेना, दाल न गलना, होश उड़ना, मुँह पर थूकना, प्राणों से हाथ धोना, नौ दो ग्यारह होना, गले पर छुरी चलाना आदि और भी अनेक लोकोक्ति-मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

कहीं-कहीं खाण्डे (खाँडे), बान्धे (बाँधे), झूझ (जूझ) आदि अशुद्ध शब्दों का प्रयोग अखरता है। सम्भवतः ये अशुद्धियाँ शीघ्रता-वश पुनः पाठ के अभाव में रह गई हैं।

इस काव्य में नानाविध वर्णन भी पठनीय हैं। अनेक स्थलों पर **प्रकृति-चित्रण** बड़ा ही मनोहारी है। वनिता नगरी के पार्श्व में सरयू तट पर तथा वाह्लीक देश में प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है, उदाहरणतः क्रमशः दो पद्य प्रस्तुत हैं—

मसृण तृणराजि विराज रही,
दूर्वा की वह छवि छाज रही,
जल-सीकर जिन पर चमक रहे,
मानो मुक्ताफल दमक रहे।[1]

× ×

वृक्षों के झुरमुट में मनहर,
अति सुन्दरतम लघुतर सरवर,
वह मुकुर-समुज्ज्वल स्वच्छ सलिल,
खिल-खिल कर खिलते हैं उत्पल।[2]

---

१ भरत-मुक्ति, पृष्ठ २४
२ वही, पृष्ठ ६८

भरत का राज्य-वर्णन करते हुए षड्ऋतुओं का वर्णन भी अत्यन्त मनोहर है। यह वर्णन परम्परानुसार ही हुआ है। रात्रि एवं प्रभात का संक्षिप्त वर्णन केवल भरत की चिन्ता के प्रसंग में हुआ है। इस समस्त प्रकृति-चित्रण में प्रसाद गुण पूर्णतः परिव्याप्त है। इन स्थलों पर निर्माता की प्रकृति-प्रियता का पर्याप्त प्रकाशन हुआ है।

नगरी एवं जनपद-वर्णन में वनिता (साकेत, अयोध्या) एवं तक्षशिला का वर्णन तथा बाह्लीक देश का वर्णन और इनके साथ ही साथ भरत एवं बाहुबली के राज्य का वर्णन भी अत्यन्त रोचक है। युद्ध-वर्णन में भरत एवं बाहुबली का सैन्य युद्ध और अन्त में उनका दृष्टि, नाद, भुज एवं दण्ड का चतुर्विध युद्ध बड़ा ही कुतूहलवर्धक एवं प्राण-प्रेरक है। इन वर्णनों में परम्परा को कहीं भी परित्यक्त नहीं किया गया है, परन्तु सन्त कवि की अपनी शैली कहीं भी मन्द एवं लुप्त नहीं होने पाई है।

इस प्रकार इस काव्य का भाव एवं कलापक्ष अत्यन्त उज्ज्वल एवं उदात्त है। इसका सन्देश है जगत्प्रपंच से विमुख होकर तपस्या एवं साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करना, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। वास्तव में यह काव्य जहाँ ज्ञान-पिपासुओं के लिए उपादेय है वहाँ साहित्य-मर्मज्ञों के लिए भी ग्राह्य है। आचार्य तुलसी ने दोनों ही वर्ग के व्यक्तियों के लिए एक अमूल्य देन दी है। निश्चय ही यह ग्रन्थ अध्येताओं के लिए एक महान् निधि का कार्य करेगा।

आचार्यश्री तुलसी की अमर कृति—

श्रीकालू उपदेश वाटिका

श्रीमती विद्याविभा, एम० ए०, जे० टी०
सम्पादिका—नारी समाज, नई दिल्ली

आदि काल से संतों के वचनामृत से मानवता के साथ-साथ साहित्य और संस्कृति भी समृद्ध होती चली आई है। सूर, तुलसी और कबीर की भाँति आचार्य तुलसी ने भी संत-परम्परा की माला में जो अनमोल मोती पिरोये हैं 'श्री-कालू उपदेश वाटिका' उनमें से एक है। ग्यारह वर्ष की आयु से ही आचार्य तुलसी ने अपने गुरु श्रीकालूगणी के चरणों में बैठ-बैठकर उनकी 'हीरां तोली बोली' में जो सीख ग्रहण की, उसी धरोहर को उन्होंने 'श्रीकालू उपदेश वाटिका' के रूप में जनता-जनार्दन को सौंप दिया है। वैसे तो आचार्य तुलसी भारत की प्राग्-ऐतिहासिक जैन-परम्परा के अनुयायी संत हैं, परन्तु इस वाटिका में जिन उपदेश सुमनों का चयन हुआ है, उनकी सुगन्ध सर्वव्यापी है। इस प्रकार आचार्य तुलसी केवल जैन-परम्परा के ही संत नहीं, भारत की संत-परम्परा के कीर्ति स्तम्भ हैं। जहाँ उन्होंने भक्ति के गीत गाए हैं और जन-हित के लिए उपदेश दिये हैं, वहाँ उनमें साहित्य-सृजन की भी विलक्षण प्रतिभा है।

आचार्य तुलसी की कृतियों में भाषा भावों के साथ बही है। आवश्यकतानुसार उन्होंने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है तो भाषा में एकरूपता लाने के लिए। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी; इन तीन भाषाओं में रचना की है। 'श्रीकालू उपदेश वाटिका' की भाषा राजस्थानी है। आचार्य तुलसी को संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी में से किस भाषा पर विशेष अधिकार है, यह कहना कठिन है। प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका में मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने उचित ही लिखा है कि 'आचार्यश्री तुलसी के लिए संस्कृत अधीत और अधिकृत भाषा है। राजस्थानी उनकी मातृभाषा है और हिन्दी मातृभाषावत् है'। संभवतः इसी समानाधिकार के कारण 'श्रीकालू उपदेश वाटिका' में इन तीनों भाषाओं का कहीं-कहीं जो मिश्रण हुआ है, वह स्वाभाविक बन पड़ा है। आचार्यश्री ने उसकी प्रशस्ति में निम्न पंक्तियाँ लिखकर उस मिश्रण को और भी स्पष्ट कर दिया है :

> **सम्वत एक लाडनूं फागण मास जो,**
> **सारी पहली परमेष्ठी पंचक रच्यो।**
> **समै समै फिर चलतो चल्यो प्रयास जो,**
> **सो 'उपदेश वाटिका' रो ढांचो जच्यो।**
>
> **पर प्राचीन पद्धति रै अनुसार जो,**
> **भाषा बणी मूंग चावल री खीचड़ी।**
> **वापिस देख्या एक-एक कर द्वार जो,**
> **तो अखरी बोली मिश्रित बैठी-खड़ी।**

आचार्य तुलसी को अपनी भाषा जहाँ 'मूंग चावल री खीचड़ी' के रूप में अखरी है, वहाँ उसने ऐसे पाठकों का कार्य सुगम बना दिया है जो राजस्थानी नहीं समझते। भाषा की ऐसी खिचड़ी मीराबाई के राजस्थानी भक्ति-पदों में भी

मिलती है। इससे रसोत्पत्ति में कोई बाधा नहीं पहुँचती है और यह संतों की वाणी की विशेषता भी है। आचार्य तुलसी संत-परम्परा में होने के कारण भाषा के अलावा भावाभिव्यंजना में भी तुलसी, सूर, कबीर और मीरां के निकट हैं, जिन्होंने अपने आराध्य के गीत गाये हैं। आचार्यश्री तुलसी जैन-परम्परा में दीक्षित होने के कारण अपने आराध्य अरिहन्त प्रभु का यश-गान करते हैं। वे कहते हैं :

प्रभु म्हारे मन- मन्दिर में पधारो,
करूँ स्वागत-गान गुणां रो।
करूँ पल-पल पूजन प्यारो॥

चिन्मय ने पाषाण बणाऊँ ? नहिं मैं जड़ पूजारो।
अगर, तगर, चन्दन क्यूं चरचूं ? कण-कण सुरभित थांरो॥
नहिं फल, कुसुम की भेंट चढ़ाऊँ, मैं भाव भेंट करणारो।
आप अमल अविकार प्रभुजी, तो स्नान कराऊँ क्यांरो।
नहिं तत, ताल, कंसाल बजाऊँ, नहिं टोकर टणकारो।
केवल जस झालर झणणाऊं धूप ध्यान धरणारो॥

अन्त में जब वे कहते हैं :

अशरण-शरण, पतित-पावन, प्रभु 'तुलसी' अब तो तारो।

तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुलसी ने अपने राम को, सूर ने अपने कृष्ण को, कबीर ने अपने 'साहिब' को और मीरा ने अपने गिरधर-गोपाल को पुकारा है।

जैन-दर्शन के अनुसार आत्मा का शुद्ध अथवा अशुद्ध होना उसी के उपक्रमों पर निर्भर है। साधक को यह जानते हुए भी सन्तोष नहीं होता। उसकी अन्तः-शुद्धि के लिए जैन धर्म में चार शरण और पाँच परम इष्ट हैं। शरण की अवस्था में जैन धर्म और बौद्ध धर्म एक दूसरे के निकट आ जाते हैं। बौद्ध धर्म में शरणागत केवल तीन की शरण ग्रहण करता है। वह कहता है—

बुद्धं शरणं गच्छामि,
धम्मं शरणं गच्छामि,
संघं शरणं गच्छामि।

जैन धर्म का साधक अरिहन्तों, सिद्धों, साधुओं और धर्म की शरण ग्रहण करता है। वह अरिहन्तों, सिद्धों, आचार्य, उपाध्याय एवं समस्त साधुओं को नमस्कार करता है। जैन मत के अरिहन्त और सिद्ध यही दो मुख्य आधार हैं। धर्म और साधु शरण हैं। आचार्य, उपाध्याय और मुनि इष्ट हैं। अरिहन्त इसलिए पूज्य है कि वे देह सहित हैं और अपने अष्ट कर्म आवरणों से चार कर्म आवरणों को दूर कर चुके है, इसीलिए वे जिन हैं। धर्म और तीर्थ के प्रवर्तक अरिहन्त परोपकारी हैं। आचार्य तुलसी ने अपनी उपदेश वाटिका का आरम्भ अरिहन्त की स्तुति से ही किया है। वे कहते हैं :

परमेष्ठी पंचक ध्याऊँ,
मैं सुमर-सुमर सुख पाऊँ,
निज जीवन सफल बणाऊँ।

अरिहन्त सिद्ध अविनाशी,
धर्माचारज गुण-राशी,
हूं उपाध्याय अभ्यासी,
मुनि-चरण शरण में आऊँ।

इन्हीं पंक्तियों से उन्होंने अपनी यात्रा आरम्भ की और 'मंगल द्वार' में पैर रखा। धीरे-धीरे एक-एक करके जिन चार प्रकोष्ठों में प्रवेश किया, उनका रहस्य समझाने का भी पूरा प्रयास किया है। एक 'मंगल द्वार' और चार प्रवेश के इस ग्रन्थ में अनेक सरस गीत हैं। उन गीतों में कितनी ही अन्तर कथाएं छिपी हैं। यदि वे ग्रन्थ के साथ अलग से नहीं दी जातीं तो उनका पाठकों के सामने आना एक प्रकार से कठिन ही था। ग्रन्थ के कुशल सम्पादन ने 'श्रीकालू उपदेश वाटिका' को एक नया निखार दिया है। इसके लिए सम्पादक श्रमण श्री सागरमलजी व मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' तथा मार्ग-दर्शक मुनिश्री नगराजजी पाठकों की श्रद्धा के पात्र हैं। पुस्तक हर प्रकार से सुन्दर एवं मनन के योग्य है।

मंगल द्वार में आराध्य की स्तुति सम्बन्धी बीस गीत हैं। कबीर की भाँति आचार्य तुलसी ने भी गुरु की महिमा गाई है। तेरापंथ के आठवें आचार्य श्रद्धेय श्रीकालूगणी उनके दीक्षा गुरु थे। आचार्य तुलसी उनकी महिमा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना उन्हीं के नाम से की। वे गुरु को पुकार कर कहते हैं :

ओ म्हांरा गुरुदेव !
भव-सागर पार पुगाओजी,
म्हांरे रूं-रूं में रम जाओजी।
अज्ञान अन्धेर मिटाओ जी ॥

अन्य भक्ति मार्गी संतों की भाँति वे भी गुरु को परमात्मा से मिलाने का माध्यम मानते हैं। सद्गुरु के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती, ऐसा उनका विश्वास है। तभी वे कहते भी हैं :

है गुरु दिव्य देव घर-घर का,
पावन प्रतिनिधि परमेश्वर का,
गुरु गोविन्द खड़्या लख गुरु ने, पहली शीश नमावं।

और भी कहा है—

एड़ी घिसे खिसे चहै चोटी, गुरु बिन गोता खावं।

यही कारण है कि वे गुरु और गोविन्द दोनों के सामने खड़े रहने पर कबीर की भाँति पहले गुरु के आगे ही शीश नमन करना चाहते हैं, क्योंकि गुरु ही गोविन्द से मिलाने वाली कड़ी हैं।

वीतराग का वर्णन करते समय आचार्य तुलसी निर्गुण उपासकों की पंक्ति में प्रकट होते हैं। मंगलद्वार में ही उन्होंने कहा है :

वीतराग नित्य सुमरिए, मन स्थिरता ठाण,
वीतराग अनुराग स्यूं, भजो भविक सुजाण,
वीतराग पद पावणो, जो बारम गुणठाण ॥

इसके पश्चात् वे संतों को संसार में सुखी मानकर कहते हैं :

समता रा सागर सन्त सुखी संसार में।
निज आतम उजागर सन्त सुखी संसार में ॥

यहीं से वे प्रथम प्रवेश की ओर अग्रसर हुए हैं। इसमें उन्होंने मनुष्य को अपने दुर्लभ जीवन को संवार कर रखने और बुराइयों का त्याग करने की बात कही है :

चेतन अब तो चेत,
चेत-चेत चोरासी में तूं भमतो आयो रे।
भयंकर चक्कर खायो रे ॥

और भी :

अब मानव जन्म मिल्यो आगो,
ओ यौवन, धन, तन, तरुणाई।

ऐश्वर्य, अलौकिक अरुणाई,
इक छिण में टूटे ज्यूं तागो ॥

इन सब वस्तुओं की नश्वरता की ओर ध्यान दिलाते हुए आचार्यश्री प्राणियों से एक बार फिर कहते हैं :

नर-देही व्यर्थ गमाई नां ।

वे व्यसनी लोगों को भी चेतावनी देते हुए कहते हैं :

भूलो मत पीवो रे भवियां भांग तमाखू ।

गांजो, सुलफो, तिम साथ, अरवो मत झालो हाथ ।
बीड़ी, सिगरेट संघात, त्यागो चाहो जो सुख सात ।
भांगां बागां बिच घोटं मोटं सिलाड़े, छोटा-मोटा मिल संग ।
पीवं अरु पावं हो मन की गोठ पुरावं, होवं कांइ रंग में भंग ॥

भंगड़ी कहिवावं पावं बुद्धि-विकलता, आवं चोहट्टे दौड़ ।
'फूलां मालण-सी करणी' स्वमुख सराहवं, पावं फल जैसी खोड़ ॥

यहाँ 'फूलां मालण' की अन्तरकथा से दुराचारी और उसका समर्थन करने वाले को एक ही कोटि में रखने का संकेत मिलता है। कथा इस प्रकार है कि एक युवा रानी अपने झरोखे में बैठी राजमार्ग की शोभा देख रही थी। उसकी आँख उधर से निकलते एक सुन्दर युवक पर पड़ी। रानी उसके रूप पर मुग्ध हो गई। युवक ने भी रानी को देखा तो मोहित हो गया। दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर हुए। युवक ने फूलां मालिन को राजमहल में फूल ले जाते देखा। वह उसे समझा-बुझा कर उसकी पुत्रवधू बन कर महल में रानी के पास जा पहुँचा। रानी की कली-कली खिल गई। अब तो युवक प्रतिदिन इसी रूप में रानी के पास पहुँच जाया करता था। एक दिन यह पाप का घड़ा फूट गया और राजा को पता चल गया। राजा ने रानी और युवक के साथ फूलां मालिन को भी मृत्यु-दंड सुना कर बीच बाजार में बैठा दिया। उसने अपने गुप्तचरों से कह दिया कि जो कोई व्यक्ति इनकी प्रशंसा करे उसे भी इनके साथ बैठा दिया जाये और अन्त में मौत के घाट उतार दिया जाये। उस रास्ते से कई लोग निकले, सबने बुराई की। एक ऐसा भी आया जो बोला 'मरना तो एक दिन था ही, अच्छा किया जो रानी के साथ रह कर जीवन का आनन्द लूट लिया।' जब गुप्तचरों ने उसे पकड़ लिया तो आगन्तुक ने पूछा—'क्यों ?' उत्तर मिला 'दुराचार का समर्थन करने के लिए।' इसीलिए प्रथम प्रवेश के अन्त में आचार्यश्री तुलसी ने अनुरोध पूर्वक कहा है :

प्राणी करणी निर्मल कीजे ।
'तुलसी' कामधेनु सम पाइ, मंजुल मानव काय,
मूरख अब चिन्तामणि ज्यूं, तूं मत नां काग उड़ाय ।

द्वितीय प्रवेश में पहुँच कर भी आचार्यश्री का ध्यान प्राणियों की पाप-मुक्ति की ओर ही विशेष रहा है। पाप और पुण्य का अन्तर आपने बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया है। कहा है :

पुण्य पाप रा फल है परगट, जो कोई आंख उघारं ।
एक मनोगत मोजां माणं, इक नर नगर बुहारं ॥

पाप-मुक्ति का उपाय बताते हुए कहा है :

नर क्षमा धर्म धारो ।
आध्यात्मिक सुख-साधन हृदय रोष वारो ॥
श्रमण-धर्म जो दशविध जैनागम गावं ।
क्षांति धर्म तिण मांही, प्रथम स्थान पावं ॥

वे साधक से कहते हैं :

राग री रंग पिछाणो ।
हो⋯आखिर पड़सी थांनै अन्तर ज्ञान जगाणो ।
द्वेष, राग दो बीज करम रा,
बाधक दोन्यूं आत्म-धरम रा,
हो⋯साधक नै आवश्यक यांरो मूल मिटाणो ।

आचार्य तुलसी ने द्वेष, कलह मिटाकर, भूठ बोलना छोड़ कर, लोभ और माया-मोह तजकर मुक्ति का सुख लेने का आग्रह किया है।

तीसरे प्रवेश में पहुँच कर वे साधक को सुखी होने का मार्ग बताते हैं कि :

अरिहन्त-शरण में आ जा,
शिव-सुख री झांकी पा जा ।

क्योंकि :

तीन तत्त्व हैं रत्न अमोलक, जीव जड़ी कर मानोजी ।
अर्हन् देव, महाव्रतधारी सुगुरु पिछाणोजी ।

इस प्रवेश में उन्होंने अनित्य, अशरण आदि सोलह भावनाओं का वर्णन किया है और जैन धर्म की महिमा स्थापित की है।

चौथे प्रवेश का आरम्भ उन्होंने समिति और गुप्ति से किया है कि :

प्रवचन माता आठ कहावै ।
समिति गुप्तिमय सदा सुहावै ।

पूरे प्रवेश में आचार्यश्री ने पाँच समिति, तीन गुप्ति और पर्व के सम्बन्ध में बताया है।

अन्त में प्रशस्ति में उन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ के विषय में कहा है :

श्री कालू-गुरु वचनामृत उपदेश जो,
मैं पद्यांकित करयो स्मरयो जुग-पाछलो ।
'श्रीकालू उपदेश वाटिका' वेष जो,
प्रस्तुत चाहै सुणो, सुणाओ, बांचल्यो ।

वास्तव में यह ग्रंथ सुनने, सुनाने और पढ़ने योग्य है। इसमें शिक्षा, सिद्धान्त और अनुभूति का त्रिवेणी संगम है। निस्सन्देह यह आचार्यश्री तुलसी की एक अमर कृति है, जो आने वाले वर्षों में उनकी बहुमुखी प्रतिभा का प्रकाश फैलाती रहेगी।
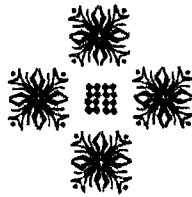
आषाढ़भूति : एक अध्ययन

श्री फरजनकुमार जैन, बी० ए०, साहित्यरत्न

'आषाढ़भूति' आचार्यश्री तुलसी की एक साहित्यिक कृति है। अणुव्रत-आन्दोलन द्वारा नैतिक जागृति का उद्घोष करने वाले महापुरुष ने आषाढ़भूति में साहित्य के माध्यम से आत्मवाद का दिव्य सन्देश दिया है। हिन्दी-साहित्य की काव्य-परम्परा में यह एक खण्ड काव्य है। काव्य की प्रबन्धात्मकता के साथ-साथ प्रगीत के सम्मिश्रण ने कृति को चार चाँद लगा दिए हैं। साथ ही औपन्यासिक पात्र संवादों ने तो काव्य की कथावस्तु में जान ही फूंक दी है। इस प्रकार कवि ने प्रबन्ध काव्य में प्रगीत की विशेषताओं तथा उपन्यास के तत्त्वों का प्रयोग कर हिन्दी साहित्य उपवन को अभिनव-धारा से सिंचित किया है, जो कि वास्तव में उनका साहित्य को एक श्लाघनीय वरदान कहा जा सकता है। उपर्युक्त काव्य 'आषाढ़भूति' में एक जैनाचार्य का जीवनवृत्त चित्रित किया गया है। 'आषाढ़भूति' के गणनायक और एक अच्छे व्याख्याता होने के कारण उनके चरित्र का समुज्ज्वल रूप पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होता है। परन्तु बाद में उनकी विचार-शिथिलता ने उनकी संयम वीणा की झंकारों को तोड़कर भोगवाद का बेसुरा राग अलापना आरम्भ कर दिया था। स्वर्ग-प्रवासी शिष्य द्वारा वे पुनः उद्बोधित हुए। इन सबका प्रस्तुत काव्य में बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। यह हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि बन गई है। वास्तव में यह रचना आस्तिकता की नास्तिकता पर विजय की प्रतीक है।

'आषाढ़भूति' की भाषा समासयुक्त हिन्दी है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का इसमें बाहुल्य है। 'हरिऔध' जी ने अपने 'प्रियप्रवास' में संस्कृत के मूल शब्दों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करते हुए भी कहीं उसमें दुरूहता तथा सौन्दर्य-विघ्नता नहीं आने दी है। उसी प्रकार आचार्यश्री ने भी अपने काव्य में संस्कृत तथा प्राकृत के मूल पदों का खुलकर प्रयोग किया है, पर पाठक को उसमें भटकने का मौका नहीं मिलता, अपितु वह उनमें झूमता हुआ काव्य का रसास्वादन करता चलता है। जहाँ पर मूल शब्दों का प्रयोग ही कविता में किया गया है, वहाँ काव्य की भावना को अधिक प्रस्फुटन मिला है। जैसे—**शरणं चत्तारि**। यहाँ ऐसा लगता है मानो चार और चत्तारि में कोई अन्तर ही नहीं। यहाँ पर चत्तारि शब्द हिन्दी का ही बन गया प्रतीत होता है। इसी प्रकार संस्कृत के शब्दों का भी बहुत प्रयोग हुआ है। एक-दो शब्द ऐसे भी आये हैं जो कि हिन्दी में प्रचलित नहीं हैं, जैसे 'बाढ़' शब्द। फिर भी इसका प्रयोग उपयुक्त स्थान पर होने के कारण अर्थ समझने में कठिनाई अनुभव नहीं होती, प्रत्युत काव्य प्रवाह को आगे बढ़ाने में ही सहायक होता है। परन्तु जहाँ प्राकृत के वाक्यों का प्रयोग ज्यों-का-त्यों हुआ है, वहाँ अवश्य थोड़ा खटकता है। जैन दर्शन के मूल सैद्धान्तिक शब्दों का प्रयोग भी अधिक मात्रा में हुआ है। उन शब्दों का पारिभाषिक ज्ञान रखने वाले पाठक के लिए तो सोने में सुहागा है ही। जैनेतर या जैन दर्शन से अनभिज्ञ पाठक भी इसका समुचित आनन्द ले सके, इसके लिए सम्पादक ने परिशिष्ट में इनका अर्थ और व्याख्या कर दी है।

कवि ने विविध स्थानों पर मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। जो न केवल भावाभिव्यंजक हैं, अपितु पाठक के मर्मस्थल को भी छूती हैं। संस्कृत की उक्ति **यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्**, का हिन्दी रूप **बन कर्जदार भी घी पीना** स्वार्थी बनकर अन्याय करने वालों और दूसरों का सब-कुछ छीनने वालों के ऊपर कितना तीव्र आघात करती है। **मधु से आप्लावित तीक्ष्ण छुरी, मीठों में पीसे जाते घुन** ये लोकोक्तियाँ शब्दों का परिधान पाकर कितनी सहज व हृदयस्पर्शिनी बन गई हैं। जिस प्रकार 'हरिऔध' जी ने 'चोखे चौपदे' तथा 'चुभते चौपदे' में मुहावरों का उपयोग कर समाज पर तीखा प्रहार किया है, उसी प्रकार आचार्यश्री ने 'आषाढ़भूति' में प्रचलित उक्तियों का ग्रन्थन

कर मानव को आदर्शाभिमुख करने का सफल प्रयास किया है। कहीं-कहीं तो आचार्यश्री की स्वयं की पंक्ति भी एक लोकोक्ति बन गई है। **भोज्य को पहचानने से पेट बोलो कब भरा।**

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आचार्यश्री ने 'आषाढ़भूति' की भाषा को बहुरंगी बनाया है। आचार्यश्री भाषा के अनुगत न होकर भाषा उनकी अनुगामी है। 'आषाढ़भूति' प्रसाद की तरह तत्सम शब्दों की प्रधानता तथा गुप्त जी की भाँति अप्रचलित संस्कृत शब्दों का अभिनव प्रयोगों का समवायी रूप है।

'आषाढ़भूति' में मुख्यतः दोहा, सोरठा तथा गीतिक छन्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, परन्तु काव्य का सबसे आकर्षक रूप प्रबन्ध काव्य में प्रगीत का अभिनव प्रयोग है। कवि ने विभिन्न राग-रागिनियों में कविता कामिनी को सँवारा है। प्राचीन एवं अर्वाचीन हिन्दी तथा राजस्थानी लोक गीतों के संगीत तथा आधुनिक प्रसिद्ध लयों को काव्य में गुंजित किया है। प्रगीत काव्य की अभिव्यक्ति प्रस्तुत रचना में विभिन्न स्थलों पर प्रस्फुटित हुई है। विविध घटनाओं तथा भावनाओं को व्यक्त करते हुए लेखक ने छन्द परिवर्तित किये हैं, जिससे विभिन्नताओं की सुकुमारता दृष्टिगत होती है। जहाँ संगीत मानव की हृत्तन्त्री को झंकृत करता है, वहाँ वह काव्यमय होकर मानव की भावनाओं को प्रांजल करने में अपना सानी नहीं रखता। लेखक ने संगीत को काव्यमय तथा काव्य को संगीतमय बनाकर अनात्मवाद के गहनतम में सोये हुए स्वार्थी मानव को उद्‌बोधित करने का सफल प्रयास किया है।

सरसता, रमणीयता तथा शब्दों और अर्थों में अदोषता आदि काव्य के मुख्य गुण माने जाते है। रसयुक्त तथा दोषमुक्त काव्य ही रमणीयता अथवा सुन्दरता की कोटि में आ सकता है और कविता में रमणीयता अथवा सुन्दरता लाना अलंकारों का विशेष काम है। मानव सौन्दर्य प्रेमी होता है, यही कारण है कि वह प्रागैतिहासिक काल के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भी सुन्दरता लाने का प्रयास करता है। काव्य क्षेत्र में भी सुन्दरता के लिए ही अलंकारों का आविर्भाव हुआ है। प्रस्तुत काव्य में अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, उपमा, रूपक, उदाहरण आदि अलंकारों का मुख्यतः प्रयोग हुआ है। अन्य अलंकार भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं।

अलंकारों से किस प्रकार पाठक की आँखों के आगे वर्ण्य विषय का चित्र-सा खिंच जाता है, यह निम्न पंक्तियों में देखिए—

आध्यात्मिक मार्मिक धार्मिक उनके भाषण का अद्‌भुत ओज,
व्यक्ति व्यक्ति करने लग जाते अपने अन्तर मन की खोज,
जीवन दर्शन मुख्य विषय था जिनके पावन प्रवचन का,
पूंगी पर ज्यों नाग डोलते, लगता था मन जन-जन का।

उपर्युक्त पंक्तियों में अलंकारों की कैसी छटा विद्यमान है। अन्त्यानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश तथा उपमा अलंकारों का प्रयोग किस सुन्दर ढंग से किया गया है। जिस प्रकार पूंगी पर सर्प मन्त्रमुग्ध होकर झूमने लगत है, उसी प्रकार सभास्थल में बैठा हुआ जनसमुदाय भी धर्माचार्य आषाढ़भूति का पावन उपदेशामृत मग्न होकर पान कर रहा है। इस प्रकार अलंकारों का प्रयोग कर काव्य को द्विगुणित सौन्दर्य प्रदान करना आचार्यश्री की अद्‌भुत सूझ का परिचायक है। इसी प्रकार रूपक का भी एक उदाहरण देखिए—

होंगे श्री आचार्यदेव ही, लाखों पतितों के पावक।
होगा यही विनोद पूज्य-पादाम्बुज का नन्हा साधक।

'साहित्य दर्पण' के लेखक ने लिखा है—**वाक्यं रसात्मकं काव्यम्** अर्थात् रस युक्त वाक्य ही काव्य होता है। रस हीन रचना काव्य की अधम कोटि में आती है। रस वह अपार्थिव पदार्थ होता है, जिसका पान कर पाठक इस लौकिक संसार से दूर **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना से ओत-प्रोत होता है तथा पात्र के सुख-दुख से स्वयं को तादात्म्य कर उसके सुख-दुःख को अपना मानने लगता है।

'आषाढ़भूति' में शान्त रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। यही इसमें प्रमुख रस है। वियोग, करुण, वात्सल्य एवं बीभत्स रस आदि भी सहायक रस के रूप में आये हैं। कौन ऐसा सहृदय पाठक होगा जो धर्माचार्य आषाढ़भूति

के दुख में अपनी सहानुभूति न रखता होगा, वे करुणार्त पुकार रहे हैं—

क्या करूँ ? कहाँ अब जाऊँ रे ? दुःख किसे सुनाऊँ रे !
मन को कैसे समझाऊँ रे ! दुःख किसे सुनाऊँ रे !
एक रहा था जो छोटा-सा, बालक नयन सितारा।
अन्ध-यष्टि-सा मेरे आगे-पीछे एक सहारा।
निर्बल का बल, निर्धन का धन, यदि वह भी बच जाता।
तो उसके आधार बुढ़ापा, सुखपूर्वक कट जाता।
अब रो-रो नयन गमाऊँ रे।

जिस समय आचार्य आषाढ़भूति पदच्युत हो निर्दय बन सुकुमार छः बालकों की हत्या करते हैं। उस समय तो ऐसा लगता है मानो करुणा स्वयं ही मूर्तरूप धारण करके आ गई है।

वियोग शृंगार रस का प्रबल रूप है। जितना वियोग में रस का परिपाक हो पाता है, उतना संयोग में नहीं। चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, प्रलाप और उन्माद आदि वियोग की अनेक दशाएं मानी जाती हैं। शिष्यों के काल कवलित हो जाने पर उनके उपकरण आदि को देखकर उनका स्मरण, उनके बिना भविष्य की चिन्ता, विनोद के गुणकथन, विनोद को पुकारना और उन्माद की दशा में द्वार तक दौड़े जाना आदि वियोग में ही होते हैं। एक उदाहरण देखिए—

हा ! वत्स ! विनोद कहाँ तू मेरी आशा के तारे।
करुणार्त पुकार रहे हैं, आ वत्स ! शीघ्र तू आ रे।
आहट सुन दौड़े-दौड़े, वे द्वारोपरि जाते हैं।
कोई न दृष्टिगत होता (तो) मूर्च्छित से हो जाते हैं।

बच्चों के वियोग में उनके माता-पिता की दशा का वर्णन तो बहुत मार्मिक बन पाया है। उनके प्रति माता-पिता तथा गुरु की शिष्य के प्रति वात्सल्य भावना का भी समुचित चित्रण भली-भाँति किया गया है। बीभत्स रस भी एक जगह आया है। इसका एक उदाहरण पढ़िए—

गीध-दृष्टि से दूर-दूर तक, पैनी नजर निहार रहे।
बन करके लोभान्ध आज वे कुछ भी नहीं विचार रहे।
नहीं दृष्टिगत पशु-पक्षी भी क्या मानव का नाम निशान।
चारों ओर रेत के टिब्बे नीरव पथ अरण्य सुनसान।

इस प्रकार 'आषाढ़भूति' एक रस युक्त काव्य रचना है तथा इसमें विभिन्न रसों का सुन्दर समावेश है।

आषाढ़भूति की कथा जैन समाज में अत्यन्त प्रचलित है। समय-समय पर प्राकृत, संस्कृत, गुजराती व राजस्थानी भाषाओं में इस पर प्रबन्ध रचे जाते रहे हैं। प्रख्यात कथावस्तु कल्पना का सामंजस्य पाकर अधिक मुखरित हो उठी है। स्थान-स्थान पर प्रासंगिक लोक कथाएं तथा प्रचलित शिक्षा कहानियाँ भी संकेत रूप में आई हैं, जिन्हें पाठकों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में सम्पादक ने सविस्तार हिन्दी गद्य में लिख दिया है। यह मात्र प्राचीन भाषाओं से अनूदित ही नहीं है, अपितु इसमें यथा प्रसंग दर्शन, अध्यात्म लोक व्यवहार के नाना उपयोग प्रसंग बहुत ही रोचक शैली से संयोजित किये गए हैं। हिन्दी काव्य रचना में जितना दर्शन का दिग्दर्शन हो पाया है, उतना अन्य भाषाओं में उपलब्ध नहीं है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, प्रसाद आदि का किसी-न-किसी दार्शनिक वाद से सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि अद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शैव दर्शन, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन आदि दर्शनों की मीमांसा हिन्दी कविता में प्रचुर मात्रा में मिलती है और आश्चर्य यह है कि दर्शन जैसे शुष्क और दुरूह विषय को भी हिन्दी कवियों ने सरस बना दिया है। साथ ही हम कह सकते हैं कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ निधि भी वे ही कृतियाँ हैं; जिनमें किसी न किसी दर्शन का पुट पाया जाता है। 'आषाढ़भूति' आस्तिकता की नास्तिकता पर विजय का प्रतीक है। भारतीय संस्कृति में आस्तिकवाद का विशेष महत्त्व है। नास्तिकवाद के प्रवर्तक बृहस्पति ने जन्म-मृत्यु, नरक-स्वर्ग, आत्मा-परमात्मा सभी इस भौतिक संसार

में ही माना है। नास्तिकों के मत में प्रकृति ही सब कुछ है। उनके अनुसार जड़-चेतन एक ही हैं। परन्तु **प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्** यदि जड़ और चेतन एक ही वस्तु के नाम हैं और उनका पृथक् अस्तित्व नहीं है तो मृत शरीर कर्मशील क्यों नहीं होता ? कवि ने निम्न पंक्तियों में नास्तिकों के तर्क का खण्डन तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया है :

यदि भूतवाद ही सब कुछ है, चेतन का पृथगस्तित्व नहीं,
चेतनता धर्म, कहो किसका, गुण अननुरूप होता न कहीं ?
चेतना शून्य क्यों मृत शरीर ? धर्मी से धर्म भिन्न कैसे ?
वह जीव स्वतन्त्र द्रव्य इसकी सत्ता है स्वयं सिद्ध ऐसे।

भारतीय विद्वानों व कवियों ने गुरु महिमा का बहुत वर्णन किया है। कबीर तो गुरु को भगवान् से भी बढ़कर मानते थे। वे कहते थे :

हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।

आचार्यश्री ने भी गुरु-गुण महिमा को अपनी कृति में दर्शाया है। स्थानांगसूत्र में भगवान् श्री महावीर ने कहा है कि पिता से पुत्र का, लालन-पालन कर अपने ही समान बना देने वाले महाजन से अनाथ बालक का तथा गुरु से शिष्य का उऋण होना बहुत कठिन है।

माता-पिता का पुत्र पर उपकार अपरम्पार है,
निस्व- सेवक पर महर्धिक का अथक आभार है।
शिष्य पर गुरु का ततोधिक महा उपकृति भार है,
करो सेवा क्यों न कितनी, किन्तु दुष्प्रतिकार है।

यही कारण है कि स्वर्गप्रवासी शिष्य विनोद भी अपने गुरु के गुणों का गान करता है :

शिष्यों पर रहता सद्गुरु का है उपकार अनन्त रे।
कण-कण ले सागर के जल का कौन पा सके अन्त रे।

पड़ा कोयलों की खानों से कंकर जौहरी लाता।
चढ़ा सान पर चमका कर करोड़ों का मूल्य बढ़ाता।
वैसे ही चमकाते शिष्यों को गुरुवर गरिमावन्त रे।

देव, गुरु, धर्म का महत्त्व भारतीय संस्कृति ने आंका है, इसीलिए भारतवर्ष में प्राचीन काल से किसी भी कार्य के प्रारम्भ में इनकी आराधना की जाती है। साहित्यिक कला कृतियों में भी प्रारम्भ में मंगलाचरण की रीति चली आ रही है। कवि ने कृति के प्रारम्भ में इनकी स्तुति की है।

जहाँ हम रचना में भाव पक्ष समुन्नत पाते हैं, वहाँ कला पक्ष और कल्पना पक्ष भी कम नहीं है। कवि की कल्पना तो अपनी चरम सीमा पर ही पहुंच गई है। एक ओर कवि की लेखनी से महामारी की विभीषिका चित्रित हुई है तो दूसरी ओर बालकों की सुकुमारता। दोनों ही दृश्य चित्रपट की भाँति आँखों के सम्मुख घूमते से नजर आते हैं। महामारी का चित्रण कितना सजीव है :

एक चिता पर, एक बीच में, एक पड़ा है धरती।
वर्ग-भेद के बिना शहर में घूम रहा समवर्तीजी।

छहों बालक आचार्य आषाढ़भूति को वन्दन करने आते हैं, जहाँ बालकों के कान्त वपु का वर्णन आता है वहाँ के स्थिति चित्रण में तो कवित्व परमाकर्षक बन गया है। चित्रण शैली तथा वस्तु शैली का एक नमूना देखिए :

तप्त स्वर्ण से उनके चेहरे, कोमल प्यारे-प्यारे।
झलक रही थी सहज सरलता, हसित वदन थे सारे रे।

दीप्तिमान कानों में कुण्डल, लोल-कपोल स्पर्शी।
मुक्ता, मणि, हीरों, पन्नों के हार हृदय आकर्षी रे।